विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका UGC Approved Journal - UGC Care Review
ISSN NUMBER : 2455-9717 RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929
शिवना प्रकाशन
वर्ष : 8
अंक : 31
अक्टूबर-दिसम्बर 2023
मूल्य 50 रुपये

शिवना साहित्यिकी

शोध, समीक्षा तथा आलोचना की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

मानचित्र

प्रदीप सैनी

हमारी सभ्यताओं का स्थापत्य
उनके पसीने से जन्मा है
हमारी रोशनियों में चमकता लाल
उनके लहू का रंग है
कोई चौराहा
उन्हें दिशाभ्रमित नहीं करता
वे जानते हैं कौन-सा है
शहर से बाहर जाने का रास्ता
वे नहीं पूछेंगे हमसे
कौन-सी सड़क जाती है उनके गाँव
उन्हें याद हैं
लौट जाने के सभी रास्ते
उनके तलुओं में
दुनिया का मानचित्र है।

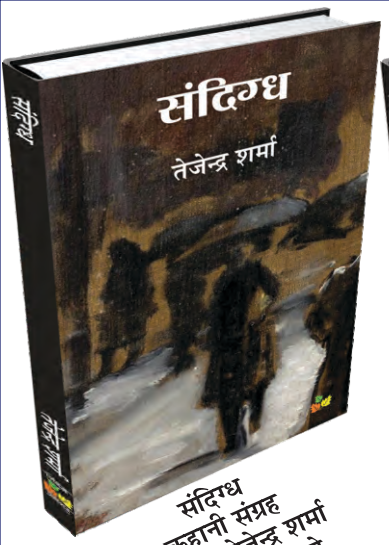

संदिग्ध
कहानी संग्रह
लेखक - तेजेन्द्र शर्मा
मूल्य : 300 रुपये

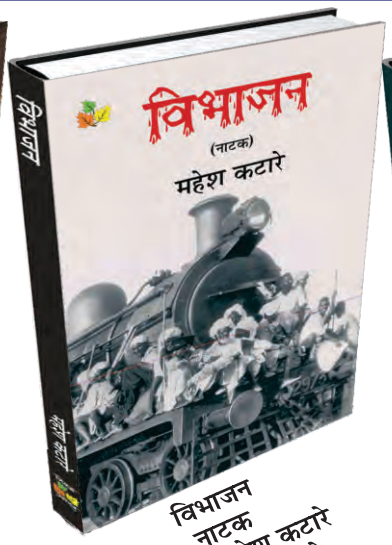

विभाजन
नाटक
लेखक - महेश कटारे
मूल्य : 200 रुपये

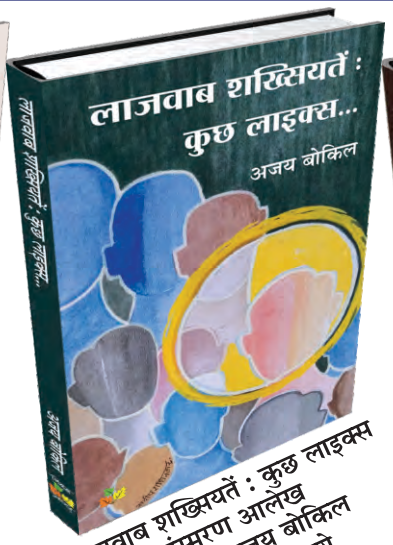

लाजवाब शख्सियतें : कुछ लाइक्स
संस्मरण आलेख
लेखक - अजय बोकिल
मूल्य : 400 रुपये

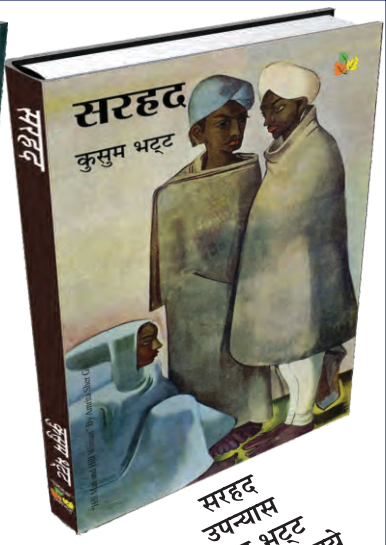

सरहद
उपन्यास
कुसुम भट्ट
मूल्य : 150 रुपये

संवाद की संस्कृति
साक्षात्कार
संपादक - राहुल देव
मूल्य : 225 रुपये

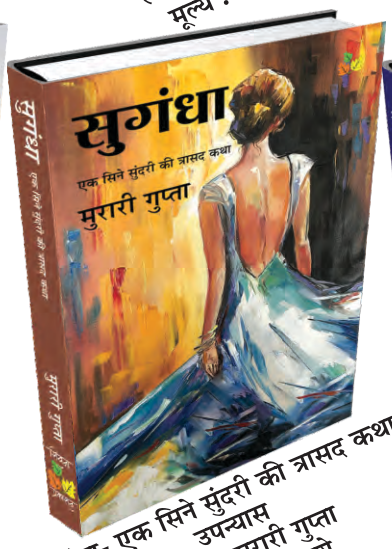

सुगंधा- एक सिने सुंदरी की त्रासद कथा
उपन्यास
लेखक - मुरारी गुप्ता
मूल्य : 350 रुपये

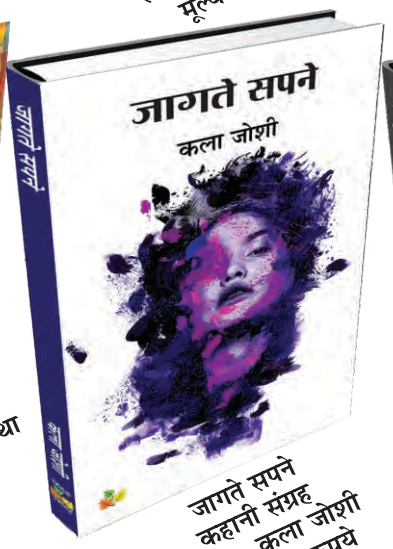

जागते सपने
कहानी संग्रह
लेखक - कला जोशी
मूल्य : 200 रुपये

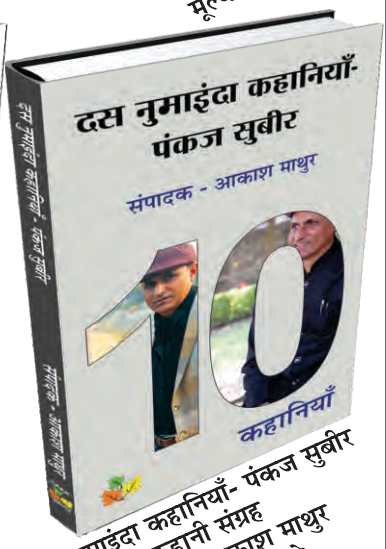

दस नुमाइंदा कहानियाँ- पंकज सुबीर
कहानी संग्रह
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य : 150 रुपये

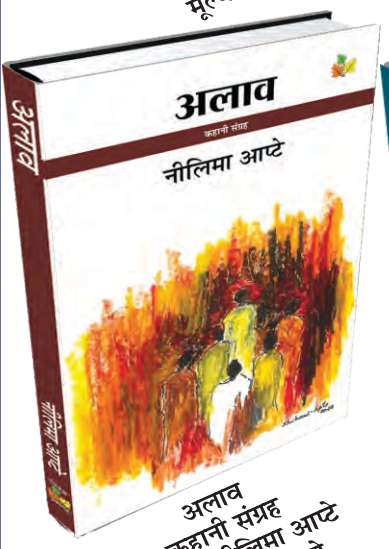

अलाव
कहानी संग्रह
लेखक - नीलिमा आप्टे
मूल्य : 150 रुपये

सर्जक, आलोचक और कोशकार डॉ. मधु सन्धु
व्यक्तित्व
संपादक - डॉ. दीप्ति
मूल्य : 400 रुपये

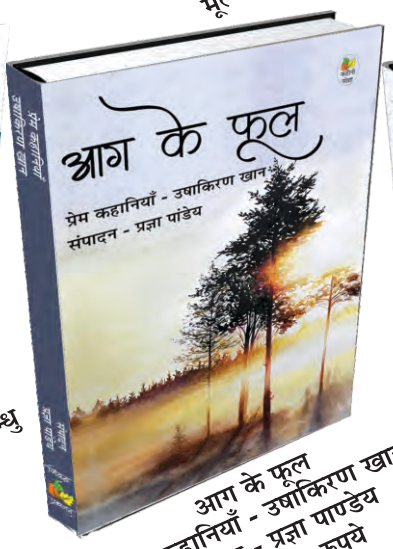

आग के फूल
प्रेम कहानियाँ - उषाकिरण खान
संपादक - प्रज्ञा पाण्डेय
मूल्य : 225 रुपये

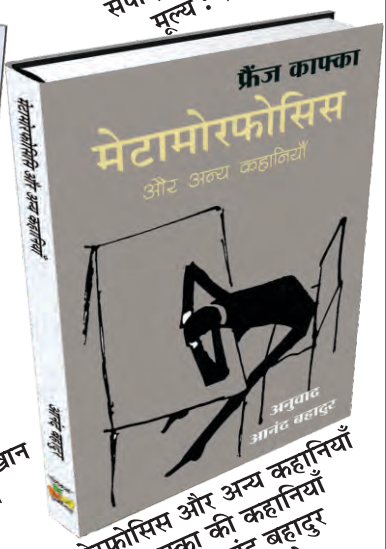

मेटामोरफोसिस और अन्य कहानियाँ
फ्रैंज काफ़्का की कहानियाँ
अनुवाद - आनंद बहादुर
मूल्य : 400 रुपये

शिवना प्रकाशन
शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in

amazon
http://www.amazon.in

flipkart.com
http://www.flipkart.com

Mobile - +91-9806162184, +91-6265665580
+91-8819806162
https://twitter.com/shivnac
https://www.facebook.com/shivna.prakashan
https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
Email- shivna.prakashan@gmail.com

संरक्षक एवं सलाहकार संपादक
सुधा ओम ढींगरा

संपादक
पंकज सुबीर

कार्यकारी संपादक एवं क़ानूनी सलाहकार
शहरयार (एडवोकेट)

सह संपादक
शैलेन्द्र शरण, आकाश माथुर

डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी, सुनील पेरवाल, शिवम गोस्वामी

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 2-7
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर
मध्य प्रदेश 466001
दूरभाष : +91-7562405545
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल- shivnasahityiki@gmail.com

ऑनलाइन 'शिवना साहित्यिकी'
http://www.vibhom.com/shivnasahityiki.html
फेसबुक पर 'शिवना साहित्यिकी'
https://www.facebook.com/shivnasahityiki
एक प्रति : 50 रुपये, (विदेशों हेतु 5 डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष)
11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)
बैंक खाते का विवरण-
Name: Shivna Sahityiki
Bank Name: Bank Of Baroda,
Branch: Sehore (M.P.)
Account Number: 30010200000313
IFSC Code: BARB0SEHORE

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यावसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्य प्रदेश) रहेगा।

शिवना प्रकाशन

शिवना साहित्यिकी

शोध, समीक्षा तथा आलोचना की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका
वर्ष : 8, अंक : 31, त्रैमासिक : अक्टूबर-दिसम्बर 2023
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका
(UGC Approved Journal - UGC Care Review)
RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929
ISSN : 2455-9717

आवरण कविता
प्रदीप सैनी, सिरमौर

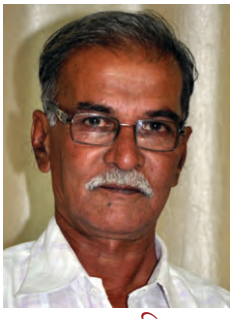
आवरण चित्र
राजेंद्र शर्मा, सीहोर

इस अंक में

वर्ष : 8, अंक : 31

आवरण कविता / प्रदीप सैनी
संपादकीय / शहरयार / 3
व्यंग्य चित्र / काजल कुमार / 4
शोध आलोचना
पुराना घर पुरानी बस्ती
प्रो. प्रज्ञा
राजेन्द्र दानी / 5
केंद्र में पुस्तक
रूदादे-सफ़र
सुधा जुगरान, डॉ. मधु संधु, गंगा शर सिंह
पंकज सुबीर / 9
पुस्तक समीक्षा
हमेशा देर कर देता हूँ मैं
प्रताप दीक्षित
पंकज सुबीर / 15
सुद में हरसूद
विनय उपाध्याय
वसंत सकरगाए / 18
मैमराजी
अरुण कुमार जैमिनि
जयंती रंगनाथन / 20
मन की नदी से भीगे शब्द
दीपक गिरकर
रेखा भाटिया / 22
आख़िरी पायदान पर खड़ा आदमी
डॉ. रमाकांत शर्मा
मंजुश्री / 24
समर्पयामि
दीपक गिरकर
डॉ. गरिमा संजय दुबे / 26
क़रीब था क्षितिज
डॉ. नर्मदा प्रसाद उपाध्याय
शैलेन्द्र शरण / 28
हिन्दी व्यंग्य की प्रवृत्तियाँ और परिवेश
राहुल देव
कैलाश मण्डलेकर / 30
आत्महत्या की तैयारी
अशोक प्रियदर्शी
डॉ. कुमार संजय / 31
गीत- न-गीत
चारुमित्रा
अशोक प्रियदर्शी / 32
कथा-सप्तक सुधा ओम ढींगरा
डॉ. पुष्पलता अधिवक्ता
सुधा ओम ढींगरा / 33
धूप के नन्हे पाँव
डॉ. विंध्यमणि
चित्रा सिंह / 34
गिद्धों का प्रजातंत्र
ब्रजेश कानूनगो
श्रीकांत चौधरी / 74
इतना तुम मय होकर
सुशील पोद्दार
स्नेह 'पीयूष' / 158
नई पुस्तक
संदिग्ध
तेजेन्द्र शर्मा / 47
विभाजन
महेश कटारे / 71
लाजवाब शख़्सियतें : कुछ लाइक्स
अजय बोकिल / 90
दस नुमाइंदा कहानियाँ - पंकज सुबीर
संपादक : आकाश माथुर /113
सुगंधा
मुरारी गुप्ता / 125
सरहद
कुसुम भट्ट / 173
शोध आलेख
सोनू बाला / 35
सरिता जिलेदार बिन्द / 37
शालू / 39
राखी / 42
सोमबीर / 45
गौरव गौतम / 48
रेखा शर्मा / 51
अपर्णा ए / 54
सरिता / 57
सारिका ठाकुर / 60
चिप्पी एम आर / 63
मीनू शिवन / 66
गीतु दास / 69
वैष्णवी गौतम / 72
डॉ.संतोष गिरहे / 75
डॉ. मीरा कुमारी / 78
डॉ. श्रुति शर्मा / 81
जितेन्द्र कुमार मीना / 84
डॉ.अर्जुन के तड़वी / 87
डॉ. संजय आर पटेल / 89
डॉ. रमेश कुमार / 91
प्रो. डॉ. परेश के. पटेल / 93
डॉ. कमलेशकुमार बालूभाई पटेल / 95
डॉ. आज़ादसिंह आर. मकवाना / 97
रामकरण रावत / 99
रेखा शर्मा / 102
कुमारी मीना / 105
शुभांगी सोनी / 108
शकीला देवी / 111
संतोष कुमारी / 114
मनीष सोलंकी / 117
उर्मिला / 120
डॉ. कल्पना आर. पटेल / 123
दिलीप कुमार / 126
कविता / 129
मंजीतसिंह / 132
पूनम सिवाच / 135
स्नेह लता / 138
संदीप कुमार / 141
सुकेश कुमारी / 144
कुन्ती मीणा / 147
डॉ. निर्मला कुमारी मीणा / 150
डॉ. कुलवन्त सिंह शेखावत / 153
पटेलिया हरीशभाई रामजीभाई / 156
डॉ. मनोरमा मिश्रा / 159
ज्योति / 162
बबीता / 165
मनीष कुमार / 168
प्रखर / 171
बिन्दु डनसेना / 174
पूजा / 177
डॉ. सुनीता कुमारी / 180
डॉ. कविश्री जायसवाल / 181
दीपक गिरकर / 184
नवीन कुमार / 190

संपादकीय

ऑनलाइन शॉपिंग साइट्स के 'रीव्यू' और 'रेटिंग' के लिए लिखने वाले ये लेखक

शहरयार
शिवना प्रकाशन, पी. सी. लैब,
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र.
466001,
मोबाइल- 9806162184
ईमेल- shaharyarcj@gmail.com

इन दिनों एक विचित्र सी दौड़ लगी हुई है। और यह दौड़ है ऑनलाइन शॉपिंग साइट्स जैसे अमेज़ान, फ़्लिपकार्ट आदि पर अपनी पुस्तकों के लिए रीव्यू, रेटिंग प्राप्त करने की दौड़। जबकि यह बात भी अब तो बहुत छुपी हुई नहीं है कि यह सब प्रायोजित भी होते हैं और आप चाहें तो अपने लिए ख़रीद भी सकते हैं। बाक़ायदा एजेंसियाँ हैं, जो आपसे पैसे लेकर आपकी किताब का इन साइट्स पर प्रमोशन करती हैं। पैकेज में सब कुछ शामिल होता है, आपको अच्छी रेटिंग्स दिलवाना, आपको अच्छे रीव्यूस दिलवाना और साथ ही यदि आपका बजट साथ दे रहा हो तो आपकी किताब को बेस्ट सेलर लिस्ट में लाने की भी व्यवस्था रहती है। इन शॉपिंग साइट्स पर जो बेस्ट सेलर लिस्ट होती है, वह प्रति घंटे की होती है, इसलिए एक घंटे की सेल के आधार पर किसी भी किताब को बेस्ट सेलर में ले आना आसान होता है। जब भी आप किसी किताब की बेस्ट सेलर लिस्ट देखें तो यह ज़रूर देखें कि उसे पुस्तकों के किस वर्ग में रखा गया है। किसी ऐसे वर्ग में पुस्तक रख देना जहाँ वैसे ही कम पुस्तकें हैं, या नहीं के बराबर हैं, तो वहाँ आपकी पुस्तक केवल कुछ ही कॉपियों के बिकने से बेस्ट सेलर में आ जायेगी। इसलिए यह ज़रूर देखें कि वह पुस्तक पूरी पुस्तकों में कहाँ खड़ी हुई है। हर पुस्तक इन शॉपिंग साइट्स पर दो जगह बेस्ट सेलर रेटिंग में दर्ज होती है, एक तो पूरी पुस्तकों में और दूसरा किसी एक ख़ास ज़ोनर के वर्ग में। लेखक अपनी तरफ़ से ख़ास ज़ोनर का ही प्रचार करता है, कभी नहीं बताता कि पूरी पुस्तकों में उसकी पुस्तक कहाँ खड़ी है। असल में तो वही बेस्ट सेलर लिस्ट होती है। कई बार कुछ लेखक अपनी पुस्तक को अलग-अलग वर्गों में डलवा देते हैं कि कहीं तो वह बेस्ट सेलर हो जायेगी। जहाँ भी वह बेस्ट सेलर होगी, बस वहाँ की रेटिंग को लेखक अपनी सोशल मीडिया में शेयर कर देगा। हाँ तो बात चल रही थी रीव्यू और रेटिंग की, इस समय इनका बड़ा बोलबाला है। नये लेखक इस बात पर ध्यान नहीं दे रहे हैं कि उनकी किताब को असली पाठक पसंद कर रहा है या नहीं, उस पाठक का उस पुस्तक के बारे में क्या विचार है, उसे तो बस इस बात की चिंता रहती है कि शॉपिंग साइट्स पर उसे कितने लोगों ने फाइव स्टार रेटिंग दी है। लेखक अपने मित्रों, परिचितों तथा रिश्तेदारों को सबसे पहले अपनी किताब का ऑनलाइन लिंक भेजता है, फिर दबाव डाल कर ऑर्डर करवाता है उनसे। एक बार अगले ने ऑर्डर कर दिया तो अब लेखक का पूरा दबाव इस बात को लेकर बना रहता है कि आपने किताब ख़रीद ली है तो अब वहाँ जाकर अच्छी रेटिंग और रीव्यू दे आइए। अब जो आपका मित्र है, परिचित है, रिश्तेदार है, वह आपकी किताब को ख़राब रेटिंग या रीव्यू तो देने से रहा। यहाँ यह बात समझने की है कि जो भी व्यक्ति शॉपिंग साइट्स से कोई प्रोडक्ट ख़रीदता है, वह इस बात का पात्र हो जाता है कि वह उस प्रोडक्ट को उस साइट पर रेटिंग तथा रीव्यू दे सकता है। शून्य से लेकर पाँच तक स्टार देने का मतलब रेटिंग और वहाँ किये गये कमेंट का मतलब रीव्यू। यह रीव्यू और रेटिंग अच्छे ख़राब दोनों ही दिये जा सकते हैं। इन दिनों यह पूरा खेल प्रायोजित और आयोजित होता जा रहा है। लेखक या तो अपने मित्रों, रिश्तेदारों, परिचितों से किताब ख़रीदवा कर वहाँ रेटिंग और रीव्यू करवाता है उनसे, या फिर पैकेज में ख़रीद लेता है रीव्यू और रेटिंग। जिससे लेखक ने पैकेज ख़रीदा है वह एजेंसी अब अपने लोगों से किताब ख़रीदवायेगी और फिर उनसे सकारात्मक रीव्यू और रेटिंग भी करवायेगी। यह पूरा खेल समझना आपके लिए ज़रूरी है कि आप भी जान सकें कि किस प्रकार का खेल पुस्तकों की दुनिया में भी चल रहा है और कैसे बाज़ार ने साहित्य की दुनिया में भी अपनी घुसपैठ कर ली है। अब नये लेखकों को इस बात की बिलकुल परवाह नहीं है कि उनका लिखा कोई पढ़ भी रहा है कि नहीं, उन्हें तो बस परवाह है रीव्यू और रेटिंग की। अगली बार कोई बेस्ट सेलर दिखे तो समझ जाइएगा कि...। **आपका ही**

शहरयार

व्यंग्य चित्र-

काजल कुमार
kajalkumar@comic.com

(शोध-आलेख)

अंधी दौड़ में ठिठके खड़े इंसानों की कहानियाँ

शोध लेखक : प्रो. प्रज्ञा
किरोड़ीमल कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली-110007

प्रज्ञा
एच 103, सेकेंड फ़्लोर,
साउथ सिटी 2, सेक्टर 50
गुरुग्राम, हरियाणा 122018
मोबाइल- 9811585399
ईमेल- pragya3k@gmail.com

कहानी और इतिहास में एक गहरा संबंध है। कहानी कल्पना के रूप में अपने समय और स्थितियों का एक जीवंत इतिहास ही है जिसमें समय की स्मृतियाँ, बदलते समय की करवट के साथ मौजूदा समय में इंसान, इंसानी रिश्ते और समाज की व्याख्या के अनेक सिरे पाठक के समक्ष साकार होते हैं। वहाँ इतिहास में घटित महत्त्वपूर्ण घटनाओं के तथ्यात्मक आँकड़े भले ही न हों पर वे घटनाएँ मनुष्य पर कैसा असर डालती हैं? भीतर मरते जा रहे मनुष्य को कैसी उम्मीद बंधाती हैं?-ऐसे अनेक सवाल वर्षों से कहानी के कथ्य के साथ जुड़े चले आ रहे हैं। इक्कीसवीं सदी की कहानियाँ भी समकाल को स्मृति और भविष्य स्वप्न की बुनियाद पर परख रही हैं। ऐसे समय में वरिष्ठ कथाकार राजेंद्र दानी के ग्यारहवें संग्रह-'पुराना घर पुरानी बस्ती' की तेरह कहानियों को पढ़ने के बाद यह ज़रूर कहा जा सकता है कि ये सभी कहानियाँ समय की मारक स्थितियों के बीच कहीं ठिठक गए आदमी की कहानियाँ हैं। अधिकांश कहानियाँ तेजी से भागते समय में बेदम-बेतहाशा भीड़ में अकेले खड़े रह गए मनुष्य को सुनती हैं, उसे गौर से देखती हैं, उसकी घुट रही चीख, बेबसी और गले में रूँध गए शब्दों के साथ समय को परिभाषित करती हैं। ये आदमी अधिसंख्य लोगों से अपनी बातों और अंदाज़ में पुराना है। वह ऐसे समय को भी परख रहा है जहाँ सब पुराना धीरे-धीरे बेमानी करार दिया जा रहा है।

तेजी से बदल रही अर्थव्यवस्था में समृद्धि, विलास और सुख की अनेक वैभवशाली उड़ानों की नई दुनिया से आज अनेक लोग क्यों कदमताल नहीं मिला पा रहे हैं? वे विकास को अनेक मायनों में विनाश, गति को ठहराव और समृद्धि की अट्टालिकाओं को ध्वस्त मनुष्यता के शिखर क्यों पा रहे हैं? ऐसे अनेक सवालों को लिए यह तेरह कहानियाँ हमारे सामने आती हैं। राजेंद्र दानी के 'पुराना घर पुरानी बस्ती' संग्रह से ठीक पहले का संग्रह-'भूलने का रास्ता' की कहानियाँ भूमंडलीकरण के बाद समाज में आए बदलावों से दो दुनियाओं के फर्क को पाठक के सामने रखती हैं। इनके विषय में अच्युदानंद मिश्र ने लिखा है-''दो फांक हो चुके समय के द्वंद्व को ये कहानियाँ महज वर्तमान और अतीत की स्थिर संरख्नाओं में देखने के बजाय भविष्य की लड़ाई में तब्दील करती हैं।''1 जबकि मेरा मानना है कि पहले की कहानियों में आए भूमंडलीकरण का प्रभाव 'पुराना घर पुरानी बस्ती' संग्रह की कहानियाँ में अधिक सघन हुआ है। इसका एहसास उसमें पीड़ा की तीव्र प्रतिक्रिया के स्थान पर बहुत जगह एक ऐसी चुप्पी को रचकर किया गया है जो अपनी पूरी संरचना में बेहद अशांत और अस्थिर कर देने वाली है।

वर्तमान समय में जीवन की सहजताएँ किस तरह विस्मयकारी और दुर्लभ होती जा रही हैं संग्रह की 'बच गए खंडहर' और 'विषमता' जैसी कहानियाँ इस सच को बिना किसी शोर-शराबे के सामने ले आती हैं। इक्कीसवीं सदी में ईमानदारी एक ऐसा ही विस्मयकारी और दुर्लभ मूल्य हो चला है। समाज की मूल्यधर्मिता जिसे पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांरित करके फसल सरीखा बोया जाता था आज वह लगभग हास्यास्पद बनाई जा रही है। मित्रों-परिचितों की एक बैठक में रेलवे स्टेशन पर पाँच लाख रुपयों से भरा लावारिस ब्रीफकेस एक नौजवान द्वारा पुलिस को जमा करा देने का किस्सा मज़ाक की तरह माहौल में तैरता है। ठहाका, हैरत और खीज से भरकर वहाँ मौजूद लोगों की निगाह इस कृत्य को अव्वल दर्जे की मूर्खता मानती है। सभी के बीच अकेली

मिसेज सक्सेना ही कहती हैं-''उसने तो एक तरह से ईमानदारी जताई।'' उनके इस सहज शब्द को नितांत असहज बनाता है इस शब्द पर लगाया गया प्रश्नचिन्ह, व्यक्त किया आश्चर्य और निर्लज्ज ठहाका। विरोधाभास यह है कि उस नौजवान का मज़ाक उड़ाने वाले चाहते हैं कि घर की बच्ची पारूल के दिमाग़ में ईमानदारी अभी ईमानदारी बनी रहे। मध्यवर्ग का यह दोगला चरित्र कहानी उजागर करती है। संग्रह की बेहतरीन कहानी है-'बच गए खंडहर'। यह कहानी अपनी घटनात्मकता के जरिए विषमता का प्रतिपक्ष तैयार करती है। कहानी की शुरूआत में नैरेटर बताता है कि आज लोगों की हैरतें किस कदर सिकुड़-सिमट गई हैं। वे किसी भी बात पर विस्मित नहीं होते। कहानी शांत धारा-सी आगे बढ़ते हुए एक गहरी अशांति से इस समय को प्रश्नांकित करती चलती है। जहाँ ईमानदारी एक परिकल्पना भर है, चीजों के आर-पार देख पाना एक हैरानी में तब्दील हो चुका है। लगातार एक युद्धरत स्थिति बनी हुई है कि जो आगे ही आगे देख रहे लोगों के मुकाबले जो पीछे देख रहा है वह सबको कब और कैसे दिखाई देगा? लखन स्वीट्स की पुरानी जर्जर दुकान से पत्नी के आदेश पर नैरेटर पति गणेश चतुर्थी पर मिठाई लाने के लिए जाता है। साथ-साथ चलते हैं उसके ज़िंदगी के बनाए अपने फलसफे, उसकी पकी उम्र। भागते समय में वह जैसे ठहरकर समय की नब्ज पकड़ता है। रास्ते में मिला एक परिचित उसे बताता है कि कभी आलीशान रही लखन स्वीट्स के मालिक की ईमानदारी की ऐंठ के कारण दुकान ख़त्म हो गई। मृत्युपर्यंत वह ईमानदार रहा पर उसके साथ दुनिया की पटरी न बैठी। ईमानदारी को त्वचा बनाकर जिए मालिक के दो बेटों से नैरेटर के संवाद ईमानदारी के मूल्य में स्पष्टवादिता के साथ साहस के रसायन को सामने ले आते हैं। पति के एक मिठाई पसंद आने पर उसे मालिक द्वारा तौलने से इसलिए इंकार किया जाता है कि वह पुरानी है। तौली जा रही दूसरी मिठाई पर पति की शंका उठाते ही दुकानदार कहता है-'' हम लोगों ने पाँच बजे उठकर बनाया है इसे, तो बिल्कुल ताजी है। फिर बताना पड़ेगा कि बासी चीज़ हम लोग नहीं बेचते।'' कहानी की शुरूआत में जो हैरत के समाज से विलुप्त होने की चिंता अंत में एक उत्तर के रूप में सामने आती है कि समाज जर्जर होते हुए भी अभी चुका नहीं है।

समय के बदलाव किस तरह दृढ़ और मानव के पक्ष में खड़े सिद्धांतों की रेखा धूमिल कर रहे हैं 'सम्पन्नता' कहानी इसे रेखांकित करती है। कभी अधिक सम्पन्नता किसी का जायज हक मारने के रूप में आँकी जाती थी, इस मानक पर सम्पन्न व्यक्ति की नैतिकता प्रश्नित होती थी पर अर्थव्यवस्था किस तरह समाज व्यवस्था को बदलती है और वहाँ अब सम्पन्नता किसी की विपन्नता का कारण नहीं बनती बल्कि सम्मानित होती है। एक भ्रष्ट और बेईमान समय में संतोष और नैतिकता को किस तरह थोथा बताकर अप्रासंगिक कर दिया जाता है कहानी बताती चलती है। राजेंद्र दानी का उपन्यास 'जिसका अंत नहीं' का कथ्य भी भ्रष्टाचार पर केंद्रित है। जिसमें वे बतलाते हैं कि भ्रष्टाचार का निकट भविष्य में कोई अंत नहीं। 'सम्पन्नता' कहानी में भ्रष्टाचार का ही एक अन्य रूप दिखाई देता है। समय की ताबड़तोड़ गति और खरीदने-बेचने की महालीलाओं के दुष्चक्र के बीच टीवी के विज्ञापन की आवाज़ झकझोर देती है- ''पुराना जाएगा तभी तो नया आएगा...बेच दें।''- जैसा वाक्य गहरी व्यंजना से पूरे माहौल पर टिप्पणी करता है जहाँ चीजों की तरह मूल्य बिक रहे हैं। इस कहानी के बरक्स एक और कहानी है जो इस भूमंडलीय पूँजी के तंत्र में सवाल उठाती है कि सीधे-सादे, ईमानदार, दूसरों की पूरे मन से सेवा करनेवाले और श्रम के उचित मेहनताने की माँग न करने वाले गुड्डू पटेल जैसे लोगों की ज़िंदगी में क्यों उनके श्रम का अनादर है? उससे मनमाफिक काम लेने वाले उस श्रम का उचित मूल्य क्यांे नहीं देते? 'बड़ा ग़रीब आदमी' कहानी का गुड्डू पटेल अन्याय का प्रतिकार नहीं करता क्योंकि उसका अपना तर्क है कि कब, कौन, कैसी स्थिति में है? पैसा माँगकर उसकी मुसीबत क्यों बढ़ाई जाए? जब पैसा होगा तब वह दे ही देगा। पर गुड्डू पटेल की मौत उससे काम लेने वालों के मन में कंपन भी नहीं पैदा करती बल्कि कहानी का किरदार देशमुख कहता है-'' बताइये साहब! क्या विडम्बना हे कि गुड्डू पटेल इतना गुणी था, अनेक प्रतिभाओं का धनी था, बेहद ईमानदार था, मेहनती था पर फिर भी कितना ग़रीब था।'' उनकी बात पर केवल एक इंसान कहता है-'भगवान ऐसी गरीबी सबको मिले'-उसके यह कहते ही गुड्डू पटेल के अंतिम संस्कार में शामिल लोगों में एक बेचैनी व्याप्त हो जाती है। यह बात अप्रिय लगने लगती है। कारण साफ है गुड्डू पटेल जैसे सेवकों में सभी लोग यह गुणधर्मिता चाहते हैं पर अपने भीतर इस आदर्शवादिता और नैतिकता के होने मात्र से वे भयाक्रांत हो जाते हैं। दो तरह की नैतिकताओं की यह लड़ाई गुड्डू की जलती चिता को प्रतीकात्मक अर्थ प्रदान करती है। 'भूमंडलीय बाज़ार और समकालीन कहानी' शीर्षक से अपनी पुस्तक में वरिष्ठ आलोचक अरूण होता लिखते हैं-'' कहानी का टैक्सट वही रहता है। लेकिन समयानुसार उसमें नए-नए अर्थ जुड़ते चले जाते हैं। युगीन संदर्भों और परिप्रेक्ष्य में जो कहानी अपनी अर्थवत्ता बनाए रखने में समर्थ होती है उसकी प्रासंगिकता असंदिग्ध हो जाती है।''2 राजेंद्र दानी के कहानी-संग्रहों 'भूलने का रास्ता', 'पारगमन' और 'पुराना घर पुरानी बस्ती' की कहानियाँ अरूण जी के इस कथन की तसदीक करती हैं।

'पुराना घर पुरानी बस्ती' संग्रह की कई कहानियाँ श्रमजीवी वर्ग के माध्यम से पुरानी और सदाशयी नैतिकता का पुरज़ोर समर्थन करती हैं। एक व्यवस्था जो आज समय की नई चुनौतियों के साथ खतरे में पड़ गई है और जिसके लौटा लाने का स्वप्न कथाकार देखता है। वह अपने समय में ऐसे लोगों को खोज-खोजकर ढूँढ़ता है जो लोग मेहनती, ईमानदार, सदाशयी हैं। 'एक घंटा' कहानी का ऑटोवाला, 'पहचान' कहानी का ऑटोवाला, 'बदलाव' कहानी का स्कूटर मैकेनिक सलीम, 'भरोसा' कहानी का सब्जीवाला जगन्नाथ ऐसे ही किरदार हैं। दुनिया तेजी से बदल रही है पर वे छल-छद्म की आँधी के

बीच भी स्वयं को स्थिर रखे हुए हैं। मेहनत ही जिनका ईमान है और इस ईमानदारी की लौ सदा अकंपित है। ऐसे किरदारों के समक्ष जीवन की प्रतिकूलताओं बराबर बनी रहीं पर उनकी मूल्यधर्मिता पर आँच नहीं आई। ऐसा लगता है संग्रह की सभी कहानियाँ इसी मूल्यधर्मी नैतिकता की पैरवी करती एक श्रृंखला की छोटी-छोटी कड़ियाँ हैं। 'एक घंटा' कहानी का ऑटोवाला मानता है जीवन जीने के लिए बहुत सीमित धन की आवश्यकता है। जास्ती पैसे को वह झंझट और जीवन के लिए अजाब मानता है।''माल्या को देखो जास्ती पैसे याने झंझट...वो क्या कहते हैं साब...माल्या को देखे जास्ती पैसे के कारण देश कू छोड़ना पड़ा, भागना पड़ा कि नहीं...अपन को नहीं भागना...अपना देश छोड़ के....।'' वह मानता है अतिरिक्त आय ईमानदारी से नहीं होती। इसी तरह ईमानदारी के चलते बिना पैस्टीसाइड के अच्छी सब्जियाँ उगाने वाले जगन्नाथ के ग्राहक उसे सब्जियों का वाजिब दाम नहीं देते। पैसा कमाने की ताबड़तोड़ प्रवृत्ति के चलते अन्य सब्जीवाले जहाँ जीवनघातक हाइब्रिड सब्जियाँ उगाते हैं। इस कहानी का अंतिम दृश्य बहुत मार्मिक है जहाँ कुछ दिन पहले लौकी में इंजैक्शन लगाकर उसे बड़े आकार का बनाने और उससे होने वाले कैंसर की ख़बर से अनजान जगन्नाथ समझ नहीं पाता उसकी सुंदर लौकियों को आज एक भी ग्राहक नहीं मिल रहा है। वह अपने साथी को तमाम दलीलें देता है उसकी लौकियाँ ऐसी नहीं पर उसे यही जवाब मिलता है अब किसी को भरोसा नहीं रहा। कहानी जगन्नाथ की व्यथा और उसकी गीली आँखों पर फोकस करती अपने अंत पर पहुँचती है। यहाँ सवाल लौकी की गुणवत्ता से अधिक जगन्नाथ के जीवन के अब तक सिंचित मूल्य और उसकी पहचान पर भरोसा ख़त्म होने की पीड़ा है। कथाकार इसे समय की बड़ी चिंता मानता है। उसकी चिंता है कि यह समय अच्छे और बुरे की पहचान के बीच फर्क करने वाली रेखा के धुंधलाते हुए मिट जाने का है।

आवाज़ों के शोर, मुलाकातों के जश्न और पहचान की औपचारिकताएँ निभाने वाले इस दौर में पहचान से उपजने वाली आत्मीयता, मित्रता से उपजने वाली गर्मजोशी का स्वाद किस तरह भुलाया जा चुका है कथाकार की आँख वहाँ भी जाती है। 'पहचान' कहानी लेखन से जुड़े एक कस्बाई व्यक्ति के दिल्ली के पुस्तक मेले में जाने की घटना को केंद्र में रखती है। वहाँ सब परिचित हैं पर यह लेखक जो दोस्तों से मिलने-बतियाने आया है उससे दो घड़ी चैन से बात करने की किसी को फुर्सत नहीं। भीड़ में यह लेखक ख़ुद को नितांत अजनबी और अकेला महसूस करता है। वहीं दिल्ली से लौटकर स्टेशन से घर तक के लिए ऑटो करके जब यह लेखक ऑटोवाले से संवाद करता है तो ऑटो वाला पूरी विश्वसनीयता के साथ बताता है कि वह लेखक को उसके छात्र जीवन की राजनीति से जानता है। दिल्ली के परिचित समाज को इस ऑटोवाले के बरक्स रखकर एक गहरा अंतर लेखक महसूस करता है। उसकी नाउम्मीदी को एक उम्मीद मिलती है। पत्नी यह किस्सा सुनकर साफ कहती है-''सक्सेना जी! मैं न कहती थी यह दुनिया बहुत बड़ी है...पता नहीं तुम सिर्फ अपने लोगों के ही बीच घूमते रहते हो।''

समयाभाव और संदर्भहीन स्थितियाँ कैसे इंसानी दूरियों को जन्म देते हैं और ये दूरियाँ किस प्रकार दो घनिष्ठताओं को अजनबी बना देती हैं। पर एक बार जब फिर दूरियाँ अपना वजूद खोकर पुरानी सहजता पा लेती हैं राजेंद्र दानी की 'बदलाव' कहानी इसे रेखांकित करती है। बदलाव कहानी का तिवारी नए जमाने का एक्टीवा स्कूटर सुधरवाने पुराने मोहल्ले के पुराने कारीगर के पास जाता है तो पाता है कुछ भी नहीं बदला है। समय ने दंगों का क्रूर इतिहास लिखा पर सलीम नहीं बदला। सलीम का कथन-''वो आदमी ही क्या जो अपनों के लिए बदल जाए, भाईजान''-ये वाक्य जैसे सभी पुराने घरों, पुरानी बस्तियों और पुराने लोगों की जीवनशैली को विश्वसनीय सिद्ध करने वाली कसौटी की तरह बनकर उभरता है। यह वाक्य ही जैसे 'पुराना घर पुरानी बस्ती' संग्रह की अधिकांश कहानियों की पंच लाइन है जो लोकोन्मुख है। प्रगतिशील साहित्य में लोकोन्मुखता एक शक्ति के रूप में सामने आने वाला गुण है। कथाकार-संपादक शंकर ने अपनी किताब 'कहानी परिदृश्य और प्रश्न' में इस विषय की पड़ताल करते हुए स्पष्ट लिखा है-'' ...कहानी में यदि मूल्यों, सरोकारों, दृष्टि और सामाजिक यथार्थ की उपस्थिति और अभिव्यक्ति नहीं होगी तो फिर कहानी, क्हानी क्या रहेगी। संपूर्णता में प्रगतिशील आंदोलन ने कहानी में लोकोन्मुखता का आयाम जोड़ दिया है जिससे कहानी का एक नया स्वरूप उभरकर सामने आया।''3

राजेंद्र दानी के संग्रह 'पुराना घर पुरानी बस्ती' की अधिकांश कहानियाँ नई सदी के आरंभिक चौदह-पंद्रह वर्ष के समय को केंद्र में रखकर अपने समकाल की पड़ताल करती हैं। वे स्मृतियों के मानक से वर्तमान की पड़ताल करती हैं और इस वर्तमान में उपयोगी मूल्यों को आगे ले जाने की वकालत करती हैं। संग्रह की अंतिम कहानी को राजेंद्र दानी प्रकाशित कहानी होते हुए भी संग्रह में शामिल करते हैं। 'इस सदी के अंत में एक सपना' शीर्षक की यह कहानी फ्रेंकलिन नाम के एक सर्वहारा मजदूर और गिरीश नाम के एक मध्यवर्गीय व्यक्ति की है। पूरी कहानी में ईमानदार, मेहनती फ्रेंकलिन को अचानक अपने घर में एक साँप के होने का अनुभव होता है। इसके चलते उसने कई घर बदल लिए। वह मजदूर होने के साथ-साथ चित्रकला, संगीत और राजनीति में रूचि रखने वाला व्यक्ति है। गिरीश को किसी भी तरह साँप वास्तविक नहीं लगता। यही पता लगाने के लिए वह कुछ रातें फ्रेंकलिन के घर में गुज़ारता है। उसका बनाया भोजन उसे बेस्वाद लगता है, रात मच्छरों, गर्मी से भरी तकलीफदेह गुज़रती है। अंतत: गिरीश को भी साँप दिख जाता है। कहानी एक रहस्य और जिज्ञासा के ताने-बाने से शुरू होती है। धीरे-धीरे कथा दो स्तरों पर काम करती है एक स्तर है गिरीश के माध्यम से किसी व्यक्ति के डी-क्लास होने की तमाम स्थितियों को सामने लाने का है। कथाकार की दृष्टिसम्पन्नता

यथार्थ को सर्वहारा के नजरिए से देखने पर बल देते हुए गिरीश को डी-क्लास करने में उन सारी असुविधाओं, तकलीफों के ब्यौरे देती चलती है कि क्यों मध्यवर्ग, सर्वहारा के यथार्थ से अनजान है? गिरीश को फ्रेंकलिन के घर में हुई अनेक असुविधाएँ इनका साक्ष्य हैं। दूसरे स्तर पर यह कहानी साँप के रूप में सर्वहारा के भयों, उसके विकास की बाधाओं, मेहनत के बाद भी नारकीय परिस्थितियों में जीवन यापन करने जैसी अनेक विडम्बनाओं को प्रस्तुत करती है। पंद्रह अगस्त के पर्व से शुरू होने वाली यह कहानी दरअसल आजादी के पचास वर्षों का मूल्यांकन भी है। यह पड़ताल करती है कि ये आजादी एक श्रमिक की स्थिति को बेहतर बनाने में नाकाम रही और आज भी व्यवस्था उसे साँप बनकर भयाक्रांत करती है। उसकी ज़िंदगी में बेहतर जीवन-परिस्थितियों के स्वप्न कहीं रास्ता भूल चुके हैं। विडम्बनाबोध और निराशा में यह कहानी ख़त्म होती है। एक गहन अंधकार है जो कहीं न कहीं मुक्तिबोध की 'अंधेरे में' कविता के बाद के यथार्थ को सामने लाता है।

इन कहानियों की एक खूबी यह भी है कि शिल्प के औजारों पर आपको कहीं अलग से विचार नहीं करना पड़ता। वह कथ्य में इस कदर पैबस्त हैं कि पाठक के लिए दोनों को अलगाना कठिन है। एक मारक व्यंग्य कहानियों में है जिसकी मुद्रा बहुत सरल है। कई सवाल हैं जो झंझावात खड़ा कर दें पर उनकी टोन तीखी नहीं, बोल्ड नहीं बहुत धीमी है। बिल्कुल वैसी ही जैसी कहानियों के उन पात्रों की गति जो ठहरकर समय की समीक्षा कर रहे हैं। 'खुशी और खरीददारी में कैसा रिश्ता है अबके दौर में?', नए दौर की 'हमारी नैतिकताएँ ही ऐसी हैं कि उन्हें 'उनका पारिवारिक मसला है ' कहकर टाल देती हैं हस्तक्षेप करना निषेध मानती हैं। ', 'जास्ती पैसा बईमानी के बिना कहाँ आता है?', 'शहर को तुम्हारी ज़मीन तक पहंुचने में देर ही कितनी लगेगी' - ऐसे न जाने कितने निष्कर्षात्मक-व्याख्यासापेक्ष संक्षिप्त कथन संग्रह में मौजूद हैं। 'मिलते-जुलते' शीर्षक कहानी में बिल्ले से दूध बचाने का सरल-रोचक-जिज्ञासापरक प्रसंग अचानक ही सभ्यता के मानक तय करता, मनुष्य और पशु की तुलना करते-करते चुपके से पशुवत बनते जा रहे मनुष्य की ओर सीधा इशारा कर देता हुआ कहानी को अचानक नया मोड़ दे देता है। कहानियों के सूक्त वाक्यों की व्यंजनाएँ बहुत अर्थवान हैं।

चीजों के इंसान पर हावी होते चले जाने के इस युग में बदलाव आख़िर कैसे आएगा? संग्रह की 'बदलाव' कहानी एक पंक्ति में उत्तर देती है-'चीजें बदलती रहें आदमी न बदले।' यह केवल एक पंक्ति नहीं समाज, जीवन, गति को नापने का जैसे मानक बनकर संग्रह में उतरता है। इसी मानक पर यदि संग्रह की शीर्षक कहानी-'पुराना घर पुरानी बस्ती' को कसा जाए तो यहाँ गौतम और शिवकुमार दो किरदार नहीं दो जीवन-दृष्टियों के रूप में आमने-सामने खड़े होते हैं। अचानक इच्छा के आदेश पर जीवन की सुख-समृद्धि बटोरते गौतम को किराए के घर की याद आती है जो पुरानी बस्ती में कहीं है। पुरानी बस्ती में जाने पर वहाँ रह रहे अपने एक पुराने मित्र को वह लगातार एहसास कराता है कि बस्ती कितनी मलिन, बदतर, विकास से दूर है। इसके लोगों में जीने का शऊर भी नहीं। एक हिकारत से वह बस्ती और अपने वर्तमान की तुलना करता है। उसकी हर हरकत, उसका हर वाक्य मित्र को एहसास कराता है कि वह नारकीय स्थितियों में जी रहा कीड़ा है। मित्र चिढ़ता है पर तभी गौतम को एक ऐसा व्यक्ति टकराता है जिसे कभी देखकर गौतम ने उसके सम्पन्न भविष्य की कल्पना की थी। उसे और उसकी पत्नी को आज भी उन्हीं हालात में देखकर गौतम को बहुत गुस्सा आता है। वह कहता है-''शिवकुमार मुझे बहुत अफसोस है कि तुमने जरा भी संघर्ष नहीं किया..'' इस पर शिवकुमार ठहाका लगाकर कहता है-''आपको क्या बताऊँ भैया कि इसी तरह रहे आने के लिए मैंने कितना संघर्ष किया।'' शिवकुमार का यह ठहाका उस जीवन दृष्टि का उपहास उड़ाता है जो क्रूर अहंकार में अर्थ को एकमात्र लक्ष्य घोषित करके तेजी से दौड़ रहे समाज को बदहवासी की हद तक दौड़ते ही देखना चाहती है। वह दृष्टि जैसे अपने निर्णय को सही मानते हुए अन्य पर अपनी राय देने का पूरा अधिकार रखती है। ऐसे समय में शिवकुमार का जीवन अपनी शर्तों पर जिया गया है जिसमें प्रलोभनों से बचने के साथ जीवन को जीवन बनाए रखने का संघर्ष सम्पन्नता के संघर्ष से कहीं अधिक बड़ा दिखाई देता है। 'रौशनाई के उजाले रौशनाई के धुंधलके' शीर्षक से अपने लेख में शंकर ने लिखा है-'' निस्संदेह कहानी पात्रों और चरित्रों का आख्यान होती है और उनकी निजता उसमें जगह घेरती है किंतु सार्थक कहानी का तर्क यह है कि कहानी का कोई कोना पात्रों और चरित्रों की निजता के साथ बाहर की दुनिया की तरफ भी खुले या बाहर की दुनिया किसी न किसी तरह उसमें झाँकती हुई या उतरती हुई दिखाई पड़े।''4 ऐसी सार्थकता राजेंद्र दानी के संग्रहों की पहचान है।

चाहे पुरानी बस्ती हो, चाहे पुराने घर या चाहे पुरानी नैतिकता से जीवन जीने की पैरवी- पूरा संग्रह आदर्शवादिता की ज़मीन पर उन मेहनतकशों और सामान्य लोगों को सामने ला खड़ा करता है जो समय से आगे भागने के हिमायती लोगों की नज़र में आउटडेटिड घोषित किए जा चुके हैं पर कहानी की तफसीलें, घटनाएँ, परिस्थितियाँ और दूरगामी परिणाम उनकी जीवन दृष्टि और नैतिकता की वकालत करते हैं। यहाँ सब पुराना त्याज्य नहीं और सब नया स्वीकार्य योग्य नहीं। 'उदरम्भरि बन अनात्म' बनने, आदर्शवादिता और सुविधाजीविता में से आदर्शवादिता की तिलांजलि देने, मनुष्य को पीछे छोड़ देने वाले विकास के संग बदहवास दौड़ने के विरोध में यह कहानियाँ अर्थ की चकाचौंध, उपभोग की अंतहीन अतृप्ति के बरक्स मनुष्य और उसकी उम्मीद की कहानियाँ हैं।

संदर्भ -

1 भूलने का रास्ता: राजेंद्र दानी, ब्लर्ब से, 2 भूमंडलीकरण, बाज़ार और समकालीन कहानी: अरूण होता, पृष्ठ.7, 3 कहानी: परिप्रेक्ष्य और प्रश्न: शंकर, पृष्ठ 35, 4 वही, पृष्ठ, 75

000

केंद्र में पुस्तक

(उपन्यास)

रूदादे-सफ़र

समीक्षक : सुधा जुगरान, डॉ. मधु संधु, गंगा शरण सिंह

लेखक : पंकज सुबीर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल - 9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

सुधा जुगरान
दिव्या देवी भवन, 16 ई. ई. रोड
देहरादून 248001, उत्तराखंड
मोबाइल - 9997700506
ईमेल - sudhajugran@gmail.com

डॉ. मधु सन्धु
13 प्रीत विहार, आर. एस. मिल,
जी. टी. रोड, अमृतसर, 143104, पंजाब
मोबाइल- 8427004610

गंगा शरण सिंह
फ़्लैट नं. 101, ठाकरे कॉम्प्लैक्स, हनुमान मंदिर के पीछे, जावसाई गाँव, लक्ष्मी नगर रोड, अंबरनाथ वेस्ट 421501
ठाणे, महाराष्ट्र
मोबाइल- 9833885952

कुछ खट्ठी-मीठी कहानियों का सफ़रनामा- रूदादे-सफ़र

सुधा जुगरान

पंकज सुबीर के उपन्यास, 'रूदादे-सफ़र' में कई कहानियाँ एक साथ चलती हैं। कोई मीठी, तो कोई खट्टी, तो कोई एकदम तटस्थ यथार्थवादी। पिता-पुत्री के मीठे रिश्ते की भीनी-सी कहानी दिल में उतरती है, तो पति-पत्नी के बीच की कशमकश सोचने को मजबूर करती है। एक तरफ़ नायिका का जीवन में अकेला रह जाना दिल में उदासी भरता है, तो दूसरी तरफ़ दो सखियों का सहज सुंदर वार्तालाप मन-मस्तिष्क को सुकून देता है। उपन्यास का अंत चकित करने वाला है। पूरे उपन्यास में गीत-ग़ज़ल उपन्यास की कहानी में भाव भरते हैं व मेडिकल कॉलेज, एनाटॉमी विभाग एवं देहदान जैसी जटिल, तटस्थ-सी प्रक्रिया के बीच सुकून के कुछ पल नायिका अर्चना के साथ पाठकों के हिस्से भी आते हैं। देहदान से संबधित पूरी प्रक्रिया जानने का पाठक को सुअवसर मिलता है। एनाटॉमी विभाग का एक पूरा दृश्य मस्तिष्क में चित्रित करने में पंकज सुबीर पूरी तरह से सफल रहते हैं।

उपन्यास की कहानी गांधी मेडिकल कॉलेज भोपाल के एनाटॉमी विभाग से आरंभ होती है। जहाँ अर्चना भार्गव एनाटॉमी विभाग की विभागाध्यक्ष है। विज्ञान की विद्यार्थी होने के नाते मेरा जुड़ाव उपन्यास के प्रथम पेज से ही हो गया और जहाँ-जहाँ डिसेक्शन, फार्मलीन की गंध, स्पेसिमेन, स्केलपल आदि टर्म्स आती तो बहुत जानी-पहचानी लगतीं। डिसेक्शन और डाइसेक्शन जैसे कुछ अन्य शब्दों के उच्चारण की मुश्किल वास्तव में सर्वविदित है। इस दुविधा का सामना अधिकतर विज्ञान के विद्यार्थियों ने किया होगा। देहदान की सटीक जानकारी देता है यह उपन्यास। देहदान से संबधित भावनात्मक, धार्मिक, सामाजिक, व नैतिक पक्ष को भी सामने रखता है। देहदान के बारे में इतनी विस्तृत जानकारी प्राप्त होना ही उपन्यास का सबसे मज़बूत पक्ष है और उपन्यास को श्रेष्ठ बनाता है।

मेडिकल के स्टूडेंट्स जो भावी डॉक्टर्स हैं, जिन्होंने कल मानव जाति को तमाम बीमारियों से बचाना है लेकिन पढ़ाई करने के लिए वे एक 'कैडेवर' यानि मानव शरीर की कितनी कमी से जूझते हैं। एक-एक कैडेवर पर 20 से 25 स्टूडेंट्स तक के काम करने की मजबूरी हो जाती है। बिना 'कैडेवर' के वे प्रयोगात्मक पढ़ाई कैसे करेंगे? जितने लोग देहदान के लिए फार्म भरते हैं, उतने देहदान हो नहीं पाते हैं। क्योंकि किसी की मृत्यु के पश्चात उसके नज़दीकी रिश्तेदारों का भावनात्मक व धार्मिक पक्ष आड़े आ जाता है। उन पर देहदान के लिए दबाव नहीं डाला जा सकता। 'एम्बॉलिंग' की प्रकिया के बारे में जाना। एम्बॉलिंग की प्रक्रिया को उपन्यास के माध्यम से इतने सरल शब्दों में पाठकों को बताया गया है कि शायद क्लास में टीचर्स भी स्टूडेंट्स को न बता पाते हों।

पूरा उपन्यास पढ़ते हुए कहीं पर भी छोड़ा नहीं जा सकता। पाठक की जो उत्सुकता पहली पंक्ति से जन्म लेती है, वह उपन्यास के अंतिम पंक्ति पर ही ख़त्म होती है। पाठक देहदान जैसे कड़वे यथार्थ से जुड़ी सच्चाई को पढ़ते-पढ़ते उपन्यास के भाव पक्ष में भी डूबता-उतराता रहता है। पिता-पुत्री के सहज स्नेह भरे रिश्ते को जिस सच्चाई से उपन्यास सामने लाता है, पाठक अगर वह पिता है और स्त्री, 'वह तो बेटी है ही किसी न किसी की'....कहीं न कहीं उस सच्चाई को अपने जीवन में घटा हुआ महसूस करते हैं। वस्तुत: पिता-पुत्री का रिश्ता ऐसा ही होता है। पिता किसी भी बेटी के लिए वह पहला आदर्श पुरुष है जिससे उसका जीवन में सबसे पहले साक्षात्कार होता है। भले ही किन्हीं पिता-पुत्री के बीच में यह रिश्ता बहुमुखी होता है और किन्हीं

में यह अतंर्मुखी ही रह जाता है लेकिन दोनों के जज़्बातों में अंतर नहीं आता है। अगर पिता एक आदर्श पुरुष है तो कहा यह भी जाता है कि बेटी अपने पिता के आसपास के गुण वाले पुरुष को ही पति के रूप में पसंद करती है।

'रूदादे-सफ़र' की कहानी में पुष्पा भार्गव व राम भार्गव की स्वाभाविक पारिवारिक नोकझोंक होती रहती है। पति-पत्नी की इस नोकझोंक में पुत्री अर्चना का झुकाव आम बेटियों की तरह पिता की तरफ़ रहता है, क्योंकि वह स्वभाव से भी पिता जैसी ही है। उसे हमेशा माँ से शिकायत रहती है कि वे पिता को नहीं समझतीं हैं। एक बार अर्चना अपनी सहयोगी व सखी डॉ. रेहाना से बात करते हुए कहती है, 'पता है रेहाना, हम बेटियों के लिए पिता वही होते हैं, जो शायद ईश्वर होता है....हमें लगता है कि पिता के होने तक हमारे जीवन में कोई दुख, कोई दर्द आ ही नहीं सकता। पिता हमें सबसे बचा ले जाएँगे। पिता के बाद हमें लगता है कि हम दुनिया में बिल्कुल अकेले खड़े हैं।'

यह कथन सत्य के बहुत करीब है। ऐसा वास्तव में लगता है। पिता की ज़िंदगी तक यह भरोसा हर बेटी को निर्द्वंद्व व निर्भय रखता है। पंकज जी ने अर्चना व राम भार्गव को माध्यम बना कर बहुत ही महीनता से पिता-पुत्री के भावुक रिश्ते की पड़ताल की है। पिता-पुत्री के रिश्ते पर अक्सर कलम कम ही चल पाती है। माँ-बेटी या माँ-बेटा का रिश्ता सर्वविदित है।

मंत्री जी की पत्नी के पिता के चले जाने पर मंत्री जी की पत्नी को रोते देख शव की 'एम्बॉलिंग' करने के लिए गई अर्चना डॉक्टरी पेशे की गंभीरता व शुष्कता को दरकिनार कर भावुक हो रो पड़ती है। उसे अहसास होता है कि 'यह केवल उस महिला का दर्द नहीं है, यह तो हर उस बेटी का दर्द है जो अपने पिता को खो देती है। पिता, समूची पृथ्वी पर वह एकमात्र पुरुष है जिस पर कोई स्त्री आँखें बद कर विश्वास कर सकती है। बेटियों के लिए पिता नहीं जाते बल्कि उनका विश्वास चला जाता है।' ये पंक्तियाँ पढ़ते हुए अनायास ही आँखें नम हो गईं।

पंकज सुबीर ने उपन्यास में जो अपने इनपुट दिये हैं, वह भी बहुत जगहों पर पाठकों को दोबारा पढ़ने के लिए विवश कर देते हैं। एक जगह वे लिखते हैं, 'पृथ्वी पर स्त्री और पुरुषों के बारे में कितनी-कितनी कहानियाँ लिखी जा चुकी हैं। लेकिन यह जो रिश्ता है पिता-पुत्री का, यह शब्दों में ठीक उसी प्रकार नहीं बाँधा जा सकता है, जैसा यह होता है। असल में यह रिश्ता अव्यक्त रहकर ख़ामोशी से गुज़रता है। इसको केवल वही दोनों महसूस कर सकते हैं, जो इस रिश्ते में बँधे होते हैं। पिता और पुत्री। यहाँ कल्पना नहीं चल सकती। क्योंकि यह रिश्ता हमेशा यथार्थ की ठोस धरातल पर खड़ा होता है। फिर एक दिन पुत्री अपने मन में एक बड़ी-सी ख़ला लेकर और पीछे एक बड़ी ख़ला छोड़कर जाने कहाँ किस देश चली जाती है। उसके बाद यह रिश्ता पानी में काँप रही वनस्पतियों की तरह बस थरथराता रहता है, समय की लहरों के साथ'। बहुत ही सुंदर लिखा है। हर बेटी इससे इत्तेफ़ाक़ रखेगी।

देहदान को लेकर कितने पब्लिसिटी स्टंट होते हैं। किस तरह हत्या करके भी बॉडी देहदान के नाम पर ठिकाने लगाई जा सकती है। देहदान का प्रत्येक पहलू का चित्रण, पिता-पुत्री की कहानी व गीत-ग़ज़ल की स्वर लहरियों के बीच चलता रहता है। अर्चना भार्गव का जीवन में अकेला रह जाना भी एक पहलू है उपन्यास का, जो पाठक को उसके जीवन की अनेक सकारात्मक संभावनाओं के बीच उदासी से भर देता है। लेखक लिखते हैं, 'एकाकीपन अपने आप में ही उदास और भूरे रंग का होता है। उस पर इसमें अगर अतीत के पन्नों से रिस-रिस कर आ रहा स्मृतियों का धूसर रंग भी मिल रहा हो तो यह उदासी बहुत बेचैन कर देने वाली हो जाती है। अर्चना को पता है कि पूरे समय गाने सुन कर, घर में संगीत की उपस्थिति रख कर वह अपने आप को भ्रम में रखने का प्रयास कर रही है कि वह अकेली नहीं है।'

पिता-पुत्री की बातचीत में ये पंक्तियाँ विशेषतया ध्यान खींचती हैं, जब अर्चना अपने पिता से कहती है, 'पापा आजकल मन अशांत रहता है... ज़िंदगी में कहीं कुछ ठीक नहीं लगता।' तब डॉ. राम भार्गव जवाब देते हैं, 'ज़िंदगी को बहुत ज़ोर से मत पकड़ बेटा, ज़िंदगी मछली की तरह होती है, ज़्यादा ज़ोर से पकड़ने में हाथों से फिसलने लगती है... अपने हाथों को ढीला छोड़ दे सब ठीक हो जाएगा।'

आज युवा वर्ग अपनों व अपनी ज़िंदगी से अधिक तवज्जो कॅरियर को देने लगे हैं। डॉ. राम भार्गव के माध्यम से लेखक कहते हैं, 'कॅरियर अगर ज़िंदगी से बड़ा होने लगे तो एक बार रुक कर ज़रूर सोचना चाहिए। हम दुनिया में ज़िंदगी जीने के लिए आए हैं या कॅरियर बनाने?'

संवेदनशील लोग अक्सर दुख पाते हैं। उनके इस दुख की क़ीमत दूसरे लोगों के सामने कुछ नहीं होती। दोनों पिता-पुत्री ऐसे ही हैं। अकेलेपन से जूझ रही अर्चना के जीवन में प्रेम आया था उसी उम्र में जिस उम्र उसे आना चाहिए था लेकिन बिछड़ चुका था। ख़ुशकिस्मती से उसकी ज़िंदगी में एक बार फिर प्रेम आता-सा दिखता है पर सांकेतिक रूप में। जिसे लेखक ने बहुत स्पष्ट नहीं जताया पर पाठकों को महसूस हो जाता है। यह उपस्थिति प्रवीण गर्ग की है जिसकी शख़्सियत अर्चना को प्रभावित करती है। उसकी सखी रेहाना उसे प्रवीण गर्ग का नाम लेकर बार-बार छेड़ती है। यह प्रसंग उपन्यास में बहुत रुचिकर लगता है। कलेक्टर प्रवीण गर्ग अपने पिता की देहदान के सिलसिले में अर्चना भार्गव से रू-ब-रू होता है और देहदान की जटिलताओं व आवश्यकताओं को समझ एवं आम लोगों की देहदान के प्रति जागरूकता न देख इस अभियान में अर्चना का साथ देता है।

कहानी का अंत काफी चौंकाने वाला है। साथ ही सुकून भी देता है और उपन्यास को एक पूर्णता प्रदान करता है। इससे सुंदर व अर्थपूर्ण अंत उपन्यास का, कुछ और नहीं हो सकता था। पंकज सुबीर को उपन्यास के लिए बधाई देती हूँ व साथ ही एनाटॉमी व देहदान जैसे अनछुए विषयों पर जानकारी उपलब्ध कराने के लिए धन्यवाद देती हूँ।

000

आत्मीय सम्बन्धों का 'रूदादे-सफ़र'

डॉ. मधु संधु

'रूदादे-सफ़र' पंकज सुबीर का चौथा उपन्यास है। 232 पृष्ठों के इस उपन्यास के 19 परिच्छेद हैं। इससे पहले उनके 'ये वो सहर तो नहीं', 'अकाल में उत्सव', 'जिन्हें जुर्म-ए-इश्क पे नाज़ था' पाठकों तक पहुँच चुके हैं। उपन्यासकार के साथ-साथ वे कहानीकार, ग़ज़लकार, व्यंग्यकार और संपादक भी हैं।

'रूदादे-सफ़र' के आवरण पृष्ठ का चित्र बताता है कि यह एक पिता और पुत्री के जीवन सफ़र का लेखा-जोखा है। पुत्री, जो पिता के मज़बूत कंधों पर बैठी है—सुरक्षित और आश्वस्त, निश्चिंत, तुष्ट और मस्त। 45 वर्षीय डॉ. अर्चना सिंह नायिका हैं—एक स्त्री, उच्च शिक्षित, भूपाल के गाँधी मेडिकल कॉलेज के एनॉटमी विभाग की विभागाध्यक्ष, वर्तमान की ठोस ज़मीन के बावजूद बार-बार अतीत की यात्रा पर निकलने वाली प्रौढ़ा। उपन्यास पिता-पुत्री संवाद-सा है। जबकि पिता ने उसका साथ केवल तीस वर्ष की उम्र तक ही दिया।

'रूदादे-सफ़र' एक यात्रा है—बेटी के नेह में डूबे एक पिता की, पिता के वात्सल्य में तिरोहित एक बेटी की। दशकों लंबी यात्रा। बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध से इक्कीसवीं शती के पूर्वार्द्ध को छूती यात्रा। लैंड लाइन से मोबाइल, दूरदर्शन से कंप्यूटर, सोशल मीडिया तक की यात्रा, पुराने चेतक स्कूटर से कार तक की यात्रा। पिता-पुत्री दोनों डॉ. हैं—पिता ई.ऐन.टी. में और बेटी शरीर विज्ञान में।

उपन्यास में मानों यह दो कथाएँ समानान्तर चल रही हैं। भूपाल के गाँधी मेडिकल कॉलेज के एनॉटमी विभाग (शरीर रचना विज्ञान), दधीचि पथ-कक्ष के विवरण हैं। एम्बामिंग रूम और मोर्चूरी रूम हैं। विभागाध्यक्ष डॉ. अर्चना सिंह, असिस्टेंट प्रो. डॉ. रेहाना अली खान, विशाखा दवे, डॉ. रोहित परमार, एसोसिएट प्रो. डॉ. सुषमा प्रधान, डॉ. आकाश दुबे, डॉ. नेहा सिंह, डॉ. विकास भालेराव, और डिमांस्ट्रेटर मोहन, रमेश, एनॉटमी विभाग में हैं। समस्या और संदेश देह-दान का है। यही जीवन में किया जाने वाला सबसे बड़ा दान है।

मेडिकल कॉलेज में पहुँचते ही होने वाले डॉक्टरों का शरीर विज्ञान विभाग से पाला पड़ता है। यहाँ डाइसेक्शन रूम हैं, कडैवर (मृत शरीर) हैं। फार्मेलीन की तेज़ गंध है। विद्यार्थी पहले दिन कडैवरिक शपथ लेते हैं—"माइ हार्ट फिल्स विथ ग्रैटिच्यूड, एज आई रियलाइज़ यूअर काइंड एंड करेजियस एक्ट ऑफ़ डोनेटिंग यूअर बॉडी फ़ॉर द परपज़ ऑफ़ और लर्निंग।"

चार-पाँच दिन उसे छू कर अपने को मज़बूत करते हैं। उन्हें बताया जाता है कि कडैवर ही उनका पहला टीचर है। कैडेवर देख चक्कर खाकर गिर रही, बेहोश हो रही लड़कियाँ हैं। कल के डॉ. पहली बार सर्जिकल ब्लेड/ स्केलपल चलाना सीखते हैं। लाशों के बीच घूमना, उनसे खेलना कोई सहज स्थिति नहीं है। डॉ. रेहाना कहती है:

"कभी कभी मुझे भी ऐसा सपना आता है कि मैं डाइसेक्शन रूम के कैडेवर्स के बीच अकेली खड़ी हुईं। कोई नहीं है पूरे डिपार्टमेंट में। मैं बहुत ज़ोर से चीखती हुईं और गिर पड़ती हूँ।"

कई बार ऐसे कैडेवर भी मिल जाते हैं, जिनकी मिरर-इमेज पोज़िशन होती है—यानी हार्ट राइट में और बाक़ी अंग भी विपरीत पोज़िशन में।

सारा समय शवों और इंसानी शरीर के अंगों के बीच विचरणे वाली यह विभाध्यक्ष नायिका बौद्धिक होते हुए भी बहुत संवेदनशील है। प्रथम वर्ष की कडैवर को देख बेहोश होने वाली शिवांगी की मन:स्थिति को समझती है। पिता की मृत्यु पर मंत्री की पत्नी के गले लिपट ज़ार-ज़ार रोने लगती है। पिता के कडैवर को देखने आई प्रवीण गर्ग की बहन राधा के लिए भावुक हो जाती है।

'रूदादे-सफ़र' दस्तावेज़ है एक गाइड का, जो दर्शक रूपी सैलानियों को भोपाल के हर कोने-कतरे से, अंदर-बाहर से, अतीत-वर्तमान से, पुराने-नए शहर से परिचित करवा रहा है। महानगर भोपाल झीलों पहाड़ियों और जंगलों का शहर है। नवाबों का शहर है। ईदगाह हिल्स, कोहेफिज़ा, हमीदिया अस्पताल, जयप्रकाश चिकित्सालय, परी बाज़ार रोड, स्टेट बैंक चौराहा, रॉयल मार्केट, रवीन्द्र भवन, हिन्दी भवन, कमला पार्क, बड़ा तालाब, मोती मस्जिद, सतराहों वाला पीर गेट चौराहा, रेत घाट, पोलिटेक्निक चौराहा, लिंक रोड, न्यू मार्केट, वाणगंगा, हमीदिया रोड आदि। भवानी चौक, कर्फ़्यू वाली देवी के मंदिर का उल्लेख करते स्थानों के नामकरण का इतिहास भी दिया गया है। जैसे चंद्रधर गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' ने अमृतसर शहर को अमर कर दिया, वैसे ही यह उपन्यास भोपाल को अतिरिक्त गरिमा दे रहा है।

'रूदादे-सफ़र' प्रेम कथा नहीं है, लेकिन जीवन के इस अति अनिवार्य पक्ष को एक सजग, सफल उपन्यासकार भला कैसे छोड़ सकता है। प्रेम की एक उम्र होती है। मेडिकल कॉलेज के छात्र जीवन में अर्चना को शेखर से प्रेम तो हुआ था, लेकिन विचार वैमनस्य के कारण यह प्रेम विवाह में परिणित नहीं हो सका, शेखर अमेरिका चला गया और उम्र चढ़ती गई। पता ही नहीं चला कि प्रेम करने की उम्र, जीवन का बसंत कब बीत गया। रेहाना अविवाहित कलेक्टर प्रवीण गर्ग और डॉ. अर्चना की बातें कर मन के तार तो झंकृत करती है, लेकिन उपन्यास इस अध्याय को बंद कर पुन: देहदान और पिता-पुत्री के शाश्वत रागबोध पर आ जाता है।

'रूदादे-सफ़र' एक भावुक संगीतज्ञ के गीतों का संग्रहण है। गीतकारों, ग़ज़लकारों, संगीतकारों, चित्रपटों के जीवन में वर्चस्व का, अनिवार्यता का प्रमाणपत्र है। बेटी के अंदर पिता का स्वर गूँजता रहता है:

"आ चल के तुझे, मैं लेता चलूँ, इक ऐसे गगन के तले

जहाँ ग़म भी न हों, आँसू भी न हों, बस प्यार ही प्यार पले।"

जगजीत सिंह, चित्रा सिंह, गुलज़ार, आशा भोंसले, लता मंगेशकर, निदा फाजली, कब्बन मिर्ज़ा की ग़ज़लें पिता-पुत्री के अंदर गहरे उतरी हुई हैं। मूलत: उपन्यास के शीर्षक

(रूदादे सफ़र) से भी ग़ज़ल सा रागबोध ही प्रतिध्वनित होती है।

'रूदादे सफ़र' एक नौकरी पेशा स्त्री का जीवन चित्र है। जिसे कई बार नेहा की तरह बिना नाश्ता किए ही ड्यूटी पर आना पड़ता है अथवा शवों के बीच घूमते-घूमते अर्चना की तरह अपने बारे में सोचने का अवकाश ही नहीं मिलता।

यह नारीवादी रचना नहीं है। लेकिन उपन्यासकार पुरुषसत्ता की बात करता है, जहाँ सिर्फ़ स्त्री को ही अपने को पुरुष के अनुरूप ढालना होता है। पति-पत्नी संबंध बस इसी तार से जुड़े रहते हैं। पंकज सुबीर कहते है—"पुरुषों से भरे इस जंगल में हर स्त्री अकेली होती है। केवल एक पिता ही होता है, जो इस भयानक जंगल में उसे रोशनी की तरह दिखाई देता है।"

उपन्यास ऐसे क्रूर और चतुर पुरुष का भी वर्णन करता है, जो पत्नी/स्त्री/ प्रेमिका की हत्या कर उसके मृत शरीर को देह दान के नाम पर एनॉटमी विभाग में ठिकाने लगाना चाहता है।

'रूदादे-सफ़र'भ्रष्टाचार की परतें खोलता है। पिता-पुत्री को पैसों का कोई लालच नहीं, जबकि आज वह समय है, जब ज़रूरत न होने पर भी डॉ. अपनी कमीशन के लालच में पैथोलोज़ी लैब्स की जाँचों, एक्स-रे की रिपोर्ट के बिना बीमारी का डाइग्नोज़ ही नहीं करते। डॉ. दलाल बन गए हैं। यह पेशा डाकुओं की तरह होता जा रहा है। नर्सिंग होम की संस्कृति अस्पतालों को कसाईखाने में बदल रही है।

आज वह समय है, जब अधपढ़े राजनेताओं का अहंकार, प्रभुत्व, अनुचित तेवर झेलना लोकतन्त्र की नियति है। भूपाल के गाँधी मेडिकल कॉलेज के एनॉटामी विभाग की अध्यक्ष डॉ. अर्चना को मेडिकल के क ख ग से भी अनभिज्ञ चिकित्सा शिक्षा मंत्री के ससुर की मृत्यु पर मृत शरीर की उनके बँगले पर ही एम्बामिंग करने के लिए कहा जाता है—जो कठिन ही नहीं असंभव भी है। लेकिन-

"प्रदेश का चिकित्सा शिक्षा मंत्री है वह, उसके ससुर की बॉडी को ही अगर कॉलेज लेकर जाना पड़े, तो किस बात का मंत्री हुआ वह।"

सरकारी ऑफ़िसर— डॉ. हो या कमिश्नर-मंत्रियों के सामने तुच्छ, असहाय और बौने हैं।

'रूदादे-सफ़र' मानव-मन के रहस्यों में गहरे झाँकने, विषम मन:स्थितियों की तह तक पहुँचने का प्रयास है। नायिका की माँ पुष्पा भार्गव क्यों इतनी बेचैन, इतनी असुरक्षित है, क्योंकि अपने बचपन, अपनी किशोरावस्था में उसे आर्थिक स्तर पर बहुत कुछ देखना-झेलना पड़ा था।

'रूदादे-सफ़र' जाति–धर्म से ऊपर उस बौद्धिक लोक की कृति है, जहाँ अर्चना सिंह रेहाना खान की अप्पी है। जहाँ अफगानी ख़ून और हिन्दू ख़ून का भेद न होकर मानवीयता, बधुत्व, स्नेह ही मुख्य सच्चाई है। अम्मी की दम-बिरयानी, शीर-ख़ुरमा, जाफरानी पुलाव, फ़िरनी और दूसरे पकवान अर्चना को ख़ूब मज़ेदार लगते हैं। क्योंकि किसी धर्म के लोग अच्छे या बुरे नहीं होते। अच्छा या बुरा इंसान होता है। यह हिंदुस्तान का, हिन्दुस्तानी का, इक्कीसवीं शती का उपन्यास है। यहाँ उर्दू अंग्रेज़ी शब्दों से कोई परहेज़ नहीं किया गया। उपन्यास का ताना-बाना रागात्मकता, संगीत और शरीर विज्ञान के जिस धागे से बुना गया है, उसमें उर्दू-अंग्रेज़ी से परहेज़ हो ही नहीं सकता था। लता के लिए लतर, टेम्पो के लिए भटसुअर, टूटी फ्रूटी के लिए 'हेमा मालिनी का दिल' जैसे शब्द भाषा को भोपाली स्पर्श देते हैं।

'रूदादे-सफ़र' की भाषा सूत्र संग्रह है:

केवल पढ़ने का नाम ज़िन्दगी नहीं है—इसके इलावा भी ज़िन्दगी है।

कला समय बर्बाद करने के लिए नहीं होती, समय को बेहतर बनाने के लिए होती है।

हम वही बनते हैं, जो हमें ज़िन्दगी शुरू के बीस-पच्चीस वर्षों में बनाती है। हमारा स्वभाव, हमारी आदतें, हमारी पसंद-नापसंद-सब कुछ हमारे जीवन के शुरू के पच्चीस सालों में तय हो जाता है।

पिता, समूची पृथ्वी पर वह एकमात्र पुरुष जिसपर कोई स्त्री आँख बंद कर विश्वास कर सकती है।

हर काम दूसरों के लिए नहीं किया जाता, कुछ काम अपने सुख के लिए भी किए जाते हैं।

हमें जीवन में वही मिलता है जो हम डिजर्व करते हैं, वह नहीं जो हम डिज़ायर करते हैं—हमारे दुख का असली कारण ही हमारी डिज़ायर्स हैं, अधूरी रह गई डिज़ायर्स।

नहीं पूछे गए प्रश्न हमारे अंदर जमा होते जाते हैं, हमें उम्र भर अंदर ही अंदर खरोंचते रहते हैं।

अकेलापन एक भौतिक नहीं, मानसिक अवस्था है। शरीर कभी अकेला नहीं होता, अकेला तो मन होता है।

ज़िन्दगी मछली की तरह होती है, ज़्यादा ज़ोर से पकड़ने में हाथों से फिसलने लगती है।

कैरियर और ज़िन्दगी में से किसी एक को चुनना हो तो ज़िन्दगी को ही चुनना।

बेटियों की आत्मा में एक और गर्भनाल होती है, उस गर्भनाल से बेटियाँ अपने पिता से भी जुड़ी होती हैं, माँ से भी जुड़ी होती हैं और अपने घर से भी जुड़ी होती हैं। यह गर्भनाल जीवन भर उनके साथ जुड़ी रहती है, मर कर ही कटती है। 'रूदादे सफ़र' प्रकृति की ताज़गी में विहार करते पात्रों की यात्रा है। बोगनबेलिया, तुलसी, गुलाब, गेंदा, कैक्टस हर घर, पार्क में खिले हुए हैं।

'रूदादे-सफ़र' दो अछूते विषयों को पाठक के समक्ष लाता है कि देहदान देह की आवश्यकता है। देह को समझने के लिए, उसे स्वास्थ्य लाभ देने के लिए डॉ. को देह से ही देह का अध्ययन करना होगा। हिन्दी में भले ही 'भया कबीर उदास' या 'नदी' जैसे उपन्यासों में कैंसर जैसे रोग का वर्णन मिल जाए, लेकिन मेडिकल साइन्स के एनाटॉमी विषय और देहदान के महत्त्व और आवश्यकता पर लिखा गया यह संभवत: पहला उपन्यास है। दूसरी बात उपन्यास इस अवधारणा को खंडित करता है कि केवल बेटियाँ ही माँ के क़रीब होती हैं। यहाँ पिता-पुत्री के रूहानी रिश्ते कहते हैं कि बिटियों की एक आत्मिक गर्भनाल पिता से भी जुड़ी होती है।

000

अलहदा ज़मीन लिखा उपन्यास

गंगा शरण सिंह

पंकज सुबीर का उपन्यास 'रूदादे-सफ़र' एक तरफ़ मानवीय संवेदना और संबंधों की यादगार गाथा है तो दूसरी तरफ़ कहानी की पृष्ठभूमि में सघनता से शामिल है चिकित्सा जगत्। एनाटॉमी की दुनिया से तो बख़ूबी परिचित कराया ही है उन्होंने, साथ ही अपने मेडिकल रिप्रेजेंटेटिव्स के द्वारा खेले जाने वाले दवा कंपनियों के अमानवीय खेल को भी खुलकर जाहिर किया है। इस खेल को हम सब देखते तो आए दिन हैं पर इसे इन पन्नों पर आने देने के लिए शुक्रिया पंकज भाई!

रूदादे-सफ़र पंकज सुबीर के पिछले उपन्यासों से बिलकुल अलहदा ज़मीन पर लिखा गया एक ऐसा उपन्यास है जिसे पढ़ते समय वह सुख मिला, जो किसी पाठक की सबसे पहली ख़्वाहिश और उसका प्राप्य होता है।

राजशाही की कुटिलताओं, किसानों के साथ खेलती सत्ता और राजनीति, धर्म के नाम पर इस ख़ूबसूरत धरती को प्रदूषित करते उपद्रवियों को अपने पिछले तीन उपन्यासों की विषयवस्तु बनाने के बाद इस बार वह एक ऐसी कथाभूमि के साथ सामने आए हैं, जहाँ एक तरफ एनाटॉमी की वह दुनिया है जो एक सामान्य पाठक के लिए नितान्त अपरिचित है और कहानी के दूसरे छोर पर एक संवेदनशील पिता और उनकी उतनी ही संवेदनशील बेटी की सघन, मार्मिक उपस्थिति है। इन दोनों मुख्य किरदारों के साथ ही किताब के कुछ अन्य चेतनासंपन्न, यादगार चरित्र पाठक के ज़ेहन में बहुत देर तक बने रह जाते हैं।

कई दशक पहले गुलज़ार ने एक इंटरव्यू में बताया था कि उनके पास पिता और पुत्री पर केन्द्रित एक मार्मिक पटकथा तैयार थी जिसमें वह पिता के किरदार में हरि भाई को लेना चाहते थे। गुलज़ार साहब ने बड़े दु:ख से यह भी कहा था कि अब वह उस फ़िल्म को कभी नहीं बना सकेंगे क्योंकि उस किरदार को संजीव कुमार से अच्छा और कोई निभा ही नहीं सकता। मुझे बहुत अरसे तक उस पटकथा के लिए अफ़सोस रहा और यह उत्सुकता भी कि आख़िर वह स्क्रिप्ट क्या रही होगी! 'रूदादे-सफ़र' पढ़ते समय लगा कि वह यक़ीनन इसी तरह की कोई मर्मस्पर्शी कहानी रही होगी। इस प्रसंग में गुलज़ार का ज़िक्र आना ही था क्योंकि 'रूदादे-सफ़र' में गुलज़ार की नज़्में और उनके गीत इस कदर शामिल हैं जैसे पहली बारिश की बूँदों से नम होती धरती! कुछ बरस पहले अपनी एक कहानी में भी पंकज ने गुलज़ार साहब के गीतों का प्रयोग इसी तरह किया था। हमउम्र होने के कारण हम सब एक जैसी फ़िल्में देखते और एक जैसे गीतों को सुनते हुए बड़े हुए हैं। संजीव कुमार, सुचित्रा सेन, गुलज़ार, किशोर कुमार, लता मंगेशकर, आशा भोंसले, जया भादुड़ी और पंचम आठवें दशक में किशोरावस्था की उम्र से गुज़रते हम जैसे लोगों के जीवन से बहुत गहरे जुड़े हुए हैं। इनके बगैर ज़िंदगी के तमाम अफ़साने अधूरे रह जाएँगे।

मानवीय संवेदनाओं और सामाजिक चेतना से लैस यह उपन्यास पाठक को अंतिम पन्नों तक बाँधे रहता है। एक ख़त जिसका ज़िक्र इस कहानी में कई बार आता है, उसमें ऐसा क्या था जिसके चलते उपन्यास की नायिका डॉ. अर्चना की ज़िंदगी पिछले पंद्रह सालों से एक ध्रुव पर अटककर रह गई थी, इसका खुलासा किताब के आख़िरी पन्ने पर पहुँचकर ही होता है।

हर बार अपने लिए नई ज़मीन तलाशने और उस ज़मीन की उर्वरता का भरपूर रचनात्मक दोहन करने वाले पंकज सुबीर को इस किताब के लिए बहुत बहुत बधाई, मंगलकामना ! पठनीय, लोकप्रिय और गंभीर लेखन की यह जुगलबंदी ऐसे ही हमेशा बरकरार रहे।

किताब में उल्लेख करने लायक अनेकानेक प्रसंग और कोटेशन्स हैं। यह उपन्यास पढ़ते हुए चिह्नित किए गए तमाम अंश यहाँ इस उपन्यास से साभार साझा किए जा रहे हैं-

1 ग़लती के घाव पर उसी दिन मरहम लगा देना चाहिए। नहीं तो घाव नीचे उतरकर नासूर बन जाता है। हम अक्सर किसी ग़लती को सुधारने के लिए सही समय की प्रतीक्षा करते हैं, जबकि गलती को सुधारने का सही समय वही होता है, जब हमको ग़लती का एहसास हो जाए। उसके बाद तो हमारा इगो ग़लती सुधारने से हमें रोकता रहता है। क्योंकि हमारा इगो कभी नहीं चाहता है कि हम अपनी ग़लती को सुधारें। जिस दिन हम सच्चे मन से कहते हैं कि हाँ मैं ग़लत था, मेरी ग़लती थी, उस दिन हमारे ईगो के कलेजे में एक गहरा खंजर उतर जाता है।

2 किसी भी बड़े शहर में दो शहर होते हैं, एक पुराना शहर और एक नया शहर। जो लोग पुराने शहर में रह चुके होते हैं, वे बिगड़े हुए लोग होते हैं, उनको सुधरे हुए नए शहर में रहना रास नहीं आता।

3 शायद एक विशेष आवृत्ति होती है हर व्यक्ति की जो किसी दूसरे को उसके पास ले आती है। नहीं तो अचानक ऐसा कैसे होता है कि कोई व्यक्ति अचानक आता है और आपका बहुत ख़ास हो जाता है। समान आवृत्तियों का ही खेल है जीवन। जब आवृत्तियाँ समान मिल जाएँ, तब इस बात से कोई फ़र्क नहीं पड़ता कि आपकी जान-पहचान कितने समय पुरानी है।

4 प्रश्न जब पूछ लिए जाते हैं, तब उतनी पीड़ा नहीं देते, जितना तब देते हैं, जब उनको पूछा ही नहीं जाए। नहीं पूछे गए प्रश्न हमारे अंदर जमा होते जाते हैं, हमें उम्र भर अंदर ही अंदर अपने नाख़ूनों से खरोंचते रहते हैं।

5 हमारी ज़िंदगी में दो तरह की समस्याएँ होती हैं। एक, जिनका हल हमारे पास होता है, जिन्हें हम ठीक कर सकते हैं। इन समस्याओं की चिंता करना चाहिए, क्योंकि चिंता करने से ही हम उनके हल की तरफ़ बढ़ते हैं। दूसरी समस्याएँ वे हैं, जिनका हल हमारे वश में नहीं है, जिनके लिए हम कुछ नहीं कर सकते। इन समस्याओं की चिंता में अपने आप को उलझाना व्यर्थ है। हमारी ज़िंदगी की सबसे बड़ी प्रॉब्लम यही है कि हम हर वक़्त ऐसी ही समस्याओं की चिंता में डूबे रहते हैं।

6 कभी-कभी ऐसा होता है कि जीवन में घटनाओं की रफ़्तार इतनी तेज़ होती है कि हम

उम्र पर आया हुआ वसंत का मौसम देख ही नहीं पाते, उसको महसूस ही नहीं कर पाते। फिर जब जीवन की रफ़्तार कुछ मद्धम पड़ती है, तो पता चलता है वसंत का मौसम तो बीत चुका। अब तो कुछ भी शेष नहीं रहा। फूलों की सूखी हुई पंखुरियाँ तक हवाओं में उड़ कर जाने कहाँ से कहाँ जा चुकी हैं। फिर हम तलाशते हैं वसंत को...। जीवन और प्रकृति में सबसे बड़ा अंतर यही है, कि प्रकृति में एक चक्र की तरह मौसम आते-जाते रहते हैं, यदि वसंत बीत गया है, तो अगले वर्ष फिर से आएगा, लेकिन जीवन में जो मौसम बीत जाता है। वह हमेशा के लिए बीत जाता है, फिर बस उसकी यादें ही शेष रह जाती हैं।

7 एकाकीपन अपने आप में ही उदास और भूरे रंग का होता है, उस पर इसमें अगर अतीत के पन्नों से रिस-रिस कर आ रहा स्मृतियों का धूसर रंग भी मिल रहा हो, तो यह उदासी बहुत बेचैन कर देने वाली हो जाती है। जब हम अपने ही मन को भुलावे में रखने की कोशिश करते हैं, छलावा देने का प्रयास करते हैं, तो शत प्रतिशत मामलों में असफल सिद्ध होते हैं। हमारा मन हमेशा हमसे एक क़दम आगे चलता है। वह हमारी हर चाल समझता है। हम उसे भुलावा देते हैं और वह भुलावा खा जाने का भुलावा हमें देता है।

8 हमारा मरीज़ हमारे पास एक गहरा विश्वास लेकर आता है, कि हम उसे निरोगी कर के वापस भेजेंगे। हमारा और उसका इसी विश्वास का रिश्ता होता है। ईश्वर तो कहीं आकाश में छिपा है, नज़र नहीं आता, उससे केवल प्रार्थना ही की जा सकती है लेकिन डॉक्टर तो प्रत्यक्ष होता है। रोग से घिरा हुआ इंसान हम पर आँख बंद कर विश्वास करता है। किसी ईश्वर पर नहीं, केवल हम पर। मरीज़ जब अपने काँपते हाथों से हमें छूता है, तो बहुत ज़िम्मेदारी का बोझ महसूस होता है अपने ऊपर।

हर घर में कुछ तय ख़र्चे होते हैं, जिनके बारे में सब को पता होता है, लेकिन बीमारी, रोग, ये एकदम सिर पर पड़ने वाले ख़र्च होते हैं, इनके लिए कोई पहले से तैयार नहीं होता। न उसके पास इसकी व्यवस्था होती है। जाने कहाँ से माँगकर, क़र्ज़ लेकर जेवर गिरवी रख कर वह इस आकस्मिक आपदा से लड़ने की व्यवस्था करता है और हम डॉक्टर ऐसे समय में भी उसकी गर्दन पर अपने वैम्पायर दाँत गड़ा कर उसका पूरा ख़ून चूस लेना चाहते हैं। शेम ऑन अस।

9 हमने इस दुनिया को यूँ ही तो ख़राब कर दिया है। हर जगह से हम लोग कुर्सियाँ छोड़ कर हटते गए। राजनीति में पहले अच्छे लोग होते थे, फिर जब ग़लत लोगों ने आना शुरू किया, तो अच्छे लोग कुर्सियाँ छोड़ कर हट गए और अब कहते हैं कि राजनीति में तो अच्छे लोगों की जगह ही नहीं है। अरे, आप कुर्सियाँ छोड़ कर हटोगे, तो कुर्सियाँ ख़ाली तो रहेंगी नहीं, कोई तो बैठेगा उन पर। भागने से कुछ नहीं होने वाला, भागने से तो हालात और ख़राब हो जाएँगे, हमें उपस्थित रह कर बदलने की कोशिश करनी है। बदलने के लिए उपस्थित रहना सबसे आवश्यक है, पलायन किसी समस्या का हल नहीं है।

10 कॅरियर को लेकर पजेसिव रहना अच्छी बात है, लेकिन यह भी देखना चाहिए कि इनके कारण कहीं ज़िंदगी हाथ से न छूट जाए। हमें यह तो तय करना ही पड़ेगा कि हमारा जीवन है क्या, हमें किस तरफ़ जाना है। कॅरियर अगर ज़िंदगी से बड़ा होने लगे, तो एक बार रुक कर ज़रूर सोचना चाहिए। हम दुनिया में ज़िंदगी जीने के लिए आए हैं या कॅरियर बनाने के लिए। दुनिया में कितने ही अच्छे, होनहार और बहुत कुशल डॉक्टर्स हो चुके हैं, दुनिया ने कितनों को याद रखा? किसी को नहीं। सब आए और बीत गए। बेहतर से बेहतरीन होने की दौड़ में शामिल होकर दौड़ते रहे, दौड़ते रहे और एक दिन थक कर गिर गए। कॅरियर और ज़िंदगी के बीच में संतुलन बनाये रखना बहुत ज़रूरी है।

11 प्रेम का जीवन में आना और फिर प्रेम का जीवन से चले जाना, दोनों को ही भुला पाना बहुत मुश्किल होता है। हमारे अंदर एक शून्य, एक ख़ला-सी बन जाती है।

12 माँ-बाप अपनी ज़िंदगी जीना छोड़ अपने बच्चों के भविष्य के लिए कमाने में लग जाते हैं। अपनी भी ज़िंदगी ख़राब करते हैं और बच्चों की तो करते ही हैं, उनको निकम्मा बना कर। क्या ज़रूरत है बच्चों के लिए कमा कमा कर रखने की? उनको इस लायक़ बना दो कि ख़ुद अपने लिए कमा सकें। अपने बच्चों को चलना सिखाना चाहिए, दौड़ना सिखाना चाहिए, उनकी बैसाखी नहीं बनना चाहिए। माँ-बाप अपने बच्चों की बैसाखियाँ बन कर जीवन भर के लिए अपंग बना देते हैं।

13 प्रेम अक्सर दोस्ती की धुंध में छुप कर ही आता है, मिलता है। अगर आपने दोस्ती की धुंध में भटकना ही छोड़ दिया हो, तो प्रेम कहाँ मिलेगा आपको?

14 समय का वह वक़्फ़ा जिसमें कोई कहानी नहीं हो सुनने लायक, सुनाने लायक, उसमें आप ज़िंदगी जी नहीं रहे होते, बस काट रहे होते हैं।

15 दोस्तियाँ और प्रेम जब ज़िंदगी में अपनी कहानियाँ बुननी बंद कर देते हैं, तब एक ढर्रे पर तयशुदा तरीके से ज़िंदगी चलती जाती है।

16 जिन दोस्तियों में शिष्टाचार घुला होता है, उन दोस्तियों को व्यवहारिकता कहना ज़्यादा बेहतर होता है। दोस्ती का शिष्टाचार से कोई लेना-देना नहीं होता।

17 कई बार होता है ऐसा कि सब कुछ हमारे हाथों में होता है, और अचानक छूट जाता है। जब छूट जाता है, तो पता चलता है हमें कि हमने ठीक से पकड़ा नहीं था उसे। अगर ठीक से पकड़ा होता, तो नहीं छूटता। उसके बाद हमारे पास बस एक अफ़सोस रह जाता है कि काश... यह हमें पहले पता चल जाता। काश कोई आकर बता देता... जब जीवन में बहुत से काश आ जाते हैं, तो बेचैन होने के अलावा और कोई चारा नहीं रह जाता।

18 प्रेम का मौसम हमारे जीवन का स्थाई मौसम है, वह कभी नहीं गुज़रता। बस हम उसे महसूस करना भूल जाते हैं। फिर कभी-कभी हमें प्रेम की ज़रूरत नहीं होती, एक साथी की ज़रूरत होती है, एक सहयोगी की ज़रूरत होती है। प्रेम रूप बदल-बदल कर मिलता है हमें, हर उम्र में उसका रूप अलग होता है।

000

पुस्तक समीक्षा

(कहानी संग्रह)

हमेशा देर कर देता हूँ मैं

समीक्षक : प्रताप दीक्षित
लेखक : पंकज सुबीर
प्रकाशक : राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली

प्रताप दीक्षित
एमडीएच 2/33, सेक्टर एच, जानकीपुरम,
लखनऊ 226 021, उप्र
मोबाइल- 9956398603
ईमेल- dixitpratapnarain@gmail.com

साहित्य की अनवरत यात्रा में कहानी ने समय, उसके जटिल यथार्थ और मनुष्य के साथ उसके संबंध को हमेशा अन्वेषित किया है। कहानियों के विकास के साथ उनके स्वरूप और शिल्प में भी परिवर्तन आया है। एक और क्रूर महत्त्वाकांक्षाओं, अनैतिक होड़, अवसरवाद, संवेदना के लुप्त होने, करुणा की व्यर्थता, पतन-मूल्यहीनता जैसी स्थितियों से मनुष्य के वाह्य संघर्ष के साथ, दूसरी तरफ मनुष्य के अंतर्संघर्ष – द्वंद्व, प्रेम, अनिर्णय, अपराधबोध, पश्चाताप ऐसी अनेक वृत्तियाँ जिसके लिए वह किसी को दोषी नहीं ठहरा सकता – एक तरह से उसकी अंतर्यात्रा ऐसे कथानक भी कहानियों के प्रमुख विषय रहे हैं।

समीक्ष्य संग्रह की कहानियों का विषय हमारे आस-पास की छोटी-छोटी घटनाएँ, परिवेश, मनुष्य, प्रवृत्तियों, परिवेश, घटनाओं का जाना-पहचाना है। एक ओर बदलते समय-समाज-मूल्यों, बाज़ारवाद के सर्वग्रासी पंजों की जकड़न, कला-संस्कृति के ह्रास दूसरी तरफ आम आदमी के जीने के लिए संघर्ष, सपनों के साथ जिजीविषा के बीच सुकून-सुख के क्षणों और कंटकारूढ़ पथ पर चलते-चलते विश्रांति के पलों की असमाप्त तलाश। इन कहानियों के केंद्र में संघर्ष के साथ व्यक्ति के संवेदनात्मक अनुभव, प्रेम और स्मृतियों का सघन भाषिक रूपांतरण कहानियों को पाठकों की संवेदना का अनिवार्य अंग बना देता है। लेखक अपने समय-समाज-परिवेश को लेकर ज़्यादा सजग हैं। कहानियों में यथार्थ के पीछे अंतर्मुख सच्चाई को, संवेदनात्मक तल में गहराई से उतर कर, परखने की कोशिश की है। तमाम दुश्वारियों की बावजूद जीवन के प्रति ललक और सकारात्मक लगाव पैदा करती हैं।

पंकज सुबीर की कहानियाँ पढ़ते हुए प्रतीत होता है कि आप लेखक से किसी चौपाल में कहानी सुन रहे हैं। बातें करते-करते पता नहीं चलता कि कहानी पाठक के अन्दर ख़ामोशी से कब उतर गई है। ज़िंदगी की ज़मीन को पर्त दर पर्त उधाड़ते भूली-बिसरी कितनी चीज़ें सामने आती हैं। एक तिलिस्म के दरवाज़े खुलते चले जाते हैं। इनके अन्दर यादें, प्रेम, फरेब, पछतावा, अकेलापन, रिश्तों की संकुलता, लुप्त होता साम्प्रदायिक सद्भाव, धर्म का नकाब लगाए राजनीति की विविधता है। यह सब कहानी की यात्रा में रास्ते के मील के पत्थर बनते हैं। मंजिल पर पहुँचकर लगता है जहाँ हम पहुँचे हैं, इस मजिल की तलाश-ख़्वाहिश जाने कब से हमारे अन्दर सोई हुई थी।

स्मृतियाँ और समय के अंतराल में बिसर गए चेहरे किसी भी कहानी के प्रासाद के निर्माण का कच्चा-माल होते हैं, 'कहीं की ईंट, कहीं का रोड़ा' की तरह। पंकज की अधिकांश कहानियों में इसकी बहुलता है। लेकिन विशिष्टता यह है कि कहानियों में इनका दोहराव नहीं आता। दूसरी तरफ, समकालीन समस्याओं और सरोकारों को लेखक ने कहानियों का विषय बनाया है।

'खोद-खोद के मरे ऊँदरा, बैठे आन भुजंग उर्फ़ भावांतर' (मालवा अंचल की कहावत – बिल चूहा खोदता है और साँप उसमें आ बैठता है) किसानों की बदहाली, सरकारी कर्मियों और फसल के दलालों की मिलीभगत से उसके शोषण की कहानी है। (पिछले दिनों किसानों के लम्बे चले आन्दोलन में फसलों के न्यूनतम मूल्य और दलालों के हस्तक्षेप को ख़त्म किए जाने की माँग मुख्य थी) रमेश छोटी जोत का किसान है। खेत में उपजा सोयाबीन सरकार ख़रीदकर पैसा सीधे किसान के बैंक खाते में आएगा। लेकिन तब किसान को अगली फसल बोने और घर चलाने के लिए पैसे की ज़रूरत है, वह उपज को फसल के दलालों को पच्चीस प्रतिशत कम में बेचने के लिए विवश है। इस साज़िश में पटवारी, दलाल-अढ़तिए, वेयर हाउस के मालिक, बैंक मैनेजर सब शामिल हैं। इन बंदरबाँट में रमेश ऐसे किसान क़र्ज़दार होते-होते अपनी ही ज़मीन पर मज़दूर बन जाते हैं। ज़मीनें, जिन में कभी फसल उगाई जाती थी, अब कार्पोरेट वेयर हाउसों में तब्दील होती जा रही है। गणतंत्र दिवस पर पटवारी, अढ़तिए, गल्ला व्यवसायी फसल खरीद और सरकारी योजना 'भावांतर' की सफलता से लागू करने के लिए पुरस्कृत किए जाने हैं। परन्तु रमेश जैसे किसानों की बदहाली ज़ाहिर करना देशद्रोह माना जाएगा।

'मूंडवे वालों का जलवा' धन-ऐश्वर्य के फूहड़ दिखावे और संवेदनहीनता की कहानी है।

शादी-बारात के जश्न में घर के वृद्ध मुखिया की मृत्यु की बात छिपा ली जाती है कि शोक जश्न में बाधा न बने।

'बेताल का जीवन कितना एकाकी' आज के समय का निर्मम सत्य है। नई पीढ़ी के युवाओं का नौकरी-रोज़गार के सिलसिले में पलायन और पीछे छूट गए वृद्ध माता-पिता अपनी निर्मित अकेलेपन की गुफाओं में क़ैद रह जाते हैं। संदीप उस बूढ़े को रोज़ उसी जगह आते, बैठते देखता है। परिचय बढ़ने के दौरान संदीप के कहने – 'पढ़ाई पूरी हो गई, जाना तो पड़ेगा ही, ज़िंदगी जहाँ ले जाए', बूढा कहता है – 'ज़िंदगी कहीं नहीं ले जाती, हम ही जाते हैं, और इल्ज़ाम ज़िंदगी को दे देते हैं। पीछे कुछ न कुछ छूटता तभी है जब हम छोड़ना चाहते हैं... ' बूढ़े की पीड़ा है – मल्टी नेशनल कंपनियों के यहाँ बेचने के लिए हमने बच्चों को नहीं पाला था। उन कंपनियों को गुलाम मिले, गुलामों को डॉलर्स। लेकिन हम उजड़ गए। वेताल की तरह एकाकी जीने को अभिशप्त।

पंकज की कहानियों की स्त्रियाँ सबल हैं, निरीह नहीं। हक़ के लिए हर मोर्चे पर आगे रहती हैं। ''क़ैद पानी' में गाँव में पानी की दिक़्क़त है। गाँव के पोखर पर दबंग अपराधी प्रवृत्ति के कैलाश ने पोखर पर कब्ज़ा कर रखा है। पोखर को एक पिंजरे से घेर लिया है। उसके नौकर और मुस्टंडे किसी को पोखर के पास नहीं आने देते। किसी के प्रतिरोध न करने से लालच बढ़ गया है। स्त्रियों को दूर से पानी लाना होता है। रास्ते में जानवर से लेकर सबका ख़तरा है। एक दिन के दौरे पर नए कलेक्टर, तरुण विश्वकर्मा, आए हुए हैं। यहाँ उनकी पहली पोस्टिंग हुई है। घूँघट काढ़े हुए सुनीता अचानक उनकी गाड़ी के सामने आती है – पूरी कहानी बताती है। कलेक्टर साहब कुदालें, हथौड़े मँगवा लिए हैं। गाँव वालों से कहते हैं –सरकारी अमला चाहे तो यह पिंज़रा दो मिनट में हटा सकता है। लेकिन इस पानी पर आपका अधिकार है। इसे आपको हटाना होगा। डरे हुए गाँव वालों में कोई आगे नहीं बढ़ता। तभी सुनीता हथौड़ा लिए आगे बढती है, पिंजरे के ताले पर पहली चोट से ताला आधा टूट गया है। हथौड़े के दूसरे वार के साथ ही वहाँ कड़ी सभी स्त्रियाँ कुदाल, हथौड़ा उठा दौड़ पड़ती हैं। पिंजरे के साथ उनकी काँच-लाख की चूड़ियाँ भी टूट रही हैं। रूपक स्पष्ट है– चूड़ियाँ स्त्रियों की कमज़ोरी का प्रतीक मानी जाती हैं। प्रतिरोध के लिए इस बाधा को पार करना ही होगा। तरुण (कलेक्टर) को स्कूल में पढ़ी कविता 'वह तोड़ती पत्थर' याद आ रही है।

'मर नासपीटी' की हलीमा और ज़रीफ़ा दोनों बहनें, दो भाइयों को ब्याही हैं। पड़ोसन भी हैं, लेकिन हमेशा लड़ती, एक-दूसरे के बाल नोचती, गलियाँ देतीं। लेकिन स्त्री, स्त्री की ही मददगार बनती है। कहानी के अंत में हलीमा और ज़रीफा एक दूसरे के बाल नहीं नोच रही ..... हलीमा पागलों की तरह (मर नासपीटी, मर नासपीटी) कहती हुई टिन की छतों पर पत्थर फेंक रही है और ज़रीफ़ा उसके सामने घुटनों के बल बैठी रो रही है।

लेखक हमेशा सांप्रदायिक विद्वेष फ़ैलाने वाली शक्तियों के प्रतिपक्ष में मुस्तैदी से खड़ा दिखाई देता है। चाहे राजनीतिक स्वार्थों के लिए इतिहास के तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर पेश किए जाने के ख़िलाफ़ हो अथवा आर्थिक-राजनीतिक स्वार्थों के लिए विद्वेष पैदा करने की साजिश। धार्मिक अनुष्ठानों की आड़ में सरकारी या दूसरे मज़हब के धर्मस्थलों पर कब्ज़ा कर लेना आसान हो गया है। राजनेताओं के प्रत्यक्ष-परोक्ष दबाव में प्रशासन भी मूक दर्शक बन कर रह जाता है। 'चर्चे-ए-गुम' में, बहुत पहले किसी वक़्त जहाँ चर्च था, अब 'मथुरा स्वीट हाउस' नाम से शहर की मशहूर दुकान है। इस मिठाई की दुकान से शहर के हाकिम-हुक्काम सभी उपकृत हैं। दुकान के मालिक को जब सरकारी नोटिस मिलती है, तब वह 'धर्म प्रेमियों' को आमंत्रित कर श्रावण माह में शिव आराधना का आयोजन उस जगह करवाने की योजना बना लेते हैं।

'इलोई! इलोई! लामा सबाख्तानी' का शीर्षक कौतूहल जगाने के साथ पाठक को अतीत की यात्रा में सहभागी बनाता है। यह एक शहर, मुल्क नहीं पूरी दुनिया की कहानी है, जो बताती है कि धर्म, साम्प्रदायिक विद्वेष का केवल ऊपरी आवरण होता है। इसके पीछे मनुष्य की धन-संपत्ति का लोभ के साथ स्त्री देह की हवस और हैवानियत होती है। बूढ़ी नानी अक्सर नींद के बीच बड़बड़ाने लगती हैं - 'इलोई! इलोई! लामा सबाख्तानी'। शुभांगी के पूछने पर जो बताती हैं वह स्तब्ध कर देता है। नानी के पति, ससुर जिस कोठी के एक भाग में किराएदार हैं दंगों के दौरान उसी के मालिक की हत्या कर उनकी फूल सी नाज़ुक, अति सुन्दर युवा बेटियों-आबिदा और रजिया, जिन पर बाहर के किसी मर्द की नज़र भी नहीं पड़ी थी, के साथ बलात्कार कर रहे हैं। बिजली की चमक में वे लड़कियाँ जो सद्य: विवाहित नानी की सहेलियाँ बन चुकी हैं नानी को देख 'इलोई.. इलोई... ' कह चीख़ती हैं जिसका अर्थ नानी ने ही उन्हें पढ़ाने के दौरान बताया था – ईसा को सलीब पर चढ़ाए जाने के बाद मृत्यु के पहले अंतिम शब्द थे, जिसका अर्थ था – 'हे ईश्वर, तूने मुझे छोड़ क्यों दिया?' ससुर-पति अथाह धन, जेवर लूटकर ले थे। युवा नानी का मन आया था कि पति-ससुर नाम के राक्षसों के तन में आग लगा दें। उस दिन के बाद वह कभी ससुराल नहीं गईं। वे विक्षिप्त हो गई थीं। पढ़ाई कर उन्होंने नौकरी की। आज वह शुभांगी को यह सुनकर मुक्त हो गई थीं – अनसुनी कहानियाँ कर जाती हैं। कहानियों के मरने से समय, समाज, सभ्यताएँ, संस्कृतियाँ सब मर जाती हैं। इस लिए ये कहानी तेरे हवाले कर रहीं हूँ। कहानी मनुष्यता के मरने की शोकांतिका होती, लेकिन नानी की संवेदना-प्रतिरोध आशा के अंतिम बिंदु को मिटने नहीं देती।

प्रेम, लेखक की कहानियों का केन्द्रीय बिंदु रहा है। धर्म, समाज, नैतिकताओं के बंधन से परे। देह और मन की सीमाएँ इसमें पृथक नहीं हैं। वस्तुत: देह और मन की दूरी भी समाज ने अलग की है। दोनों की प्यास कहीं न कहीं सीमाओं का अतिक्रमण करती ही हैं। लेकिन एक उम्र के बाद देह तो मन का साथ देती नहीं। इसको साधने के लिए सदियों से उपाय ढूढ़े जाते रहे हैं।

'पत्थर की हौदें और अगनफूल' भी इसी

बुनावट की कहानी है। कहानी नरेटर (पीतांबर) और बड़े अफसर राजीव सक्सेना एक रेस्ट हॉउस में रात में रुकते हैं। साहब नियम-कायदों के पक्के, ईमानदार हैं। चौकीदार को खाने के इंतजाम किए पैसे देते हैं। इसी डाकबंगले में रात में खिले हुए अगनफूल (ग्लोरियोसा लिली) हौदों के विषय में एक रहस्यमय रहस्य पता चलती है जिसके प्रयोग से काम-शक्ति बढ़ाई जा सकती है। सक्सेना साहब इसे अन्धविश्वास कह कर चले जाते हैं। परन्तु यह रहस्य दोनों के अवचेतन में कहीं पैठ गया है। आठ-दस वर्ष बाद पीतांबर और राजिव सक्सेना इस उपाय को आज़माने आए हैं। यद्यपि सक्सेना साहब के ड्राइवर से उनके आने की बात मालूम होने पर पीतांबर लौट जाता है। भूख पेट की हो या देह की, नैतिकता-विश्वास-सामाजिक नियम के प्रतिबंधों की सीमाएँ उसे नहीं बाँध पाती।

इसी ढब की कहानी है 'हमेशा देर कर देता हूँ मैं'। मनीष एक बड़ी कंपनी में बड़ा अधिकारी है। ऑफिस का काम ख़त्म कर पुरानी यादों में डूबा हुआ है। गाँव के किनारे बरसाती नदी में दोस्तों के साथ पेड़ से कूद कर नहाने, तैरने में मौज आ जाती। लोग लड़कों को कूदने से मन करते, क्योंकि उनकी उम्र का एक लड़का बबलू पेड़ पर से नदी में कूद कर ज़िंदा नहीं निकल सका था। नदी के किनारे दूसरी तरफ अक्सर लंबी चाची, नहाते, कपडे धोते, एडियाँ घिस कर साफ़ कर रही होतीं। धनाड्य परिवार की निसंतान लंबी चाची चालीस-पैंतालिस उम्र में भी दिप-दिप करती हैं। गाँव में किसी मदद या काम से मन नहीं करतीं। एक दिन देर शाम मनीष अकेले नहाने के बाद झाड़ियों के पीछे कपड़े सुखा रहा है, पूरा नग्न। वह देखता है कि लंबी चाची उसे निर्निमेष देख रही हैं। शर्म से उसका शरीर बर्फ का हो जाता है। उसी रात शाम को गाँव में एक शादी में सबके साथ नाचते पसीने से तर-बतर है। चाची को उनके घर छोड़ने जाता है। चाचा तो सारी रात यहीं ताश के खेल में जमे रहेंगे। घर में मन्नी की देह से पसीना पोछते-पोछते दो हथेलियाँ साँप की तरह उसके सीने पर कस गई थीं। फुंफकार पीठ पर महसूस हो रही थी। 'जाने दीजिए मुझे...' मन्नी के अंदर भरा-पुरा पुरुष उगता महसूस हो रहा था। 'नहीं, आज नहीं।' 'आज के बाद कुछ नहीं होता...इसी धर्म-शील निभाने में बरसों नदी के पत्थर पर एडियाँ रगड़ने के अलावा कुछ नहीं मिला। जैसे आज नदी पर तुझे देख लिया, नहीं देखा किसी को.. । मेरी किस्मत में नहीं है। लेकिन मन्नी पूरी ताकत लगा, बिना शर्ट पहने सरपट भाग निकला।

उसका दोस्त ज़फर कहता है – 'मन्नी, वहाँ से भागकर बहुत ग़लत किया तूने। अगर भागता नहीं, कुछ कर आता, तो बात इतनी ख़राब नहीं होती। थोड़े दिन बाद तू भी भूल जाता, वह भी। लेकिन अब वह ग़ैरत की आग में जल रही होंगी।' और सच में उसे दूसरा मौका नहीं मिला। अगले दिन नदी के बंधान में लंबी चाची की लाश तैरती मिली थी। आज मनीष मुनीर नियाज़ी की ग़ज़ल – किसी को मौत से पहले किसी ग़म से बचाना हो... फूट-फूट कर रो रहा है।

लंबी चाची, एक अतृप्त स्त्री, की भूख भी अस्वाभाविक नहीं है। अपराध-बोध से ग्रसित लंबी चाची ने बंधान में कूदकर जान दे दी हो, असली अपराध-बोध से तो मन्नी को है। ज़फर के परामर्श पर हिम्मत बाँधता है, देर हो चुकी है। मुनीर नियाजी की ग़ज़ल अवसाद में डुबो देती है। कहानी के अंतिम बिंदु पर बिना किसी प्रश्न-उत्तर के पाठक भी अवसाद से भर जाता है। वस्तुत: जहाँ कहानी समाप्त होती है, इतिहास, मनुष्य, समाज के अंतरसबंधों की बहस की अप्रकट बहस की शुरूआत होती है। दैहिक अतृप्ति, प्रेम, रिश्तों की तथाकथित नैतिकता – मर्यादा पर सवाल उठाती मनोवैज्ञानिक और मार्मिक कहानी।

वास्को-डी-गामा और नील नदी' का कथानक, प्रस्तुति संश्लिष्ट होते हुए हुए अप्रतिम प्रेम कहानी। आज जब पूरी पृथ्वी पर कोई जगह नहीं बची जिसे कारोबारियों ने न घेर रखा हो, ऐसे परिदृश्य में 'वास्को-डी-गामा और नील नदी' प्रेम की तलाश करती है। प्रेम को बचाने की कोशिश पृथ्वी को बचाने की कोशिश है। शायद हर प्रेमी वास्कोडीगामा होता है और प्रेमिका नदी। दो प्रेमियों, जिनके वास्तविक नाम भी, उनके न रहने के बाद मालूम होते हैं, उम्र के उस मोड़ पर मिलते हैं, जब दुनियादारी के हिसाब से सब ख़त्म हो चुका होता है।

प्रेम में स्त्री और पुरुष की स्थिति अलग होती है। पुरुष बहुधा भटक जाता है, किसी प्रलोभन में, ख़तरों का सामना न करने, या रास्ता भूल जाने के कारण। जैसे वास्कोडिगामा नील नदी से होते हुए पिरामिडों तक पहुँचना चाहता था, लेकिन बढ़ गया कालीकट की तरफ। केप ऑफ़ गुड होप – वास्कोडीगामा ने चुना था, मेडिटेरेनियन-सी और अरेबियन-सी के ख़तरों से बचने के लिए। वह व्यापारी था। पुरुष भी लाभ-हानि का जायजा लेकर निर्णय लेता है। प्रेम में बिना ख़तरों वाले रास्ते का चुनाव पुरुष का होता है। नदी (स्त्री) के अपना रास्ता बनाने में नदी का कोई निर्णय नहीं होता। स्त्री पुरुष से चाहती है कि वह यात्री बनकर नहीं, समुद्र बनकर आए। नदी किसी पथिक नहीं, समुद्र की देह पर डेल्टा बनाती है। इसके लिए उसे कितनी यात्रा करनी पड़े। लेकिन एक दिन नदी स्वयं अपने वास्कोडिगामा को खोज लेती है। कोई भी तलाश, विशेष रूप से प्रेम, अपने अधूरेपन को पूरा करने के लिए ही तो होती है। इसके लिए अपने परिधि से बाहर आना ज़रूरी होता है। बरसों बाद मिले स्त्री और पुरुष अपनी-अपनी परिधियों से बाहर आए हैं। इस बार वास्कोडीगामा नील नदी में तटबंधों को तोड़ उतर गया है, टाइम ट्रेवल करके, जहाँ कभी होना चाहता था।

स्मृतियाँ संवेदनाओं की संवाहक होती हैं। स्मृतिविहीन समय की विडंबना उपभोक्तावाद की जनक ही नहीं आत्मीय रिश्तों को निर्मम स्वार्थ में बदल देती है। नैतिक मूल्यों के ह्रास के साथ बाज़ार प्रभावित जीवन शैली की क्रूरता को उजागर करती है। अव्यक्त प्रतिरोध ही है। पंकज सुबीर का कथा-वितान कितना बहुआयामी है। क़िस्सागोई है कि कहानी और पाठकों की अभिन्न तल्लीनता के बीच समय स्थगित हो जाता है।

000

पुस्तक समीक्षा

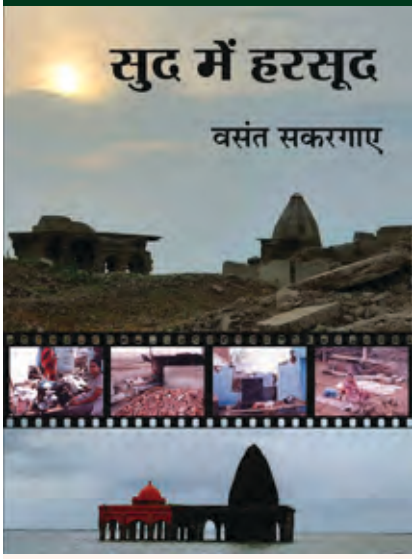

(संस्मरण)

सुद में हरसूद

समीक्षक : विनय उपाध्याय
लेखक : वसंत सकरगाए
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545
मोबाइल - 9806162184
ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

विनय उपाध्याय
एम एक्स 135, ई-7, अरेरा कॉलोनी
भोपाल 462016 मप्र
मोबाइल- 9826392428
ईमेल- vinay.srujan@gmail.com

यादों की भी एक नदी होती है। उसके किनारे बैठकर समय की लहरों को गिनना भला सा लगता है। ख़ुद के भीतर कहीं छूट गए ख़ुद को पाने की फितरत। अतीत की भटकी हुई गलियों से कोई पुकारता है और समय की परछाइयों में अपने अक्स खोजने का सिलसिला शुरू हो जाता है। इस बावरी-बेचैन सी कामना को कभी कृष्ण के हवाले से सूरदास ने कहा था- "ज्यों जहाज का पंछी उड़ि-उड़ि पुनि जहाज पे आए"। सरज़मीं के छूट जाने की अनेक रुँआसी कहानियाँ वक़्त के सीने में धड़कती रही हैं पर मिट्टी में गहरे तक फैल गई जड़ों की नमी जब-जब रगों में उतरती है, महकते से मंज़रों में कुछ क़िरदार, कुछ अफ़साने आबाद होने लगते हैं। ये किताब भी सरगोशियों की एक ऐसी ही सुनहरी दुनिया के कपाट खोलती है।

आवरण पर चस्पा शीर्षक ही मजमून बयाँ कर देता है 'सुद में हरसूद'। तरक़्क़ी के नाम बाँध की बलि चढ़ गए क़स्बे का नाम है - हरसूद, जिसकी सरहदों में इंसानी जीवन ने कभी इस उम्मीद में साँसों का सफ़र शुरू किया था कि रवायत की रोशनी में उनकी पीढ़ियाँ भी अपना भविष्य सँवारेंगी। पुरखों की विरासत का मान रखते हुए उनका पुरुषार्थ एक गौरवशाली इतिहास लिखेगा। लेकिन हरसूद की क़िस्मत में तो मृत्यु लिखी थी। 30 जून की तारीख़ अब जल समाधि ले चुके ख़ामोश हरसूद पर स्मृति की एक झीनी सी चादर है।

जाने कितने संदर्भ हरे हो उठते हैं जब इस क़स्बे के वाशिंदे वसंत सकरगाए की भीगी कलम इस किताब के पन्नों पर स्मृतियों के रेखाचित्र उकेरती है। ये वहीं वसंत हैं जिन्होंने हिन्दी के आधुनिक परिसर में एक प्रयोगधर्मी प्रखर-मुखर कवि की पहचान पायी है। करीब डेढ़ दशक की उनकी लगातार सक्रियता में उनकी कई कविताओं ने उन्हें वादी, विवादी और संवादी बनाया है। साहित्यिक कुचक्रों के मौजूदा दौर में यह सब नया और चौंकाने वाला भी नहीं। बहरहाल, वसंत अपनी लेखनी में अविचल रहे। ग़ौर करने की बात ये कि इस किताब में उनकी कलम ने गद्य रचा है। यह एक कवि का गद्य है। स्वाभाविक ही काव्यात्मक सघनता यहाँ भी है। स्मृतियों की हरी दूब पर टहलते हुए भीतर का राग-अनुराग कविता-सा ही छलकता है। सो हरसूद के छंद

भी वहाँ के जनपदीय जीवन की ऐसी ही लालिमा से लकदक हैं। एक सौ चालीस पृष्ठों के इस वितान में वसंत अपने वतन से जुड़ी किंवदंतियों, कहावतों, धारणाओं, घटना-प्रसंगों और चरित्रों की गाथा सुनाते हैं। क़िस्सा-दर-क़िस्सा एक क़स्बा अपनी स्मृतियों में जाग उठता है। वाणी, वेश और परिवेश ही नहीं, उन वृत्तियों पर भी लेखक का आवेश उजागर होता है जहाँ मानवीय संवेदना और दुनियावी दाँव-पेंच का असली चेहरा नमूदार होता है। बेहद रोचक और रम्य शैली में वसंत का हरसूद हम पर तारी होता चलता है। यहाँ कथ्य के साथ कहन का भी सम्मोहन है और कहने की कला में भाषा सबसे महत्त्वपूर्ण ज़रिया है।

वसंत की कविता हो या यह गद्य, जिस भाषा को वसंत ने अपने सृजन में बरता है वह उनका मौलिक अर्जन है। अपनी धरती की धूल में लिपटी जिस भाषा से उनकी सोहबत हुई वही जीवन, संस्कार और अभिव्यक्ति में भी चली आई। जिस परिष्कार और पांडित्य की छाप लिए अकादेमिक आचार्यों ने साहित्य का अरण्य रचा उस दर्जे में दाखिल होने का अवसर और आग्रह कभी भी वसंत के हिस्से न आया। 'सुद में हरसूद' को नापते हुए वसंत की भाषा अपनी देशज सुन्दरता और सुगंध की छाप तो छोड़ती ही है, क़स्बाई जन-जीवन के संवाद और संवेदना का रस भी छलकाती है। यहाँ खुशियाँ हैं, खरोंचे हैं। मटियारे सुख हैं तो अपनी ज़मीनी अरमानों के लुट जाने का मलाल भी है। आनंद और अवसाद की जुगलबंदी में बहती हरसूद की यह तथा-कथा हमारे समय में विस्थापन का सबसे दर्दनाक और ज्वलंत विमर्श सामने लाती है। वसंत घटनाओं का विवरण देते हुए कभी भावुक होते हैं, कभी अभिमान और गर्व से उनकी छाती चौड़ी हो जाती है, कभी क़िरदारों के मन की ग्रंथी खोलते हुए उनका मिज़ाज़ मसखरा होता है तो कभी सियासत और सत्ता की चतुर चालों पर चुटकी लेते लेते कलम का सिरा 30 जून के आसपास मंडराती हरसूद की आसन्न मृत्यु के पास पहुँचता है।

प्रसंगवश यह ज़िक्र ज़रूरी कि प्रेमशंकर रघुवंशी, श्रीराम परिहार, राजेश जोशी, रघुवीर शर्मा, निरंजन श्रोत्रिय, दिनेश प्रभात, अशोक दुबे और विजय मनोहर तिवारी जैसे लेखकों ने भी हरसूद की त्रासदी को कलमबद्ध किया है। उनके संदर्भ, सवाल और शैलियाँ भिन्न हैं। ख़ुद वसंत ने पहले कविता संग्रह में भी हरसूद के कुछ बिंब सिरजे हैं लेकिन इस किताब में हरसूद अपनी मासूम यादों में जिस तरह महक रहा है वह उसकी सौंधी मिट्टी की कमाई है। विस्मय होता है कि लगभग आधी सदी पुरानी स्मृतियाँ ज्यों की त्यों इस लेखक ने दस्तावेज़ की तरह सहेज रखी। यह लेखा-जोखा एक तरह से जन्म और मृत्यु के बीच धड़कते एक भरे-पूरे क़स्बाई जीवन की कहानी है। वो जीवन, जो तमन्नाओं के बहलावे में आता है। कभी चोट खाता है, कभी मुस्कुराता है। हरसूद की भाग्य। की लकीरों में मुस्कान और मातम की ऐसी ही इबारतों को पढ़ा जा सकता है।

जनश्रुति कहती है कि मध्यकाल से भी बहुत पहले हरसूद अपने वजूद में आ गया था। लेकिन उसके उजड़ जाने की पटकथा 1956 में लिखी गई। आज़ाद भारत ने जब तरक्की के नए सपने देखना शुरू किया तो पंचवर्षीय योजना बनी। पानी से बिजली बनाने की वैज्ञानिक तकनीक के साथ इंदिरा सागर बाँध परियोजना ने पाँव पसारना शुरू किया जो हरसूद की हद तक चले आए। लगभग 250 गाँवों को लीलती इस परियोजना ने लाखों लोगों के सपनों पर पानी फेर दिया। नए आशियानों और अरमानों को पाने नए हरसूद ने अंगड़ाई लेना शुरू किया लेकिन छोड़ आए हम वो गलियाँ... की टेर आज भी पुराने हरसूद की वादियों में सुनी जा सकती है। वसंत सकरगाए ने उन्हीं आवाज़ों को इन सफ़हों पर उतारा है। कुछ याद रहा, कुछ भूल गए की तर्ज पर वे सविनय पेश आए हैं। यह जान लेना यहाँ ग़ैरज़रूरी नहीं कि यह किताब हरसूद के इतिहास, पुरातत्व, संस्कृति, भूगोल और समाज पर आधिकारिक सर्वेक्षण नहीं है और न ही इसका दावा लेखक ने किया है लेकिन क़िस्सागोई करते हुए उन्होंने जिन घटनाओं और पात्रों का वर्णन किया है उनकी तस्दीक आज भी लेखक के समकालीन हरसूद वासी करते हैं।

किताब के शुरूआती पृष्ठों पर वसंत हरसूद की तलाश में लिखते हैं - "किंवदंती व इतिहास बन चुके हरसूद का कोई लिखित अतीत नहीं है। श्रुतियाँ ही इसका इतिहास और लेखा-जोखा रहा है। किसी ने राजा हर्षवर्धन की बसायी नगरी बताया तो किसी ने इसे राजा हरिश्चंद्र का अनुग्रह। हरसूद का प्रामाणिक इतिहास न बनने के पीछे यह वज़ह भी हो सकती है कि सत्ताएँ आती-जाती रहीं और हर साल पुराने निशानों को मिटाकर ख़ुद की तारीख़ी क़ायम रखने की कोशिशें करती रहीं। पर सत्ताएँ कब क़ायम रहीं!

इस प्रवाह में वे आगे जोड़ते हैं- "यह क्यों माना जाए कि हरसूद हर्षवर्धन अथवा हरिश्चंद्र का जाया है!" इस पर अग्रज बताते हैं- "बात उन्नीस सौ इक्कावन की है। सरस्वती-कुण्ड को विस्तार देने के लिए नाले की खुदाई का काम चल रहा था। पन्द्रह-बीस हाथ की खुदाई ही हो पाई थी कि मजदूरों की सब्बलें पत्थरों से टकराकर टन-टन बजने लगीं। पत्थरों के आजूबाजू खुदाई की गई और फावड़ों से मिट्टी को उलीचा गया तो एक-एक कर विभिन्न देवी-देवताओं की छोटी-बड़ी लगभग तीन दर्जन मूर्तियाँ निकलीं। बाद में उन मूर्तियों को किसी संग्रहालय को सौंप दिया गया। इससे यह बात साबित होती है कि हरसूद इन्हीं में से किसी नरेश की बसायी नगरी है।"

ये सच है कि कोई भी मुआवज़ा विरासत नहीं लौटा सकता लेकिन उस विरासत को एक सच्चा उत्तराधिकार हमेशा याद रखता है। विस्मृति की धूल को बुहारकर बड़े ही कृतज्ञ अनुराग से हमारे समय के एक लेखक ने अपनी गर्भनाल से जुड़े गाँव को एक सुंदर गीत की तरह गाया है। गीतकार रघुवीर शर्मा बेसाख्ता याद आते हैं - "मन में चुप-चुप सा, अब भी रहता है हरसूद/तन्हाई में बहुत याद आता है हरसूद/ और कभी उसके तट पर जाकर खड़े हुए/ अपनों सा आलिंगन कर मुस्कुराता है हरसूद"। भुजाओं में ऐसा ही समेटता है वसंत का यह हरसूद।

000

पुस्तक समीक्षा

(उपन्यास)

मैमराजी

समीक्षक : अरुण कुमार जैमिनि

लेखक : जयंती रंगनाथन

प्रकाशक : हिंद युग्म, नई दिल्ली

अरुण कुमार जैमिनि
सी 164, नोएडा
सेक्टर 63
उप्र 201301
ईमेल- arungemini@gmail.com

रौनी ने शशांक को पीछे से आवाज़ देकर रोका, "शोशांक, तुम फर्स्ट डे लेट आया है। अपना नेबर का घर का नाली साफ करने से फुर्सत मिल गया?"

शशांक का चेहरा एकदम लाल हो गया।

रौनी उसके पास आ गया, "कल शाम को जब तुमसे मिला था, तुम एक प्रॉमिसिंग इंजीनियर लगा था। सुबह ऑफिस टाइम पर आना ज़रूरी था या मूली का पराठा खाना?"

"सर, सर..." शशांक हकलाने लगा। रौनी को कैसे पता चला मूली के पराठों के बारे में और स्वीटी के घर की चोक्ड नाली के बारे में?

इस 'कैसे पता चला' में ही जीवन के सारे राज या खेल छिपे हैं। ज़िंदगी के खेल शुरू हुए नहीं कि उसके सारे राज एक-के-बाद-एक सामने आने लगते हैं और इनसान को 'तिग्गी का नाच' नचाने लगते हैं। इस 'कैसे पता चला' का जब तक पता चलता है, तब तक बाज़ी हाथ से निकल चुकी होती है या फिर निकलने की तैयारी कर रही होती है।

ऐसा कम ही होता है, जब कोई माहिर खिलाड़ी इस खेल में आता है और बहुत चतुराई से खेलते हुए सारी बिसात ही पलट देता है। लेकिन इस बीच उसे तमाम जद्दोजहद से गुज़रना पड़ता है, जो इस 'कैसे पता चला' का अनिवार्य हिस्सा होती है। दरअसल इस खेल में जोखिम के साथ-साथ संभावनाएँ भी भरपूर हैं। अब यह आप पर निर्भर करता है कि आप कितने कुशल खिलाड़ी हैं। यहाँ एक ऐसे ही खिलाड़ी बल्कि कहें कि युवा की कहानी है, जो नौकरी के सिलसिले में भिलाई जैसे छोटे शहर में आता है। यहाँ नौकरी के पहले ही दिन उसके बॉस को उसके रात को पड़ोसी के घर की चोक्ड नाली खोलने से लेकर सुबह उसके घर ब्रेकफास्ट में मूली का परांठा खाने तक की ख़बर हो जाती है। और उसके जेहन में सिर्फ यही सवाल कौंधता है कि उसके बॉस को इसका 'कैसे पता चला?' दरअसल यह कहानी का एक सिरा है, जिसे पकड़ कर कहानी का मुख्य पात्र शशांक आगे बढ़ता है। जैसे-जैसे कहानी आगे बढ़ती है। इस एक सिरे के कई-कई सिरे नज़र आने लगते हैं। एक सिरा स्वीटी भाभी हैं, तो दूसरा सिरा झुमकी भाभी हैं। और ऐसे न जाने और कितने सिरे हैं, जो अपने-अपने ढंग से कहानी को आगे बढ़ाते हुए नज़र आते हैं।

असल में देखा जाए तो इस कहानी का सबसे महत्त्वपूर्ण सिरा या कहें कि सूत्रधार इस कहानी की लेखिका जयंती रंगनाथन हैं, जिन्होंने नेपथ्य में रहकर इस कहानी की दिलकश बुनावट की है। उन्होंने भिलाई जैसे छोटे, ख़ूबसूरत और शांत शहर की नब्ज़ पकड़ते हुए एक तरह से पूरे शहर और उसकी संस्कृति को अपने उपन्यास 'मैमराजी' में बहुत कुशलता से उकेरा है। इस उपन्यास को पढ़ते हुए आपको जयंती जी के बचपन, किशोरावस्था और जवानी के भिलाई के दर्शन तो होंगे ही और इसमें बहुत कुछ ऐसा भी मिलेगा, जो आज भी नहीं बदला है। इस नहीं बदला में से एक, उस शहर और उसकी यादों का जादू, जो आज भी उन जैसे तमाम लोगों पर तारी है, जो उन पलों के गवाह रहे हैं। यह उपन्यास शशांक, स्वीटी और झुमकी भाभी की सिर्फ कहानी भर नहीं है, बल्कि इसमें इतिहास भी है और भिलाई शहर की सांस्कृतिक विरासत भी है। बस, उसे महसूस करने के लिए एक धड़कता हुआ दिल और थोड़ी-सी पैनी नज़र चाहिए। अगर आपके पास यह है तो फिर कोई कारण नहीं कि आप लेखिका के साथ-साथ भिलाई शहर और उसके रंग में ख़ुद को रंगने से रोक सकें।

इनकी वजह से ही हम और आप उपन्यास की शक्ल में एक बेहद उम्दा कहानी या कहें अपनी-अपनी यादों से रूबरू हो रहे हैं। और इस ख़ूबसूरत शै का बायस बनी हैं मशहूर अफ़साना निगार जयंती रंगनाथन और उनका हाल ही में आया बेहद चर्चित उपन्यास

'मैमराजी'।

किताब पर कहने से पहले कुछ बात इस उपन्यास की लेखिका के बारे में हो जाए। मशहूर लेखक तथा 'धर्मयुग' के संपादक धर्मवीर भारती से पत्रकारिता और लेखन के संस्कार पाने वाली जयंती जी करीब तीन दशकों से मीडिया और लेखन के क्षेत्र में सक्रिय हैं। 'धर्मयुग' से 'सोनी एंटरटेनमेंट टेलीविजन', 'वनिता' और 'अमर उजाला' से 'हिंदुस्तान' तक का सफ़र तय करने वाली जयंती जी ने अपने लेखन से दक्षिण को उत्तर से जोड़ने वाली इस देश की परंपरा का सादगी से निर्वाह किया है। भाषा के नाम पर राजनीति करने वालों के लिए यह एक उदाहरण है कि राजनीति से परे हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के बीच कोई मतभेद नहीं है।

'आसपास से गुज़रते हुए', 'खानाबदोश ख्वाहिशें', 'औरतें रोती नहीं', 'एक लड़की दस मुखौटे', 'गीली छतरी', 'मुंबई मेरी जान', 'एफओ ज़िंदगी', 'रूह की प्यास', 'शैडो', 'मेरी मम्मी की लव स्टोरी', पहला फेसबुक धारावाहिक उपन्यास '30 शेड्स ऑफ बेला', 'कामुकता का उत्सव' और 'रेडलाइट एरिया' (संपादन) जैसी चर्चित और प्रशंसित किताबें (कहानी-संग्रह और उपन्यास) लिखने वाली जयंती जी की दो सौ से अधिक बाल कहानियाँ और पाँच सौ से अधिक कहानियाँ 'हंस', 'कथादेश', 'धर्मयुग', 'सारिका', 'कादम्बिनी', 'हिंदुस्तान', 'इंडिया टुडे', 'आउट लुक' सहित रेडियो पर प्रकाशित-प्रसारित हो चुकी हैं। इसके अलावा सीरियल, पटकथा, ऑडियोबुक लेखन और पॉडकास्टर के रूप में सक्रिय तथा कई पुरस्कारों से सम्मानित जयंती जी के उपन्यास 'शेडो' पर 'चैप्टर 2' नाम से फिल्म भी बन रही है।

बहरहाल, अब किताब पर आते हैं। बात हो रही थी-स्वीटी, झुमकी और शशांक की। ये तीनों उपन्यास 'मैमराजी' के पात्र हैं। पात्र तो और भी कई हैं, लेकिन पूरी कहानी की धुरी इन तीनों के आसपास घूमती है। ख़ासतौर पर स्वीटी भाभी और शशांक के आसपास। झुमकी भाभी एक तरह से स्वीटी भाभी की चाही-अनचाही स्पोर्टिंग हैंड हैं। स्वीटी भाभी जितनी नाम से स्वीट हैं, उतनी ही मिर्च से ज़्यादा तीखी भी हैं। यह अलग बात है कि उनका तीखापन भी 'शुगर कोटेड' होता है। इसका पता तब चलता है, जब वह ज़ुबान और उनकी कारगुजारियों के रास्ते सामने वाले के ज़ेहन में उतरता है। और, फिर उसका तीखापन सामने वाले के वजूद को अपनी गिरफ्त में ले लेता है।

दरअसल, इस उपन्यास की कहानी एक छोटे शहर भिलाई की है। बकौल लेखिका- '...भिलाई, जो मेरे लिए बस एक शहर भर नहीं है। मेरे जन्म, बचपन, जवानी का आईना है। भिलाई एक झरोखा है, जिसने मुझे जीना सिखाया, ताब दिया, आवाज़ दी और दिए रौशनी के ख़ूबसूरत कतरे।' यह किताब उन्हीं ख़ूबसूरत कतरों की गवाही देती हुई नज़र आती है, जिससे हर कोई इत्तेफाक रखेगा। ख़ासतौर पर भिलाईवाले, जिन्होंने उन लम्हों को कभी जिया है और जो आज उनकी यादों का हिस्सा हैं। और इसके साथ ही आज की पीढ़ी, जो उन जैसे लम्हों की हमसफ़र हैं। जयंती जी की यह किताब एक लेखिका की तरफ से भिलाई, वहाँ के लोगों और कल्चर को ट्रिब्यूट है।

हाँ, तो एक बार फिर से स्वीटी भाभी और शशांक पर आते हैं। भिलाई के स्टील प्लांट में ट्रेनी इंजीनियर के रूप में नौकरी करने के लिए शशांक आता है। स्वाभाविक है कि पहली नौकरी और कई सारे ख्वाब शशांक के मन में भी हैं। नई और अजनबी जगह में थोड़ी घबराहट, थोड़ा रोमांच के बीच उसे अपने ज़िंदगी की नई शुरूआत करनी है। इस नई शुरूआत की शुरूआत में ही उसका सामना गेस्ट हाउस के समीप रहने वाली स्वीटी भाभी से हो जाती है। बस, फिर उसकी ज़िंदगी में क्या-क्या नए रंग खिलते हैं, इसे बेहद दिलचस्प अंदाज़ में उपन्यास में देखा जा सकता है। 'मैमराजी' यानी गॉसिप करने में माहिर आंटियाँ, जो आंटियाँ कम भाभी कहलाना ज़्यादा पसंद करती हैं। यह उपन्यास ऐसी ही स्वीटी और झुमकी भाभी के बीच फँसे शशांक की कहानी है। शशांक के उठने-बैठने, खाने-पीने और ऑफिस में बॉस के साथ उसके संबंध से लेकर सोने तक की जानकारी पूरे शहर को इन स्वीटी भाभी के जरिये होती है। बेचलर शशांक को लेकर स्वीटी और झुमकी दोनों अपनी-अपनी तरह से समीकरण बैठाती हैं, लेकिन जब शशांक अपनी प्रेयसी सुंदरी के साथ नौकरी छोड़कर चला जाता है। तब दोनों यह जानकर 'शॉक्ड' हो जाती हैं कि शशांक का तो पहले से ही चक्कर चल रहा है।

दरअसल यह कहानी सिर्फ भिलाई की नहीं है। यह कहानी हर उस छोटे शहर की है, जहाँ लोग एक-दूसरे से वास्ता रखते हैं। जिसे आज की भाषा और सोच में दूसरे की ज़िंदगी में ताक-झाँक करना और दखल देना मानते हैं। दूसरे की प्राइवेसी का एनक्रोचमेंट मानते हैं। देखा जाए तो मैमराजी एक आदत नहीं, बल्कि संस्कृति का हिस्सा है, जिसका प्रतिनिधित्व यहाँ स्वीटी और झुमकी जैसी भाभियाँ कर रही हैं। यह अलग बात है कि आजकल की उपभोक्तावादी संस्कृति में बड़े-तो-बड़े, छोटे महानगरों में भी अलग-बगल वाले एक-दूसरे से वास्ता नहीं रखते। उसका परिणाम यह है कि महानगरीय जीवन में फैलता अवसाद। दुनियाभर की ख़बर लेनेवालों को अपने पड़ोसी की ही ख़बर नहीं है। हम इतने ज़्यादा 'ग्लोबल' होते जा रहे हैं कि हमारा 'लोकल' से नाता छूटता जा रहा है। ताँक-झाँक बुरी आदत है, लेकिन एक-दूसरे की ख़बर रखना भी ज़रूरी है। अब यह ख़बर रखना स्वीटी और झुमकी भाभी जैसा हो या फिर कुछ और हो। यह आप तय करें।

बहरहाल क़िस्सागोई शैली में लिखा गया यह उपन्यास एक नॉस्टेल्जिया है। यह आपको गुदगुदाता भी है और दूसरों की ज़िंदगी में ताकने-झाँकने का रस भी देता है। अब यह हम पर है कि हमें कितना और किस हद तक दूसरों की ज़िंदगी में ताँक-झाँक करनी है। बाज़ार की भाषा में कहा जाए तो यह उपन्यास पैसा वसूल है। यह आपको आनंद भी देता है और एक ही ढर्रे पर लिखे जा रहे लेखन को पढ़ने से बचने का सुख भी देता है।

000

पुस्तक समीक्षा

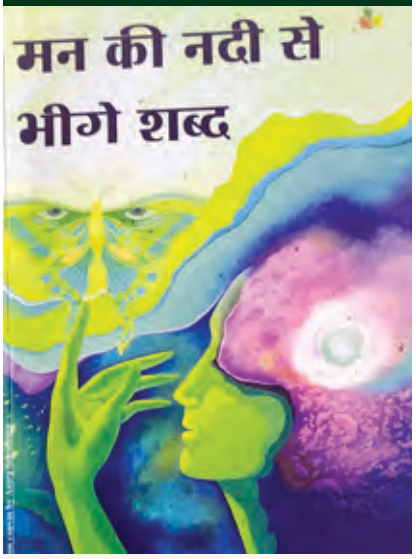

(कविता संग्रह)

मन की नदी से भीगे शब्द

समीक्षक : दीपक गिरकर

लेखक : रेखा भाटिया

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल - 9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016
मोबाइल- 9425067036
ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com

मन की नदी से भीगे शब्द कवयित्री रेखा भाटिया का दूसरा कविता संग्रह है। साहित्य में रेखा भाटिया की सक्रियता और प्रभाव व्यापक है। इनकी रचनाएँ निरंतर देश की लगभग सभी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। उन्हें अनेक साहित्यिक संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत किया जा चुका है। रेखा भाटिया के इस संग्रह की विविध रंगों की रचनाओं को पढ़ने के पूर्व उनके आत्मकथ्य को पढ़ना ज़रूरी है जिसमें उन्होंने लिखा है "मेरी पहली पुस्तक आने के साथ ही मेरी सृजन यात्रा में एक प्रेम भाव उत्पन्न हो गया। कवि मन अति संवेदनशील होता है कभी जीवन का उत्सव मनाता है, कभी जीवन में आसपास के वातावरण के प्रभाव से उदास हो जाता है। आसपास का वातावरण, सामाजिक जीवन, प्रणाली, संघर्ष, चुनौतियाँ, सुख-दुःख, रिश्ते, कर्त्तव्य, जिम्मेदारियाँ यह सब तो दुनियादारी और जीवन का हिस्सा हैं, इन सब से कवि हृदय कभी संतुष्ट नहीं हो पाता। उसकी सृजनात्मक शक्ति में प्राण डालने के लिए, उसके संचार के लिए, उसे ऊर्जावान बनाए रखने के लिए और प्रेरित करने के लिए किसी अलौकिक प्रकाश की आवश्यकता होती है। उसी प्रकाश के आभास से कभी बाहर, कभी भीतर में उतर कवि उस अनहद को महसूस कर पाता है। उस आभास के एहसास से भीगे शब्द, भाव बन मन की नदी में बहने लगते हैं और कविता जन्म लेती है।" रेखा भाटिया एक संवेदनशील कवयित्री हैं। रेखा भाटिया की रचनाओं की विशेषता है कि बरसों से वे विदेश में रहकर भी अपनी हर साँस में भारत को जीती हैं। इस कविता संग्रह में प्रकृति सौंदर्य और मानवीय संबंधों की मधुरता है। इस संग्रह की कविताओं में कवयित्री की और साथ में हमारी भी अनुभूतियों की प्रतिध्वनियाँ गूँजती है। इस संग्रह में जीवन, संसार, समाज, आस्था, विश्वास, प्रकृति, प्रेम, करुणा और ममता को सहेजने की कविताएँ हैं। यह संवेदनाओं और आत्मीयता से ओत-प्रोत कविताओं का एक सशक्त दस्तावेज़ है। रेखा भाटिया की कविताएँ सीधी सच्ची हैं, इनमें कृत्रिमता नहीं है। इस संग्रह में उनकी हृदय-स्पर्शी कविताएँ संग्रहित हैं। इस संग्रह की हर रचना पाठकों और साहित्यकारों को प्रभावित करती है। इस संकलन में 75 छोटी-बड़ी कविताएँ संकलित हैं।

रेखा भाटिया की कविताएँ हमें अपनी जड़ों की ओर ले जाती हैं। इस कविता संग्रह की पहली कविता बावरी पवन मन बना बसंत ही इतनी प्रभावशाली है कि पाठक अपनी उत्सुकता रोक नहीं पाता है। इस कविता में कवयित्री कहती है - ओह बावरी पवन ! क्यों सता रही हो / मैं परदेश हूँ सौतेलापन जता रही हो / पीहर देस में फागुन आया री। कवयित्री की रचनाओं में विविध रंगों का समावेश है। कहीं प्रेम की उष्णता है तो कहीं स्नेह की नमी। तुम मिलो हर सुबह मुझसे कविता में लेखिका लिखती है - तुम मिलो हर सुबह मुझे / चाय का प्याला लिए हाथ में / मेरी सुबहों को ऊर्जा देने आगे लिखती है - तुम मिलो हर सुबह मुझे / तुम्हारी उष्मा का एहसास लिए / तुम्हारी ख़ुशबू से महकती है / प्याले में शरारत से सिमट / ललचाती है मुझे पी जाने को। इस संग्रह की रचना किस्मत में बेटी कविता न होकर बेटी का सम्पूर्ण शब्दचित्र है। रेखा भाटिया की लेखनी का कमाल है कि उनकी रचनाओं में सहजता, आत्मिक संवेदनशीलता, जीवन का स्पंदन, भावों की तीव्रता प्रतिबिंबित होती हैं। किस्मत में बेटी कविता में कवयित्री कहती है - बँधु सच कहती हूँ / पगली बेटियाँ बहुत ख़याल हैं रखती। कब बड़ी हो सब का सहारा हैं बनती / माँ का दर्द भी ख़ूब हैं समझती। चाँद पर चलने का ख़्वाब देखतीं / नदी को थाम पल बाँधने का जोश रखतीं। आँसुओं को रोक मुस्कान से हैं छलती / समुद्र से गहरा दिल में राज हैं रखतीं। दो घरों की जिम्मेदारी भी निभा हैं लेती / दुनियादारी भी ख़ूब हैं समझती। फिर भी मासूम भोलापन

साथ हैं रखती / बेटियाँ जीवन का आगाज़ हैं होती। अब किसी सखी की ज़रूरत कहाँ ! / बेटी का साथ ही दिल भरता। घूमना-फिरना, सैरसपाटा, खरीदारी / मज़ा दुगना जब बेटी साथ होती। बँधु सच कहती हूँ / पगली बेटियाँ बहुत ख़याल हैं रखती।

रेखा भाटिया के अंतर्मन में भावनाएँ अभिव्यक्त होने के लिए मचलती रहती हैं। समर्पण कविता में लेखिका कहती है - कभी शाम की तन्हाइयों में / कभी अकेली शामों में / दिल खो जाता है यादों के डेरे में / मैं अपने बिखरे बाल समेटती हूँ / खो जाती हूँ उस मंज़र में। लेखिका अपनी रचनाओं में आशा और विश्वास का भरपूर संचार करती है। ढूँढ़ रही हूँ एक बुद्ध कविता में रेखा जी लिखती है - युग बीत गए, काल बीत गए / मुझसे न छीनो / स्वाभिमान / आत्मसम्मान / बहुत छिन चुका है मेरा / विश्वास / प्रेम / धैर्य।

आधी हँसी हँसती हूँ ग़म छिपाने के लिए / तुम्हें देखा नहीं शायद स्वयं को भूल चुकी हूँ। वर्षों गुज़र गए याद नहीं कब खुल कर हँसी / खिलखिलाती तुम्हारी हँसी और खनकती मेरी। (दोस्त, दोस्ती, यादें) तो लेखिका यहाँ वक्त की तसवीर को कविता के कैनवास पर उकेर देती है। वह नारी रचना जीवन के खुरदुरे यथार्थ से जूझती दिखाई देती है। इस कविता में रेखा जी की बैचेनी और पीड़ा महसूस की जा सकती हैं। "वह नारी आज ठंडी देह बन / पड़ी है पार्थिव, स्पंदनहीन / न कोई प्रतिक्रया / न कोई प्रतिशोध / आसपास वेदना भरे हृदयों की भीड़ / निर्जीव देह में क्या अब भी है स्पंदन"। वे आगे लिखती है - "युग बदल जाते पल वही रहते / दारुल दृश्य हर युग के भाग्य में / हर काल नारी सुलह करती समाज से / भंवर में फँसा काल, अंत विरह साँसों से / कई मत आज भी उभरे हैं दोष किसका / कई हृदय स्पंदित हैं एक आग से / जब ठंडी देह गरमा रही चिता में! कहना चाहती है हर स्त्री स्त्री के अस्तित्व तथा स्त्री जिजीविषा की कविता है। यह रचना पुरुष मानसिकता पर सीधा प्रहार है। मीरा का प्यार प्यार था, भक्ति थी / उससे भी ज़्यादा प्रतिबद्धता ख़ुद से / वह टकरा गई युगों से चलती प्रथाओं से / राज सिंहासन दोल गए थे उसके शक्ति संकल्प से / आत्मसम्मान से विष का प्याला स्वीकार किया / समझौतों के आगे डटी रही अपने विश्वास पर / मधुता से अटूट विश्वास जीता पशुता नहीं। रेखा जी आगे लिखती है - बदल जाता है प्यार उसका अधिकार मिलने से / अधिकार मिल जाता है उसे अभी प्रेम के बदले / कभी सम्मान में, कभी समझौतों से, कभी बल से / कभी चल से / आधिपत्य ज़माना चाहता और अधिकार / देकर एहसान जताता। अपने समय की चिंताओं को सार्थक सारगर्भित तरीके से कवयित्री रेखा भाटिया ने अभिव्यक्त किया है रचना लैम्प पोस्ट के पास में।

वह नारी, जुनून, कहना चाहती है हर स्त्री, लैम्प पोस्ट के पास, तुम अब यह न कहना मुझसे, मुझे ऐतराज है, नायिका इत्यादि नारी जीवन के विविध पक्षों को अभिव्यक्त करने वाली सशक्त कविताएँ हैं। स्त्री के मन को छूती हुई ये कविताएँ पाठक के मन में समा जाती हैं। मौसम का प्याला, सॉसालिटो में बसंत, पतझड़ का संदेश आदि कवितायेँ प्राकृतिक सौंदर्य पर आधारित हैं जो प्रकृति से तादात्म्य स्थापित करती हैं। तुम मिलो हर सुबह मुझसे, प्रेम का हो इज़हार, समर्पण इत्यादि रचनाओं में अपनों के लिए प्रेम, करुणा, ममता और आत्मीयता है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि कविता रेखा भाटिया की आत्मा में रची-बसी हैं। संग्रह की रचनाओं में एक ओर लेखिका का परंपरावादी मूल्यों के प्रति अटूट आस्था और विश्वास तो दूसरी ओर जीवन के प्रति नए दृष्टिकोण प्रस्फुटित होते हैं। रेखा भाटिया की कविताएँ सहज शब्दों में जीवन के मर्म पर हाथ रखती है। स्त्री के मन को छूती हुई ये कविताएँ पाठक के मन में समा जाती हैं। इस संग्रह की रचनाएँ पाठकों को मानवीय संवेदनाओं के विविध रंगों से रूबरू करवाती हैं। संप्रेषणीयता के स्तर पर रेखा भाटिया की कविताएँ खरी उतरी हैं। संग्रह की रचनाएँ हृदय में गहरे चिन्ह छोड़ जाती हैं। रेखा भाटिया के कविता संग्रह मन की नदी से भीगे शब्द का साहित्य जगत् में स्वागत है।

000

लेखकों से अनुरोध

'शिवना साहित्यिकी' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे किसी अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

shivnasahityiki@gmail.com

पुस्तक समीक्षा

(उपन्यास)

आख़िरी पायदान पर खड़ा आदमी

समीक्षक : डॉ. रमाकांत शर्मा

लेखक : मंजुश्री

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल - 9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

डॉ. रमाकांत शर्मा
402-श्रीराम निवास,
टट्टा निवासी हाउसिंग सोसायटी,
पेस्तम सागर रोड नं. 3,
चेम्बूर, मुंबई- 400089
मोबाइल- 9833443274
ईमेल- rks.mun@gmail.com

"आख़िरी पायदान पर खड़ा आदमी" मंजुश्री का प्रथम उपन्यास है। यह विषय ही ऐसा है जो विस्तार और व्यापक फलक की माँग करता है, इसलिए मंजुश्री ने उस विधा को अपनाया है जिसके माध्यम से विचारों को विस्तृत रूप से रखा जा सके।

इस उपन्यास की शुरूआत "भूमिका", "प्राक्कथन" या "अपनी बात" जैसी औपचारिकता से नहीं हुई है। मंजुश्री ने सीधे अपनी रचना के माध्यम से पाठकों तक पहुँचना बेहतर समझा है। रचना और पाठकों को लेकर यह उनके आत्मविश्वास को प्रतिबिंबित करता है।

यह उपन्यास एक ऐसे युवक वीरू की दास्तान है जो कानपुर की उस मज़दूर बस्ती जाजमऊ का रहने वाला है जहाँ के लोगों के नसीब में गंदगी में डूबे रहना ही लिखा है। नाले में बहती चमड़े के कारखानों से निकलने वाली गंदगी में रहने के लिए अभिशप्त नीची जाति के कहे जाने वाले ये लोग उस भयंकर गंदगी वाले नाले में से भी अपने मतलब की कुछ ना कुछ चीज़ें निकाल कर उन्हें बेच लेते हैं। उसका बाप नाले में डुबकी लगा कर कुछ ना कुछ बटोर लाता था और कॉलोनियों की सँकरी गलियों के सीवर की सफाई का काम भी कर लेता था। सीवर से जब वह बाहर निकलता तो ऊपर से नीचे तक काले रंग के कीचड़ में सना हुआ होता। थोड़ी देर तो वैसे ही सड़क पर पड़ा रहता और फिर ढेरों पानी डालने के बाद जब लड़खड़ाता खड़ा होता तब उसकी शक्ल देखते ही उबकाई आने लगती है।

बाप के मरने के बाद माँ चाहती है कि वह भी बाप की तरह सीवर में उतर कर सफाई का काम करे जो उसे कतई मंजूर नहीं है। उसे पता है कि गाँव में बाप ने जो क़र्ज़ लिया है उसे उतारने के लिए पैसों की सख्त ज़रूरत है, पर ऐसे छोटे और गंदे काम करके क्या यह क़र्ज़ उतारा जा सकता है। वह अपने शहर और घर से भागकर इसलिए मुंबई महानगर में आया है ताकि सीवर की सफाई जैसे काम से बच सके। यहाँ कम से कम पेंटिंग जैसा ढंग का काम तो मिल जाता है। इस महानगर में "काम की कमी नहीं है, बस मेहनत करने वाला होना चाहिए। गाँव में ना काम है ना पैसा।"

साहूकार से जो क़र्ज़ लिया था, उसे चुकाने के लिए यह ज़रूरी था कि वह तमाम मुसीबतों के होते हुए भी महानगर छोड़कर ना जाए। गाँवों की स्थिति पर यह टिप्पणी हर संवेदनशील दिल को चोट पहुँचा सकती है, "सभी गाँवों का यही हाल है। ग़रीब आदमियों का खून चूसते इन साहूकारों को शर्म नहीं आती, ज़िंदगी भर इनका क़र्ज़ नहीं चुक पाता। पीढ़ियाँ सूद चुकाते-चुकाते मर जाती हैं, मूल चुकता हो ही नहीं पाता।"

महानगर में मिलता काम और यहाँ की जगमगाहट जहाँ आकर्षित करती है, वहीं इतनी बड़ी भीड़ में गुम हो जाने का भय सताने लगता है। पर, चुनौतियों से भागना इसका समाधान नहीं है, "चुनौतियों से भागने की सोच रखोगे तो आगे कैसे बढ़ोगे? भीड़ से अलग अपनी एक नई पहचान बनाओ वीरू।" पर, यह पहचान बने कैसे, सामाजिक ढाँचे में उसके जैसे एकदम तलहटी में खड़े नीची जाति के लोगों को कोई ढंग का काम मिलना कितना कठिन है।

महानगर में रहते हुए भी अपने घर, परिवार और दोस्तों से मिलने जाने के लिए अजब सी बेचैनी बनी रहती है, "एक बार वापस जाना ही है, आख़िर वहाँ घर है, दोस्त-यार हैं।"

मजदूरों की बस्ती के बीच बना कच्चा घर खस्ता हाल है और उसमें रहने वाले ज़िंदगी से हारे हुए लोग उससे भी ज़्यादा खस्ता हाल हैं। यहाँ अभी भी चमड़े के कारखानों से निकलने वाली असहनीय बदबू साँस रोकने पर मजबूर कर देती है। खाना खाते समय ऐसा लगता है जैसे चमड़ा खा रहे हों। उफ, सीवर के भीतर उतर कर सफाई का वह उबकाई भरा काम। दारू पीकर बाप का माँ को आए दिन पीटना। वह फिर से उस नरक में क्यों लौट आया है। इस उपन्यास में आखिरी पायदान पर खड़े आदमी की गलीज ज़िंदगी का ऐसा जीवंत वर्णन हुआ है कि उसे पढ़कर किसी की भी रूह काँप उठे। क्या सचमुच ऐसी नरक से भी बदतर ज़िंदगी जीते हैं लोग? सामान्य पाठक को शायद ही विश्वास हो पाए।

चमड़े के कारखानों का प्रदूषण अपनी जगह है, इस प्रदूषण ने आदमी का जीवन दूभर कर दिया है। वैसे कमोवेश सभी शहरों का यही हाल है। प्रदूषण कहाँ नहीं है? "सरकार चाहे तो काफी कुछ हो सकता है।" सरकार की नाकामी की ओर इंगित करती यह टिप्पणी उसे और बिगड़ते हालात के प्रति चेतावनी देती लगती है।

बेरोज़गारी, गरीबी, भुखमरी और उससे उभरी लाचारी क्या कुछ नहीं करा लेती। तोड़-फोड़, किसी विरोधी पार्टी की रैली में उनके नेताओं पर इंक फेंकना, जूता फेंकना, पथराव करना, मारपीट करना सबकुछ। यह सब किसलिए? सिर्फ चंद सिक्कों के लिए। और जो पकड़े गए तो? कुछ नहीं, थोड़ी-बहुत मार खा लेना। इस सबमें पुलिस की मिलीभगत की पोल भी खुली है, उसके बाद पकड़ा, एफआइआर हुई और दो दिन बाद छोड़ दिया। पुलिस वाले भी सब गोरखधंधा जानते हैं, वे कौन से दूध के धुले हैं, अब दिखावे के लिए तो गिरफ्तार करना ही पड़ेगा। नेता तो विरोधियों की ही नहीं, अपने लोगों की जड़ें काटने का काम भी पैसा देकर कराते हैं।

न्याय व्यवस्था पर भी जबरदस्त चोट की गई है, "हमारे यहाँ की न्याय व्यवस्था के बारे में कौन नहीं जानता, सामने वीडियो पर दिखते अपराधी गवाहों के अभाव में छूट जाते हैं।"

यह उपन्यास आख़िरी पायदान पर खड़े आदमी की ज़िंदगी की भयावह तस्वीर पेश करता है, जिसमें कल्पना नहीं है, सच ही सच है और नंगी वास्तविकता। जात-पात के भंवर में हिचकोले खाता, हीन भावना से ग्रसित आदमी। कोई छोटा-मोटा धंधा करे तो पुलिस और नगरपालिका के लोगों की जेबें गरम करता आदमी।

मुंबई महानगर में रहने की मुश्किलें भी कम नहीं हैं। पर, सपनों का यह शहर फिर से लौटा लाता है। मंजुश्री की कलम से कई जगह कविता बह निकली है, "शाम के समय ढलते सूरज के नारंगी गोले की छटा के साथ नीले-भूरे बादलों से घिरा आसमान एक सुंदर पेंटिंग जैसा दिखाई दे रहा था। नारंगी गोले को धीरे-धीरे समुद्र की अथाह जलराशि में समाते देखना अपने-आप में एक अलग अनुभव होता है..... आसमान की ख़ूबसूरत छटा में शाम को अपने बसेरों में लौटते पक्षियों की कतारें ख़ूबसूरती में चार चाँद लगा रही थीं।"

इस ख़ूबसूरती में से भी उपन्यासकार मंजुश्री आदमी की ज़िंदगी की उलझनें तलाश लेती हैं, "पक्षी कितने आज़ाद हैं, आदमी ने कितनी उलझनें पाल रखी हैं, समाज के ढेरों प्रतिबंध और कायदे कानून जो आदमी को जकड़े रहते हैं, उसके हर कदम पर रोक है।" नौकरियों में आरक्षण की वजह से होने वाली नाइंसाफी की बात भी उपन्यास में उठाई गई है। पर, इसका दूसरा पक्ष भी सामने रखा गया है। आरक्षण से नौकरी पाए लोगों के लिए ऊँची जाति के लोगों के मन में नफरत भरी रहती है और ऐसे लोगों को समाज कभी वह स्थान नहीं दे पाता जिसके लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई है। समानता लाने के लिए कानून का दबाव ज़रूर है, लेकिन समाज की मानसिकता में बदलाव नहीं आया है।

कोविड की वजह से कंपनियों आदि का बंद होना, लोगों का रोज़गार छिनना और येन-केन-प्रकारेण अपने घर वापसी के लिए जद्दोजहद की जीवंत तस्वीर दिल दहला देने के लिए काफी है। गरीबों के भाग्य में दर-दर की ठोकरें खाना ही लिखा है। उपन्यास का नायक यह सोचने पर मजबूर हो जाता है कि "अगर होटल में बर्तन माँज कर केवल खाना और सोना ही ज़िंदगी है तो कानपुर क्या बुरा है। यहाँ क्या कर रहा हूँ? वापस लौट जाना चाहिए।"

पर, वीरू चुनौती का सामना करने का निर्णय लेता है। वह अपनी मेहनत के बल पर वह ई-कॉमर्स वेयरहाउस में काम करने के साथ-साथ बीए करता है, कंप्यूटर का कोर्स भी पूरा करता है, जिससे उसके आत्मविश्वास में वृद्धि होती है। ग्रेजुएशन के कुछ दिनों के बाद उसे बीओपी में अच्छी नौकरी मिल गई और ज़िंदगी पटरी पर आ गई। यहीं उसकी मुलाकात सहकर्मी बरखा से हुई। उसी की तरह समाज के निचले पायदान पर खड़ी बरखा में उसकी तरह हीन-भावना नज़र नहीं आती, उसके बिंदास स्वभाव के कारण लोग उसकी तरफ बेतहाशा खिंचे चले आते हैं।

बरखा के ऊँचे ख्वाब उसे अपने जैसे नज़र आते और वह सोचता कि दोनों मिलकर उन ख्वाबों को ज़रूर पूरा कर पाएँगे। बरखा की बातों से लगता कि वह भी उसके बारे में वही सोच रखती है। लेकिन, जयंत शर्मा नाम के अमीर सहकर्मी में अपने सपनों को पूरा करने की क्षमता देख वह उसकी तरफ खिंच जाती है, "वीरेंद्र मैं हमेशा से एक मौका ढूंढ़ रही थी अपने सपनों को पूरा करने का.....प्रेक्टिकल बनो, दिल से नहीं दिमाग़ से सोचो। कुछ बड़ा पाने के लिए छोटी-छोटी चीजें छोड़नी पड़ती हैं।" वह चौंक कर रह गया, जयंत शर्मा के सामने वह छोटी चीज़ ही तो है।

बरखा बोले जा रही थी और वह सुन रहा था। बरखा का यह वाक्य उसे मर्माहत कर गया, "बाकी सब पहनना-ओढ़ना, चाल-ढाल, उठना-बैठना, बोलना यहाँ तक पर्सेनालिटी सब बदल सकता है, नहीं बदलती तो वह है पैदाइश वीरू।"

आखिरी पायदान पर खड़े आदमी की त्रासदी यही है कि वह पूरी ताकत लगाने के बाद भी अकसर उठ नहीं पाता। सच तो यह है कि उसके पास ताकत ही कितनी है। उच्च समाज ही नहीं, उसके अपने समाज के वे चंद लोग भी उन्हें हेय दृष्टि से देखने लगते हैं जो ज़िंदगी में आगे बढ़ जाते हैं। आखिरी पायदान पर खड़ा आदमी अपनी मेहनत से या फिर आरक्षण के बल पर ख़ुद को उस दलदल से बाहर निकाल लाने की तमाम कोशिशों से सबकुछ बदल ले, पर अपनी पैदाइश नहीं बदल सकता।

मंजुश्री ने अपने इस उपन्यास में इस सच को बड़ी शिद्दत से उकेरा है। पाठकों को यह उपन्यास सिर्फ मनोरंजन के लिए नहीं, बल्कि उन लोगों की ज़िंदगी को जानने-समझने के लिए भी पढ़ना चाहिए जिन्हें यह समाज अपना अंग मानने से हिचकिचाता है। समाज के गाल पर लगे इस धब्बे को मिटाने के लिए काश कोई कंपनी ऐसी क्रीम बनाती जिसे लगाते ही चेहरा सफेद गुलाब सा खिल जाता।

000

पुस्तक समीक्षा

(ललित निबंध संग्रह)

समर्पयामि

समीक्षक : दीपक गिरकर

लेखक : डॉ. गरिमा संजय दुबे

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल - 9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016
मोबाइल- 9425067036
ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com

"समर्पयामि" डॉ.गरिमा संजय दुबे का पहला ललित निबंध संग्रह है। इसके पूर्व लेखिका का एक कहानी संग्रह "दो ध्रुवों के बीच की आस" प्रकाशित हो चुका है। डॉ.गरिमा संजय दुबे कई पुरस्कारों से सम्मानित हो चुकी हैं। इस पुस्तक "समर्पयामि" में डॉ.गरिमा संजय दुबे के लालित्य, विज्ञान, अध्यात्म और आस्था के 25 ललित निबंध संकलित हैं। लेखिका ने इस संग्रह के निबंधों में भारतीय संस्कृति और भारतीय चिंतन के विभिन्न पक्षों की पहचान और व्याख्या की है। इन निबंधों में अपनी माटी की महक है और उससे जुड़े रहने की उत्कंठा और आग्रह। अपनी ज़मीन से जुड़ाव उन्हें बहुत आत्मीय निबंधकार बनाती है। गरिमा दुबे आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबंधों से काफ़ी प्रभावित रही हैं। भारतीय जीवन दृष्टि, भारतीय संस्कृति और भारतीय ज्ञान आज विश्व का सबसे लोकप्रिय विमर्श है। इस पुस्तक की रचनाओं में गरिमा संजय दुबे ने हमारे देश की संस्कृति, धर्म, परम्परा और दर्शन के माध्यम से सामाजिक और मानवीय चेतना को जागृत करने का प्रयास किया हैं और वे अपने प्रयास में सफल हुई है। इस पुस्तक की भूमिका प्रसिद्ध साहित्यकार नर्मदा प्रसाद उपाधाय ने लिखी है। उन्होंने लिखा हैं "समग्रता में ये निबंध विविधता से भरपूर हैं जो इस प्रकृति के निबंधों की विशेषता है। जैसे हर एक फूल का रंग, रूप, गंध और आकार अलग-अलग होता है तथा एकाकिता में उसकी पहचान भी एक अलग संज्ञा होती है लेकिन जब ऐसे फूल एक साथ उपवन में खिलता हैं तो उनकी संज्ञा पाटल, जूही, मोगरा, चम्पा या मौलश्री नहीं होती, उपवन हो जाती है। उसी तरह इस कृति में ये निबंध पुष्प खिलकर शब्द उपवन हो गए है। इन पुष्पों में भिन्न भिन्न भावों के प्रति समर्पण की महक उपस्थित है। इसलिए इस पुस्तक का शीर्षक "समर्पयामि" है।"

जीवन की यात्रा के हर पड़ाव में बहुत विरोधाभास हैं। इन विरोधाभासों को और सैलाना के कैक्टस गार्डन को लेकर लेखिका ने एक सुन्दर रम्य रचना रची है "क्योंकि काँटों को मुरझाने का ख़ौफ़ नहीं होता"। "श्वेत शुभ्र शरद : तू वसंत से क्या कम है" रचना में लेखिका लिखती है "आयुर्वेद में चन्द्रमा की ज्योत्सना तले विशेष औषधियों से युक्त खीरनुमा औषधि के निर्माण का वर्णन आता है, जिसे राजयक्ष्मा के रोगी को देने पर या मन के रोगी को देने पर उसके रोग ठीक होते हैं। यह शरद का प्रताप है कि वह चंद्र को वैद्य बना देता है।" गरिमा आगे लिखती हैं "क्योंकि हमारे लिए तो शरद पोषण और तुष्टि की ऋतु है। प्रकृति की हर नकारात्मकता इस समय सकारात्मकता में बदलने लगती है। जीवन की शुभकामना देने में जीवेत शरद: शतम कहा जाता है, यह गौरव किसी और ऋतु को प्राप्त नहीं है।" हमारी भावनाओं को जागृत करता एक चिंतनपरक निबंध है। "आम का ख़ास समाजवाद" निबंध के द्वारा लेखिका ने आम को सामान्य जन से जोड़ा है। "मादकता पर्सोनिफाईड" रचना आम्रपाली फिल्म का सन्दर्भ देकर नायिका के सौंदर्य और मादकता को लेकर उनकी व्यक्तिगत छवि का चित्रण है। "सबसे बड़े सेलिब्रिटी चाँद से प्रेम की कहानी" रचना में लेखिका की कल्पना देखते ही बनती है। "सुवर्णलता की इच्छा" ललित निबंध में एक कथा है जो स्त्री विमर्श पर आधारित है। "अभ्यंग से अभंग तक" निबंधकार लिखती है अभ्यंग का अर्थ है देह की मालिश करना और अभंग का अर्थ है मन के सितार को सहलाना। अभ्यंग से देह की और अभंग से आत्मा की प्राप्ति होती है। इसलिए लेखिका अंत में लिखती है अत: देह, मन और आत्मा के सितार से सुन्दर जीवन संगीत का सृजन

संभव हो, इस हेतु अभ्यंग और अभंग का अनुष्ठान अति आवश्यक है। "मिल जा कहीं समय से परे" विज्ञान के आधार पर समय को लेकर लिखा गया एक वैचारिक निबंध है। "चेतना के आवागमन पर घटित वैराग्य" निबंध माँ पर केंद्रित है। यह निबंध गरिमा के आध्यात्मिक अनुभव के स्तर से परिचित कराता है। वे इस निबंध में लिखती हैं कि एक स्त्री ब्रह्मांड की ऊर्जा में जो चेतना है उससे वह दो बार जुड़ती है एक बार तब जब वह स्वयं एक भ्रूण के रूप में होती है और दूसरी बार तब जब वह माँ बनने की प्रक्रिया में होती है।

"शिव प्रथम नारीवादी हैं, दाम्पत्य के देवता हैं" रचना में गरिमा ने शिव सभी स्त्रियों को पति के रूप में क्यों स्वीकार्य है इसे विस्तृत रूप से शिव के अर्धनारीश्वर स्वरूप को लेकर लिखा है। शिव और पार्वती के आदर्श दाम्पत्य जीवन को लेकर लिखा गया यह निबंध कथा और दृष्टांतों के माध्यम से जीवन दर्शन की गहरी जड़ों से परिचय करवाता है। "राम सीता के बाद और शेष क्या?" निबंध टीवी के रामायण सीरियल के पात्र अरुण गोविल और दीपिका चिखलिया को लेकर लिखा गया है। लेखिका लिखती है इस रामायण सीरियल ने श्री राम को घर घर स्थापित कर दिया है। "विसर्जन मांगलिक हो" निबंध भारतीय दर्शन और भारतीय परम्पराओं पर आधारित है। इस रचना में लेखिका ने गणेश उत्सव पर अपनी कलम चलाई है। लेखिका लिखती है विसर्जन सदैव मंगलकारी है, इसमें समाप्ति की उदासी नहीं है, इसमें विदाई का दु:ख नहीं है, इसमें घर खाली होने का भाव नहीं है। विसर्जन में मांगल्य है, विसर्जन में उत्सव है। "कृष्णम वन्दे जगद्गुरुम" ललित निबंध में लेखिका कहती है कि कृष्ण का सम्पूर्ण जीवन ही एक पाठशाला है। "विरह तप जब फैले, तब राम आते हैं" निबंध रामचरित मानस पर आधारित है। लेखिका रामचरित मानस को विरह ग्रन्थ कहती है क्योंकि इसमें राम के विरह पक्ष को बहुत सुन्दर रूप में चित्रित किया है। "बसंत राज प्रधान ऋतु है" रचना में बसंत ऋतु का सौंदर्य वर्णन पाठकों को एक अलौकिक अनुभूति देता है। "आइए दूर करते हैं ख़ुशी का कुपोषण", "इन दिनों सब मुझसे बात करते हैं", "अथ: श्री ऐनक कथा", "आइए बचपन को बचपन से मिलवाते हैं", "बुद्धि का अतिरेक, खुशियों का शत्रु", "सावन रूठे नहीं ठौर", "पृथ्वी का भविष्य और गोरैया", "लाल छाता और छाता चोर", "अनलॉक ज़िंदगी", "चाय की सर्वव्यापी सत्ता" इत्यादि भी सार्थक, उत्कृष्ट और अमूल्य ललित निबंध हैं।

यह पुस्तक ललित निबंधों की एक सार्थक कृति है जो पाठकों के भीतर नई चेतना, नई अनुभूति की चमक पैदा करती है। इन ललित निबंधों में स्वच्छंदता, सरलता, आडंबरहीनता, घनिष्ठता और आत्मीयता के साथ लेखिका के व्यक्तिगत दृष्टिकोण का समावेश है। इन निबंधों में लेखिका ने अपनी भावनाओं को प्राथमिकता दी हैं। लेखिका विषय के सहारे अपने अन्तर के भावों को बड़ी सहजता से व्यक्त करती है। गरिमा के निबंधों में कल्पना की उड़ान और संवेदनात्मक अनुभूति की तरलता तो है ही, साथ ही विचार-विश्लेषण और चिंतन का प्रवाह भी है। लेखिका ने अनेक ग्रंथों का एवं साहित्यिक कृतियों का अध्ययन किया है। गरिमा के लेखन में वैचारिक स्पष्टता, तार्किकता, सरलता और सहजता के गुण है। इन निबंधों में लेखिका ने कथा और दृष्टांतों के माध्यम से जीवन दर्शन की गहरी जड़ों से परिचय करवाया है जिससे पुस्तक जीवंत और रोचक बन पड़ी है। इस संग्रह में ज़मीन और अपनी जड़ों से जुड़े हुए तर्कसम्मत, सार्थक प्रामाणिक निबंध हैं। इन निबंधों को पढ़ने और आत्मसात करने से निश्चित ही पाठकों की चेतना जागृत होगी। भाषा उनके मंतव्य को पूरी तरह सम्प्रेषित करने में सक्षम है। निबंधों की भाषा में लचीलापन अधिक है। शैली भावपूर्ण और भाषा सरस है। लेखिका को उनके आध्यात्मिक गुरु स्वामी अवधेशानन्द गिरी जी महाराज से भाषा को सुंदरता के साथ बरतने का संस्कार मिला। गरिमा के पितामह और उनके दादाजी ने उनकी हिन्दी को परिष्कृत किया। इन निबंधों में शास्त्र ज्ञान है, दर्शन है, चिंतन है, साहित्य है।

गरिमा दुबे की रम्य रचनाएँ हमारे भारत देश की सांस्कारिक अभिव्यक्ति हैं जहाँ राम और कृष्ण तथा रामायण और गीता-महाभारत को कभी भी नहीं बिसारा नहीं जाता। गरिमा के ये निबंध व्यक्तिव्यंजक निबंध है। जो कुछ भी लेखक के अनुभव के दायरे में आता है, उसे वह लोगों तक पहुँच पाने वाली भाषा की कड़ाही में झोंक देता है। तब जो पककर निकलता है, वह व्यक्ति-व्यंजक निबन्ध बनता है। व्यक्तिव्यंजक निबंध लेखक की कल्पना को, उनके भाव को उन्मुक्तता प्रदान करते हैं और लेखक तथ्यों तथा दर्शन के साथ रम्य रचना रचते हैं। पुस्तक में प्रेरक और प्रेम, सद्भाव, विश्वास, करुणा इत्यादि मानवीय तत्वों को बढ़ावा देने वाले प्रभावशाली स्थाई महत्त्व के ललित निबंध हैं। ये निबंध नई पीढ़ी में लालित्य, विज्ञान, अध्यात्म, आस्था, सौंदर्यबोध, इतिहास चेतना और सांस्कृतिक आत्मगौरव का भाव जगाते हैं। गरिमा के इन निबंधों में भाव पक्ष प्रधान है। ये निबंध अपने लालित्य के कारण विशिष्ट रसात्मक अनुभूति प्रदान करते हैं। गरिमा के इन ललित निबन्धों में लालित्य, लेखिका की आत्मीयता, कथा की रोचकता और कलात्मक अभिव्यक्ति के दर्शन होते हैं। सभी निबंध एक नवीनता व मौलिकता लिए हुए हैं।

इस कृति द्वारा डॉ. गरिमा संजय दुबे का बहुआयामी चिन्तन मुखर हुआ है। लेखिका भारतीय जीवन दर्शन, भारतीय संस्कृति और भारतीय परम्परा व ज्ञान पर गहरी समझ रखती है और साथ ही इनसे से जुड़े मुद्दों की गहन पड़ताल करती है। पुस्तक चिन्तन मनन करने योग्य, सकारात्मकता के बीज बोती एक अनोखी कृति है। यह पुस्तक अपने परिवेश से पाठकों को अंत तक बाँधे रखने में सक्षम है। बेशक़ "समर्पयामि" (ललित निबंध संग्रह) एक पठनीय और संग्रहणीय कृति है। डॉ. गरिमा संजय दुबे के ललित निबंध संग्रह समर्पयामि का स्वागत है, इस शुभकामना के साथ कि उनकी यह यात्रा जारी रहेगी।

000

पुस्तक समीक्षा

(कविता संग्रह)

क़रीब था क्षितिज

समीक्षक : डॉ. नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

लेखक : शैलेन्द्र शरण

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल - 9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

डॉ. नर्मदा प्रसाद उपाध्याय
85, इंदिरा गांधी नगर,
पुराने आर टी ओ के पास
केसरबाग रोड़,
इंदौर 452005 मप्र
मोबाइल - 9425092893

पास आना क्या है? अपने एकांत को तज देने का प्रयास। चाहे हम अपने से इतर किसी वजूद के पास आएँ या स्वयं के पास आएँ। यह आना ही एकांत को खोने की कोशिश है और इस यत्न के चलते, अपने एकांत को बिसराते हम अपनी संवेदना के उस रूप से रूबरू होते हैं, जो मुखरित हो उठती है। उसका एकाकी मौन टूटता है और फिर वह शब्दों में झरने लगती है। शैलेंद्र के इस संग्रह की कविताएँ उनकी संवेदना के इसी एकाकी मौन के टूटने और उसके बर्फानी स्वरूप के पिघलकर प्रवाहित हो उठने की तरल अभिव्यक्ति हैं और इसकी बानगी उनकी इसी आरंभिक कविता में मिल जाती है जो पानी के विद्यमान होने के तमाम स्थानों की सैर कराकर अंत में कहती है, पानी ही था / जो मेरे गले से उतरकर / तेजाब हो गया / पानी ही था जो / दुनिया बहा ले गया / पानी, वही पानी / जो अब आँखों में नहीं बचा

इन कविताओं में सर्वत्र संवेदना के इसी प्रवाह के दर्शन होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे शब्दों के झरने का गुंजन हम सुन रहे हों, जैसे, धरती आकाश एक हैं / क्षितिज पर / निहायत अटूट भ्रम है यह / यह भ्रम बना रहना चाहिए / तमाम प्रेम करने वालों के बीच।

इन कविताओं में कवि का वह पौरुष भी झलकता है, जिसके बूते पर वह कहता है, दुनिया से डरना मत / ये भी हमें उतना ही जानती है / जितना हम इसे जानते हैं।

हम सभी जानते हैं कि अभिव्यक्ति का अपना उद्दाम वेग होता है और यह वेग विचार की धारा को अनेक दिशाओं में ले जाता है। इस संग्रह की कविताओं में यही वेग विद्यमान है। उजाले को लेकर उनकी इन पंक्तियों में अभिव्यक्ति का यह वेग दिखाई देता है, रात भर उजाले / मुट्ठियों में रखे हमने / सुबह / मुट्ठियाँ खोल / चारों तरफ बिखेर दिए।

इस प्रकार इन कविताओं से गुजुरो तो कभी लगता है कोलाज़ बन रहे हैं, कभी लगता है, बिंबों को किसी वीथिका में सजा दिए गया हों और अंतत: लगता है कि प्रेम के विविधवर्णी रूप शब्दों-दीपों में झिलमिलाते एक अनूठे सृजन की दीवाली रच रहे हों। वस्तुत: ये कविताएँ प्रेम पर केंद्रित ऐसी कविताएँ हैं जिनमें प्रेम तो अपने अलग-अलग रूपों में व्यक्त हुआ है लेकिन इसी

असमर्थता के साथ कि अभी बहुत कुछ व्यक्त होने से रह गया है। सच्ची प्रेम अभिव्यक्ति की यही सबसे बड़ी विशेषता है। यही कसौटी है जिस पर ये कविताएँ खरी उतरती हैं। यहाँ प्रेम को लेकर उसके विविध वर्ण देखिए, एकांत है लेकिन प्रेम में उष्णता नहीं, एकांत में साथ होंगे / और मन कहेगा / यहाँ कुछ लोग होते / तो अच्छा होता।

एक दूसरा रंग है, रोमांचित हूँ / बारिश रुके / तो तय हो / वजह तुम हो / या बारिश !

एक और दूसरा रंग है, तुम रोज़ कहती हो / नींद न आए तो जगा लेना / और लगभग रोज़ ही / तुम्हें सोए हुए देखता रहता हूँ।

लेकिन साथ ही यह भी सोच है, थक गया हूँ / शरीर से मन से / बोझिल है रात / सोना चाहता हूँ / तुम्हें खोए बिना।

प्रेम का एक रंग यह भी है जिसकी टीस कुछ इस तरह बयाँ होती है, जाते हुए को पता नहीं होता / छोड़ने वाले अपने ही होते हैं / रोकने वाला कोई नहीं होता।

प्रेम की एक टीस यह भी है, अपने कठिन समय में / हमें याद रहा / अपना अविभाजित प्रेम / अमूर्त अविश्वास /जब-जब मूर्त हुआ / हथेलियाँ भीगी हुई मिलीं।

प्रेम को लेकर उनकी दो महत्त्वपूर्ण लंबी कविताएँ हैं, प्रेम का अर्थशास्त्र और प्रेम का सांख्यिकीय सिद्धांत। इन दोनों कविताओं में प्रेम के उन कोनों को मूर्त किया गया है जो प्रेम की कालीन के हिस्से तो हैं लेकिन जो अनुभूति की आँख से प्राय: परे रहते हैं।

स्मृति प्रेम की आत्मा है। प्रेम की देह में स्मृति के प्राण बसते हैं। स्मृति के बिना प्रेम की अस्मिता है ही नहीं। स्मृति प्रेम की ऐसी प्रेमिका है जिसके साथ के बिना प्रेम की पहिचान नहीं बनती। इस लिहाज़ से इस संग्रह की कविताओं में स्मृतियों के सिंदूरी बिम्ब हैं, साथ ही उन स्मृतियों की सघन परछाइयाँ जो कद से ज़्यादा बड़ी होती हैं और आगे चलती हैं। प्रेम में स्मृतियाँ फूल भी होती हैं और शूल भी। वे जब शूल होती हैं तो कवि कहता है, प्रेम के इस सवर्ण समाज में / वैसे तो / उस अवांछित की तरह हूँ / जो सदैव / गलतियाँ ही करता रहता है / जिसे प्रेम करना कभी नहीं आया / क्या करूँ मुझे /प्रेम का हिसाब बिलकुल नहीं आता।

जैसा कि मैंने पहले कहा, इन कविताओं में विविध वर्ण हैं जिनमें उदासी है, खीज और झुंझलाहट है और कहीं कहीं पश्चाताप भी है और इस सबकी अभिव्यक्ति इतनी सशक्त है कि इन कविताओं को समझ पाने में कहीं दुविधा नहीं होती। ओ विदुषी!, रंगमंच, उपेक्षित, उस संधिकाल में, सपनों की पांडुलिपि, हे देव!, रकीब, करीब, अजीब, सहयात्री, कोई रात जैसी कविताओं में इन वर्णों को देखा जा सकता है। फिर 'मुझसे सधते नहीं ये रिश्ते' और 'ब्रेक अप' जैसी कविताओं में आज के समय का सच अभिव्यक्त होता है।

शरण की इन कविताओं में एक ऐसी बैचैनी है जो हर उस पाठक को व्याकुल करेगी जिसके पास स्वयं आकुलता है, अकुलाहट और ऐसी व्याकुलता है जो रात को हमेशा दिन में तब्दील करती है और भर आँख सोने नहीं देती। ये कविताएँ संवेदन की आँख के अपलक जागरण को आमंत्रित करती हैं। परछाई, उजाले, बरसात की वह बूँद, अदीब, बेसुधी, जैसी अनेक कविताओं का यही स्वभाव है।

कुछ लंबी कविताएँ ऐसी हैं जो बहुत कुछ सोचने पर विवश करती हैं, ये हैं कोई रात, कोई दिन, अपनी क्षमताओं का ह्रास, स्कूल के दिन और क्या कहूँ इस सुख को।

इन कविताओं को लेकर बहुत विस्तार से बात इसलिए की जा सकती है क्योंकि इनमें एकरसता नहीं है। प्रेम के केंद्रीय विषय होते हुए भी इनमें संवेदना का विपुल विस्तार है इतना कि ये कविताएँ क्षितिज को स्पर्श करती हैं।

इन कविताओं से यह आश्वस्ति मिलती है कि कवि की आँखों में प्रेम के जाने कितने बिम्ब समाए हैं और वे शब्दों में अवतरित हो रहे हैं। बिंबों की यह निर्झरणी अपने प्रवाह की निरंतरता को कभी खंडित न होने दे। मेरी इसी कामना के साथ मैं इन प्रेम कविताओं का अभिनंदन करता हूँ।

000

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : शिवना साहित्यिकी

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : ज़ुबैर शेख़।
पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।
पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।
पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 21 मार्च 2023
हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित
(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

पुस्तक समीक्षा

(आलोचना)

हिन्दी व्यंग्य की प्रवृत्तियाँ और परिवेश

समीक्षक : राहुल देव

लेखक : कैलाश मण्डलेकर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल - 9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

राहुल देव
9/48 साहित्य सदन, कोतवाली मार्ग
महमूदाबाद (अवध), सीतापुर
उप्र 261203
मोबाइल- 9454112975
ईमेल- rahuldev.bly@gmail.com

प्रतिष्ठित व्यंग्य लेखक कैलाश मण्डलेकर की सद्य प्रकाशित व्यंग्य आलोचना कृति 'हिन्दी व्यंग्य की प्रवृत्तियाँ और परिवेश' पढ़ते हुए मुझे हिन्दी आलोचना पर कृष्ण बलदेव वैद से बात करते हुए नेमिचंद्र जैन जी की महत्त्वपूर्ण बात याद आती रही, वे कहते हैं, ''आलोचना के नाम पर जो लिखा गया है, वह ज़्यादातर सूचना देने का काम है, रचना की अच्छाई-बुराई बताने वाला काम है। पर क्या आलोचना ऐसे दूसरे दर्जे का काम ही है। कोई भी श्रेष्ठ रचना ज़िंदगी के अनुभव और उसके ऊपर चिंतन-मनन से निकलती है। उसी तरह, मेरी राय में, श्रेष्ठ और सार्थक आलोचना वह है जो पूरी ज़िंदगी के साथ-साथ एक रचना के भी अनुभव से और उसके ऊपर सोच-विचार से बनती है। अगर इन दोनों चीज़ों को जोड़ पा रहे हैं, यानी आप एक तरह से यथार्थ की पुनर्रचना कर रहे हैं आलोचना में, तब तो आलोचना कुछ देती है। तब वह रचना की, रचनाकार की भी, शायद मदद करती है, और नए विचार, नए सूत्र आगे लाती है। पर अगर वह केवल जो कुछ पहले से मौजूद है, उसका किसी न किसी रूप में विवरण देती है तो वह नया कुछ नहीं लाती। आमतौर पर आलोचना या तो केवल विवरण है, या किसी न किसी पहले से तय पैमाने पर उसको अच्छा-बुरा कहने की कोशिश है। वास्तविक और सार्थक आलोचना वही है जो यह संप्रेषित कर सके कि रचना एक अनुभव है पूरा का पूरा, और उस अनुभव से गुज़रकर आप क्या हो गए हैं, अब पूरी दुनिया कैसी दिख रही है, उस रचना से गुज़रने के बाद। यह दृष्टि हमारी आलोचना में शायद नहीं है।'' इस नज़र से देखा जाय तो कैलाश जी की यह पुस्तक परंपरागत आलोचना पुस्तकों से बिल्कुल अलग है। यह किताब न सिर्फ व्यंग्य आलोचना के खाली स्पेस को भरने का काम करती है बल्कि रचनात्मक आलोचना के रास्ते पाठकों/शोधकर्ताओं को सही राह दिखलाने का काम भी करती है। आलोचना में विभिन्न विधाओं की आवाजाही करते हुए कैलाश जी की मोहक भाषा-शैली आलोचना जैसी नीरस माने जाने वाली विधा को भी सरस और पठनीय बना देती है।

आपकी यह पुस्तक मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ में हिन्दी व्यंग्य से शुरू होकर परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल, रवींद्रनाथ त्यागी, अजातशत्रु, ज्ञान चतुर्वेदी की व्यंग्य चेतना को समाहित करते हुए डॉ सुरेश मिश्र, प्रभु जोशी, विजय बहादुर सिंह, प्रेम जनमेजय, सूर्यबाला, जवाहर चौधरी, सुशील सिद्धार्थ, विनोद साव, यशवंत व्यास, शांतिलाल जैन, पीयूष पांडेय, विजी श्रीवास्तव, कमलेश पांडेय, सुधीर कुमार चौधरी, मुकेश राठौर आदि व्यंग्यधर्मियों के व्यक्तित्व और कृतित्व को मूल्यांकित किये जाने का सफल प्रयास दिखाई देता है। लेखक रचना, आलोचना, भाषा और यादों के गलियारों के रास्ते हिन्दी व्यंग्य के लगभग समूचे परिदृश्य को हमारे समक्ष प्रस्तुत कर देता है। लेखक ने नए-पुराने लगभग सभी प्रमुख लेखकों के व्यंग्यबोध के विभिन्न आयामों को अपने तई देखने-समझने का ईमानदार प्रयास किया है। इसकी रौशनी में पाठक और व्यंग्यकार दोनों ही व्यंग्य के व्यापक परिवेश के निहितार्थ, व्यंग्य के ताज़ातरीन मुहावरे की तलाश कर सकते हैं। संस्मरणात्मक समालोचनात्मक तेवर इस पुस्तक की यूएसपी है। विशेष रूप से अजातशत्रु जैसे लगभग बिसरा दिए गए अप्रतिम प्रतिभा सम्पन्न लेखक से हुई अनौपचारिक बातचीत में साहित्य और दर्शन के महीन अन्तर्सम्बन्धों को खोलते हुए कई महत्त्वपूर्ण सूत्र हमारे हाथ लगते हैं। यह पूरी वार्ता बड़ी सार्थक है। अजातशत्रु के लेखन में दार्शनिक गहराई और फंतासी का विरल समावेश है। प्रश्नाकुलता, अमूर्तता और मानवेतर स्थितियों की तह में जाकर भाषा से मुक्त हो जाने की छटपटाहट उनके यहाँ दिखाई देती है। उनका व्यंग्य चिंतन परसाई के निकट है फिर भी दार्शनिक झुकाव के कारण उनकी व्यंग्य चेतना सबसे अलग है।

व्यंग्य केवल हँसी-मज़ाक का लेखन नही है, इसमें बड़ी गहरी बातें होती हैं। विचार से संयुक्त होते ही वह बहुत बड़ा भाषाई हथियार बन जाया करता है। केवल मनोरंजन किसी भी व्यंग्य लेखक का उद्देश्य नही होना चाहिए। हर लेखन का एक सामाजिक मूल्य होना चाहिए।

व्यंग्य प्रतिबद्धता का साहित्य है। रवींद्रनाथ त्यागी सही ही कहते हैं कि स्वतंत्रता के पहले भारतीय जनजीवन को देखना है तो प्रेमचंद को पढ़ो और आजादी के बाद के भारत को जानना है तो परसाई को पढ़िए। तो वहीं ज्ञान जी के विषय में कैलाश जी लिखते हैं, 'ज्ञान चतुर्वेदी डिलाइटफुल प्रोज लिखते हैं। उन्होंने हिन्दी में व्यंग्य उपन्यास को लेकर जो एक तरह का वैक्यूम था उसे दूर करने का प्रयास किया।' उनका मानना है कि, 'साहित्य की उत्सवधर्मिता लेखक को मार देती है। जो लोग मज़े के ख़ातिर मखौल की शब्दावली आविष्कृत कर रहे हैं उन्होंने हिन्दी व्यंग्य को भदेस की हद तक ला छोड़ा है।' बाज़ारवाद पर उनकी सटीक टिप्पणी है कि, 'लकदक वस्तुओं से भरे बाज़ार में हम ख़रीदार होने की मिथ्या दर्प से भरे हैं मगर सच्चाई यह है कि सब कुछ ख़रीद कर भी हम खाली हाथ ही हैं।'

कैलाश मंडलेकर के पास व्यंग्य आलोचना की ईमानदार व आत्मीय भाषा है। सामान्य पाठक के लिए वह उबाऊ या बोझिल नहीं बल्कि पठनीय व दृष्टिपरक है। रचना और रचनाकार से उनका कनेक्ट अद्‌भुत है। व्यंग्य विधा को लेकर वे केवल भाषा या विन्यास के स्तर पर ही नहीं वरन विचार और चिंतन के स्तर पर भी बेहद संजीदा दिखाई देते हैं। रचना के सामाजिक आशय को वे बख़ूबी पहचानते हैं। हालाँकि लेखक के समीक्षात्मक दृष्टिपथ से व्यंग्य के कुछेक रेखांकित किये जाने योग्य हमराही छूट से गए हैं लेकिन हर किताब की एक सीमा होती है। एक आलोचक के लिए आलोचनात्मक चयन सबसे बड़ी चुनौती होता है। इस ओर से सावधान रहने की महती ज़रूरत है। मेरे लिए यह पुस्तक वर्तमान व्यंग्य परिदृश्य की समस्याओं और विकास को समझने में बहुत मददगार साबित हुई है।

व्यंग्य आलोचना के सुनसान परिसर में कैलाश जी की यह किताब एक ज़रूरी हस्तक्षेप है। एक अनिवार्य आलोचना पुस्तक की तरह इस कृति का स्वागत और अभिनंदन किया जाना चाहिए।

000

पुस्तक समीक्षा

(नाटक)

आत्महत्या की तैयारी

समीक्षक : अशोक प्रियदर्शी
लेखक : डॉ. कुमार संजय
प्रकाशक : नोशन प्रेस, भारत

कुमार संजय के जीन्स में नाटक के संस्कार हैं। देश ख्यात नाट्य विशेषज्ञ डॉ. सिद्धनाथ कुमार के ये कनिष्ठ पुत्र हैं। पीएच डी अंग्रेज़ी में की है, लिखते हिन्दी में हैं। संजय के नाटक के विषय आपको अपने आसपास दिख जाएँगे। इनके संवाद अत्यंत छोटे और चुस्त होते हैं, मैं इन्हें 'कुरमुरे' कहता हूँ। हँसते-खेलते बड़ी बात कह जाते हैं और नाटक के अंत में आप स्तब्ध रह जाते हैं। इन्हीं कुमार संजय का नवीनतम पूर्णकालिक नाटक है 'आत्महत्या की तैयारी'। कहानी मैं नहीं बताऊँगा ताकि आपका कुतूहल बना रहे। थोड़ा संकेत कर देता हूँ। आजकल एक या दो बच्चों से बड़ा परिवार नहीं होता। एकल परिवार का ज़माना है। बुढ़ापे में अक्सर दंपति अकेले रह जाते हैं क्योंकि संतान कहीं विदेश में चैन की ज़िंदगी जी रहा होता है, माता-पिता को याद करने की उसे फुर्सत नहीं होती। लेकिन बच्चे का ऐसा मानस बनाया भी तो इन्हीं माता-पिता ने होता है। पढ़ो-पढ़ो, आईआईटी से इंजीनियर बनकर विदेश में नौकरी करने की सोचो। खेलकूद छोड़ो। अपने अन्य शौक भूल जाओ। टीवी नहीं। गाना बजाना नहीं। आउटडोर गेम्स नहीं। तो बच्चे को आपने जैसा बनाया वैसा वह बना और अब जब वह अपनी दुनिया में मगन है, तो आप बिसूर रहे हैं। आपको हर फ़ोन कॉल से बेटे के फ़ोन का भ्रम होता है। आप ऐसी घुटन-भरी ज़िंदगी से ऊबकर आत्महत्या तक की सोचने लगते हैं। अंग्रेजी की कहावत याद आती है - ऑल वर्क एंड नो प्ले मेक्स जैक ए डल ब्वाय। अंतर इतना आया है कि ब्वाय डल नहीं सेल्फिश हो गया है, अपनी दुनिया में मगन।

जैसा मैंने निवेदन किया है के. संजय विनोदी अंदाज़ में बड़ी बात कह जाते हैं। श्री संजय के पास नई भाषा शैली है, कहने का अपना अंदाज़ है, चुहल भरे संवाद हैं। सो इनके नाटक पढ़ने में भी उतना ही मज़ा देते हैं। इनके नाटकों के पात्र भी सीमित होते हैं, इन पात्रों की विशेष साज - सज्जा या वेश-भूषा की आवश्यकता नहीं होती। प्रस्तुत नाटक में भी कायदे से कुल 4 पात्र हैं - माता-पिता, उनका इकलौता बेटा और एक नौकरानी। कुछ आवाजें हैं। तो मैं आपके और नाटक 'आत्महत्या की तैयारी' के बीच से ओट होता हूँ। आप इस नाटक को पढ़ें और बिना अतिरिक्त तामझाम के स्कूल-कॉलेज में मंचित करें। किसी नाट्य गृह में भी इसे मंचित करना चाहें, तो बिना अधिक अभ्यास और व्यय के यह संभव है। आप इस नाटक को पहले पढ़कर इसका आनंद तो लें।

000

अशोक प्रियदर्शी, एम आई जी, फ्लैट सं. 82, सहजानंद चौक, हरमू आवासीय कॉलोनी रांची - 834002, मोबाइल - 8789800843

पुस्तक समीक्षा

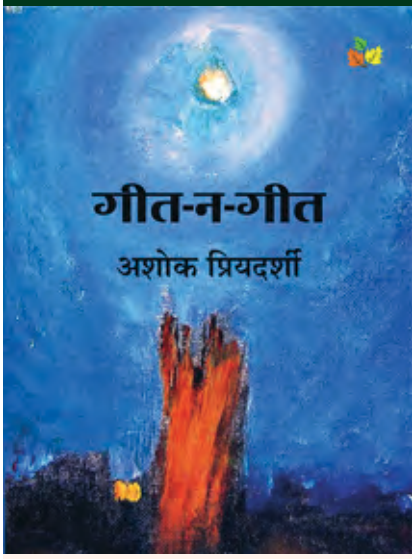

(गीत संग्रह)

गीत- न-गीत

समीक्षक : चारुमित्रा

लेखक : अशोक प्रियदर्शी

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल - 9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

चारुमित्रा
एम आई जी, फ्लैट सं. 82, सहजानंद चौक, हरमू आवासीय कॉलोनी
रांची - 834002,
मोबाइल - 9471243970

गीत- न-गीत श्री अशोक प्रियदर्शी जी की नई प्रकाशित पुस्तक है, यह पुस्तक एक गुलदान की तरह है जिसमें तरह-तरह के खुशबूदार फूल हैं कुछ गीत हैं, कुछ मुक्तक हैं, कुछ ग़ज़लें है। इनकी कुछ कविताएँ छंदबद्ध हैं तो कुछ मुक्तछंद में लिखी हुई हैं। अशोक प्रियदर्शी जी के इस कविता संग्रह गीत- न-गीत में कई स्मृतियों की झलक है। कहीं प्रकृति की व्याकुलता, कहीं विसंगतियों से भरे हमारे इस दौर को बेनकाब करने की कोशिश है, तो कहीं वियोग की उदासी भरी स्मृति। संग्रह में कुल 45 कविताएँ संकलित हैं और स्पष्ट रूप से ये कविताएँ हमारे मन में गहरे बैठी जड़ता को तोड़ने की कोशिश करती हैं और मन की गहराइयों में गहरी पैठ करती हैं

ऐसा लगता है कि जीवन के सतरंगी अनुभवों को इस कविता संग्रह में उड़ेल दिया गया है। संग्रह की पहली कविता आदिवासी लड़कियों पर है 'आदिवासी लड़की की हँसी' एनबीटी द्वारा कराए कवि सम्मेलन में 'हँसो, जंगल की बेटी हँसो' कविता को सुनकर पद्मश्री रामदयाल मुंडा भावुक हो गए थे। 'वनदेवता' शीर्षक कविता ग्लोबल वार्मिंग, पर्यावरण के इस संकट के दौर में अपने समाज और समुदाय के साथ ही अपने परिवेश के प्रति सचेत रहने और चिंतन करने के लिए विवश करती है। तीसरी कविता 'कारगिल 'भावुक कर देने वाली कविता है -आँखों में है शून्य, ताकती शून्य गगन को/अभी रो रही, अभी खो गई कहीं, मगन हो /पागल -सी वह कौन पड़ी चुप खड़ी वहाँ है /वही सिवाने पर जिसका लुट गया जहाँ है / सीने पर गोली ली थी, थी धन्य जवानी /सरहद पर लिख गए शौर्य की अमर कहानी! 'प्रेम' शीर्षक से कविता रांची रेडियो स्टेशन से गीत के रूप में स्वरबद्ध हो चुकी है, जिसे लोगों ने बहुत पसंद किया -तुम जो आए मेरी ज़िंदगी में तो यों/ जैसे दरिया को फिर से रवानी मिली /झोंके पुरवा हवा के रिझाने लगे/फिर बहारों के दिन याद आने लगे।

'होली में गाँव' नामक कविता कवि की कालजयी कविता है, जो रेडियो स्टेशन दिल्ली से भी प्रसारित हो चुकी है और जिसे हर जगह सराहा गया है। कविता की पंक्तियाँ हैं- इस होली में गाँव गया था /बहुत दिनों पर गाँव /कंचे खेले, कौड़ी खेली, फिर पीपल की छाँव /बहुत दिनों पर गाँव /चुरा-चुरा कर उपले संवत् बाबाजी पर साजे /जली होलिका, तो हम सबने खूब लुकाठे भाँजे /पढ़ीं गालियाँ हँस-हँसकर करके, इसके उसके नाँव /बहुत दिनों पर गाँव।

लेखक हर विधा में सिद्धहस्त हैं, तो जब आप उनकी व्यंग्य कविताएँ पढ़ेंगे तो उसमें व्यंग्य की चुभन आपको महसूस होगी। चुनाव के बाद दो कविताएँ 1- ना सलाम, न दुआ! चुनाव बीता, जीता / अब तो मंत्री भी हुआ ! 2. जी ना! मैंने स्वयं ही नहीं चाहा कि मंत्री बनूँ/ सोचा, साधारण विधायक रहूँगा/ तो अपने क्षेत्र की सेवा कर सकूँगा/ मगर मंत्रिमंडल के गठन में/ मुख्य मंत्री ने मचाई है अंधेर/यह कैबिनेट उलटकर रहेगा! अगली कविता मंत्री जिसे कहते हैं, क्या खूब धमाका है /बन जाओ तो चाँदी है, छँट जाओ तो फाका है। व्यंग्य पर चोट करती अन्य कविताएँ जैसे -शुभाकांक्षियों से निवेदन, क्षेत्रीय क्षत्रपों को देखकर, विप्रलंभ, समाजवादी सत्तू आदि धारदार हैं।

अंतिम कविता पत्नी से.. भावुक करने वाली कविता है जिसमें कवि ने अपने सारे मनोभाव को निचोड़ कर रख दिया है। इसे पढ़कर आँखें गीली हो जाती हैं- पचपन वर्षों का साथ /और जाते वक्त पचपन सेकंड का भी समय नहीं ? कवि ने अपने इस कविता संग्रह को अपनी पत्नी की स्मृति को ही समर्पित किया है- 'दिवंगता पत्नी शकुंतला देवी को याद करते हुए।'

कविता संग्रह की लगभग सभी कविताएँ पठनीय और उल्लेखनीय हैं। हर कविता हमें कुछ सिखाती है, कविता लिखने का सही ढंग बताती है। प्रत्येक कविता में ऐसा कोई कड़वा सच ज़रूर दर्ज हुआ है जो इस तथाकथित सभ्य और सुसंस्कृत समाज को आईना दिखाता है। काव्यगत वैविध्य और शिल्प की सहजता के कारण यह उपयोगी व पठनीय है। हम उम्मीद करते हैं कि भविष्य में भी लेखक के ज्ञान बोध से उपजी रचनाओं का रसास्वादन करने का अवसर हमें अवश्य मिलता रहेगा।

000

पुस्तक समीक्षा

(कहानी संग्रह)

कथा-सप्तक सुधा ओम ढींगरा

समीक्षक : डॉ. पुष्पलता अधिवक्ता
लेखक : सुधा ओम ढींगरा
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545
मोबाइल - 9806162184
ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

डॉ. पुष्पलता अधिवक्ता
253A साउथ सिविल लाइन,
मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश 251001
ईमेल- Pushp.mzn@gmail.com

सुधा ओम ढींगरा की पुस्तक कथा-सप्तक कीकहानियाँ लकीर से हटकर अछूते विषयों को लेकर बुनी गई हैं। अधिकतर पात्र प्रवासी हैं। कहानियों का सत्य किसी भी देश समाज का सत्य हो सकता है। ऐसा सच जो हम सब की आँखों से यदा-कदा गुज़रता तो है मगर अक्सर हम उसे ज़्यादा तवज्जो नहीं दे पाते। संवेदनशील लेखक उस सच की तह तक डुबकी लगाकर उस संवेदना को पाठक के सम्मुख इस तरह प्रस्तुत करता है कि पाठक स्वयं उस दर्द में डूब जाता है। आह और वाह दोनों निकलती हैं। आह इसलिये कितना दर्द, वाह इसलिये कितनी ख़ूबसूरती से प्रस्तुत किया है कि भुलाए न भूले। हर समय भविष्य में पाठक बुज़ुर्गों की आँखों से दिल में कहानी की सीढ़ी से उतर जाएँ, ख़ूबसूरत बात यह उसे हरने का उपाय आरंभ कर दे। बात हो रही है उनकी 'खिड़कियों से झाँकती आँखें' कहानी की। पढ़कर सोच रही हूँ अगर युवा खिड़कियों में किसी युवा की ही आँखें नहीं महसूस करें बुज़ुर्ग की आँखें भी उसकी संवेदना को झकझोरे उनकी वेदना भी समझे, तो क्या किसी की आँखों में वेदना बचेगी? वे इतने भी निरीह नहीं हैं बस अपनों के बिछोह में दुखी हैं। बस उनके हृदय में देने के लिये बहुत सारा स्नेह हिलोरें मारता है। ऐसा साहित्य अपनी सार्थकता स्वयं सिद्ध करता है। उनके लेखन की ख़ासियत यह है कि पाठक लगातार बँधा रहता है तब तक जब तक वह अपना ऐच्छिक प्रस्तुत उसके दिल दिमाग़ में स्थापित नहीं कर लेता। ऐसा स्वयं ही हो जाता है। यह लेखक की चेष्टा नहीं है।

उनकी उत्कृष्ट कहानियों में सबसे अधिक प्रधानता कथानक की है। शीर्षक इतना आकर्षक होता है कि पाठक उससे बँध जाता है। सरल भाषा-शैली में रचित कहानियों के पात्र इतनी जीवंतता लिये हैं दिल को छू लेते हैं। सुधा ओम ढींगरा की कहानियों में पाठक पर एक समन्वित प्रभाव उत्पन्न करने की विशेष क्षमता है। सभी कहानियाँ सहायक तत्वों सहित पूर्ण रूप में हैं। 'बेघर सच' उस स्त्री की नियति पर लिखी गई है जो दोनों घरों में कहीं भी अपना घर नहीं पाती उसे अपने वजूद से तीसरा घर बनाना पड़ता है। खुशी इस बात की है वे हमेशा मज़बूत स्त्री गढ़ती हैं। अपनी नायिका को रोती, सुबकती, मजबूर नहीं छोड़ देतीं। स्त्री पात्र के अस्तित्व की रक्षा करती हैं। 'कमरा नंबर 103' में कोमा में डूबी पात्र एवं दो नर्सों के माध्यम से कहानी बुनी गई है। कहानी बच्चों के स्वार्थ की परतें हौले-हौले उतारती है। इस कहानी में माँ की ममता, त्याग आहत है जो हिलाकर रख देता है।

'सूरज क्यों निकलता है' कहानी समाज के उद्देश्यहीन नकारात्मक सोच वाले तबके को लेकर बुनी गई है, जो हर जगह होता है। कहानी अपनी छाप छोड़ते हुए सतर्क और आगाह कर जाती है। 'कौन सी ज़मीन अपनी' में अपने परिवार, देश, ज़मीन से प्यार करने वाले व्यक्ति के पाँवों तले से ज़मीन खिसकने की व्यथा व्यक्त हुई है। पढ़कर पाठक सोचता रह जाता है कि कुछ इंसान धन के लोभ में रिश्तों की, अपनों की किस तरह हत्या तक कर देने पर उतारू हो जाते हैं। प्यार, उपकार, स्नेह का प्रतिदान भी हर व्यक्ति के नसीब में नहीं होता। एक ही परिवार में विपरीत सोच के व्यक्ति भी हो सकते हैं।

'अनुगूँज' कहानी विदेशी ग्लैमर में आँख मूँदकर शादी करने वाले परिवारों की लड़कियों की दुर्गति की व्यथा कथा है; जो दो लड़कियों का जीवन बरबाद करती है। एक को मार दिया जाता है दूसरी का ससुराल, घर, दाम्पत्य खंडित हो जाता है। बहुत-सी लड़कियों का जीवन बर्बाद हो चुका है। यह मार्गदर्शन करती हुई एक ज़रूरी कहानी है। अनुगूँज कहानी की गूँज हमेशा लड़कियों उनके परिवारों को आगाह करती रहेगी। इस तरह की कहानियाँ परोक्ष किसी न किसी सार्थक संदेश को मन मस्तिष्क में स्थापित करती हैं। समाज का हित करती हैं, पढ़े जाने की आवश्यकता है। ऐसी कहानियाँ सत्यम शिवम सुंदरम की साहित्यिक अवधारणा को स्थापित करती हैं। समाज को दिशा देती हैं। सत्य के धरातल पर बुनी गई होती हैं। रोचकता और संक्षिप्तता इनका विशेष गुण है। उनके लेखन की विशेषता है पाठक को कहानी का पात्र सम्मुख घटी घटना की तरह याद रह जाता है। स्वस्थ लेखन के लिए लेखिका को साधुवाद।

000

पुस्तक समीक्षा

(कविता संग्रह)

धूप के नन्हे पाँव

समीक्षक : डॉ. विंध्यमणि

लेखक : चित्रा सिंह

प्रकाशक : प्रज्ञा भारती, नई दिल्ली

डॉ. विंध्यमणि
एल.आई.जी. 57, कौशलपुरी,
फेस-1, अयोध्या 224001, उप्र
मोबाइल- 9628961860
ईमेल - dr.vmani19@gmail.com

चित्रा सिंह की कविताओं में प्रकृति और प्रेम के लिए उन्मुक्त उड़ान है। यहाँ मिलन और बिछड़न दोनों के आवेग की अच्छी कविताएँ हैं। साहित्यिक लेखन उनकी विरासत का अंग है चित्रा सिंह ख़ुद अपनी पहचान के साथ मजबूत हैं। रसायन शास्त्र की प्रोफेसर हैं किंतु लिखती हैं हिन्दी में और वह भी पूरी सजग उपस्थिति के साथ। कहीं भी यह नहीं लगता कि यह हिन्दी की विद्यार्थी नहीं रही हैं.. 10 साल के अंतराल पर आया हुआ यह काव्य संग्रह (धूप के नन्हे पाँव) प्रेम जीवन और प्रकृति के त्रिकोण में कई बार दर्शन पक्ष को आगे भी कर देता है।

"तुम खाली हाथों चले गए घर से / और मेरा मन तुम्हारी याद से दूना भरा हुआ है / मुझे भी जीवन में अब /आवश्यकता से अधिक / कुछ नहीं चाहिए / हमारे साथ ही कुछ यादें / तुम्हें भेज रही हूँ। / तुम्हें लगे जितना आवश्यक / उसे रख लेना पास / और जो लगे निरर्थक / उसे बो देना पृथ्वी में / प्रकृति कुछ भी ज़ाया नहीं होने देती / वह उसका कुछ न कुछ बना कर लौटेगी ही /और मैं समझूँगी कि हमारे साथ का वो वक्त / जाया नहीं गया।

प्रेम की अनिवार्यता के लिए चित्रा ने कविता में प्रकृति को कहीं भी छोड़ा नहीं है उनकी हर कविता में प्रकृति समानांतर चलती रहती है जो प्रेम और जीवन के विभिन्न उपादानों के लिए आवश्यक है। कविताओं में ईश्वर से अधिक महत्त्वपूर्ण प्रकृति का साहचर्य है इसके उद्दीपन कवयित्री की संवेदना को पूरी तरह से घूमर करा देते हैं। विभिन्न कविताएँ इन्हीं स्रोतों से उठाई गई हैं। जीवन का हर राग बिना प्रेम और प्रकृति के चल ही नहीं सकता यह बात चित्रा की विभिन्न कविताओं में देखी जा सकती हैं। जीवन में आशान्वित होना और उसके लिए इंतज़ार करना अनेक कविताओं का मुख्य स्वर है।

"दूब की नोक पर / पसरी ओंस की / चादर से भी / ज़्यादा नम है सपनों की गीली आँखें / धूप की उँगली पड़कर / कर रही है कोशिश / फिर जी उठने की"

चित्रा सिंह जीवन के हर क्षण में प्रेम को शिद्दत से ढूँढ़ने का हुनर रखती है और यह उनकी कविताएँ बयाँ करती है। आज की स्त्री अपनी नई अभिव्यक्ति के साथ -

"स्त्रियों ने खोल दी है / मन की सारी खिड़कियाँ / अब वे बाहर की खुली हवा का / स्वाद और गंध दोनों पहचानती हैं / उन्हें उसमें घुले हुए हर रसायन के / निश्चित अनुपात का पता भी / चल चुका है। / वह जान चुकी हैं अब कि बाहर की हवा / उतनी भी जहरीली नहीं है / जितना उन्हें उनके पूर्वज / बता कर गए थे।"

और फिर अंत में प्रेम की घनीभूत संवेदना के बीच इस काव्य संग्रह की मास्टरपीस कविता- स्त्रियाँ जब चलती हैं / तो उड़ती है धूल किसी के दम्भ और / किसी के अभिमान की / उसी धूल पर रखकर अपने पाँव / चुनती हैं वे आगे की राह / पीछे छूटते उनके कदमों के निशां / मुस्कुरा कर उन्हें / शुभकामनाएँ देते हैं।

और साहस यह कि डंके की चोट पर रसायन शास्त्र पढ़ने वाली लड़कियों के बारे में एक कविता में कहती हैं-

रसायन शास्त्र की जानकारी लड़कियाँ / जीवन की आवर्त सारणी में / नीचे से ऊपर, ऊपर से नीचे / तथा दाएँ से बाएँ आने और जाने पर / बेहद सावधानी बरतती हैं। / मूलत: लड़कियाँ जो रसायन शास्त्र / पढ़ती-पढ़ाती हैं। / वह विचलित नहीं होती कभी भी / जीवन रूपी प्रयोगशाला में घट रहे / किसी घटना क्रम से।

इस कविता को पढ़ने के बाद 'मेंडलीफ' की आवर्त सारणी का स्मरण हो आता है।

पूरे काव्य संग्रह को पढ़ने पर कविताओं के टेस्ट के मामले में एकरसता भी महसूस की जा सकती है किंतु वह एक रंगी प्रेम प्रकृति और जीवन को लेकर चलने वाली कविताएँ बेहद महत्त्वपूर्ण और संवेदनशील है इससे कविता की मनुष्यता की दिशा की पहचान पक्की हो जाती है।

चित्रा सिंह जी को अच्छी कविताओं के लिए अच्छी शुभकामनाएँ।

000

(शोध आलेख)

21 वीं सदी की कहानी में राजनीति के दोगलेपन की समस्या से जूझता किन्नर

शोध लेखक : सोनू बाला
शोधार्थी, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय रोहतक
शोध निर्देशक : अनिल कुमार
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय रोहतक

सोनू बाला
मकान नंबर 48, सावन कॉलोनी,
132 केवी के सामने, बरनाला रोड,
सिरसा, हरियाणा, 125055
मोबाइल - 9518847054
ईमेल- balasonukkt@gmail.com

किसी के विचारों से प्रभावित होना मनुष्य की एक स्वाभाविक प्रक्रिया होती है ये वैचारिक समर्थन या असमर्थन आपकी संगति, संस्कार, शिक्षा, समाज आदि से प्राप्त होते है। विचारों में इनका प्रभाव स्पष्ट झलकता है, दूसरा मनुष्य, व्यक्ति की बात करने की प्रतिक्रिया से ही बहुत कुछ अनुमान लगाने की कोशिश करता है वह उसके व्यवहार को बात करने के तरीके से ही भाप लेता है। इसके बाद मनुष्य के व्यवहार व विचार को दोस्त, शिक्षक, समय व पारीस्थिति और अन्य भी प्रभावित करते है। किसी के विचारों से प्रभावित होकर ख़ुद की विचारधारा बदलना एक साधारण सी बात है। बेशक किसी के विचार चाहे अच्छे हों या बुरे।

लेकिन विचारों का दोगलापन एक बहुत बड़ी मानसिक समस्या है जो ख़ुद के साथ -साथ अन्य जन को भी प्रभावित करती है। वह विचारों की उधेड़बुन में ऐसा फँसता है कि उसे उम्मीद होती है कि वो ऐसा प्राणी बन रहा है 'जैसा वो अभी तक नहीं था। वह ऐसा प्राणी बन जाता है जिसमें उसने अपनी ही प्रतिभा को कमज़ोर कर दिया। अपने विचारों के दुरुपयोग व दोगलेपन में जीने वाले इन्सान का उदाहरण आपको भारतीय राजनीति, मीडिया आदि में बहुत देखने को मिल जाएगा। भारतीय राजनीति में बहुत ऐसे कर्मचारी व राजनेता है जो समय के साथ अपनी विचारधारा में परिवर्तन करके अपनी पार्टी बदल लेते हैं। और जिस पार्टी के पक्ष में होते हैं उसी के यशोगान के लिए अपनी वैचारिक धारणा में बदलाव ले आते है। स्वार्थी नेताओं को तो अपने फायदे हेतु ये सब करना आम बात लगती है जिस भी पार्टी से उन्हें फायदा हो रहा है वो उसी के समर्थक बन जाते हैं फिर चाहे उनसे अन्य लोगों, समुदायों को कितना ही घाटा हो।

एस.आर.हरनोट की कहानी 'किन्नर' में बेलीराम अलग-अलग पार्टी की अलग- अलग टोपियाँ देखकर हैरत में पड़ जाता है। "किस के सिर पर अब कौनसी टोपी होगी यह अब राजनीति तय करने लगी है। इसी से लोगों का वजूद है। ये टोपियाँ नए पुराने क्षेत्र की प्रतीक भी बन गई है। एक विशेष समुदाय का संबल न होकर एक राजनीति संबल बन गई है। लोग मौका देखकर इन्हें पहनते है। समय देखकर पहनते हैं। आदमी और नेता देखकर पहनते है। टोपियों में बँटी यह राजनीति बेलीराम किन्नर की समझ से परे है। चीज़ों के इतने मयने भी हो सकते हैं। पहचान हो सकती है। उसे लोगों की अन्धता पर गुस्सा आ रहा था। साथ ऐसे राजनेताओं पर भी जिनके लिए न इतिहास, न संस्कृति और न समुदायों से कुछ लेना देना है। अपने-अपने स्वार्थ है। अपनी-अपनी सोच हैं।"1

जो गले के गमछे, सिर की टोपी, टी.वी. पर दिखने वाले लोगों के साथ अपने विचारों को बदल लेते हैं। वो समय आनेपर अपनी ही तटस्थ पर प्रमाणित बात को भी पलट सकते हैं।

डॉ. चंद्रेश कुमार छतलानी की कहानी 'हिजड़ा चरित्र' में जब दोबारा से वोट माँगने के लिए पार्टी के उम्मीदवार आते हैं तो किन्नरों द्वारा उन्हें यह याद करवाया जाता है कि "दो वर्ष पूर्व के सम्मेलन में जो वादे किए गए थे, उनको पूरा कौन करेगा? सामाजिक और आर्थिक स्तर की मज़बूती की बात तब भी की गई थी, उसे क्रियान्वित ही नहीं किया गया हम तो आज भी....."2

ऐसे लोगों के लिए सर्वांगीण विकास से ज़्यादा स्वहित या स्वार्थ पूरा होना ज़रूरी होता है। जितनी अनावश्यक तटस्थता होती है। उतनी हानिकारक अस्थिरता भी होती है। विचार वही उच्च, सर्वमान्य, महान् प्रभावी व उत्कर्ष है जो परिवर्तनशील हो लेकिन मानवीय हो दौहरे, षड्यंत्रकारी व मौकापरस्त न हो। अब किन्नर समुदाय को अधिकार समानता का दिया, सब प्रकार की सुविधा देने की बातें की लेकिन देने के नाम पर कुछ भी नहीं। आज भी इनके साथ वही दोगलेपन का व्यवहार हर जगह पर देखा जाता है।

कुकुट नैस्ट कहानी में कमल कुमार द्वारा लिखित में बताया गया किन्नर समुदाय के लोगों के साथ प्रशासनिक कर्मचारी कैसा व्यवहार करते हैं। "इस डिब्बे में सीटें रिज़र्व हैं। इसमें आप नहीं बैठ सकते।" "क्यों नहीं बैठ सकते? सरकार हमें राशन कार्ड देती है क्या? पर हम अन्न तो खाते हैं न! सरकार हमें पहचान पत्र देती है क्या? वोट देने देती है क्या? पर हम इसी देश में रहते हैं न। इस देश के नागरिक हुए न ! सरकार पहले हमें दूसरों की तरह जाने-समझे तो हम भी इसरो

की तरह टिकट ले लेंगे।"3

वर्तमान की पूरी राजनीति वास्तव में देश की आम मेहनतकश व पिछड़ी आबादी की ज़िंदगी की समस्याओं के मूल कारणों को छिपाने और ढँकने का काम ज़्यादा करती है। लेकिन अब सरकार की दोहरी प्रणाली का जागरूक वर्ग विरोध करते हुए अपने हक की माँग करता है। सलीम बिन रज़ाक की कहानी 'बीच के लोग' में किन्नर समुदाय के लोग इकठ्ठा होकर जुलुस प्रदर्शन कर रहे हैं। राजनीति की दोगली प्रणाली के विरोध में ख़ुद की माँगों को स्वीकार करने की गुजारिश करते हुए कहते हैं कि "सारी दुनिया के हिजड़े एक हैं", "कल संसार हिजड़ों का होगा।", "हम से जो टकरायेगा हम जैसा हो जाएगा", "हमारी माँगें पूरी करो"4

पुलिस प्रशासन ख़ुद कन्फ्यूज़ है कि इनको हम स्त्री समझें कि पुरुष, इनको गिरफ्तार करने का दायित्व महिला कास्टेबल का है या पुरुष कास्टेबल का।

किन्नरों को लेकर प्रशासन में दोहरी मानसिकता है कि इन्हें किस वर्ग में रखा जाए इसको लेकर हर एक राज्य के अपने कानून बने लेकिन सर्वोच्च न्यायलय ने इन्हें 2014 में तृतीयलिंग की पहचान दी है इससे पहले तो समाज व सरकार ने इनको कुछ भी सुविधा प्राप्त नहीं करवाई सब की इनके प्रति दोहरी मानसिकता थी। कहानी 'हिजड़ा' के कथाकार डॉ. नंदलाल भारती ने पात्र निषेध बाबू के द्वारा बताया कि "सरकार और समाज ने किन्नरों के उद्धार के लिए काम किये होते तो ये किन्नरो की ताकत देश और समाज के लिए उपयोगी साबित होती, पर रूढ़िवादी समाज ने अच्छा काम करने से तौबा कर लिया है। रूढ़िवादी लोग लोगों को भ्रम में रखकर सुअर, कुत्ते, तक को भगवान का अवतार मान लेते हैं पर जब उनके रास्ते में आ जाते हैं तो घृणा के पात्र बन जाते है, आदमी भी अछूत हो जाता है समाज के नीति निर्धारक दोहरी मानसिकता के शिकार है बस अपने स्वार्थ को समझते हैं। किन्नरों के साथ भी यही हो रहा है।"5

पूरे परिवेश में दोहरी मानसिकता के उदाहरण, सामाजिक, राजनीतिक आर्थिक, सांस्कृतिक व धार्मिक हर इकाई में दिखाई देगा और इनमें सबसे पहला कारण स्वार्थ लिप्सा की प्राप्ति है। यदि राजनेता अपने स्वार्थ से पहले सर्वांगीण विकास को ध्यान में रखकर कार्य करे तो इनकी दोगलेपन की समस्या के नुकसान शायद न के बराबर हो।

नाला सोपारा उपन्यास में राजनेताओं ने किन्नर विनोद (उर्फ विन्नी) को पद प्राप्ति के लिए इस्तेमाल किया इसे प्रलोभन दिया गया कि तू किन्नर सम्मेलन का मुख्य वक्ता रहेगा और उन्हें समुदाय के आरक्षण व सुविधाओं के बारे में बताकर उनसे वोटों की प्राप्ति तुझे ही करनी है। राजनेताओं की ये दोहरी चाल विनोद बखूबी पहचान गया था। राजनीति में कुछ सुनिचित नहीं होता चालें ही अगली चालों की भूमिका बनती हैं।"6

राजनीति में नेताओं का स्वार्थ पहले रहता है फिर समाज आता है। इनका साथ देने के लिए मीडिया का बहुत बड़ा समर्थन रहता है ये लोगों को नेताओं के भाषण पर विश्वास दिलवाने के लिए बात को बढ़ा चढ़ाकर प्रस्तुत करती है व राजनेताओं की तरह, ही अपनी बात को बदल देते है। इनका व्यवहार जनता के प्रति दोगला ही रहता है।

अखिलेश निगम अखिल की कहानी 'आख़िर कब तक?' में समाज सेवी सेठ रामेश्वर प्रसाद के बारे में जब मीडिया को उनके किन्नर होने का पता चलता है तो उनके व्यवहार में प्रसाद जी के लिए एक अलग ही रवैया दिखाई देता है। जब तक सेठ जी पहचान छुपाकर बात कर रहे थे तो वो उनका इन्टरव्यू एक समाजसेवी के रूप में ले रहे थे और जब किन्नर होने की बात रखी तो उनका व्यवहार एकदम बदल गया "सेठ जी ! आप अपने बारे में पहले ही बता देते तो हम सबको आपका इंटरव्यू लेने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती।"7

यहाँ सिर्फ परिस्थिति व जेण्डर (स्त्री-पुरुष) ही महत्त्व रखता है अगर वह थर्डजेंडर है तो उनका नाम सुनते ही सबका नज़रिया देखने, सोचने सम्बन्धी तुरन्त बदल जाता है। यह है हमारे समाज की व्यवस्था।

कुछ एक किन्नर गुरु की अपनी अलग राजनीति होती है अपने समुदाय के प्रति जिसमे उसके द्वारा बनाये गए नियमों का पालन करना पड़ता है। समुदाय के अन्य किन्नरों को जिसमे पुलिस प्रशासन भी उनका साथ देती है। जिसका कार्य अव्यवस्था फैलाना नहीं सुधारना है।

चाँद 'दीपिका' की कहानी 'ख़ुश रहो क्लीनिक' में किन्नर समुदाय के डेरे की गद्दी का मालिक बहुत दुष्ट था। किन्नर मंडली के सिर पर ऐश करता था कितने ही किन्नरों को शराब - गाँजा उसने अपने हाथों पीना सिखाया था। पुलिस प्रशासन में उसकी बैठ थी। अच्छे भले बच्चों को बरगला, अपहरण करना उन्हें उसने किन्नर बनाया था।8

लेकिन पुलिस प्रशासन को अपनी ड्यूटी या कर्तव्य से बढ़कर अपना स्वार्थ महत्त्वपूर्ण लगा जो ये सब अन्याय देखकर भी अनदेखा किये जा रहे थे पुलिस प्रशासन की ये दोहरी मानसिकता बच्चों के लिए कितनी खतरनाक थी इसका उन्होंने जरा भी अनुमान नहीं लगाया बस अपनी लिप्सा की दृष्टि में पुलिस में गुरू का साथ देती है। ऐसा दोहरा प्रशासन केवल किन्नर समाज के लिए ही नहीं बल्कि पूरे समाज के लिए घातक सिद्ध होता हैं।

000

संदर्भ-

1.एम फीरोज़ खान, थर्ड जेन्डर: हिन्दी कहानियाँ, पृ०-48, प्रथम संस्करण प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2021, 2.विजेन्द्र प्रताप सिंह, रवि कुमार गौड़, कथा और किन्नर, पृ०-100, अमन प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण-2018, 3.एम फीरोज़ खान, हम भी इंसान है, पृ०-22, विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण-2021, 4.फीरोज़ खान, थर्ड जेन्डर हिन्दी कहानिया, पृ०- 34, 5.विजेन्द्र, रवि कुमार गौड़, कथा और किन्नर, पृ०-14, 6.चित्रा मुदगल, पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सोपारा, पृ०- 158, सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2016, 7.विजेन्द्र, रवि कुमार गौड़, कथा और किन्नर, पृ०-46, 8 .फीरोज़ खान, थर्ड जेन्डर : हिन्दी कहानियाँ, पृ०- 143

(शोध आलेख)

सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'फंदा क्यों' में चित्रित किसानों की समस्या

शोध लेखक : सरिता जिलेदार बिन्द
पी.एच.डी. शोधार्थी
रामनारायण रुइया स्वायत
महाविद्यालय, माटुंगा मुंबई

सरिता जिलेदार बिन्द
पी.एच.डी. शोधार्थी
रामनारायण रुइया स्वायत्त महाविद्यालय,
नापू रोड, माटुंगा ईस्ट
मुंबई 400019, महाराष्ट्र
इमेल- Saritajiledarbind@gmail.com

भारत कृषि प्रधान देश है। भारत ही एक ऐसा देश है जहाँ अनाज और बीजों की कई हज़ार प्रजातियाँ हैं। अनाज से लेकर फलों तक अनेक उत्पादन यहाँ होते हैं। इन सब के उत्पादन की ज़िम्मेदारी किसानों के ऊपर होती हैं। किसान अपने परिश्रम के कारण पूरे जगत्, का अन्नदाता बन गया है। पूरे जगत्, का पालन पोषण करने वाले किसान की आज स्थिति ऐसी हो गई है कि वह आत्महत्या करने को मजबूर हो जाता है। किसान को अपने जीवन यापन करने के लिए कई समस्याओं को झेलना पड़ता है। हमारे देश के आर्थिक विकास में भी किसानों का लगभग 72 प्रतिशत योगदान रहता है। इसके बावजूद आज उनकी सरकार द्वारा भी सतत उपेक्षा हो रही है। सबका पेट और तन ढकने वाले लाखों किसान या तो कृषि कार्य छोड़ रहे हैं या आत्महत्या करने अपने जीवन को विराम चिह्न लगाकर समाप्त कर देते हैं। और हम इसे रोक नहीं पाते हैं। आए दिन समाचार पत्रों में टेलीविजन पर हम किसान से जुड़ी विभिन्न समस्याओं को देखते हैं। हमारे देश केकिसानों की जो सबसे बड़ी समस्या है; ऋण की समस्या। अधिकतर ग़रीब किसान कृषि कार्य के लिए ज़मीदार एवं साहूकार से ब्याज पर पैसे लेते हैं। साहूकार एवं जमींदार द्वारा दिया गया किसानों को क़र्ज़ का ब्याज दर अधिक होता है जिसके कारण वे किसान उन से लिए गए ब्याज के पैसों को चुका नहीं पाता। ऐसे में वह मजबूर होकर आत्महत्या कर लेता है।

भारत एक विकासशील देश है यहाँ की आर्थिक व्यवस्था कृषि पर निर्भर करती है। कृषि हमारे लिए सिर्फ पेट भरने का साधन मात्र नहीं है। हमारी संस्कृति है, हमारी सभ्यता है, हमारी जीवन शैली है, हमारा अस्तित्व है और हमारा स्वाभिमान है। भारत की अर्थव्यवस्था में कृषि का स्थान अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। भारतीय कृषि को देश की रीढ़ माना जाता है। भले ही भारत कृषि प्रधान देश है परंतु यहाँ के किसानों की दशा संतोषजनक नहीं है। इसके कई कारण है। जैसे क़र्ज़, भ्रष्टाचार, सरकारी नीतियाँ, प्राकृतिक आपदा, बिजली की समस्या, खाद-पानी, बीज, अनाज का उचित मूल्य न मिलना आदि समस्याओं के कारण किसान आत्महत्या करने के लिए मजबूर हो जाता है। पूरे जगत् का पालन पोषण करने वाला किसान आज अपनी ज़रूरत की वस्तुओं से भी वंचित रहता है। और यही कारण है कि आज किसानों का खेती पर से विश्वास उठ रहा है। दिन रात एक कर के मेहनत करने वाले किसानों की ज़िंदगी जानवरों से भी बदतर हो गई है।

किसानों की इस दशा को लेकर हिन्दी साहित्य में सशक्त कहानियाँ और उपन्यास लिखे गए हैं; और लिखे जा रहे हैं। हिन्दी साहित्य के समान प्रवासी साहित्य में भी किसानों की समस्या को चित्रित किया गया है। डॉ. सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'फंदा क्यों' किसानों की समस्याओं पर केंद्रित कहानी है। इसमें किसानों की अनेक समस्याओं को प्रमुखता से चित्रित किया गया है। उसके साथ ही भारत तथा प्रवास में किसान मज़दूरों की समस्याओं के साथ ही इन दो देशों में किसानों की परिस्थिति का तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से अंतर को स्पष्ट किया है। कहानी के शीर्षक से ही इसकी कथा का संकेत मिल जाता है। इस कहानी में किसान मज़दूर से जुड़ी प्रत्येक पहलू तथा छोटी से छोटी समस्याओं को भी स्पष्ट रूप से दिखाया है।

स्वतंत्रता के बाद भी साहूकार, महाजनों के कर्ज़ों के बोझ से दबे किसानों के लिए यह एक गंभीर समस्या है। किसान कभी ऋण के बोझ से दब जाता है तो कभी शोषण के चलते आत्महत्या करने पर मजबूर हो जाता है। स्वार्थी और शोषण करने वाले साहूकार एवं महाजन हमेशा से किसानों का खून चूसते आए हैं। प्रतिदिन अख़बारों में किसान आत्महत्या से जुड़ी खबरें छपती थी। "सूखे से तंग आकर पंजाब के किसानों ने आत्महत्या की।" 1 "क़र्ज़ में डूबे बुंदेलखंड के किसानों ने पत्नियाँ लगाई सेल पर।" 2

कहानी का पात्र मोहन एक ग़रीब परिवार के किसान का बेटा था। घर में खाने के लिए दो वक्त की रोटी भी बड़ी मुश्किल से मिलती थी। उसका पूरा परिवार कर्ज़ में डूब गया था। उनके खेतों में जभी फसल लगाने का मौसम आता था, तभी खाद पानी बीज के लिए ज़मीदार से पैसे

माँगने पड़ते थे। पैसों के साथ किसानों को ज़मींदार की गालियाँ भी मिलती थीं। भारत के अधिकतर किसान गरीबी, शोषण, निरक्षरता के शिकार होते हैं। इसी कारण वे दिन प्रतिदिन ग़रीब होते जा रहे हैं। भारतीय कृषक दिन रात एक कर के पसीना बहा कर परिश्रम करता है। फिर भी आज कृषक वर्ग ग़रीब है; क्योंकि किसान मेहनत अधिक करते हैं लेकिन उसकी आमदनी इतनी भी नहीं होती कि वे अपने बच्चों को बेहतर जीवन दे सके है। जिसकी पुष्टि लेखिका ने कहानी में इस प्रकार किया है ''कई बार वह माले के घर से लाई गई लस्सी में, बासी रोटी भिगोकर, वही खाकर, अपनी भूख मिटाता था। पाँचवी से आगे वह पढ़ नहीं पाया था, स्कूल की फीस, किताबों, कॉपियों के पैसे कहाँ से आते हैं? गाँव में चारों ओर उसके परिवार जैसा ही हाल था।3

आज कहना ग़लत नहीं होगा कि भारत में जब लोकतंत्र नहीं था तब भी और जब लोकतंत्र आया तब भी किसान शोषण से मुक्त नहीं हुए। दरअसल किसान विश्व का एक ऐसा समाज है जिसके बिना जीवन की परिकल्पना असंभव है, फिर भी हमारे यहाँ प्रकारांतर से किसान उपेक्षा के शिकार होते रहे हैं और आज भी हो रहे हैं। इस उपेक्षा और अपमान का उदाहरण है हमारे देश के किसानों की आत्महत्या। जिसकी पुष्टि लेखिका मोहन के द्वारा इस प्रकार करती है ''कहाँ खेती-बाड़ी करेंगे जसबीर, जहाँ मेरे किसान भाई, मेरी बिरादरी के लोग ज़हर खा रहे हैं, गले में फंदा डाल रहे हैं, अपनी पत्नियाँ तक बेच दे रहे हैं।''4

मोहन ज़मींदारों के अत्याचार से और गरीबी से तंग आ गया था। इन हालातों सेभी समझौता नहीं करना चाहता था। एक दिन वह अपने परिवार वालों को बिना बताए गाँव के बख्शिंदर के साथ रातों-रात चुपके से अमेरिका चला गया। अमेरिका के एक ज़मींदार ने अपने खेतों में काम करने के लिए दोनों को अमेरिका में बुला लिया थ। वहाँ पर ज़मींदार इनसे बहुत काम करवाता था, और पैसे भी कम देता था। उसने ज़मींदार के अत्याचार के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाई उस दिन के बाद ज़मींदार का व्यवहार उनके प्रति बदल गया। अमेरिका के नियम के अनुसार उनका पगार भी बढ़ गया। वह अपने परिवार का क़र्ज़ उतारना चाहता था। वह दिन रात मेहनत करता था। यही सोचकर कि ''बापू का क़र्ज़ उतारना था, बहनों की शादी करनी थी, सुखद भविष्य को वह देखने लगा था....लहराते खेतों में खड़ा बापू, खूँटी से बँधे बैल घर में गाये, दूध दही लस्सी की बहारें, माँ के हाथों में गोखड्डू, बहनों के उजली कपड़े।''5

'फंदा क्यों' कहानी डॉ. सुधा ओम ढींगरा ने परदेस में बसें किसान मज़दूरों की परिस्थिति का चित्रण किया है। कहानी में जिस प्रकार आशा की किरण को दिखाया है। वह इस कहानी को सशक्त और प्रभावशाली तो बनाती है; साथ ही डॉ. सुधा ओम ढींगरा की प्रगतिशील चेतना को भी सार्थकता प्रदान की है। कहानी में किसान मोहन के माध्यम से भारत देश तथा अमेरिका की किसानों की स्थिति के अंतर को दर्शाया है। मोहन के इस कथन से इसकी पुष्टि होती है-''सूखा तो यहाँ भी होता है, बारिशें फसलें ख़राब कर देती हैं, अंधड़ खड़ी फसलें उखाड़ देते हैं, पर ऐसे में सरकार मदद करती है, बड़ी-बड़ी कंपनियाँ सहायता करती हैं और अमीर लोग अनुदान देते हैं, भारत में कोई उनकी मदद क्यों नहीं करता?'' 6

प्राकृतिक आपदाएँ अमेरिका में भी आती है, लेकिन वहाँ के किसान कभी आत्महत्या नहीं करते; जिसका कारण है, वहाँ की सरकार द्वारा किसानों को मिलने वाली सहायता है। भारत सरकार द्वारा ग़रीब किसानों के लिए कई योजनाएँ बनाईं जातीं हैं। तथा उन्हें प्राकृतिक आपदा के समय कई प्रकार की सहायता प्रदान की जाती है। किंतु यह योजनाएँ और सरकार द्वारा मिलने वाले मुआवज़े केवल बड़े किसान एवं ज़मीदार तक ही पहुँच पाते हैं। सरकार द्वारा मिलने वाला आर्थिक मुआवज़ा छोटे किसानों तक कभी नहीं पहुँच पाता। सरकार द्वारा किसानों के लिए कई योजनाएँ बनती हैं किंतु यह योजनाओं को किसानों तक पहुँचाने का प्रयास भी नहीं किया जाता। सरकार का कर्तव्य होता है किसानों की सहायता करना, किसानों को उनकी समस्या के भीषण चक्र से बाहर निकालना, किंतु सरकार इनकी ओर ध्यान नहीं देती है। ऐसी स्थिति में किसान कृषि कार्य छोड़ देता है; या अपने जीवन पर विराम चिह्न लगा देता है। इसकी पुष्टि लेखिका ने इस प्रकार की हैं-''भारत सरकार समृद्ध है और देश में बहुत से अमीर घराने हैं कई संस्थाएँ किसानों के लिए काम कर रही हैं, पर वहाँ की व्यवस्था रचना इतनी भ्रष्ट है कि वह सब सहायता रास्ते में ही रह जाती हैं... ग़रीब किसान तक पहुँच ही कहाँ पाती है अमीर किसान या बीच के लोग ही वह सब ले जाते हैं। ग़रीब किसान को तो उसका पता भी नहीं चलता। जब तक देश की व्यवस्था और ढांचा भ्रष्ट है तब तक किसान मरता रहेगा।''7

देश तथा समाज की रक्षा करने वाले आज देश को बर्बादी की ओर ले जा रहे हैं। किसान समाज में व्याप्त नेताओं के अत्याचार, भ्रष्टाचार का पर्दाफाश कथाकार डॉ. सुधा ओम ढींगरा ने इस कहानी में किया है। वर्तमान समय में किसानों में विभिन्न समस्याओं के प्रति चेतना जागृत हो गई है। किंतु किसानों की स्थिति में सुधार होने में कुछ समय लगेगा; क्योंकि आज भी कई किसान अपने अधिकारों से वंचित हैं उन्हें विराम अशिक्षित तथा अनपढ़ होने के कारण अधिकतर किसानों को अपने हक से वंचित रहना पड़ता है। डॉ. सुधा ओम ढींगरा ने कहानी 'फंदा क्यों' में देश तथा परदेश के किसान मज़दूरों की स्थिति में दर्शाए गए अंतर द्वारा किसानों को उनके अधिकार के प्रति जागृत करने का कार्य किया है, यह एक सराहनीय कार्य है!

000

संदर्भ- 1) कहानी संग्रह: कौन-सी ज़मीन अपनी, कहानी 'फंदा क्यों', डॉ.सुधा ओम ढींगरा, शिवना प्रकाशन पी. सी. लैब, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट बस स्टैंड. सीहोर-466001 (म. प्र.), पृष्ठ.63, २) वही. पृष्ठ.63, 3) वही. पृष्ठ.64, 4) वही. पृष्ठ.71, 5) वही. पृष्ठ.70, 6) वही. पृष्ठ.71, 7) वही. पृष्ठ.71

(शोध आलेख)

अमेरिकी प्रवासी हिन्दी साहित्य एवं स्त्री मन का यथार्थ

शोध लेखक : शालू
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय

शोध सार - हिन्दी का प्रवासी साहित्यकार जब भारतीय परिवेश को छोड़कर पश्चिमी परिवेश में जाता है तब उसके जीवन में भारतीय व पश्चिमी दोनों परिवेश में होने वाले परिवर्तन से अनेक विषमताएँ व जटिलताएँ आती हैं। जिससे वह पुराने विचारों, संस्कारों, मान्यताओं तथा मूल्यों को नई दृष्टि के आधार पर देखता है। इस अवधारणा की साफ झलक उनके साहित्य में देखने को मिलती है। विश्व में प्रवासी साहित्यकार एक ओर भारतीय एवं पश्चिमी समाज को एकता के सूत्र में जोड़ने का कार्य करता है तो दूसरी ओर विदेशों की भौतिक चमक-दमक और खुलेपन, जीवनशैली व भाषागत भिन्नता तथा मानसिक एवं नैतिक अंतर्द्वंद्व से प्रभावित होता है।

बीज शब्द:- त्रासदी, पितृसत्तात्मक, मानसिकता, द्वंद्वात्मक, अस्मिता, दकियानूसी, आत्मनिर्भर, तनावग्रस्त, संप्रेषित, धनार्जन

अमेरिकी प्रवासी साहित्यकारों द्वारा स्त्री जीवन के विविध स्वरूपों का यथार्थ अंकन किया गया है। 1990 के दशक में भारतीय पीढ़ी विकसित देशों की ओर आकर्षित हुई। विदेशों में भारतीय अधिक धनार्जन, उज्ज्वल भविष्य तथा उच्च शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य को लेकर जाते हैं। अधिकांशत: भारतीय नागरिक सुखमय जीवन व्यतीत करने के लक्ष्य से विदेशों में ही रहने का निश्चय कर लेते हैं। इन परिस्थितियों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को अधिक संघर्ष का सामना करना पड़ता है। पश्चिमी समाज में स्त्रियाँ दोहरा जीवन जीने के लिए विवश हो रही हैं। वस्तुत: इस दोहरे परिवेश में जीवनयापन करने से उनके व्यक्तित्व में परिवर्तन आने लगता है। इला प्रसाद कृत उपन्यास 'रोशनी आधी अधूरी सी' में शुचि अकेले में अपने व्यक्तित्व के बारे में सोचते हुए कहती है, "हम दो नावों में पैर रखकर जीते हैं और कोई समझता भी नहीं। पहले की लड़कियाँ मायके और सुसराल बँटा हुआ मन लेकर जीती थी। आज वे अमेरिका और भारत के बीच जीती हैं। किसे अपना कहे? किसे पराया? दोनों ही अपने, दोनों पराए।"1

भारतीय व पाश्चात्य मूल्यों में टकराहट - भारतीय व पश्चिमी पृष्ठभूमि के अंतर्गत सांस्कृतिक, नैतिक मूल्यों की टकराहट को साहित्य की विभिन्न विधाओं में व्यापक रूप से अभिव्यक्त किया गया है। इससे प्रवासी भारतीय स्त्रियों के मनोभाव एवं उनकी मानसिक स्थिति तनावग्रस्त हो रही है। इतना ही नहीं, एक ओर प्रवासी भारतीय साहित्यकार भावनात्मक रूप से भारत से जुड़े हुए हैं, तो दूसरी ओर आर्थिक रूप से पश्चिमी देशों पर निर्भर होते हैं। हालाँकि पश्चिम देशों की तुलना में भारतीय समाज एवं संस्कृति पूर्णत: भिन्न है। भारतीय परिवार में घर का सबसे बड़ा सदस्य परिवार का मुखिया होता है। अन्य सभी सदस्य उनके द्वारा दिए गए निर्णयों का अनुसरण करते है। जबकि अमेरिकन परिवार में मुखिया केवल सांकेतिक मात्र का ही होता है। "अमेरिकन परिवार में पति का नेतृत्व सांकेतिक होता है, जबकि पत्नी घर की वास्तविक मुखिया होती है। संपत्ति, घर या कार आदि ग्राम तौर पर पति और पत्नी दोनों के नाम से खरीदी और बनाई जाती है। हिसाब-किताब की जाँच अक्सर दोनों मिलकर करते है और मासिक घरेलू खर्च के बिलों की अदायगी और आय कर का हिसाब स्त्रियाँ करती हैं।"2

मनुष्य जिस समाज एवं परिवेश में होता है उसी आधार पर उसकी विचारधारा भी परिवर्तित हो जाती है। यूरोपीय देशों में स्त्री-पुरुष दोनों को समान अधिकार व महत्त्व दिए जाते हैं। इसका सबसे महत्त्वपूर्ण कारण यह भी होता है कि यूरोपीय देशों में स्त्री आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो चुकी है। वस्तुत: स्त्रियाँ अपने हितों के लिए आवाज़ उठाती हैं। जिसके परिणामस्वरूप उनके स्वत्व, अस्मिता व अस्तित्व को स्थापित करने के लिए काफी सुधार हुए है।

विकसित देशों में स्त्री अंतर्मन में व्याप्त अनेक सूक्ष्म बिंदुओं जैसे विवाहेतर प्रेम संबंध, अर्थहीन रिश्ते, मानवीय व नैतिक मूल्यों की टकराहट, वृद्ध व बच्चों की समस्याएँ, पुरानी व नई पीढ़ी के बीच आदर्शों और संस्कारों के त्यागने व अपनाने का द्वंद्व आदि विविध आयामों को अभिव्यक्त किया गया हैं। अमेरिकी प्रसिद्ध लेखिका सुधा ओम ढींगरा कृत कहानी 'कमरा नं.103' में संतान द्वारा उपेक्षित माँ के अंतर्मन में उठी चिंताओं, विडंबनाओं तथा विवशताओं को उजागर करती है। अमेरिका में बीमार मिसेज वर्मा को उसके बेटा-बहू घर में लगे जाले

शालू
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय,
धर्मशाला,
जिला-काँगड़ा, हिमाचल प्रदेश- 176215
इमेल- shalubabbar0@gmail.com

उतारने की तरह अस्तपाल में छोड़ आते हैं। "अस्तपाल में एडमिट करवाने उनका बेटा और बहू आए थे। उनकी गम्भीर अवस्था को देखते हुए उन्हें आईसीयू में रखा गया था। बेटे और बहू को एक-दो बार आईसीयू के बाहर लॉबी में बैठा देखा गया। ज्यों ही उन्हें आईसीयू से कमरा नं.103 में स्थानान्तर किया गया, उस दिन से बहू और बेटे की सूरत नहीं देखी वो घर के फालतू सामान की तरह छोड़ गए।"3 माँ अपने बहू-बेटे के इतंजार में तिल-तिलकर अस्तपाल में दम तोड़ देती है। कहानी में माँ की संवेदना को दो पीढ़ियों की द्वंद्वात्मक टकराहट तथा अपने परिवार से अलग होकर नियति का शिकार बनती दशा की ओर निरूपित किया गया है। इसी तरह की विषयवस्तु को प्रस्तुत करती सुषम बेदी कृत कहानी 'अवसान' तथा सुदर्शन प्रियदर्शनी कृत कहानी 'अख़बारवाला' है।

प्रवासी लेखिकाओं ने अमेरिकी समाज में भारतीय स्त्री की जीवनशैली को यथार्थ की कसौटी पर कसा है। 'न भेज्यो बिदेस' में रत्ती अपने पति प्रीतम के नाम का चूड़ा पहनकर भविष्य में सुनहरे सपनों को लिए अमेरिका में आई थी, पर वहाँ पहुँचने के बाद उसे पता चलता है कि प्रीतम पहले से ही शादीशुदा है तथा उसके लूना नाम की लड़की के साथ अवैध संबंध भी है। लेखिका ने रत्ती के जीवन से स्त्री की असहाय स्थिति, सामाजिक बंधनों में घुटन तथा उसकी छटपटाहट को रेखांकित किया हैं। "उसके बाप ने तो उम्र-भर ज़िंदगी को एक व्यापार और औरत को इस्तेमाल की चीज़ ही समझा है। औरत अगर काम आ सकती है तो ठीक नहीं तो उसकी जगह दरवाज़े के पीछे लगी जूतियों की कतार में है। सदियों से यही दुहराया जाता रहा है और आज भी कुछ नहीं बदला।"4 प्रवासी लेखिकाओं द्वारा रचित साहित्य की एक विशेषता यह हैं कि स्त्री के अंत:कारण की पीड़ा, आत्मबोध, कमज़ोरी तथा संघर्ष का यथार्थ चित्रण साहित्य में किया गया है। अमेरिका जैसे विकसित देशों में भी स्त्रियाँ अपने पति का एकनिष्ठ प्यार पाने के लिए रोती-तड़पती नहीं है। अतएव उद्देश्यपूर्ण और सार्थक जीवन जीने के लिए नए-नए मार्ग को खोजती है। अंतत: आत्मनिर्भर व दृढ़ निश्चय की प्रवृत्ति लिए आगे बढ़ती है।

पारिवारिक संबंधों में बिखराव - संबंधों में बिखराव का सबसे महत्त्वपूर्ण कारण है रिश्तों में विश्वास का अभाव। भारतीय संस्कृति के अंतर्गत बच्चों को बचपन से ही सिखाया जाता हैं कि हमें बड़ों का आदर और छोटों से प्रेम का भाव रखना चाहिए। ताकि विषम परिस्थितियों में एक-दूसरे की सहायता कर सकें। इसी उद्देश्य से 'हवन' उपन्यास की गुड्डो अपनी छोटी बहन पिंकी के पास अमेरिका चली जाती हैं। परंतु पश्चिमी देश की संस्कृति से गुड्डो अपरिचित थी। यहाँ आकर उसने अनुभव किया कि अमेरिकन लोगों में अपनेपन का भाव ही नहीं है, जिस तरह का भाव भारतीय समाज के लोगों में देखने मिलता है। इस प्रकार गुड्डो अपनी छोटी बहन पिंकी में लालची दृष्टि, स्वार्थीपन तथा परायेपन की भावना को देखती है। "आप क्या समझती हैं, यहाँ आकर मैं कुछ और हो गई हूँ- मेरी वैल्यूज, मेरे संस्कार बदल गए हैं- आपकी वहाँ कभी हिम्मत ही नहीं हुई थी और मेरे घर में ही आप मेरे मेहमान बनकर मुझे लूट रही हैं- मैं लिहाज और मुरव्वत बरतती रही।"5 उपन्यास में बीजी गुड्डो को अमेरिका जाने से बार-बार मना भी करती हैं। बीजी के शब्दों में "कुछ नहीं रखा अमेरिका में। ऐसे ही धक्के खाओगी, छोटी बहन पर भी बोझ डालोगी।"6 विकसित देशों में भारत की अपेक्षा अधिक धनार्जन किया जा सकता हैं। इस परिप्रेक्ष्य के आधार पर सुषम बेदी ने गुड्डो को आधुनिक नारी के रूप में रेखांकित करने का प्रयास किया है। पति की मृत्यु के पश्चात् गुड्डो के ऊपर ज़िम्मेदारियों का बोझ भी बना हुआ था। अमेरिका में वह आत्मनिर्भर होने के लिए तथा अपने जीवन को संवारने के उद्देश्य से जाना चाहती थी। वह बीजी से अंतर्मन की बात कहती है, "अमेरिका जाकर कुछ पैसे वाली तो होगी, वर्मा सारी उमर दूसरों का मुँह जोहना पड़ेगा- आख़िर दो-दो बेटियाँ ब्याहनी है।"7 अमेरिकन लेखिकाओं द्वारा यह दर्शाने का प्रयास किया गया है कि विकसित देशों में आर्थिक संपन्नता के बावजूद भी रिश्तों में दूरी आ गई हैं। तथापि पारिवारिक सदस्य एक ही शहर में रहते हुए एकाकी जीवन व्यतीत करने के पक्ष पर रहते हैं।

शिक्षित नारी का स्पष्टवादी दृष्टिकोण- आधुनिक समाज में शिक्षा स्त्रियों की अंतर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करती है। समाज का उद्देश्य स्त्रियों को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाना है। वास्तव में शिक्षित स्त्री ही प्रत्येक समस्या का समाधान अपनी बौद्धिक क्षमता के आधार पर कर सकती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय एवं पश्चिमी समाज में शिक्षित नारी अपमानजनक समझौते के लिए तैयार नहीं होती बल्कि वह अपने अस्तित्व व अधिकार के लिए पुरुषों को त्यागकर अपने नए जीवन की शुरूआत करने की क्षमता रखती हैं। 'शेषयात्रा' उपन्यास की नायिका अनु के लिए अपने पति प्रणव से तलाक वरदान के सामान है। इससे एक ओर अनु के मन में आत्मविश्वास का भाव जगता है। तो दूसरी ओर वह अनचाहे रिश्ते से मुक्ति की साँस लेती है। समाज में स्त्री के आत्मनिर्भर होने पर तलाक को लेकर सामाजिक मानसिकता भयावह है। प्राय: भारतीय समाज की तलाकशुदा स्त्री को संदेह की दृष्टि से देखा जाता है। "तलाक के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण स्त्री के पक्ष में नहीं जाता, सारी ग़लती स्त्री की मानी जाती है और उसके पुनर्विवाह के अवसर क्षीण हो जाते है।"8 अनु के मन में तलाक के बाद के जीवन को लेकर निरंतर प्रश्न बना रहता है। यद्यपि वह अमेरिका जैसे विकसित देश में रहती है लेकिन फिर भी उसके अंतर्मन में भारतीय मानसिकता वाली पीड़ा व्याप्त रहती है। अनु को समझाते हुए मनोचिकित्सक डॉ. गुडमैन के शब्दों में "तुम दुविधा में (भारत में) नहीं रह रही हो, पश्चिम में हो, यहाँ तुम स्वतंत्र, आत्मनिर्भर, मुक्त होकर रह सकती हो।"9 शिक्षा ही एकमात्र ऐसा माध्यम है जिसमें स्त्री अपने अतीत की सभी परेशानियों को त्यागकर वर्तमान में आगे बढ़ने की प्रेरणा रखती हैं। कामकाजी स्त्रियों ने शिक्षा और नौकरी से मिली सुविधाओं से समस्याओं का समाधान

किया हैं। उषा प्रियंवदा ने स्वावलंबी स्त्रियों के परिप्रेक्ष्य में लिखा हैं। "उच्चतर शिक्षा ने स्त्रियों को स्वावलंबी ही नहीं बनाया, बल्कि उन्हें अपनी अस्मिता और अधिकारों के प्रति जागरूक भी बनाया। उनमें परम्परागत नारी संहिता और संस्कारों के प्रति विद्रोह का भाव पैदा हुआ।"10 प्रवासी लेखिका का मूल उद्देश्य यह है कि समाज में प्रत्येक स्त्री शिक्षा प्राप्त कर मुक्ति की ओर अग्रसर रहे। "शिक्षित आधुनिक नारी किसी संकोच कुंठा या अपराधबोध से ग्रस्त नहीं है। वह अनेक बाधाओं के बीच निरंतर मुक्ति के मार्ग पर अग्रसर हो रही है- आधुनिक नारी की कथा कहना ही लेखिका का उद्देश्य है।"11

वैधव्य जीवन की त्रादसी - सामाजिक संवेदनहीनता की पराकाष्ठ से समाज में स्त्रियों का जीवन पति के मरने के उपरांत कष्टकारी हो जाता है। उन्हें अपने जीवन के सभी सौभाग्य प्रतीकों वाले कार्यों को त्यागना पड़ता हैं। इस स्थिति का सजीव वर्णन प्रवासी लेखिकाओं ने अपने साहित्य के माध्यम से उजागर किया है। 'हवन' उपन्यास में लेखिका ने विधवा स्त्रियों की दयनीय स्थितियों का यथार्थ चित्रण किया है। अमेरिका में अपने तीन बच्चों की पढ़ाई से लेकर विवाह तक के उत्तरदायित्व को गुड्डो ने भली-भाँति पूर्ण किया है। वैधव्य जीवन की संघर्षगाथा को सुषम बेदी ने अपने साहित्य के द्वारा प्रकाश डाला हैं। "अब न लड़का रहा था, न पिता जी ही ज़िंदा थे। भाइयों और पति के दोस्तों की मदद से गुड्डो ने किसी तरह बी.टी. ख़त्म की और एक स्कूल में नौकरी भी मिल गई टीचर की।"12 पश्चिमी समाज में विधवा स्त्रियाँ अपने बेरंग जीवन में स्वत: रंग भरने का कार्य करती है। रूढ़िवादी समाज में अनेक कुप्रथाओं और प्रतिबंधों से अपने जीवन में समाधान करने वाले राहों की तलाश करती हैं। स्पष्ट है कि पश्चिमी समाज की स्त्रियाँ दकियानूसी प्रथा का पुरज़ोर विरोध करती है। प्रवासी लेखिकाओं ने अपने साहित्य के माध्यम से स्त्रियों को सामाजिक जीवन बंधनों से मुक्त करवाने व अस्तित्व के लिए अकेले लड़ने के दृष्टिकोण को संप्रेषित किया है।

अस्मिता व अस्तित्व का संघर्ष - समाज में स्त्री अपने अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा के प्रति सजग व संघर्षशील है। जिस कारण उसने सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक क्षेत्रों में अपनी उपस्थिति दर्ज करवायी हैं। समाज में अपने 'स्व' को स्थापित करने के लिए पुरुषवादी मान्यताओं का विरोध किया है। लेखिका सुषम बेदी ने अपने साहित्य के द्वारा समाज में व्याप्त कुरीतियों का खण्डन किया है। अपने अस्मिता के पक्ष के प्रति तर्क देते हुए उन्होंने अपनी कहानी 'कात्यायनी' में स्त्रियों का सजीव चित्रण किया है, "पर मैं तो एक सच हूँ, एक हस्ती, एक समूचा का समूचा हाड़माँस का इंसान। यह कोई क्यों देखना नहीं चाहता? देखते हैं तो नकारात्मक भाव के साथ कि वह पुरुषहीन है, इसलिए नहीं है।"13

समाज में भारतीय स्त्रियाँ अपनी स्वतंत्रता के साथ समझौता कर लेती है लेकिन अमेरिकन समाज की स्त्रियाँ अपनी स्वतंत्रता, अस्मिता व अस्तित्व के प्रति चेतनशील रहती है। इसका सजीव चित्रांकन सोनल के माध्यम से लेखिका ने 'न भेज्यो बिदेस' उपन्यास में व्यक्त किया है। "अमरीकन संस्कृति का सबसे मजबूत हिस्सा है मैं...। पहले मैं, मेरा स्वास्थ्य, मेरी सुरक्षा, मेरी आज़ादी, उस सबसे बाद आता है घर, पति, बच्चे या समाज के अन्य स्त्री-शोषण करने वाले प्राणी।"14 इससे स्पष्ट होता है कि वर्तमान में स्त्रियाँ समानता के पक्षधर है। तथा स्वाभिमान व आत्मसम्मान के साथ समाज में जीवन व्यतीत करना चाहती है।

'नक़्क़ाशीदार केबिनेट' उपन्यास में वृद्ध दंपत्ति डनिस और रॉबर्ट अमेरिका में अकेले, आत्मनिर्भर व आत्मसम्मान का जीवन व्यतीत करते हैं। इस प्रकार के भावनात्मक प्रेम को देखकर सोनल को अजीब लगता है। क्योंकि वह भारत में संयुक्त परिवार में रही है। सोनल को वृद्ध दंपति जवाब देते हुए कहते हैं। "जब तक हाथ-पाँव काम कर रहे हैं, हम किसी पर भी यहाँ तक कि बच्चों पर भी निर्भर नहीं रहना चाहते। जब शरीर साथ छोड़ेगा, तो उन्होंने ही हमारी देखभाल करनी है। अभी से उन्हें क्यों परेशान करें!"15 विकसित समाज में किसी भी वर्ग का व्यक्ति दूसरे पर निर्भर नहीं होना चाहता।

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि प्रवासी लेखिकाओं ने स्त्री अंतर्मन की संवेदनाओं और यथार्थ अनुभूतियों को साहित्य के माध्यम से संप्रेषित किया है। प्रवासी परिवेश में व्यक्ति स्वतंत्रता की माँग अधिक परिलक्षित होती है। आधुनिक समय और समाज में आकर स्त्रियाँ स्वावलंबी बनने लगी हैं। अमेरिका में नई ऊर्जा को लिए नए जीवन और नए मूल्यों का निरंतर सर्जन कर रही हैं।

000

संदर्भ- 1-प्रसाद, इला, रोशनी आधी अधूरी सी, दिल्ली:भावना प्रकाशन, संस्करण 2016, पृष्ठ 149, 2-स्मिथ, ब्रैडफोर्ड, अनुवाद कृष्णचन्द्र, अमेरिका की संस्कृति, नई दिल्ली: यूरेशिया पब्लिशिंग हाउस प्राइवेट लिमिटेड, संस्करण 1957, पृष्ठ 54, 3-संपादक- नियाज(डॉ.) शगुफ्ता, अनुसंधान (त्रैमासिक), वर्ष- जुलाई 2020-मार्च 2021, कानपुर :विकास प्रकाशन, पृष्ठ 161, 4-प्रियदर्शनी, सुदर्शन, न भेज्यो बिदेस, नई दिल्ली:नमन प्रकाशन, संस्करण 2013, पृष्ठ 89, 5-बेदी, सुषम, हवन, नई दिल्ली:हिन्द पॉकेट बुक्स, संस्करण 2014, पृष्ठ 186, 6-वही, पृष्ठ 10, 7-वही, पृष्ठ 10, 8-एन, मोहनन, समकालीन हिन्दी उपन्यास, दिल्ली:वाणी प्रकाशन, संस्करण 2013, पृष्ठ 125, 9-प्रियवंदा, उषा, शेषयात्रा, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, संस्करण 1984, पृष्ठ 61, 10-राय, गोपाल, हिन्दी उपन्यास का इतिहास, दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2005, पृष्ठ 420, 11-वही, पृष्ठ 421, 12-बेदी, सुषम, हवन, नई दिल्ली:हिन्द पॉकेट बुक्स, संस्करण 2014, पृष्ठ 9, 13-श्रीधर, प्रो. प्रदीप, सुषम बेदी का रचना संसार, कानपुर: विनय प्रकाशन, संस्करण 2021, पृष्ठ 191, 14-प्रियदर्शनी, सुदर्शन, न भेज्यो बिदेस, नई दिल्ली: नमन प्रकाशन, संस्करण 2013, पृष्ठ 37, 15-ढींगरा, सुधा ओम, नक़्क़ाशीदार केबिनेट, सिहोर: शिवना प्रकाशन, 2016, पृष्ठ 67

(शोध आलेख)

जैनेंदर : एक मनोविश्लेषणवादी विचारक के रूप में

शोध लेखक : राखी

जैनेंदर का पहला कहानी संग्रह फांसी है जिसमे उनकी 11 कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं जिनमे से 5 कहानियों के जरिये जैनेंदर की एक अनोखी सोच को समझने के लिए इन कहानियों को प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया गया है इस कहानी संग्रह ने उन्हें एक प्रसिद्ध कहानीकार बना दिया। जैनेंदर रचनावली 4 की भूमिका में उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि ये कहानियाँ जहाँ है उसमे कई बरस के अंतर पर मैं आज हूँ। इन कहानियों में मैं अपने को ख़ूब अच्छी तरह और ख़ूब प्रसन्न व प्रेम के साथ पहचानता हूँ, कभी न कहने दूँगा, इन्हें और कोई लिख सकता। अंतिम क्षण तक कहूँगा ये मैंने लिखी।

जैनेंदरजी ने अपने पहले कहानी संग्रह की भूमिका में कहा है कि "कण हमारी बुद्धि का परिणाम है। हम समग्र नहीं देख सकते उसे खंडित करके देखते हैं, क्योंकि हम खंड हैं, इसी से बालक देखता है, दिन आदमी को बूढ़ा कर देते हैं और वृद्ध मानता है दिन पाने से आदमी पकता है दोनों ठीक हैं।

जिस समय प्रेमचंद सामाजिक पृष्ठभूमि के उपन्यास और कहानियाँ लिखकर जनता को जीवन की सच्चाइयों से जोड़ने के काम मे महारथ सिद्ध कर रहे थे, जब गद्य प्रेमचंद के नाम से जाना जाता था उस समय नई लहर के मध्य से एक बिलकुल नई धारा को प्रवाह करना ख़ुद में ही चुनौती था। जीवन और व्यक्ति की बंधी लकीरों से हटा कर देखने वाले जैनेंदर के साहित्य ने हिन्दी साहित्य को नई दिशा की ओर मोड़ा, जैनेन्द्र के बाद अज्ञेय ने भी इसी विचारधारा को अपनाया।

जैनेंदर पर फ्राइड के चेतन अचेतन का प्रभाव दिखाई पड़ता है जिससे उन्होंने कहानी और उपन्यासकारों के स्तर से उठकर चरित्र और मनोवैज्ञानिक सत्य पर एक सशक्त मनोवैज्ञानिक कथा धरा का प्रवर्तन किया। उन्होंने बहुत सरल एवं अनौपचारिक सी दिखने वाली शैली में समाज, राजनीति, अर्थनीति एवं दर्शन से संबंधित गहन प्रश्नों को सुलझाने की कोशिश की है। गांधीवाद को उन्होंने बहुत ही गहराई से हृदय में बसाये रखा जिसका प्रभाव इनकी कहानियों में भी देखने को मिला जो अत्यंत ही स्पष्ट और दुर्लभ है।

जैनेंदर का कथन- कहानी एक भूख है जो निरंतर समाधान पाने की कोशिश करती है।

जैनेंदर की फाँसी कहानी संग्रह में पहली कहानी फाँसी नाम से ही है जिसमें इस कहानी का पात्र शमशेर है जिसका सामान्य नाम मोहन सिंह होता है जो एक 35 वर्षीय है जो परिधान के नाम पर 24 घंटे एक लंगोट बाँधे रखता है। उस पर 10000 रुपये का इनाम भी है। वह एक सहृदयी डाकू होता है जो, ग़रीबों, असहायों, माताओं, की मदद करने को हमेशा तत्पर रहता है। इसमें एक पात्र कर्नल ग्रेटहार्ट भी है जो पहले तो उसको एक डाकू रूप में पकड़ने आता है पर बाद में जब शमशेर कर्नल को अपने साथ ले जाता है तो उसके व्यव्हार से कर्नल का हृदय परिवर्तन होने

राखी
कमरा नंबर सी- 119, सड़क क्रमांक 11,
खजूरी ख़ास, नई दिल्ली
मोबाइल- 8920562936
ईमेल- rakhigauravkr5314@gmail.com

लगता है। शमशेर की मनस्थिति तब बिगड़ती है जब अफसर सिवेस द्वारा उसकी पालने वाली माँ को गोली लगती है तथा वह मर जाती है। शमशेर अपने ही मनोभाव में सिमट सा जाता है तथा अफसर उसकी माँ का अंतिम संस्कार करने की इजाज़त नहीं देता वह उसे गिरफ्तार करके ले जाते हैं जहाँ वह फरार हो जाता है पर अब वह जीना ही नहीं चाहता। वह अपने मित्र के पास जाता है तथा जो उसकेपास 10000 रुपये होते उन्हें देकर बोलता है मेरे जीवन का अब कोई आशय नहीं मेरे पास ऐसा कुछ नहीं है जिसके लिए मैं जीना चाहूँ। उसकी मनोदशा बिगड़ जाती है और वह अपने अंदर चल रहे द्वंद्व को पूरी तरह अपना लेता है और सरेंडर कर देता है। जिसके बाद उसे फाँसी दे दी जाती है और अंत में उसके पास पानी के सिवा कोई इच्छा शेष नहीं बचती।

जैनेंदर की इस संग्रह में दूसरी कहानी निर्मम है जिसका पात्र शिवाजी शिव है जो मराठा है शिव वह शक्ति है जो सब कुछ सह सकता है परन्तु असफलता नहीं। वह उस धातु का बना है जिसके अलौकिक वीर बने होते हैं। जिससे अल्छेंदर बना था, जो धातु मुड़ना नहीं जानती टूट भले ही जाए। पर एक समय में जब वह अपने कार्य से अवकाश लेकर टहल रहा था तब वह अपने जीवन की सच्ची अनुभूतियाँ कसक उठने वाली स्मृतियाँ और प्रजलित कर देने वाली चिंताएँ- मन जीवन की समग्र तना अपने डोरे समेटकर आ इकठ्ठी होती है। वह डोरे फैलते है, उलझते हैं, और सुलझते है, किन्तु उतने सुलझते नहीं जितना उलझ जाते हैं। वह अपने अंतर्मन से द्वंद्व करता है तथा सब कुछ छोड़ने के लिए तैयार हो जाता है। वह एक स्वतंत्र जीवन जीना चाहता है एक खुली चिड़िया की तरह परन्तु उसका कर्म राजा का है वह इसी स्थिति में उलझा रहता है। अंत में वह अपने गुरु के पास जाता है स्वामी रामदास ने स्पष्ट देखा कि शिव की वितर्श्ना सच्ची है फिर भी मोह जनी है जो सामने सरस दिख पड़ता है उससे ललचाकर अपने में यह विराग उसने उत्पन्न किया है। जिसको गुरु अपने ज्ञान के प्रकाश से उज्जवलित करते हैं तथा शिव को उसका कर्म याद दिलाते हैं। कर्म अनिवार्य है और मनुष्य नितांत स्वतंत्र नहीं है। तुम्हारा मार्ग राजा का है मेरा साधू का इस तरह गुरुवर की बात से शिव की आत्मा को इन शब्दों से बोध तो हुआ परन्तु हृदय की व्यथा पूरी न मिट पायी। फिर भी वह गुरु का आदेश मानकर अपने कर्म करने को तैयार हो जाता है जिसके बाद वह सिर्फ अपने मस्तिष्क का प्रयोग करता है तथा हृदय को दबा लेता है।

कहानी ग़दर में जैनेंदर ने सन 57 में उठे ऐसे विद्रोह की एक घटना का वर्णन किया है जिसमे बलवाई ने अंग्रेजों पर हमला किया उस हमले में कर्नल की पत्नी का अपने बच्चे को लेकर दंगों में बाहर निकल जाना। कर्नल की पत्नी अपने बच्चे को कई कपड़ों की तह में लपेटकर उसे कसकर पुरे में घुस गई। उसे देखकर पुरे के आदमियों में एक आनंद सा आ गया यह सोचकर कि जिन्होंने उन पर राज्य करने का दम्भ किया, उन सबकी दुर्गति का ख्याल उनके मन में पनप रहा था। मैडम ने उन्हें देखकर पीने के लिए पानी माँगा। रहमत उस समय भयानक जंतु दिख पड़ रहा था। उसने कर्नल की पत्नी से बच्चा अपनी गोद में लेकर बारी बारी से अपने साथियों के साथ उसे गेंद की तरह हवा में उछाल उछाल कर खेला और कुछ ही समय में उस बच्चे को ऊपर उछाल कर छोड़ दिया। जिससे उसकी माँ के ही सामने उसके बच्चे को मार दिया गया... तभी चौधरी आया। चौधरी 45 बरस का होगा और जवानों में दर्शनीय था। चौधरी पहले अंग्रेजी फौज में ही था। पर खून बहाना, अपना काम बनाना उसे अखरने लगा, तो उसने नौकरी छोड़ दी थी.....इस घटना के बाद चौधरी ने सभी आदमियों को कर्नल की पत्नी के पैरों में गिराकर माफ़ी मँगवाई और अंत में चौधरी स्वयं उस महिला के पैरों में पड़ कर रोया "उठो माई एक पाप की एवज हम सब और हमारा यह हिंदुस्तान देगा"। चौधरी कर्नल की पत्नी को अपने घर सुरक्षित ले गया। कुछ समय बाद सब शांत होते ही अंग्रेजों की अमलदारी फिर हो गई, कर्नल अब मजिस्ट्रेट है न्यायधीश है उन्हें उनकी पत्नी मिल गई। यह तर्क शक्ति का है और आपति में शक्ति का राज्य न हो तो धरती विद्रंश हो जाए! इस शक्ति राज्य का नाम है "मार्शल लॉ"। इसका अर्थ है कानून शक्ति की मुट्ठी में! तब न्याय को आले में बिठा दिया जाता है राजधर्म, नीतिधर्म आदि धर्मशास्त्रों को भगवतभजन करने दिया जाता है। अब कर्नल ने चौधरी और उसके साथियों को फाँसी की सज़ा दे दी। जब यह उसकी पत्नी को पता चला तो उसने बताया कि उस समय एक चौधरी ही था जिसने उसे बचाया, ख़ुद मेरे पैरों में पड़ कर मुझे माँ कहा। महिला ने अंत में चौधरी के शव का सम्मान किया तथा जहाँ उसका शव जला था वहीं यमुना किनारे कई साल तक एक झोंपड़ी में रही।

"स्पर्धा" इस कहानी में जैनेंदर ने दो मित्रों गिडिटो और बेंजिलो के बारे में बताया है। दोनों कॉलेज में पढने वाले 'कार्बोनारी' के सदस्य हैं। आपस में दोनों नहीं जानते की समिति में किस-किस का क्या स्थान है। गिडिटो समिति की सबसे ऊँची तीन आदमियों नायक गोष्ठी का भी सदस्य है। इधर बेंजिलो का समिति के भीतर ही अपने लोगों का गुपचुप एक अलग गुट है। दोनों के ही व्यक्तित्व में, हृदय में और मष्तिष्क में एक अलग कोना हैदोनों क्रांतिवादी हैं, पर बेंजिलो जैसे 'क्रांति का तर्क है'। तर्क परिणाम के भले-बुरे की चिंता नहीं करता वैसे ही बेंजिलो है लेकिन गिडिटो जैसे 'क्रांति की फिलोसोफी है'। फिलोसफी, तर्क का पोषण करती है। बेंजिलो नेपोलियन बनना चाहता है, गिडिटो अपना आदर्श किसी ऐतिहासिक पुरुष में बंद नहीं करता यह उस समय की बात है जब ऑस्ट्रेलियाई ने इटली पर आक्रमण किया था। गिडिटो, एंटीनों, लॉरेंजोएक ही समिति के सदस्य है जिसमे से एक सदस्य एल्बर्ट पाँच दिन पहले ही उन्हें छोड़ पीडमोंट की गद्दी पर है और उसके सिर पर ताज है। इस पर गिडिटो का मत है की उनकी लड़ाई ऑस्ट्रिया के ख़िलाफ़ है इसलिए पहला काम इटली को एक राष्ट्र, एक आवाज़ और एक शक्ति बना देना है। यह काम पीडमोंट की गद्दी को तहस-नहस करने से नहीं होगा, जिस पर तीनों की सहमति होती है। एक पन्ना पलट कर

एंटीनों पढना शुरू करता है "सोमवार तारीख 19 मार्च को सभा हुई। सर्वसम्मिति से तय होता है कि जो ऑस्ट्रिया की अधीनता स्वीकार करता है प्रजासत्ता का दुश्मन है इसलिए वह हमारा भी दुश्मन है परन्तु गिडिटो अपनी बात पर अडिग रहते हैं। लॉरेंजो कहते हैं "अनुशाशन एक चीज़ है उसमे ढील आई कि संघठन भी ढीला हुआ कर्तव्य को खोकर मेल बढ़ने से हम न बढ़ेंगे।" एक संध्या जब बेंजिलो चार घंटे तक भी कमरे में न आया तो गिडिटो उसे ढूँढ़ता हुआ मेरीथ के घर पहुँच गया। मेरिथ समिति की अत्यंत तत्पर सदस्य है और यदि गिडिटो न होता तो वह बेंजिलो की विवाहिता होती। गिडिटो को बेंजिलो एक सभा मे मिला, उस सभा में बेंजिलो को पता चलता है कि गिडिटो ही नायक है गिडिटो ने जेब से तिरंगे का टुकड़ा निकालकर सभा बर्खास्त करने को कहा जिससे बेंजिलो के होश उड़ गए और यह बात मैरीथ को भी पता नहीं थीक रात बेंजिलो एल्बर्ट के कमरे पर जाता है और दोनों के बीच गरमा गर्मी वाला संवाद चलता है। थोड़ी देर में दोनों एक दूसरे पर पिस्तौल चला देते हैं इसी बीच गिडिटो आकर बेंजिलो के हाथ से पिस्तौल छिनकर थप्पड़ जड़ देता है और उसे वहाँ से भगा देता है और एल्बर्ट के सिपाही आकर गिडिटो को पकड़ लेते है उसकी बाँह पर गोली लगी थी उस पर संगीन आरोप थे वह रात को महाराज के कमरे में पिस्तौल के साथ पाया गया था। एल्बर्ट के साथ संबंध अच्छे होने से वह छोड़ दिया जाता है। बेंजिलो का अपराध अक्षम्य होता है इसलिए वह दोषी पाया जाता है। उसके ख़िलाफ़ एक प्राण-दंड तैयार किया जाता है शनिवार की रात झील की सैर करने दोनों ने ख़ूब शराब पी रखी थी पर गिडिटो होश में था दोनों ने इधर उधर की बात की, बेंजिलो ने मैरिथ के चेहरे पर गिडिटो के प्रति चिंता देखी और फिर गिडिटो पर पिस्तौल तान दी पर एकाएक गोली उसकी छाती में लगी और वह ढह गया। चर्च के घेरे की ज़मीन पर ही उसकी लाश को गड्ढ़े में दफना दिया गया और गिडिटो मुँह लटकाए खड़ा रह गया।

"जयसंधि" यह कहानी सामंत यशोविजय की है जो अपने दृढ भुजबल और आत्मविश्वास के बल पर मंडलेश्वर बन गए। यशोविजय एक ऐसी केंद्रीय शक्ति को उदय में लाना और प्रतिष्ठित करना होगा जो सब राजाओं के दर्प को भंग करके उनमें एक सूत्रता लाये और महाराष्ट्र में अखंडता की नींव रखी जाए। परन्तु इससे पहले उसे उन सभी राजाओं को आपस में मिलाना होगा उन राजाओं में से एक राजा जयवीर भी है जो उनका बहनोई है। यशोविजय की पत्नी वसंत्तालिका उससे युद्ध टालने की बात करती है परन्तु यशोविजय उसे समझाने का प्रयत्न करते है कि नवसर्जन के इस संक्रांति काल में वह जयवीर का साथ चाहता है। यशोविजय, जयवीर के पास संधि के लिए दूत भी भेजते हैं 30 में से 21 राज्यों के राजाओं ने विधान का मसविदा मान लिया परन्तु जयवीर राज़ी नहीं है। यह युद्ध टल जाए इसलिए संधि प्रस्ताव लेकर वसंतालिका जयवीर के पास जाती है किंतु जयवीर चाहता है की संघ में यशोविजय न जाए न अधिनायक पद के लिए खड़ा हो ताकि वह संघ का अधिनायक बन सके परन्तु यह बात जयवीर की पत्नी, वसंतालिका की बहन यशीस्तल्काको मान्य नहीं थी वह चाहती थी यशोविजय ही अधिनायक बने इसलिए संधि नहीं चाहती थी। वसंतालिका बहन के लिए यशोविजय का एक मोहरबंद पत्र लायी थी जिसे पढ़ कर वह पीली पड़ गई। यशोविजय तथा यशीस्तल्का का आपस में प्रेम था। परन्तु वसंतालिका की संधि की सारी कोशिशें नाकाम हुई। यशोविजय आधी रात को यशीस्तल्का के शयनकक्ष में गए तथा उसे समझाने लगे की युद्ध अनिवार्य नहीं है। राष्ट्रसंघ का सपना "मेरा अब पुराना है, जब पहले कवि था जब यह सपना था, आज राजा हूँ तब भी....यदि वह गया तो किसके लिए रह जाऊँगा?" यशोविजय जयवीर के कक्ष में जाने वाला ही होता है परन्तु यशीस्तल्का उसे रोक कर कहती है की विजय बनो। मैं तुम्हारे रस्ते में किसी को नहीं आने दूँगी, तुमने वचन दिया था की महाराष्ट्र की एकता तुम्हारा व्रत होगा और बीच में कोई तुम्हें नहीं रोक पायेगा। प्रेमवश फैलाई तुम्हारी घृणा मेरा उपकार न कर सकेगी यह कहकर यशोविजय जयवीर के कक्ष में चले गए। अगले दिन जयवीर संधि के लिए तैयार हो गए और दोनों ओर मंत्रियों की मंत्रणा एक तीसरे स्थान पर होनी तय पाई गई जयवीर ने बताया कि यशोविजय कल रात उसके कक्ष में आए और कहा कि वह अधिनायक के लिए मेरा समर्थन करेगा और चुनाव में खड़ा न होगा। दोनों अपने-अपने राज्यों को मिला लेंगे और वह जयवीर के अधीन मंत्री होने को तैयार है। शर्त यह है कि सम्मिल्लित राज्य संघ का समर्थन करे, इसलिए यह जयसंधि स्वीकार की जाती है अंत में यशीस्तल्का को भी यह बात स्वीकार करनी पड़ती है।

"इस कहानी संग्रह में जैनेंदर की विशिष्ट कहानियाँ हैं जिससे उनका एक अलग ही रूप स्पष्ट हुआ है जैनेंदर ने इन कहानियों के पात्रों की मानसिक स्थिति की मनोवैज्ञानिक व्याख्या बहुत सफल ढंग से प्रदर्शित की है और जैनेंदर के पात्र यथार्थवादी हैं जिनके साथ पाठकों की एक सहानुभूति होती है मुझे इनके इस संग्रह को पढ़कर एक नया अनुभव मिला है। हिन्दी कहानी ने प्रयोगशीलता का नया पथ जैनेंदर से ही सिखा है वे अपने पथ के अनूठे अन्वेषक थे जिन्होंने हिन्दी गद्य को एक विशिष्ट स्थान पर पहुँचाया है।

आज के हिन्दी गद्य पर जैनेंदर की अमिट छाप है–रविन्द्रकालिया

हिन्दी गद्य साहित्य में जैनेंदर का अविस्मरणीय योगदान है।

000

सन्दर्भ -

1 .जैनेंदर कुमार परिचय (हिन्दी) गद्यकोश, 2.जैनेंदर कुमार की कहानी कला : उदंती डॉट कॉम, 3.जैनेंदर रचनावली खण्ड 4 प्रकाशन : भारतीय ज्ञानपीठ, लोधी रोड, दिल्ली।, 4.जैनेंदर रचनावली 4 प्रष्ठ संख्या 11, 5.जैनेंदर रचनावली 4 पृष्ठ संख्या 20, 6.जैनेंदर रचनावली 4 पृष्ठ संख्या 25, 7.जैनेंदर रचनावली 4 पृष्ठ संख्या 32, 8.जैनेंदर रचनावली 4 पृष्ठ संख्या 48, 9.जैनेंदर रचनावली 4 पृष्ठ संख्या 68, 10.जैनेंदर रचनावली 4 पृष्ठ संख्या 80

(शोध आलेख)

डॉ. मधुकांत की सामाजिक उत्थान की लघुकथाओं में 'स्त्री-विमर्श'

शोध लेखक : सोमबीर
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक
शोध निर्देशक : प्रो. पुष्पा रानी
हिन्दी विभाग, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

सोमबीर
गाँव व डाकघर- नौताना,
तहसील- कनीना,
जिला- महेंद्रगढ़ (हरियाणा)
पिन कोड- 123027
मोबाइल- 9991150098, 7988116285

विमर्श का अर्थ है- जीवंत बहस। किसी भी समस्या या स्थिति को एक कोण से न देखकर भिन्न दृष्टियों, संस्कारों का समाहार करते हुए उलट-पुलट कर देखना और फिर मानवीय संदर्भों में निष्कर्ष प्राप्ति की चेष्टा करना। हिन्दी में विमर्श शब्द अंग्रेजी के "डिसकोर्स (Discourse)" शब्द से आया है जिसका अर्थ है- वर्ण्य विषय पर सुदीर्घ एवं गंभीर चिंतन- मनन।

स्त्री-विमर्श अर्थ एवं स्वरूप- स्त्री-विमर्श का अर्थ है - स्त्री को केंद्र में रखकर समाज, संस्कृति, परंपरा एवं इतिहास का पुनरीक्षण करते हुए स्त्री की स्थिति पर मानवीय दृष्टि से विचार करने की अनवरत प्रक्रिया।

स्त्री-विमर्श का अर्थ है- "स्त्री जाति को एक नए नजरिए से देखने और दिखाने का प्रयत्न। सदियों से सताई गई स्त्रियों के दर्द का बयान और विद्रोह तत्वों की खोज।"1

एक अन्य अर्थ- "स्त्री के अनुभूति मंडल के आलोक में घटनाओं का विश्लेषण, पुरुष में स्त्री का नज़रिया विकसित कर उसे अर्धनारीश्वर की गरिमा देना।"2

परिभाषा :-

डॉ. सुमन राजे के अनुसार, "बीसवीं सदी के मुक्ति- संघर्षों में स्त्री का मुक्ति- संघर्ष शायद सबसे अधिक मूलगामी और सार्वभौमिक रहा है। सबसे अधिक अहिंसक, रक्तहीन और सत्याग्रही भी।... वह एक साथ आत्मसंघर्ष, आत्मबोध, आत्मविश्लेषण और आत्माभिव्यक्ति का संघर्ष भी रहा है।"3

डॉ. रोहिणी अग्रवाल के अनुसार, "पुरुष वर्चस्व को ललकारने, नकारने वाली महिलाएँ समाज में किसी मुकाम तक नहीं पहुँच पाई, स्वयं टूट - टूटकर बिखरती रही हैं लेकिन उनका यह टूटना अकारथ नहीं है वरन् अमीबा की तरह कई-कई हिस्सों में विभक्त हो अपनी चेतना को निरंतर विकसित - प्रसारित करना है। इसलिए भले ही पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था को वह हिला नहीं पाई है लेकिन पुरुष के नर - पशु रूप को उद्घाटित कर उसने नारी को 'मानवी' समझने की माँग की है।"4

डॉ. अर्जुन चव्हान के अनुसार, "स्त्री-विमर्श और कुछ नहीं अपनी 'अस्मिता' की पहचान, 'स्व' की चिंता, अस्तित्व बोध और अधिकार को जतलाने और बतलाने का विचार चिंतन है।"5

स्त्री - विमर्श एक वैचारिक आंदोलन है। यह आंदोलन स्त्रियों के अधिकारों की माँग करते हुए स्त्री मुक्ति चाहता है और वह आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, वैचारिक एवं लिंग केंद्रित विभेदों को अस्वीकार कर, समान मानवीय अधिकारों की माँग भी करता है। सच तो यह है कि स्त्री को अपने अस्तित्व के बौद्ध ने विमर्श की प्रेरणा दी। आत्मसमर्पण और पुरुष की एकाधिकारशाही के माहौल से स्त्री को बाहर लाने का श्रेय स्त्री-विमर्श को देना होगा। स्त्री विमर्श स्त्री को वे सारे अधिकार दिलवाने की चेष्टा है जो पुरुषों को सदियों से प्राप्त है लेकिन

स्त्री को हमेशा उनसे वंचित रखा गया है। हम सब जानते हैं कि पुरुष प्रधान संस्कृति अब समय के साथ-साथ स्त्री अपनी अस्मिता के प्रति सचेत हुई है। वर्तमान में वह अपना स्वतंत्र अस्तित्व, स्वतंत्र व्यक्तित्व और स्वतंत्र निर्णय लेना चाहती है। उसकी अपनी आत्मनिर्भरता उसकी अस्मिता की पहचान है।

आज़ादी के बाद स्त्री के तीन रूप दिखाई पड़ते हैं सर्वप्रथम वह परंपरागत शोषित स्त्री के रूप में चित्रित की गई है जहाँ वह पितृसत्तात्मक व्यवस्था की शिकार रही है, दूसरे वह नई परिस्थितियों के परिणामस्वरुप विकसित अनेकाविध समस्याओं से जूझ रही है और तीसरे आर्थिक रूप में स्वावलंबी एवं सचेत होने के कारण पितृसत्तात्मक व्यवस्था की जड़ मान्यताओं को चुनौती देने और राजनीतिक दृष्टि से सबलीकरण की दिशा में अग्रसर होने के लिए संघर्षरत है।

डॉ. मधुकांत ने अपनी सामाजिक उत्थान की लघुकथाओं में स्त्री के शोषित रूप, अनेक समस्याओं से जूझती स्त्री की स्थिति, आर्थिक रूप से स्वावलंबी स्त्री एवं सचेत होने के कारण पितृसत्तात्मक व्यवस्था की जड़ मान्यताओं को चुनौती देने और राजनीतिक दृष्टि से राजनीति में स्त्रियों की भागीदारी को दिखाया है।

प्रतिष्ठित साहित्यकार डॉ. मधुकांत की 'सामाजिक उत्थान की लघुकथाओं' को पढ़ने के पश्चात इस बात की पुष्टि होती है की आदिकाल से वर्तमान समय तक नारी उत्पीड़न व शोषण ज्यों का त्यों जारी है। आज भी वह स्वतंत्रता और समानता के लिए छटपटा रही है।

'गुलाम', 'उन्मुक्त' और 'कुतिया और माँ' लघुकथाओं में स्त्रियों पर हो रहे अत्याचार, बढ़ती हुई अमानवीयता और महिला उत्पीड़न के दर्शन होते हैं।

'गुलाम' लघुकथा में अंजना का पति अपनी पत्नी पर हाथ उठा देता है अर्थात वह अपनी पत्नी की पिटाई कर देता है। वह सोचता है कि अंजना पर हाथ उठाकर उसने अपना पौरुष तो दिखा दिया पर फिर भी वह आत्मग्लानि से भरा जा रहा है। उसने केवल अपने अधिकार की बात कही थी लेकिन फिर भी उसने उस पर अपना हाथ उठाया। वह एक सभ्य नागरिक है। वह सदैव स्त्री का सम्मान करता है लेकिन वह सोचता है कि उससे यह पागलपन कैसे हुआ? वह आत्मग्लानि से भर जाता है।

वह सोचने लगता है कि उसके दादाजी ने अपनी बेंत से उसकी दादी को सदा के लिए कुबड़ी बना दिया था। उसके पिता ने उसकी माता का चेहरा जलती हुई लकड़ी से झुलसा दिया था। वह सोचता है कि क्या वह भी अपने दादा और पिता के उन्हीं पुराने संस्कारों का गुलाम है? जहाँ पुरुष के द्वारा स्त्री का शोषण किया जाता है। वह इस परंपरा को कभी स्वीकार नहीं कर सकता है। स्त्री शोषण को इस प्रकार से दिखाया है - "हाँ... उसे ठीक याद है कि दादाजी की बेंत ने ही दादी को सदा के लिए कुबड़ी बना दिया था। माँ का चेहरा जलती हुई लकड़ी से पिताजी ने ही झुलसाया था...। तो क्या वह आज भी उन्हीं संस्कारों का गुलाम है? नहीं। वह इस परंपरा को कभी स्वीकार नहीं कर सकता... कभी नहीं।"6

'उन्मुक्त' लघुकथा में भी स्त्री का पुरुष के द्वारा शोषण दिखाया गया है - "अंजना अपने आदमकद शीशे के सामने खड़ी है... एक चित्र उसकी पुतलियों में समाया है... शराब के नशे में धुत प्रसूति अवस्था में लात - घुसों द्वारा माँ को पिताजी के द्वारा पीटना... दर्द भरी चीख... माँ का तड़पना और ढेर हो जाना... आज भी सहम गई है, वह।"7

अंजना के पिता उसकी माँ का शोषण करते हैं। वह उसकी माँ पर प्रसूति अवस्था में अत्याचार करते हैं, उसकी लात - घूसों से पिटाई करते हैं जबकि संसार का ऐसा कोई निर्दय प्राणी ही होगा जो ऐसी अवस्था में अपनी पत्नी पर अत्याचार करें।

'कुतिया और माँ' लघुकथा में बढ़ती हुई अमानवीयता को दिखाया गया है - "घर के फ़ोन की घंटी बजी तो रामू तुरंत भाग कर ड्राईंग रूम में गया। रामू ध्यान से सुनो, अपने जॉनी को पेट - क्लीनिक में ले जाना, शायद इसके पेट में दर्द है। क्लब जाते हुए रास्ते में भोंकता रहता है।"8

उसका नौकर रामू सोचता है कि इनके घर में मालकिन की सास बीमार रहती है। वह सारा दिन और सारी रात खाँसती रहती है लेकिन किसी को भी उसकी दवा-दारू की चिंता नहीं है। उसके कुत्ते जॉनी को पेट - क्लीनिक में ले जाने के लिए कहा जा रहा है। यहाँ मनुष्य की कोई कदर नहीं है। इससे अच्छा होता - "काश, साहब की माँ ने कुतिया के रूप में जन्म लिया होता..।"9

महिलाओं का जीवन घूँट-दर-घूँट दहेज रूपी कुरीतियों का जहर भी पीता रहा है। 'दुश्मन', 'दहेज के लिए दहेज', 'दहेज' व 'उन्मुक्त' दहेज से संबंधित लघुकथाएँ हैं परंतु इन लघुकथाओं में एक बात देखने को मिलती है कि इनके पात्र जागरूक और साहसी हैं। लघुकथा 'दहेज' की नायिका नीरा वर पक्ष द्वारा स्कूटर की माँग करने पर शादी से इनकार कर देती है - "मुझे ऐसे लालची आदमी से शादी नहीं करनी है।"10

'उन्मुक्त' लघुकथा की पात्र अंजना पड़ोस की नई नवेली निर्मला को कम दहेज लाने पर मिट्टी के तेल से जला दिए जाने पर क्षुब्ध है, वह फैसला करती है - "वह कभी शादी नहीं करेगी कभी नहीं, उसे दासता स्वीकार नहीं।"11

इसमें अन्याय एवं अत्याचार के ख़िलाफ़ स्त्री का पुरुष के प्रति विद्रोह दिखाया गया है। साथ ही साथ स्त्री शोषण भी दिखाया गया है।

दहेज जैसी बेमानी सामाजिक परंपराएँ किस तरह मजबूरी का जामा पहनने के लिए मजबूर कर देती हैं, लघुकथा 'दहेज के लिए दहेज' इसका सटीक उदाहरण है - "अरे पागल, दो वर्ष हो गए तुझे जूतियाँ घिसते.. कुछ तो अकल से काम ले पचास हजार नगद देगा.... निर्मला की शादी भी हो जाएगी।"12 इसमें दहेज न लेने का प्राण करने वाला मानव बहन की शादी में दहेज की माँग पूरी करने के लिए अपनी शादी में दहेज लेने के लिए विवश हो जाता है। 'दुश्मन' लघुकथा भी इसका सटीक उदाहरण है - "बेटे तू समझता नहीं।" माँ ने कहा -" घर में तो कुछ है नहीं ललिता की शादी के लिए, सोचती हूँ तेरे दहेज से उसकी शादी कर दूँगी....।"13 इस लघुकथा

में माँ बड़ी बहन से पहले अपने बेटे का विवाह केवल इसलिए करना चाहती है ताकि आए हुए दहेज से वह अपनी बेटी की शादी कर सके। कथोपकथन शैली में प्रस्तुत शानदार लघुकथा है- 'शुरुआत' वेश्यावृत्ति के धंधे में लिप्त नारी को जब एक सफेदपोश मुक्त कराकर नारी निकेतन में भेजने की बात करता है, तब वह उसे भयावह यथार्थ से अवगत कराते हुए कहती है -"वहीं से तो धंधा शुरू हुआ था।"14 इसमें नारी निकेतन की सच्चाई को उजागर किया गया है।

'जिंदा वे' लघुकथा में सबीना और मीना उनसे छेड़छाड़ कर रहे लड़कों से डरने की बजाय साहस से सामना करने के लिए कहती हैं - "मीना! यदि मरना ही है तो क्यों न लड़कर मरें.. अपराध तो वे करें और मरें हम....।"15 इसमें अन्याय एवं अत्याचार के ख़िलाफ़ स्त्री का पुरुष के प्रति विद्रोह दिखाया गया है।

'वजूद' लघुकथा में अरू अपने अस्तित्व पर आँच नहीं आने देना चाहती, वह कहती है - "शादी करने का अर्थ यह कदापि नहीं वह अपना गोत्र बदल ले।"16

'मुक्तिबोध' लघुकथा में नकारा, शराबी पति से मुक्ति की छटपटाहट है और अकेले रहने का फैसला लेकर सरसों मुक्ति महसूस करती है। इसके साथ इस लघुकथा में स्त्री के आर्थिक रूप से स्वावलंबी रूप को इस प्रकार से दिखाया गया है - "इस पर भी उसे कोई शिकायत नहीं। सुबह सफाई के लिए निकलती, दोपहर खाना इकट्ठा कर, सबका पेट पालती और सायं भी कहीं मज़दूरी मिलती तो इंकार न करती।"17

'अपना राज' लघुकथा में स्त्रियों की राजनीतिक दृष्टि से भागीदारी को दिखाया गया है। पंचायत चुनाव में सरपंच पद के लिए महिलाओं की सीट आरक्षित कर दी जाती है। कई दिन सोच विचार करने के बाद उसने अपनी पत्नी से चुनाव लड़वाने का निर्णय ले लिया। पत्नी को पहली बार जब उसने बताया तो उसने एकदम मना कर दिया - "राज-पाट चलाना के औरतों का काम से" पत्नी ने कहा तो उसने तर्क दिया- "इंदिरा गांधी के औरत नहीं थी।"18 इसके बाद वह सर्वसम्मति से सरपंच बना दी जाती है। सरपंच बनने के बाद वह सारे फैसले स्वयं लेती है।

निष्कर्ष - कह सकते हैं कि सरल, सहज, संप्रेष्य भाषा में प्रस्तुत इन लघु कथाओं के नारी पात्र चैतन्य व जिजीविषा संपन्न हैं। ये नायिकाएँ सामाजिक विसंगतियों, असंगतियों, कुंठाओं व दंशों से जूझती नज़र आती है। वे त्याग, बलिदान और समर्पण जैसे शब्दों की आड़ में अपने व्यक्तित्व को कुंठित नहीं करती। शिक्षा के मंत्र से अभिमंत्रित होकर ये पात्र इक्कीसवीं सदी की सशक्त महिला की दस्तक महसूस कराते हैं।

000

संदर्भ- संदर्भ - 1.(समीक्षा संपादक) गोपालराय, हरदयाल, पृष्ठ-104, 2.डॉ. अनामिका, स्त्रीत्व का मानचित्र, पृष्ठ- 13, 3.डॉ. सुमन राजे, हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास, पृष्ठ- 302, 4.डॉ. रोहिणी अग्रवाल, इतिवृत की संचेतना और स्वरूप, पृष्ठ-162, 5.डॉ. अर्जुन चव्हान, विमर्श के विविध आयाम, पृष्ठ- 29, 6. डॉ. मधुकांत, सामाजिक उत्थान की लघुकथाएँ (गुलाम), पृष्ठ- 45, 7. डॉ. मधुकांत, सामाजिक उत्थान की लघुकथाएँ (उन्मुक्त), पृष्ठ- 47, 8.डॉ. मधुकांत, सामाजिक उत्थान की लघुकथाएँ (कुत्तिया और माँ), पृष्ठ- 53, 9. वही, पृष्ठ-53, 10. डॉ. मधुकांत, सामाजिक उत्थान की लघुकथाएँ (दहेज), पृष्ठ- 49, 11. डॉ. मधुकांत, सामाजिक उत्थान की लघुकथाएँ (उन्मुक्त), पृष्ठ- 47, 12. डॉ. मधुकांत, सामाजिक उत्थान की लघुकथाएँ (दहेज के लिए दहेज), पृष्ठ- 50, 13. डॉ. मधुकांत, सामाजिक उत्थान की लघुकथाएँ (दुश्मन), पृष्ठ-51, 14. डॉ. मधुकांत, सामाजिक उत्थान की लघुकथाएँ (शुरुआत), पृष्ठ- 43, 15. डॉ.मधुकांत, सामाजिक उत्थान की लघुकथाएँ (जिंदा वे), पृष्ठ- 44, 16.डॉ. मधुकांत, सामाजिक उत्थान की लघुकथाएँ (वजूद), पृष्ठ- 52, 17.डॉ. मधुकांत, सामाजिक उत्थान की लघुकथाएँ (मुक्तिबोध), पृष्ठ- 46, 18. डॉ. मधुकांत, सामाजिक उत्थान की लघुकथाएँ (अपना राज), पृष्ठ- 78

नई पुस्तक

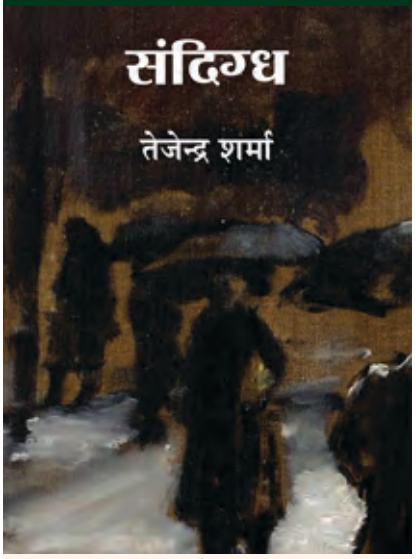

(कहानी संग्रह)

संदिग्ध

लेखक : तेजेन्द्र शर्मा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

हिन्दी के वरिष्ठ कथाकार तेजेन्द्र शर्मा की नयी कहानियों का यह संग्रह शिवना प्रकाशन से प्रकाशित होकर आया है। इस संग्रह में तेजेन्द्र शर्मा की पन्द्रह कहानियाँ संकलित हैं। यह सभी कहानियाँ अभी हाल के दिनों में ही लिखी गयी कहानियाँ हैं। संग्रह की इन कहानियों में विषय विविधता के साथ वैश्विक परिवर्तन की भी झलक पाठकों को मिलेगी।

युवा समीक्षक तेजस पूनिया ने पुस्तक पर अपनी भूमिका में लिखा है- 'तेजेन्द्र शर्मा की कहानियों में आपको भाषा की विविधता भी नजर आती है। अंग्रेजी, हिंदी, पंजाबी, उर्दू मिश्रित अंदाज में जिस तरह उनके पात्र बोलते हैं, संवाद करते हैं, आपको पल में तोला हंसाते हैं और पल में माशा रुलाते हैं वह उनके लेखन कर्म को ही नहीं अपितु पाठक के पाठकीय कर्म को भी सोलह आने सच बना देते हैं। आम जीवन से ली गई कहानियों को, यथार्थ किस्सों को जिस तरह कल्पना और यथार्थ के मिश्रण के साथ तेजेन्द्र शर्मा प्रस्तुत करते हैं वह इन्हें साहित्य की दुनिया में भीड़ से कहीं अलग खड़ा करता है।'

000

(शोध आलेख)

'सौंदर्य जल में नर्मदा' में निहित वैश्विक व व्यापक इतिहास दृष्टि

शोध लेखक : गौरव गौतम
शोधार्थी, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर
शोध निर्देशक : डॉ. वंदना अग्निहोत्री, पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, माता जीजाबाई शासकीय स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय

गौरव गौतम,
218 श्री मंगल नगर, आदर्श विहार स्कूल के सामने, कनिष्क डेयरी के पास,
बिछौली, इन्दौर 452016 मप्र
मोबाइल - 6263610187
ईमेल - gaurav7222919271@gmail.com

प्रोफेसर आनंद कुमार सिंह भारतमुखी चेतना के प्रतिनिधि रचनाकार हैं। उनके काव्य, आलोचना लेखन और उनके द्वारा किए गए अनुवादों के केंद्र में भारतीय इतिहास और संस्कृति है। 'अथर्वा: मैं वहीं वन हूँ' में वैदिक काल से लेकर 21 वी शताब्दी के दूसरे दशक तक की घटनाओं के मर्म को जाँचा, परखा गया है। आनंद जी ने स्वामी विवेकानंद के इतिहासबोध, उनके भारतबोध को अपनी कृति 'विवेकानंद' में सहेजा है। हिन्दी के आधुनिक युग के महान साहित्यकार 'अज्ञेय' पर शिविरबद्ध आलोचनात्मक लेखन ने उनकी सामाजिकता को लेकर सवाल उठाये और उन पर तरह- तरह के आक्षेप लगाए। आनंद जी ने उनकी ('अज्ञेय' की) रचनाओं से गुज़रते हुए उनके काव्य में मौजूद "सामाजिकी" को अपनी कृति 'सन्नाटे के छंद' में लेखबद्ध किया। औपनिवेशिक मानसिकता से ग्रस्त बुद्धजीवी स्वार्थ, लोभ, द्वेष व अन्य कारण से सनातन परम्परा व उसमें पूजित देवताओं पर अनर्गल, अभद्र टिप्पणी करते रहते हैं साथ ही जनसामान्य को मूर्ख समझकर उन्हें भी बरगलाने का प्रयास करते है। आनंद जी ने गणपति ऑकल्ट्, 'शिव ऑकल्ट् व 'शक्ति ऑकल्ट् 'के माध्यम से बुद्धजीवियों की आँखों में मौजूद पर्दे को हटाने का कार्य किया है साथ ही आमजन के लिए संस्कृत में मौजूद पारम्परिक ज्ञान को हिन्दी व अंग्रेजी भाषा में उपलब्ध कराया है।

'सौंदर्य जल में नर्मदा' में भी कवि आनंद कुमार की दृष्टि से नर्मदा व उसके किनारों में मौजूद अतीत ओझल नहीं होने पाया है। नदी कवि की चेतना में घुल गई है जिससे कवि नदियों के बहाव से फूटते शब्द को सुन पाता है। इस चैतन्य की भाषा को समझना इतना आसान नहीं। क्योंकि इसके लिए अपने अहं को अलगाकर नदी से जुड़ना होगा। जो केवल सैलानी के लिए संभव नहीं है। इसके लिए ऐसा साधक होना होगा जो अपनी साधना के लिए प्रतिबद्ध इस कदर हो कि उसे अपनी प्रतिबद्धता का बोध ही न हो।

'सौंदर्य जल में नर्मदा' में मौजूद इतिहासदृष्टि को देखने से पहले यह जान लेना जरूरी है कि यहाँ इतिहास 'History' का पर्याय नहीं है। 'History' का अर्थ अतीत की घटनाएँ, किसी व्यक्ति या वस्तु से संबद्ध घटनाओं के तथ्य से है। किंतु 'इतिहास' शब्द में अर्थ की व्यापकता है

इसमें जातीय स्मृति, देश की सांस्कृतिक धरोहर का चित्रण शामिल है। इसमें घटनाओं से ज़्यादा उसके अंतर्मर्म को समझने पर ज़ोर दिया जाता है तथा यह भूत, वर्तमान व भविश्य का निदर्शन है। (1) इसी कारण नर्मदा केवल ढलान होने की वजह से बहती नहीं है बल्कि कई वर्षों से तपस्या का शांतिपथ रचती है- सहस्त्राब्दियों से अनथकी / सुनील रूप ज्योति में पली हुई / सुगंध की शिखा को लपेटती कदंब से / रुकी- रुकी / इसी अंधकार में / टकराती वासना के गर्त से / रचती हो तपस्या का शांतिपथ! (2)

इसी पथ पर कवि अकेला चलता है। अपनी मन की आँखों से वह देखता है कि - नर्मदा की धारा के दोनों तट / शताब्दियों से ढोते रहे है / आदिम मनुष्य की इच्छाएँ (3)

नर्मदा नदी शताब्दियों से चराचर जगत को जीवन अमृत प्रदान कर रही है लेकिन जब भी विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं की बात की जाती है तो उसमें नर्मदा का नाम तक नहीं आता। सिंधु का नाम लेना तो मजबूरी है। कहा जाता है कि पत्थर झूठ नहीं बोलते लेकिन अगर कोई जानबूझकर उस तरफ न देखे और मानसिकता पूर्वाग्रह से ग्रसित हो तो अचर भी क्या करे। जिओलाजिकल सर्वे आफ इंडिया (जीएसआइ) के तत्कालीन भूविज्ञानी डा. अरण सोनकिया ने नर्मदा घाटी में हज़ारों साल पुराने मानव कपाल के अवशेष खोजे थे। नरसिंहपुर के पास नर्मदा के किनारे डायनासोरों के अंडों के जीवाश्म प्राप्त हुए है- हिडिंबा के पूर्वजों के अण्डे / जमकर हो गए हैं पत्थर / अलम्बुषा की पीठ पर पड़े हैं / पत्थरों के अण्डे (4)

जब कवि नदी तट पर आगे बढता है तब तट का भूगोल उसकी चेतना से मिलकर बदलने लगता है। इस तट पर कवि को भृगु, वशिष्ठ, गार्गेय, कंक जैसे अगणित ऋषि-मुनि दिखते है जिन्हें रेवा तट में सिद्धि मिलने से दिव्य धाम की प्राप्ति होती है- भृगु-गार्गेय-वशिष्ठ -कंक से लेकर / अगणित ऋषिवर-मुनिगण / रेवातट पर सिद्ध हो गए / दुर्गम दिव्य धाम को पाकर (5)

ये ऋषि समाज से अलग हटकर समाज की उन्नति के लिए सदैव साधनारत रहते थे। इसीलिए भारतीय संस्कृति का आधार कृषि और ऋषि है। एक धन से संपन्न करती है दूसरा मन से। ये ऋषि केवल दिखावे के लिए ही ब्रह्म ग्यान की बात नहीं करते थे ऐसे ढोंगीयों का पर्दाफाश तुलसीदास ने किया है- ब्रह्म ग्यान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात। / कौड़ी लागि लोभ बस करहिं बिप्र गुर घात (6)

ये ऋषि सच्चे तथा चरित्रवान थे जिससे नर्मदा इन्हें भय मुक्त करती है आशीष देती है - संत तपस्वियों को भयमुक्त करती / अछोर धन देती आशीष का (7)

लेकिन अन्य लोग जिनकी प्रवृत्ति तामसिक होती है नर्मदा उन्हें डराती भी है- कितने राजे-राजवाड़ों भीलों निषादों के मन में / संभ्रम भय भरती निसर्ग की हिलोर का(8)

विदित है कि नर्मदा के किनारे अनेक राजवंश हुए हैं। जबलपुर जिला के रूपनाथ में मिले शिलालेख में लिखित अशोक की राजाज्ञा और सीहोर जिला के पानगुराड़िया में मिला अशोक का शिलालेख नर्मदा घाटी में लंबे समय तक मौर्यों का शासन रहने को प्रमाणित करते हैं। अमरकंटक का कर्ण मंदिर आज भी दर्शनीय स्थिति में है और कलचुरी कला एवं संस्कृति का ध्वजवाहक बना हुआ है। गोंड वंश के शासक संग्रामशाह, रानी दुर्गावती का नाम भी इतिहास में अमर है। जब कुछ इतिहासकार यह कहते हैं कि जनजातियों को आर्यों ने खदेड़ा तब वह गोंड वंश को क्यों नहीं देखते जिसमें दुर्गावती जो चंदेल घराने में पैदा हुई थी लेकिन उनका विवाह गोंड राजकुमार दलपत शाह के साथ हुआ। ब्रिटिशों द्वारा गढ़े गए आर्य- अनार्य, नस्लवादी झूठ का यह ऐतिहासिक प्रमाण है। आनंद जी नर्मदा तट पर रहने वाले वनवासियों की जीवन शैली, उनकी स्वतंत्र सोच का बड़ा ही अच्छा वर्णन किया है और जो लोग उन्हें बर्बर, असभ्य, जंगली आदि घृणित शब्दों से संबोधित कर ख़ुद को सभ्य मानते है उन्हें आड़े हाथों भी लिया है। यह वर्णन अलग से एक लेख की माँग करता है।

आनंद जी ने अपनी कविता में नर्मदा के साथ परम्परा की जुगलबंदी की है। नर्मदा है परम्परा की सीढ़ियों से बहती, उस पर चढ़ती, उस से सटती, उसी से हटती नर्मदा है। परम्परा को वरती नर्मदा है, परम्परा को चरती नर्मदा है। परम्परा की सीढ़ियों से बहती- चढ़ती वह परम्परा -प्रवाह की धारा और परम्परा- प्रमाद की कारा- दोनों बन जाती है। कवि ने नर्मदा को 'विष्णुधात्री परम्परा' कहा है(9)

परम्परा से सटती परम्परा से हटती परम्परा / परम्परा को वरती परम्परा को चरती परम्परा / सीढ़ियों पर चढ़ती परम्परा की सीढ़ियों बढ़ती परम्परा

उत्तरपथ पूजित 'विष्णुधात्री परम्परा' (10)

आज जब परम्परा को या तो दरकिनार किया जा रहा है कि यह बीते जमाने की बात है या कि बिना परम्परा का मतलब जाने उसकी दुहाई देकर उसे विकृति करने का कृत्य किया जा रहा है। ऐसे समय में विवेकयुक्त परम्परा व उसकी विकास यात्रा को बताना कवि का वर्तमान में रहते हुए अपने अतीत के प्रति सजगता व भविष्य के प्रति सतर्कता को बतलाता है।

अतीत के प्रति सजगता इस बात से स्पष्ट है कि कुछ सुजान अपनी चतुराई से बिना पुराणों को पढ़े ही पुराणों की बातों को ख़ारिज कर देते है। इसे केवल पंडे पुरोहितों का पाखंड बतलाते है। कभी कभी अपनी बात मनवाने के लिए स्वामी दयानंद सरश्वती का भी नाम लेते है कि उन्होंने पुराणों को मानने से इनकार किया है। स्वामी जी की दृष्टि व्यापक थी लेकिन व्यापकता की भी अपनी सीमा होती है। हम यह नहीं भूल सकते कि प्राचीन समय से आज तक भारत की नदियाँ और उनके किनारे मौजूद तीर्थ भारत को सांस्कृतिक रूप से एक करते हैं बिना विविधता में एकता का नारा लगाए। गंगा और कावेरी व इनके बीच में मौजूद नदियाँ और तीर्थ हिमालय से हिंद महासागर को जोड़ते है। यह अखंडता के सूत्र है। इनके महत्त्व का वर्णन भी पुराणों में है। भारतीय संविधान को बने हुए अभी एक शताब्दी भी नहीं हुए है लेकिन अमृत महोत्सव तक उसमें 100 से ज़्यादा संशोधन हो चुके हैं इससे भारतीय संविधान की महत्ता कम नहीं हो

जाती। इसी तरह पुराणों में भी कुछ चीज़ ऐसी होंगी जो आज के हिसाब से नहीं है किंतु भारतीय मानस में इतना विवेक है कि क्या अपनाया जाए और क्या छोड़ा जाए। आनंद जी ने पुराणों में वर्णित यह प्रसंग की सभी नदियाँ वर्ष में एक बार नर्मदा में स्नान करने आती है से अपनी कविता का संदर्भ लिया है- वर्ष में एक बार होता है ऐसा नहान / जब नहाती है नदियाँ जल में / डुबकी लगाकर / मानों परम्परा का एक अनिवार पथ / संगमन करता है अपने अग्रजों से। (11)

चूँकि नर्मदा गंगा जैसी नदियों से ज्येष्ठ है इसलिए कवि ने उसे अन्य नदियों की दिदिया माना है। जैसे इन नदियों के साल भर में एक साथ मिलने की बात है तो क्या इससे प्रेरणा लेकर केंद्र व सभी राज्यों की सरकार आपस में एक बार बिना स्वार्थ के नहीं मिल सकते? जिससे नदियों में मौजूद पानी को लेकर राज्यों के बीच जो विवाद है उनका निपटारा हो सके। विस्थापन की समस्या से छुटकारा पाया जा सके। नदी जोड़ो परियोजना से ज़रूरी है मन जोड़ो को लेकर कोई पहल हो जिसकी ओर कवि ने संकेत किया है।

कवि को लगता है कि पश्चिम में बहती हुई नर्मदा शायद कवि से यह कहती है उसकी बूँदो को कवि नील और दजला - फरात के जल में मिला दे क्योंकि - बगदाद जल रहा है / यरूशलेम उबल रहा है (12)

मज़हबी संकीर्णता की यह नियति ही है कि या तो 'अन्य' से लड़ते हैं और जब 'अन्य' मौजूद न हो तब आपस में ही लड़ते है। इसी संघर्ष के कारण व इससे निकली अन्य समस्याओं के कारण ही संस्कृति का क्षरण होता है और धीरे धीरे वह लुप्त हो जाती है- मेसोपोटामिया के खँडहर हित्तियों की लिपियाँ / खाल्दी वंशों की संस्कृतियाँ गईं कहाँ? / आक्कादी यवन और क्रीट की सभ्यताएँ / प्रतीक्षा करेंगी कयामत तक। (13)

सभ्यताएँ प्रतीक्षा इसलिए करेंगी की बूँद से उन्हें दृष्टि मिल सकती है जिससे वहाँ भी अमन आ जाए- हताश इनकी आँखों के सुने कोरों में / तुम्हारी करुणार्द्र आँखों का जल / उन्हें दृष्टि का उज्ज्वल मोती दे देगा। (14)

एक जगह की शांति अन्य जगह के लिए भी खतरे का संकेत होती है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के शब्दों में - यदि तुम्हारे घर के / एक कमरे में आग लगी हो / तो क्या तुम / दूसरे कमरे में सो सकते हो? (15)

वैमनस्य की आग बुझाने के लिए कवि नर्मदा की एक निर्मल बूँद चुपचाप नील और दजला - फरात में डाल देना चाहता है। यथार्थ और कल्पना के मेल से कवि ने अपने काव्य में जो वैश्विक दृष्टि प्रस्तुत की है उसकी दुनिया को आज बहुत ज़रूरत है ख़ासकर तब जब एक देश दूसरे को निगलने में तुला हुआ है और अन्य देश मूक दर्शक बनकर या तो तबाही का मंज़र देख रहे है या कि दंगे की आग में अपने शब्दों का पेट्रोल छिड़काव कर उसे और भयावह बना रहे है।

विश्व के समक्ष इस तबाही के अलावा पर्यावरण में असंतुलन ऐसी समस्या है जिससे पूरा जीव जगत त्राहि-त्राहि कर रहा है। इस समस्या के मूल में भोगवाद है। अन्नकोश में जीने वाले निम्न मानसिकता के लोग भौतिकवाद तक ही सीमित होते है जिसका चरम रूप भोगवाद है इससे भूखमरी और महाविलासिता की खाई और चौड़ी हो रही है। - यह विश्व बेकल ज्ञान के अतिभोग से / पर छिन्न उसके जन सहज उपभोग से (16)

कवि को नर्मदा नदी से यह उम्मीद है की वह बगदाद को जलने और यरूशलेम उबलने से रोक सकती है लेकिन पर्यावरण संकट नदियों को ही ख़त्म कर रहा है। विश्व की अधिकतर नदियाँ उकठ रही है या उनके जलस्तर में बहुत कमी आ गई है। पर्यावरण पूरा तंत्र होता है यदि उसके किसी भाग में अवनयन होगा तो अन्य का भी होना तय है। आनंद जी कहते है- इतिहास के भीगे चरण / श्री ले गए / वन प्रांत की (17)

जलवायु परिवर्तन के प्रति 'साझा किंतु विभेदित उत्तरदायित्व'(Common But Differentiated Responsibility-CBDR) की नीति अब अनिवार्य हो गई है क्योंकि जिन देशों ने वन प्रांत की 'श्री' का सबसे ज़्यादा दोहन किया है उन्हें ही आगे आना होगा इसके लिए देशों के मध्य समन्वय व सामंजस्य की ज़रूरत है। सभी को पर्यावरण के लिये हिसाब से जीवनशैली अपनाना होगा किंतु इसके लिए भोग में, अपनी इच्छाओं में नियंत्रण चाहिए जो बड़ा ही दु:साध्य कार्य है और जिस तरह Conference of the parties की मीटिंग में लिए गए निर्णय और उनके क्रियान्वयन में अंतर होता है कवि को भी ये उम्मीद कम ही है जलवायु परिवर्तन का हल निकल सकता है। यद्यपि कवि कल्पना में आशावादी है उन्हें यह लगता है कि इतिहास नर्मदा से वर्ग समन्वय की सीख ले जिससे वह प्रगति के रास्ते में बढ़े। लेकिन कवि इतिहास नियंताओं से वाक़िफ़ है उनकी पुरानी नीतियों से परिचित है जिससे वह यथार्थ से भी मुँह नहीं मोड़ सकता- इतिहासों को सीखना होगा / तुमसे समन्वय / वर्ग संघर्ष नहीं वर्गस्फीत मन ही / इतिहास का नियंता है / किंतु यह क्षुद्रता भी टेक देगी घुटने / एक दिन तुम्हारे स्वरूप के सामने, नर्मदे, / बची रहोगी जो तब तक। (18)

000

संदर्भ-

1.https://youtube.com/playlist?list=PLlhT2U4cHAbCzPMFk1TAXBMwC4AXZhLH8,

2.आनंद कुमार सिंह, सौन्दर्य जल में क प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015, पेज 63, 3. वहीं, पेज 16, 4.वहीं, 5. वहीं, पेज 55, 6.तुलसीदास, रामचरितमानस, 7/ 99 क, 7.आनंद कुमार सिंह, सौन्दर्य जल में क प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015, पेज 39', 8.वहीं, 9.पांडेय शशिभूषण शीतांशु, समकालीन हिन्दीकविता का महान् कवि : आनंद कुमार सिंह, अक्षरा पत्रिका अंक 206 मई 2022, पेज 37, 10.आनंद कुमार सिंह, सौन्दर्य जल में क प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015, पेज 47, 11.वहीं, पेज 25, 12.वहीं, पेज 64, 13.वहीं, 14.वहीं,

15.https://archive.org/details/desh-kagz-par-h/mode/1up,

16.आनंद कुमार सिंह, सौन्दर्य जल में क प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015, पेज 73, 17.वहीं, 18. वहीं पेज 51

(शोध आलेख)

शिवमूर्ति की कहानी 'कुच्ची का कानून' में मुखर होती स्त्री चेतना

शोध लेखक : रेखा शर्मा
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
शोध निर्देशक : डॉ. एस.रजिया बेगम, असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, विज्ञान एवं मानविकी संकाय, एस आर एम विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, कुट्टनकुलातुर, चेन्नई

रेखा शर्मा
शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
विज्ञान एवं मानविकी संकायए
एस आर एम विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी
संस्थान, कुट्टनकुलातुर, चेन्नई

सार- स्त्री-केन्द्रित लिखी गई अनेकों कहानियों के द्वारा साहित्य ने समाज में घटित होने वाले ज्वलंत मुद्दों को उद्घाटित किया है। ऐसे ही कुछ ज्वलंत मुद्दों को कथाकार शिवमूर्ति ने अपनी कहानी 'कुच्ची का कानून' के माध्यम से चित्रित किया है। भूतकाल से सीखना, वर्तमान को समझना और जागरूकतापूर्वक अपेक्षित कदम उठाते हुए ख़ूबसूरत और सुरक्षित भविष्य का खाका ही है कहानी 'कुच्ची का कानून'। 'कुच्ची का कानून' कहानी स्त्रियों के अनुकूलित मानसिकता का चित्रण तो करती ही है जो अतीत से ही पराधीन दादी, माँ, बहू, बेटी बनकर वर्तमान तक उस पराधीनता की बेड़ियों की आदि हो चुकी हैं या यूँ कहिए इसी तरह के जीवन में ही वे रच बस गईं हैं, उनके चित्रण के साथ ही साथ ऐसी स्त्रियों के लिए अपनी केन्द्रीय स्त्री पात्र कुच्ची द्वारा ऐसा उदाहरण भी पेश करते हैं जो किसी भी प्रकार की पराधीनता व ताड़ना सहने से साफ इन्कार करते हुए अपने हक के लिए बुलंद हौसले के साथ प्रत्येक कुतर्क का प्रतिकार करते हुए अपनी कोख पर अपने अधिकार का ऐलान करती है।

विषय-संकेत- स्त्री चेतना, कोख पर अधिकार का मुद्दा, पंचायत, शोषण व वर्जनाओं से मुक्ति।

प्रस्तावना- शिवमूर्ति जी की अधिकांश कहानियाँ स्त्री प्रधान हैं। इनके स्त्री पात्र स्वाभिमानी, साहसी और संघर्षशील तो हैं ही साथ ही वे अन्याय और शोषण का जमकर प्रतिकार करती, परिपक्व तथा भविष्य उन्मुख हैं जो अनुकूलन के उस साँचे को तोड़ते हुए परंपरागत, रूढ़िवादी, सामाजिक मान्यताओं को चुनौती देते हुए अपने अस्तित्व का लोहा मनवाती है।

लक्ष्य- शिव मूर्ति की इक्कीसवीं सदी की कहानी- 'कुच्ची का कानून' में स्त्री के विविध रूपों का वर्णन है जो उसके शील, सौन्दर्य, प्रेम, मातृत्व के साथ उसका हौसला, साहस, सिस्टरहुड व मानसिक चेतना की ऊँचाइयों को दर्शाता है।

स्नेह व आदर्श की प्रतिमूर्ति के रूप में स्त्री- 'कुच्ची का कानून' कहानी की केंद्रीय स्त्री पात्र 'कुच्ची' है जो शादी के कुछ समय बाद ही विधवा हो जाती है इसी कारण कुच्ची के पिता उसे वापस मायके ले जाना चाहते हैं।

"तेरही के दूसरे दिन जब सारे मेहमान चले गए तो कुच्ची के बाप ने उसे एक किनारे बुलाकर मद्धिम आवाज़ में समझाया-तुम्हारा दाना-पानी अब इस घर से रूठ गया बिटिया।"1

कुच्ची अपनी घायल सास के इलाज के कारण नहीं जा पाती, इस दौरान वह अपने कुटिल जेठ के मनसूबों से रूबरू होती है। तब वह लीक से हटकर दूसरा विवाह न करने का निर्णय लेती है और अपने बेसहारा सास- ससुर के प्रेम व स्नेह के कारण निस्वार्थ भाव से उनके बेटे की तरह उनकी भरपूर सेवा करने, स्नेह देने और सहारा बनने का संकल्प लेती है -

"दूसरी शादी कर लेती तो मेरे सास-ससुर बेसहारा हो जाते बाबा। अपने सहारे के लिए इनको बेसहारा छोड़ कर जाते नहीं बना। मेरा रिश्ता मेरे आदमी तक ही तो नहीं था।"2

यहाँ कुच्ची उसी नारी तत्व की परिचायक है जिसकी बात हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'बाणभट्ट की आत्मकथा' नामक उपन्यास में की है- "जहाँ कहीं अपने आपको उत्सर्ग करने की, अपने आप को खपा देने की भावना प्रधान है, वहीं नारी है। जहाँ कहीं अपने आपको सुख- दुख की लाख-लाख धाराओं में दलित द्राक्षा के सम्मान में छोड़कर दूसरे को तृप्त करने की भावना प्रबल है वही 'नारी तत्व' है"3

पितृसतात्मक व्यवस्था की मानसिकता की शिकार अनुकूलित स्त्री- इस संसार में कुदरत ने स्त्री और पुरुष दोनों को एक दूसरे के पूरक के रूप में निर्मित किया है। एक के बिना दूसरे के अस्तित्व की कल्पना करना अपूर्णता का परिचायक है। जीवन रूपी गाड़ी को संतुलन के साथ चलाने में दोनों की ही समान व महत्त्वपूर्ण भूमिका है। परंतु सामाजिक व्यवस्था में ऐसे संतुलन पर अभी तक प्रश्नचिह्न दिखाई पड़ता है। एक पक्ष निर्माता, निर्णायक, व मालिक बना बैठा है तो दूसरे पक्ष को जीवन की सामान्य वस्तुओं से वंचित, अपने अधिकारों व प्रगति से अनभिज्ञ, जीवन के प्रत्येक स्तर पर एक प्रश्न के साथ खड़ा छोड़ रखा है- आख़िर वह ही क्यों? वह ही क्यों भ्रूण हत्या की शिकार, वह ही क्यों असमानता की शिकार? वह ही क्यों माता-पिता का घर छोड़ देने की शिकार? वह ही क्यों अत्याचार, बलात्कार, दहेज के नाम पर जान से मारे जाने की शिकार। वह ही क्यों जीवन में हर स्तर पर विस्थापन की शिकार ?

ऐसे विस्थापन के संबंध में यह कहा गया है कि- "प्रत्येक स्त्री के जीवन में लगभग स्थायी विस्थापन- जहाँ से लौटना कभी संभव नहीं होता। विवाह के बाद माता-पिता का घर छोड़ना ऐसा ही विस्थापन है। इस पीड़ा को एक स्त्री ही समझ सकती है। कहते हैं कि एक पौधा ही दूसरी भूमि पर रोपा जा सकता है, पेड़ नहीं। लेकिन स्त्री-जीवन इस तथ्य का अपवाद है। इस दूसरी भूमि में भी यह पेड़ अपनी जड़ें फैलाता है, उसे स्वीकार करता है, पुष्पित और पल्लवित होता है लेकिन इसकी प्रक्रिया कष्टप्रद और त्रासद है।"4

यह कष्टप्रद और त्रासद प्रक्रिया और विकराल रूप ले लेती है, जब इस कष्टप्रद विस्थापन के बाद भी सम्मान पूर्वक ख़ुशहाल जीवन के स्थान पर पाती है कदम- दर- कदम घुटन, अपमान, असमानता, और अत्याचार और अन्ततः मौत। जिसका इन स्त्री पात्रों तथा उनके साथ घटी बर्बरता के माध्यम से चित्रण है।

"इस बेड का नाम ही है –'पॉइज़न बेड'। ज़हर खाकर आने वाली औरतों के लिए रिजर्व। रोज़ इसी समय कोई न कोई आती है, बिना नागा। सिर्फ औरतें। आदमी एक भी नहीं। स्ट्रेचर पर लदकर चीरघर की ओर चल पड़ी। सात-आठ बजते-बजते बेड खाली चादर बदलो, तकिया बदलो। अगले मेहमान के स्वागत की तैयारी। कौन थी? क्यों खाया ज़हर? हर दिन की अलग कहानी। अवैध गर्भ पति द्वारा पिटाई। दहेज प्रताड़ना। तीसरी बेटी पैदा कर देना।"5

"बेड नम्बर 7 बर्न बेड है। यह भी सबेरे-सबेरे अपना चादर तकिया बदलकर तैयार हो जाता है। इस पर आने वाली औरतों में ज़्यादातर नवब्याहताएँ होती हैं। ?"6

इस हिंसा की प्रवृत्ति व बर्बरता को समूल नष्ट करने के लिए स्त्री जाति को अपने संवैधानिक अधिकारों के प्रति जागरूक होना होगा।

इसके बारे में रमणिका गुप्ता जी कहती है कि- "स्त्री को गुलाम समझने की परंपरा बंद हो। साथ ही स्त्रियों को स्वावलंबी होना ज़रूरी है, इसके अलावा बात चाहे देह की हो या कैरियर की, स्त्री को ख़ुद फैसले लेने होंगे। पुरुष के अनुरूप सौंदर्य का मानदंड भी बंद होना चाहिए। वह पुरुषवादी सोच से भी मुक्त हो। वह पति से किसी चीज़ की इजाज़त नहीं, राय लेना सीखे। स्त्री आज भी नागरिक नहीं, बल्कि पत्नी और माँ बनकर ही रहने को विवश है। वह घर की चौखट के अंदर लोक-लाज के खूँटे से आज भी बँधी है, वह पिटती रहती है, लेकिन कुछ बोलती नहीं। प्रताड़ना के ख़िलाफ़ थाने में मुकदमा कराने में भी संकोच करती है। उसे प्रतिकार करने की आदत डालनी होगी। स्त्री मुक्ति का अर्थ पुरुष विरोधी नहीं, बल्कि साथी बनने की बात है। इसके अलावा जहाँ भी स्त्री हिंसा की बात आती है, सभी को इसके ख़िलाफ़ खड़ा होना चाहिए।"7

स्त्री से स्त्री का, सिस्टरहुड के रिश्ते की नींव रखती स्त्री- इस कहानी में स्त्री का स्त्री के लिए वह रूप चित्रित है जो हर हाल में अपनी बहनों के साथ खड़ी दिखाई देती है। यहाँ स्त्री सिस्टरहुड का एक मूल्यवान अर्थ प्रस्तुत करती है।

कुच्ची का चचेरा जेठ सभी प्रकार के तिकड़म लगा पंचायत बैठवा लेता है। वह कुच्ची को कुपद का दोषी, गाँव की बदनामी का ज़िम्मेदार, कलंकिनी व कुलच्छनी साबित करके गाँव से निकलवा देना चाहता है और सारी प्रॉपर्टी हड़प लेना चाहता है। लेकिन उसके सपनों पर पानी तब फिरने लगता है जब वह पाता है कि गाँव की स्त्रियाँ कुच्ची के साथ हैं।

जब पंचों में से बलई बाबा कुच्ची को संबोधित करते हुए कहते हैं कि करतूत अहल्या की और तेवर गार्गी के, अहल्या जैसी औरतों को हज़ार साल तक पत्थर की ज़िंदगी जीने की सज़ा मिली, अगर उससे ये औरतें सबक ले लेतीं तो आज पंचायत बुलाने की ज़रूरत ही नहीं पड़ती। तब सुधरा प्रत्येक स्त्री जाति के आत्मसम्मान पर ऐसी चोट के प्रति कड़ी प्रतिक्रिया करते हुए बोल पड़ती हैं- "कुच्ची ने न सही लेकिन हज़ारों साल से इस देश में पैदा हो रही औरतों ने ज़रूर सबक सीखा है। उसी सीख से उनका कलेजा पत्थर का हो गया है। उसी का डर दिखाकर वे आज भी भेड़ के झुंड की तरह हाँकी जा रही हैं। लेकिन यह बताइए कि गौतम मुनि ने अपनी सारी मर्दानगी अपनी औरत पर ही क्यों दिखाई? सूने घर में घुसकर जिसने छल से अकेली औरत की इज़्ज़त लूटी, उसका तो आप कुछ उखाड़ नहीं पाए। वह मूँछ ऐंठता मुस्कुराता सामने से निकल गया। उल्टे खिसियाहट मिटाने के लिए अपनी ही छली गई पत्नी को पत्थर बना दिया। यह कैसा इंसाफ है? इसमें औरत के सीखने के लिए क्या है?"8

गाँव की हर एक महिला कुच्ची के निर्णय में उसके साथ है जिसके साक्ष्य अनेक स्थानों पर प्रस्तुत होते हैं- "-बिलकुल सही। -बाज़ार से आई औरतों के झुंड से आवाज़ आती है। हम सब अहल्या हैं। आज भी अहल्या हैं। आज भी पत्थर हैं। आज भी छली जा रही हैं।"9

महादेवी वर्मा ऐसी ही जाग्रत बहनों के संबंध में कहती हैं - "जो जाग चुका है वह अधिक समय तक सोते हुए का अभिनय नहीं

करता रह सकता। हमारी जाग्रत बहिनों में से कुछ ने विद्रोह आरम्भ कर दिया है और कुछ उसके लिए सुयोग ढूँढ़ रही हैं। जो देश के भावी नागरिकों की विधाता हैं, उनकी प्रथम और परम गुरु हैं, जो जन्म भर अपने आपको मिटा कर, दूसरों को बनाती रहती हैं। वे केवल तभी तक आदरहीन मातृत्व तथा अधिकार-शून्य पत्नीत्व स्वीकार करती रह सकेंगी, जब तक उन्हे अपनी शक्तियों का बोध नहीं होता। बोध होने पर वे बन्दिनी बनाने वाली शृंखलाओं को स्वयं तोड़ फेकेंगी।"10

अपनी अस्मिता की रक्षक साहसी व निर्भीक स्त्री- कुच्ची को अबला विधवा का जीवन जीना मंज़ूर नहीं है वह कुंठा व अपमान से भरा जीवन जीने की बजाय अपनी अस्मिता बचाने वाली साहसी व निर्भीक स्त्री के रूप में जीवन जीने का चुनाव करती है। इसके साक्ष्य कई जगह वह प्रस्तुत करती है।

घर में बीड़ी जलाने के लिए आग माँगने के बहाने घुस आए जेठ बनवारी से अपने बचाव के लिए वह अपने हाथ में हँसिया तान लेती है और उसे हवा में लहराते हुए बनवारी को ललकारती है।

"कान खोल कर सुन लो। हमारी राहें जुदा हैं और जुदा रहेंगी। फिर कभी मेरी राह काटने की कोशिश की तो अपने और तुम्हारे खून की धार एक कर दूँगी।"11

ऐसा कहकर कुच्ची अपना इरादा तथा संकल्प दोनों स्पष्ट बताते हुए यह संदेश देती हैं कि वह संघर्षशीलता व चेतन संपन्नता उसमें भी उतनी ही है जितना एक पुरुष स्वयं में समझता है। वह अपना अस्तित्व किसी पुरुष की परछाई में नहीं देखती वह अपने भाग्य की स्वयं निर्मात्री है।

अपने अधिकारों के लिए पूर्ण रूप से निड़रता के साथ लड़ती स्त्री- सातवीं पास कुच्ची अपने निर्णय अनुसार कोख में पल रहे बच्चे को जन्म देने के लिए अपनी आवाज़ बुलंद करती है। यहाँ वह पितृशक्ति के विरोध में मातृशक्ति को स्थापित करने की वकालत करती है। पंचों के बीज लेने के संबंध में पूछने पर बड़ी ही निडरता व पूरे आत्मविश्वास के साथ पुरुष वर्चस्व को अपने आत्मसम्मान पर कतई हावी न होने दिए बिना साहसपूर्वक उत्तर देती है -

"मुझे ज़रूरत लगी महाराज मेरा आदमी तो एक बार मरकर फुरसत पा गया लेकिन बेसहारा समझकर हर आदमी किसी ना किसी बहाने मुझे रोज़ मार रहा था। मैं मरते-मरते थक गई तो जीने के लिए इतना सहारा पैदा कर रही हूँ।"12

"लेकिन तू बजरंगी की ब्याहता है। तेरी कोख पर सिर्फ बजरंगी का हक है।"13

"मरे हुए आदमी के काम तो यह कोख आ नहीं सकती बाबा। उनके मरने के बाद किसका हक बनता है?"14

"दूसरा मर्द करेगी तो उसका हक बनेगा।"15

"दूसरा मैंने किया नहीं तो किसका बनेगा? मेरी कोख पर मेरा हक कब बनेगा?"16

"जब मेरे हाथ, पैर, आँख, कान पर मेरा हक है, इन पर मेरी मरजी चलती है तो कोख पर किसका होगा, उस पर किसकी मरजी चलेगी, इसे जानने के लिए कौन-सा कानून पढ़ने की ज़रूरत है?"17

"कुच्ची खड़ी होती है- कुंती माई डर गई, अंजनी माई डर गईं, सीतामाई डर गईं लेकिन बालकिसन की माई डरने वाली नहीं है। मेरा बालकिशन पैदा होकर रहेगा।"18

सृष्टि के रचियता ने नारी को सृजनशक्ति का वरदान देकर उसे ऐसी प्राणदायिनी शक्ति का रूप दिया है जो एक बूँद को अपनी कोख में नौ महिने रखकर अपने खून से सींचकर आदमी बनाती है फिर भी पितृसत्तामक व्यवस्था के तले दबी स्त्री सदियों से अपनी अस्मिता और स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करती आ रही है और आज तक कर रही है क्योंकि पुरुष विहीन स्त्री का निज अस्तित्व इस समाज में कुछ भी नहीं समझा जाता रहा है।

इसी प्राणदायिनी शक्तिरूपा स्त्री के संबंध में सुधा अरोड़ा कहती है कि - "अब सीता धोबी के लांछन से घर छोड़ने से इनकार करती है, बेवजह अग्नि परीक्षा देने के लिए वह तैयार नहीं है। स्त्री मुखर हुई है, उसकी शक्ति ज़्यादा धारदार हुई है, तो उसके संघर्ष भी गहन और लंबे होंगे। यूँ स्त्री सदियों से संघर्षरत है, सीता रावण से और द्रोपदी दुर्योधन- दु:शासन से आज भी उसका संघर्ष थमा नहीं है। वह संघर्ष कर रही है, पुरुषों के मोर्चे पर पुरुषों के साथ और अपने मोर्चे पर पुरुषवादी स्त्रियों के साथ भी।"19

माँ बनने के अपने अधिकार की रक्षा के साथ ही कहानी के अंत में पंचायत में जागो रे जागो! भागो रे भागो.....! के शोर के द्वारा शिव मूर्ति कुच्ची के द्वारा आने वाले समय की दस्तक तथा स्त्री की सबलता और जागृती से परिचित करवाते हुए यह स्पष्ट संकेत देते हैं कि परिवर्तन की जो क्रांति की चिंगारियाँ अभी यहाँ-वहाँ उठ रही है आगे और व्यापक रूप धारण करेंगी तथा स्त्री शोषित से सहचरी होने की दिशा की ओर अग्रसर होती हुई सभी कुछ बदल कर रख देगी।

निष्कर्ष- उपरोक्त विश्लेषण के बाद हम यह पाते हैं कि 'कुच्ची का कानून' कहानी द्वारा 'शिवमूर्ति' ने भारतीय समाज में सहस्राब्दियों से शोषित, पीड़ित स्त्रियों में से एक स्त्री कुच्ची के प्रतिरोध एवं परिवर्तन की अभिव्यक्ति बहुत ही यथार्थवादी दृष्टीकोण से की है। इसमें एक तरफ तो महिलाओं पर होते आए अत्याचारों का सदियों से अनवरत चलता आ रहा यथार्थ वर्णित है वहीं दूसरी ओर एक स्त्री के स्वप्न, संघर्ष, और मुक्ति की चेतना की नई वास्तविकता इसमें दिखाई देती है।

000

सन्दर्भ - 1 शिवमूर्ति, कुच्ची का कानून, राजकमल प्रकाशन, पृ० 78, 2 वही पृ० 118, ३ हजारी प्रसाद द्विवेदी, बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ० 120, 4 एकांत श्रीवास्तव, स्त्री-जीवन का विस्थापन, वर्तमान साहित्य, मार्च 2011, 5 शिवमूर्ति, कुच्ची का कानून, राजकमल प्रकाशन, पृ० 90, 6 वही, पृ० 90, 7 बातचीत, स्त्री मुक्ति का अर्थ, पुरुष विरोधी नहीं, दिलीप सिंह राणा, जनपथ, सितम्बर 2012, 8 वही पृ० 132, 9 वही पृ० 132, 10. महादेवी वर्मा, शृंखला की कड़ियाँ पृ० 19, 11 वही पृ० 94, 12. वही पृ० 104, 13. वही पृ० 118, 14. वही पृ० 118, 15 वही पृ० 118, 16 वही पृ० 118, 17. वही पृ० 118, 18. वही पृ० 131, 19. वही पृ० 137

(शोध आलेख)

पॉलिथीन... पॉलिथीन... पॉलिथीन...

शोध लेखक : अपर्णा ए
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय

सभ्यता एक मानवोन्मुख शब्द है जो एक प्रकार से मानव की जीवन शैली/जीवन पद्धति का द्योतक है। इतिहास के पन्नों को पलटने से यह ज़ाहिर होता है कि मानव जीवन के आदिम दौर में मनुष्य की जीवन पद्धति प्रकृत्याधारित या प्रकृति प्रदत्त थी। किंतु कालक्रमानुसार उसमें विकार आता रहा। अपनी विकास यात्रा के एक विशिष्ट मुकाम पर पहुँचकर मनुष्य ने अपने हाथों को, जो अभी तक पैर थे, स्वतंत्र किया और इन स्वतंत्र हाथों से प्रकृति पर परिवर्तन करने लगा। प्रकृति की सहजता या नैसर्गिकता पर हस्तक्षेप करने की इस मानवीय प्रवृत्ति ने बाद में कृषि युग का सृजन किया। लेकिन अफसोस की बात तो यह है कि कृषि युग में आकर मनुष्य प्रकृति के ऊपर अपना आधिपत्य/प्रभुत्व स्थापित करने लगा और इसका परिणाम यह हुआ कि औद्योगीकरण के ज़माने में पहुँचकर प्रकृति का बड़े पैमाने पर दमन-शोषण भी होने लगा। वर्तमान पूँजीवादी, बाज़ारवादी, उपभोगवादी दौर में तो मनुष्य के द्वारा प्रकृति के वस्तुकरण की प्रक्रिया बढ़ती जा रही है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि मानव की परिवर्तित जीवनचर्या धीरे-धीरे प्रकृति के लिए अत्यंत घातक सिद्ध हुई। परिणामत: धरा पर अनगिनत अस्तित्वगत समस्याएँ उदित हुईं। आज हम ऐसी बहुमुखी समस्याओं की उत्तुंगता से जूझने को विवश हैं। ऐसे भीषण दौर में कवि और उनकी कविता हमारे लिए दीपक का काम कर रहे हैं। समकालीन कवि ज्ञानेंद्रपति और उनकी कविता भी इस अस्तित्वगत-अतिजीवनगत संघर्ष में तो दिवाली की ज्योति बनकर हमारे साथ मौजूद हैं। कवि के द्वारा सृजित 'गंगातट' की भूमिका में देवी प्रसाद मिश्र का कहना है कि "ज्ञानेंद्र हिन्दी के ऐसे कवि हैं जो पर्यावरण के निरंतर नष्ट होने से मूर्त रूप में विचलित हैं। कविता में यह ग्रीनपीस आंदोलन जैसा है- हरे और सौमनस्य की प्रार्थनाओं से भरा संवेदन! इसलिए 'गंगातट' जनशत्रु की पहचान का ही नहीं, जीवनशत्रु की शिनाख्त का भी लगभग नया डिस्कोर्स है।"1 प्रस्तुत संग्रह में संकलित 'पॉलिथीन' शीर्षक कविता भी पृथ्वी के समक्ष खड़े, मानवीय सभ्यता की उपज रूपी जीवनशत्रु को उजागर करने में प्रयत्नरत है।

आज का युग पूँजीवादी सभ्यता का है। पूँजीवाद एक ऐसी चालाक व्यवस्था है जो अपने हितार्थ प्रकृति को निरंतर प्रताड़ती है। बाज़ारवाद और उपभोगवाद पूँजीवाद के ही संतान या रूपांतर हैं। बाज़ार के बिना पूँजीवादी व्यवस्था एकदम चौपट हो जाएगा। अतएव निश्चय ही यह कहा जा सकता है कि बाज़ार पूँजीवाद का एक अभिन्न अंग/हिस्सा है। बाज़ार की निगाह में

अपर्णा ए
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कोच्चिन, केरल- 682022
मोबाइल - 9645805361
ईमेल- anilaparna93@gmail.com

प्रकृति एक क्रय-विक्रय की वस्तु या बिकाऊ माल है। इसलिए बाज़ार प्रकृति में निहित जैविकता, पारस्पर्यता तथा सर्जनात्मकता का तिरस्कार कर उसके प्रति वस्तुवादी, उपयोगवादी, संवेदनहीन, हिंसात्मक रवैया अपनाता है। इसके फलस्वरूप आज प्रकृति का अस्तित्व संकट काल से गुज़र रहा है। जीवन की, रिश्तों की, मूल्यों की नवीन, कृत्रिम, निरर्थक परिभाषा गढ़कर बाज़ार ने हमारी अंत:प्रकृति को भी अपने कब्जे में कर दिया है। अत: कविता का बयान है कि आज हम बाज़ार की मुट्ठी में पूर्णतया आबद्ध हैं।2 अर्थात् आज हम बाज़ार के हाथों के पुतले हैं। हमारे चिंतन और विचार तक में आज बाज़ार का ही पसराव है। अतएव वर्तमान समय में बाज़ार सबसे ताकतवर व शक्तिशाली साबित होता है। भोगवादी मानसिकता के प्रवर्तक एवं प्रचारक बाज़ार की ज़रूरत और षड्यंत्र है- पॉलिथीन यानि प्लास्टिक का वह भेद, जिसका उपयोग-उपभोग हम दैनिक जीवन में कैरी बैग, पानी की बोतल इत्यादि के रूप में कर रहे हैं। सच तो यह है कि आजकल पॉलिथीन बाज़ारवादी सभ्यता का प्रतीक और बाज़ार केंद्रित नकली मूल्यों के पालक-पोषक बनकर हमारे बीच उपस्थित है। यह बाज़ार के हित में आकर 'उपयोग करो और फेंक दो' वाली राजनीति का समर्थक और उपयोग के स्थान पर उपभोग के हिंसक पाठ की हिमायती है। इस प्रकार पॉलिथीन एक ओर एकल उपयोग का परिपोषक बनकर बाज़ार को तुष्ट करता है तो दूसरी ओर अपशिष्ट होकर धरती को अतुष्ट एवं खिन्न बनाता है। इसके साथ ही यह नवीनता का पक्षपाती बनकर परंपरा और पुरातनता की निंदा करता है और साथ ही जीवन में कई प्रकार की अतिरिक्तताओं की सृष्टि भी करता है।

आज पॉलिथीन या प्लास्टिक का उत्पादन, उपयोग तथा उपभोग दिन-प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं। फलत: वर्तमान समय की एक सबसे बड़ी विडंबनात्मक स्थिति यह है कि आजकल सर्वत्र प्लास्टिक का ही फैलाव है। ऐसी जगह बहुत विरले हैं जो प्लास्टिक से मुक्त/विहीन हैं। प्लास्टिक के इस अनवरत विस्तार-प्रसार से त्रस्त होकर कवि अपना काव्यात्मक आक्रोश प्रकट करते हुए कहते हैं कि; "पॉलिथीन! पॉलिथीन!/तंग हूँ मैं इस पॉलिथीन से/तंग पड़ती जा रही है जगह जीवों को धरती पर/बीजों को धरती पर/इसके कारण/जिधर देखो उधर पॉलिथीन"। 3 अर्थात् आज हमारा संपूर्ण जीवन परिदृश्य प्लास्टिक से आतंकित व आक्रांतित है। यहाँ ध्यातव्य की बात यह है कि प्लास्टिक एक ऐसा पदार्थ है जो जल्दी मिटता नहीं है। क्योंकि इसके अपघटन में हज़ारों सालों का समय लगता है। इसलिए यह बहुत समय तक पानी और मिट्टी में ज्यों का त्यों पड़ा रहता है। इसको जलाकर नष्ट करने में भी बहुत सारी दिक्कतें हैं। प्लास्टिक को जलाने से नाइट्रोजन ऑक्साइड, सल्फर डाइऑक्साइड, कार्बन डाइऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड जैसे विषैले रसायनों का बहिर्गमन होते हैं जो वायु प्रदूषण रूपी भयावहता को सृजित करता है। इसके अतिरिक्त इन हरित गृह गैसों के उत्सर्जन के परिणामस्वरूप भूमंडलीय तापन जैसी संहारात्मक स्थिति धरती पर कायम होती है, जो पृथ्वी की औसत तापमान में वृद्धि कर संपूर्ण जलवायु परिवर्तन का ज़रिया बनता है। मिट्टी में पड़े रहकर प्लास्टिक रासायनिक पदार्थों के निर्गम से मिट्टी की स्वाभाविकता एवं जीवंतता को भस्म कर उसको दूषित-प्रदूषित बनाता है। इस प्रकार अजर-अमर-अनश्वर प्लास्टिक का आधिक्य अपशिष्ट प्रबंधन के आगे एक विराट चुनौती खड़ी करती है। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, भारत सरकार के 2019-20 की वार्षिकी रिपोर्ट के मुताबिक भारत में प्लास्टिक अपशिष्ट उत्पादन की तादाद लगभग 36, 69, 780 टन हैं।4 बोर्ड के ही 2020-21 की वार्षिकी रिपोर्ट के आँकडों के अनुसार यह लगभग 41, 26, 997 टन हैं। 5 स्पष्ट है कि हमारे देश में प्लास्टिक अपशिष्ट उत्पादन की मात्रा प्रतिवर्ष वर्धित हो रही है। किंतु फिर भी प्लास्टिक के पुनर्चक्रण में केवल न्यूनतम वृद्धि का आकलन है। जलाशयों के परिप्रेक्ष्य में भी प्लास्टिक एक महान विपत्ति प्रमाणित होती है। जलीय पारिस्थितिकी तंत्र में प्लास्टिक की प्रचुरता जलीय जीवों-पौधों के विनाश-विलुप्ति का कारक बनता है। एक तरफ तो जलीय जीव-जंतुएँ प्लास्टिक को भक्ष्य समझकर उसको ग्रहण करते हैं और तदनुसार मौत का शिकार हो जाते हैं तो दूसरी तरफ प्लास्टिक जल में प्राणवायु की मात्रा में कमी लाकर जलजीवों की मृत्यु की वजह बनती है। कविता प्लास्टिक के द्वारा विषाक्त स्थलीय परितंत्र के साथ-साथ जलीय परितंत्र के प्रति भी फ़िक्रमंद है। इसलिए ही इसमें प्लास्टिक प्रदूषण से पीड़ित गंगा नदी की वर्तमान दुर्दशा का चित्रांकन और नदी में निहित जल जीवों की जान को लेकर चिंता तरंगित हैं। 6 इस प्रकार यह कविता मानव केंद्रीयता की संकुचितता से बाहर निकलकर व्यापक जैवकेंद्रित दृष्टि का वाहक या जैविकता का समर्थक बन जाती है। काव्य दृष्टि की इस विशालता के कारण कवि की पारिस्थितिक संवेदना केवल प्लास्टिक प्रदूषण तक परिसीमित नहीं है। अत: कविता में औद्योगिक विकास और शहरीकरण के परिणामस्वरूप शोषित-उत्पीड़ित गंगा नदी का विकृत-विकराल चित्र प्रतिबिंबित है। इस प्रकार कविता अपने काव्यात्मक लफ्ज़ों के ज़रिए वर्तमान समय की इस भीषणता को उकेरती है कि शहरों और कारखानों के अपशिष्टों से ग्रस्त काली, ज़हरीली, संतप्त परिस्थिति में घातक पॉलिथीन के पड़ने से गंगा की हालात और भी बिगड़ जाती है।7 असल में गंगा की यह विषम, शोचनीय, कष्टदायक स्थिति वर्तमान अंधाधुंध विकास परियोजनाओं पर काला दाग साबित होता है और आने वाले कल के प्रति गहरी चिंता भी मुखरित करती है। काव्यगत सीढ़ियों से गुज़रने से यह ज़ाहिर होता है कि कविता की दृष्टि केवल वर्तमान व भविष्य तक सीमित नहीं है, वह अत्यंत व्यापक एवं विस्तृत है। अतएव वह एक ऐतिहासिक मोड़ के ज़रिए अतीत में चली जाती है और इस सच्चाई से वाकिफ होती है कि क्रूर, विध्वंसक, शोषक पॉलिथीन का इतिहास शोषण-दमन-हाशिएकरण का है। इस सिलसिले में कविता

अपने पाठक को यह अवगत कराती है कि हिंसक पॉलिथीन ने अपनी विकास यात्रा के दौरान हमारे परंपरागत दोना, ठोंगा, डलिया, डोलची जैसे पात्रों और टोकरियों को हाशिएकृत किया और इन सबके ऊपर अपना राज जमाया। 8 अर्थात् यह साफ होता है कि पालिथीन की नीति प्रारंभ से ही अतिक्रमण और कब्जीकरण की है। काव्य जुबान इसी बीच इस बात की उद्घोषणा करती है कि पॉलिथीन वर्तमान बाज़ारवादी-उपभोगवादी सभ्यता का पर्याय या फिर दूसरा नाम है। 9 अर्थात् आज हम पॉलिथीन से संचालित एवं नियंत्रित कृत्रिम-कुरूप, असहज-अस्वाभाविक सभ्यता में जीवन जीने को अभिशप्त हैं। इसका मतलब यह है कि आज हमारे रहन-सहन, आचार-व्यवहार इत्यादि सब कुछ पॉलिथीन यानि बाज़ार के अधीनस्थ हैं। इसका काव्यगत स्पष्टीकरण समकालीन कवि राग तैलंग की 'प्लास्टिक' शीर्षक कविता में भी प्रतिध्वनित है। कविता की पंक्तियाँ हैं; "प्लास्टिक के पेड़, प्लास्टिक के फूल, /प्लास्टिक के चेहरे, प्लास्टिक के रिश्ते, /प्लास्टिक की भाषा, प्लास्टिक की बोली, /और तो और प्यार भी हुआ प्लास्टिक का/प्लास्टिक है सब प्लास्टिक।"10 ज्ञानेंद्रपति की प्रस्तुत कविता भी इसी प्रकार प्लास्टिक के कारण आशंकित वर्तमान जीवन परिवेश को काव्यात्मक ढंग से ध्वनित करती है और साथ ही प्लास्टिक के पूँजीवादी-बाज़ारवादी, निष्ठूर-नृशंसक चेहरे का खुलासा करती है। काव्य की पंक्तियाँ हैं; "इसने नियुक्त किया है कितने ही लोगों को/अपनी बेच-खरीद में/(और न जाने कितने लोगों को इसने बेरोज़गार किया है)/इसके एजेण्ट हैं, उनके पेमेण्ट हैं/इसके कबाड़ हैं, वहाँ हड़ते हाड़ हैं/पॉलिथीन-पूँजीवाद की त्वचा है"। 11 अर्थात् पॉलिथीन पूँजीवाद का रक्षा कवच है जिसके बिना कार्पोरेट कंपनियाँ अपना माल/उपज की बिक्री नहीं कर सकतीं। केवल इतना ही नहीं पूँजीवाद के हिंसक रूप धारण कर वह रोज़गार देने का ढोंग रचाकर बेरोज़गारी भी पैदा करता है। पॉलिथीन के इस विभीषिकामय स्वरूप को अप्रच्छन्न करने के साथ-साथ कविता बढ़ते काव्य प्रवाह में अपने पाठक को बार-बार यह चेतावनी देती है कि आज हमारे गाँव, कस्बे, नगर, महानगर आदि सब जगहों पर पॉलिथीन का ही अतिरेक या विस्तार है। 12 इस प्रकार कविता के सूक्ष्म अध्ययन से यह व्यक्त होता है कि जीवन को स्वस्थ-सुंदर-सुगम बनाने के लिए धरती को पॉलिथीन से मुक्ति दिलाना बेहद ज़रूरी है।

परिसमाप्ति तक पहुँचते ही कविता इस काव्यात्मक-कल्पनात्मक सच को अनावृत करती है कि पॉलिथीन वास्तव में मानवीय स्वार्थता का अंजाम है। अर्थात् यह कीड़े, दीमकें, चींटियाँ जैसे जीव रूपों के प्रतिपक्ष में मानव के द्वारा निर्मित है। इस प्रकार पॉलिथीन के प्रादुर्भाव के पीछे कार्यरत मानव सत्तात्मक मानसिकता को कवि पॉलिथीन और आदमियत के पक्ष में अपनी पत्नी के बयान के ज़रिए अभिव्यक्ति देते हैं। जैसे; "यह धरती एक फल है/जिसे एक ओर से कीड़े और चूहे कुतर रहे हैं/एक ओर से हम सब/तुम्हारे आगे प्लेट में परोस देना है हमें इसे/हमीं जानती हैं हम इसे कैसे बचाती हैं, किन टेढ़े-तिरछे तरीकों से/कि आदमियत को आकार मिलता रहे" ।13 इससे यह प्रत्यक्ष होता है कि मानव पक्ष में मानव मात्र के प्राणरक्षक का मुखौटा पहनकर ही धरती में पॉलिथीन का पदार्पण हुआ था। परिणामत: आज यह पृथ्वी के ऊपर सर्वनाश बोने वाला प्राणभक्षक बन गया है।14

समानत: कवि की एक अन्य कविता भी यह सुस्पष्ट करती है कि "पॉलिथीन का लिफाफा/मरजीवा चिरजीवा/मानव की अमानवीय संतान.../जिसे कुतरने में/काल के दाँतों को भी सैकड़ों बरस लगते हैं/वह जो आदमी का एक उपयोगी आविष्कार/अब अपयोगी/जीवनरोधी।"15 इस तरह कवि की सचेत दृष्टि यह पहचानती है कि पॉलिथीन मानव केंद्रित, संकुचित, ह्रासोन्मुखी, विनाशोन्मुखी दृष्टि का नतीजा है। अत: कविता इसके बदले जैव केंद्रित, व्यापक, जीवनोन्मुखी, विकासोन्मुखी दृष्टि की वकालत करती है। इसके लिए हमारी जीवन शैली और सोच-विचार में आमूलचूल परिवर्तन लाने की ज़रूरत है। प्लास्टिक के आधिक्य से मुक्त होने के लिए भला इतना तो हम अवश्य करें कि उसके एकल उपयोग पर रोक लगा दिया जाएँ।

अंतत: केवल प्रत्याशा की ज्योति को बरकरार रखने हेतु इतना ही कहूँगी कि "खैर.../आगे जाएगा कहाँ तक यह/आख़िर है तो यह प्लास्टिक ही/बहा ले जाएगी इसे भी एक दिन कोई वैसी ही हवा/कोई आँच दफ़न कर देगी इसे हमेशा के लिए।"16

000

संदर्भ -

1. ज्ञानेंद्रपति, गंगातट, सेतु प्रकाशन, नोएडा, 2022, भूमिका से, 2. ज्ञानेंद्रपति, गंगातट, सेतु प्रकाशन, नोएडा, 2022, पृ. 147, 3. ज्ञानेंद्रपति, गंगातट, सेतु प्रकाशन, नोएडा, 2022, पृ. 147,

4 . https://cpcb.nic.in/uploads/plasticwaste/Annual-Report-2019-20-PWM.pdf,

5 . https://cpcb.nic.in/uploads/plasticwaste/Annual-Report-2020-21-PWM.pdf,

6. ज्ञानेंद्रपति, गंगातट, सेतु प्रकाशन, नोएडा, 2022, पृ. 147-148, 7. ज्ञानेंद्रपति, गंगातट, सेतु प्रकाशन, नोएडा, 2022, पृ. 148, 8. ज्ञानेंद्रपति, गंगातट, सेतु प्रकाशन, नोएडा, 2022, पृ. 148, 9. ज्ञानेंद्रपति, गंगातट, सेतु प्रकाशन, नोएडा, 2022, पृ. 148, 10. प्रभाकरन हेब्बार इल्लत (सं), हरित कविता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2022, पृ. 183, 11. ज्ञानेंद्रपति, गंगातट, सेतु प्रकाशन, नोएडा, 2022, पृ. 148, 12. ज्ञानेंद्रपति, गंगातट, सेतु प्रकाशन, नोएडा, 2022, पृ. 148, 13. ज्ञानेंद्रपति, गंगातट, सेतु प्रकाशन, नोएडा, 2022, पृ. 148, 14. ज्ञानेंद्रपति, गंगातट, सेतु प्रकाशन, नोएडा, 2022, पृ. 149, 15. ज्ञानेंद्रपति, "संगम तीरे जुड़ा माघ मेला", गंगातट, सेतु प्रकाशन, नोएडा, 2022, पृ. 145, 16. राग तैलंग, "प्लास्टिक", हरित कविता, संपादन. प्रभाकरन हेब्बार इल्लत, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2022, पृ. 184

(शोध आलेख)

'स्त्री की राजनीतिक सहभागिता और यात्रा -अनुभवों की कहानी : जहाँ फव्वारे लहू रोते हैं' (नासिरा शर्मा)

शोध लेखक : सरिता

शोध निर्देशक : डॉ. प्रियंका सोनकर

सरिता

त्रिवेणी काम्प्लेक्स, गोमती छात्रावास, रूम नंबर 121, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी - 221005 उप्र

मोबाइल -9773683897

ईमेल-sarusarita07@gmail.com

स्त्री और राजनीति दोनों ही आपस में जितनी भिन्न हैं उतनी ही यह दोनों आपस में जुड़ी हुई भी हैं। इतिहास इस बात का गवाह है कि स्त्रियों को सदैव राजनीति और उनके अधिकारों से दूर रखा गया है क्योंकि स्त्री की राजनीति में भागीदारी का अर्थ है, आधी आबादी की भागीदारी और पितृसत्तामक जड़ों का हिलना। ऐसे में स्त्री का बाहर निकलना और निकलकर यात्रा करना और राजनीति में अपनी बेबाक और सक्रिय भूमिका निभाना निश्चय ही एक सार्थक और क्रांतिकारी कदम है। ऐसा ही साहसपूर्ण और बेबाक प्रयास एक लेखिका करती हैं जो केवल दूसरे देशों में जाकर यात्रा ही नहीं कर रहीं अपितु वहाँ की राजनीतिक उथल -पुथल का ब्यौरा देते हुए परिस्थियों का विशलेषण भी करती हैं। नासिरा शर्मा ऐसी ही लेखिका हैं जो परिस्थियों से घबराकर घर की चार - दीवारी में कैद होकर बैठेने वाली नहीं हैं अपितु वह तो मशाल जलाकर आगे बढ़ने वाली लेखिका के रूप में अपनी उपस्थिति 'जहाँ फव्वारे लहू रोते हैं' में दर्ज कराती हैं। यह यात्रा वृत्तान्त सामान्य यात्रा वृत्तान्त नहीं है इस यात्रा में जान के खतरे और अभिव्यक्ति के खतरे भी सम्मिलित हैं।

यह यात्रा वृत्तान्त ईरान यात्रा पर आधारित है। इस यात्रा में 17 यात्राओं का वर्णन है। इसका मुख्य केन्द्र ईरान है और उसकी राजनीतिक अस्थिरता है। इस यात्रा वृत्तान्त के आरम्भ में ही ईरान की सुन्दरता के बारे में लेखिका लिखती हैं कि "ईरान इतना ख़ूबसूरत होगा, हमारे वहम गुमान में भी न था। चिनार के घने दरख्तों की छाया में पड़ी काली चौड़ी सड़कें और वृक्षों की जड़ों से बहता सफाफ़ ठंडा अलबुर्ज पर्वत की बर्फ का पिघला पानी किसी पेंटिंग की तरह लगता था।"1

ईरान यात्रा एक योजना के तहत की गई थी। इस योजना में पूरे भारत से 13 फ़ारसी के अध्यापक और विद्यार्थी शामिल होकर ईरान गए थे। लेखिका नासिरा शर्मा भी इन्हीं में शामिल थी। इन सभी लोगों को ईरान भेजेने का मकसद ईरान की सामान्य भाषा फारसी सीखाना था। इन सभी का काम सुबह उठकर नाश्ता करना और ईरानी संस्कृति को जानना और समझना। ईरान की इसी घुमक्कड़ी के दौरान लेखिका ने वहाँ की संस्कृति के बारे में भी बहुत कुछ जाना और समझा। ईरान और भारत की संस्कृति की तुलना करते हुए वह कहती हैं कि – "भारतीय अपनी भावना को छुपाना मर्यादा समझते हैं मगर वहाँ मर्यादा का अर्थ था अपनी भावना को व्यक्त करना। उदाहरण के रूप में यदि किसी ने आपको चाय की प्याली थमाई तो आपको झट कहना पड़ेगा कि तुम्हारे हाथ दु:ख न और जिसने प्याली थमाई तो वह फ़ौरन कहेगा कि आपका मुँह

और सर दर्द न करें।" 2

दो भिन्न संस्कृतियों के अपने-अपने प्रतिमान होते हैं और दोनों की भिन्नता ही किसी संस्कृति को ख़ास बनाती है। फिलहाल यह ईरान यात्रा पर आधारित यात्रा वृत्तान्त है और इस पूरी यात्रा ने ईरान की एक ख़ास तस्वीर खींचने का प्रयास ज़रूर किया है। यह पूरी यात्रा ईरानी संस्कृति एवं वहाँ के राजनीतिक, सामाजिक जीवन के बारे में बताती है। ईरानियों के साहित्यिक मिजाज़ के बारे में लेखिका लिखती हैं कि – "शायरी ईरानियों के खून में बहता हुआ वह द्रव था जो उन्हें हमेशा मस्त रखता था। इसी कारण वहाँ पुस्तकों के दाम बहुत कम थे और हर आम और ख़ास आदमी उसे खरीदने का हौसला और औक़ात रखता था।" 3

ईरान की इस यात्रा में लेखिका की नज़र कई बारीकियों पर भी गई ईरान की पहली यात्रा ने लेखिका के भ्रम थोड़े। इससे पहले लेखिका के लिए मन में ईरान बस नक़्शे पर केवल एक राष्ट्र के रूप में ही था। किन्तु ईरान आने के बाद उन्हें यहाँ का प्राकृतिक सौंदर्य, साहित्य का साझा सेतु आदि के बारे में न केवल जानने का मौका मिला बल्कि उसको महसूस भी किया।

ईरान की दूसरी यात्रा लेखिका के लिए उतनी ख़ूबसूरत और आरामदायक नहीं रही जितनी पहली यात्रा थी। अब ईरान की तस्वीर बदल चुकी थी, वो ख़ूबसूरत ईरान अब क्रान्ति की आग में जल रहा था – हवाई अड्डे से निकलते ही महसूस हुआ की ईरान बदल गया है। शायद यह पतझड़ के मौसम का प्रभाव है या फिर उस जागृति का, जो जाने कब से ईरानियों के सपने में बसी हुई थी, सड़क पर खुलेआम राजनीतिक बातें हो रही थी। यही ईरान दो साल पहले क्या था ? किसके पास हौसला था कि शाह का नाम फुसफुसा ले...?"4

ईरान अपने हक के लिए लड़ाई शुरू कर चुका था। इस लड़ाई में युवा वर्ग सबसे आगे था। यह लड़ाई वर्तमान सरकार से शिक्षा, रोज़गार को लेकर थी - "हमारी ज़रूरतें केवल एक वर्ग की नहीं हैं। हममें से हर ईरानी को घर चहिए, रोटी चहिए, शिक्षा चहिए, हमें क्या मिला है..... केवल नकल और नकल।"5

ईरान अपनी परिवर्तन के दौर में था वह वर्तमान शासन अर्थात शाह के शासन से नाख़ुश थे। उन्हें लग रहा था कि इस सरकार को बदलकर ही समस्या का अंत होगा।

"यात्रा -अनुभवों और यात्रा – वृत्तान्तों के लिखे जाने से एक नई जेंडर सम्बन्धी ताक़त का उदय हुआ। स्त्रियों ने यात्रा करके अपना स्पेस लिया और उन्हें जो भी भाषा परम्परा और समाज ने दी थी उस भाषा में (जिस पर पहले पुरुषों का अधिकार था) वृत्तान्त लिखकर उसे नवीन अर्थ -सन्दर्भ दिये।"6

एक स्त्री का दूसरे देश में जाना और यात्रा करना कितना चुनौतीपूर्ण होता है ? पहले तो घर की चारदीवारी को लाँघना, फिर घर की तमाम ज़िम्मेदारी जो स्त्री के कंधों पर बेवजह डाल दी जाती है उन सभी को हटाकर अपने सपनों की उड़ान भरना निश्चय ही साहसपूर्ण कार्य है। लेखिका नासिरा शर्मा ने न केवल यात्रा की अपितु ईरान की राजनीतिक अस्थिरता का भी मूल्यांकन किया। जहाँ लोग जाने से भी घबराते हैं वहाँ भी लेखिका गईं ही नहीं अपितु वहाँ पर जाकर बाईट भी इकट्ठा की।

शुरू से ही स्त्रियों को पुरुषों से कम आँका गया है यहाँ तक की बड़े -बड़े विचारकों ने भी स्त्रियों को कम ही आँका है। पाश्चात्य विचारक बाल्जाक कहते हैं कि "औरत की नियति और सम्पूर्ण महत्ता इस बात में निहित है कि वह पुरुष के दिल की धड़कन बढ़ा सके। वह जंगम संपत्ति है, पुरुष जहाँ चाहे उसे हाँककर ले जा सकता है।"7

जहाँ बड़े -बड़े विचारक स्त्री के सन्दर्भ में ऐसे विचार रखते हों वहाँ एक स्त्री का बाहर निकलकर जोखिम भरी जगहों में जाकर सच की तलाश करना और परिस्थितियों को समझना निश्चय ही क्रांतिकारी कदम है। नासिरा शर्मा स्वयं कहती हैं कि इस तरह कि रचना लिखने का उनका प्रथम प्रयास है। जब उन्होंने ईरान यात्रा पर लिखना शुरू किया तो लोगों ने उन्हें जासूस की भी संज्ञा दी। इस यात्रा साहित्य को लिखने में उन्हें काफ़ी दिक्कतों का सामना भी करना पड़ा। किन्तु स्त्री होने के नाते तमाम चुनौतियों का सामना करते हुए भी ईरान की यात्रा पूर्ण की।

स्त्री जीवन की कठिनाइयों से सभी अवगत हैं और जब स्त्री बाहर जाकर यात्रा करती है तो यह कठिनाइयाँ और बढ़ जाती है। स्त्री होने के अपने संघर्ष और चुनौतियाँ हैं। लेखिका लिखती हैं की है -"शाह के समय में कहा जाता था कि ईरान एक बड़ा कैदखाना है, मगर आज एक बड़ी मस्जिद में बदल गया है, हर जगह हर दफ़्तर में बारह से एक बजे तक नमाज़ पढ़ी जाती है न पढ़ने पर नौकरी से अलग कर दिया जाता है। औरतें मर्दों से हँस बोल नहीं सकती ज़रा सा सर खुलने पर और बाल दिख जाने पर आलोचना आरम्भ हो जाती है, क्योंकि कहा जाता है कि औरतों के बालों की चमक मर्द की वासना जगाती है वह गुनाह है।" 8

लेखिका केवल वहाँ कि यात्रा ही नहीं कर रही बल्कि वह तो बिन्दुवार ढंग से एक बाद एक वहाँ न केवल राजनीतिक स्थिति की व्याख्या करती हैं बल्कि वहाँ पर स्त्रियों के साथ हो रहे अत्याचारों के बारे में बिना डरे खुल कर बोल रही थी। दुनिया में अरब देशों के बारे में जो छवि बनी उसके बाद एक स्त्री का उस देश में जाना और न केवल जाना बल्कि घूम-घूम कर तथ्यों को एकत्रित करना एक स्त्री के लिए निश्चय ही साहसपूर्ण कार्य है।

ऐसा ही एक और प्रसंग है जिसमे ईरान में महिलाओं की स्थिति बयाँ होती है – "ईरान में स्त्रियों की हालत सोचनीय है। जगह-जगह पर लिखा है, 'स्त्री का गौरव मातृत्व है' इमाम अपने भाषण में भी कहते हैं औरतें घर में बैठे और बच्चों का लालन -पालन करें परन्तु वही औरतें जब बन्दूक लेकर लड़ने निकलती हैं और सरकार के शत्रुओं को मार डालती हैं तब उनको सराहते हैं, लेकिन जब वे मुजाहिदीन व फ़िदाईन के रूप में सरकार से लड़ती हैं तब वे उनका नाम तिरस्कार से लिया जाता है कि भली लड़कियाँ यह नहीं करती हैं।" 9

दुनिया में लगभग हर जगह स्त्रियों की

स्थिति समान दिखाई देती है उसकी भूमिका और उसके कार्य को हर जगह कमतर ही आँका गया है इसलिए स्त्रियों का ख़ुद के लिए आवाज़ उठाना बहुत ज़रूरी हो गया था और स्त्रियों ने कभी साहित्य के माध्यम से तो कभी आन्दोलनो के माध्यम से अपनी आवाज़ बुलंद की। स्त्री आलोचना के स्त्री पक्ष में सुजाता लिखती हैं कि "लेकिन अब स्त्रियों को लिखना होगा। स्त्रियों के लिए लिखना होगा। पुरुषों ने तो हमेशा से ही लिखा है और अपनी यौनिकता के बारे में कहने के लिए उनके पास बहुत कुछ है, कहते ही रहें हैं, अब भी कह रहे हैं।" 10

ईरान में जब खुमैनी का शासन चल रहा था तब विरोध का मंजर पूरे ईरान में दिखाई दे रहा रहा था। इन विरोध प्रदर्शनों में एक वर्ग पूरी तरह से प्रभावित हो रहा था वह था विद्यार्थी और कामगार वर्ग – "विश्वविद्यालय बंद हैं, काम हैं नहीं, कुल चालीस लाख लोग ईरान में बेकार हैं। महँगाई है, कोई भविष्य में आर्थिक कार्यक्रम नहीं है। ज़बान खोलो तो गर्दन कटती है।" 11

लेखिका जब ईरान से ईराक गईं तो उहोंने वहाँ कई ईरान के मुकाबले के कई फर्क यहाँ महसूस किया यहाँ पर स्त्रियों कि स्थिति में थोड़ा अंतर था वह लिखती हैं कि – "पूरे इराक में दीवारों पर चिपके विज्ञापनों पर कहीं भी औरत का चित्र नहीं। पूरे मध्यपूर्वी देशों में इराकी औरत वास्तव में अपना सुनहरा समय जी रही हैं और इस संघर्ष में उसे समाज का सहयोग मिला हुआ है। औरतों का सही दिशा में फलना - फूलना वह भी इस्लामी देश में, मन को बहुत भाया।" 12

शाह के शासन के बाद खुमैनी के शासन से ईरान में काफी सांस्कृतिक परिवर्तन भी देखने को मिले। अब ईरान में धर्म सर्वोपरि हो गया है – "शाह के समय में कहा जाता था कि ईरान एक बड़ा कैदखाना है, मगर आज एक बड़ी मस्जिद में बदल गया है, हर जगह हर दफ़्तर में बारह से एक बजे तक नमाज पढ़ी जाती है न पढ़ने पर नौकरी से अलग कर दिया जाता है। औरतें मर्दों से हँस बोल नहीं सकती जरा सा सर खुलने और बाल दिख जाने पर आलोचना आरम्भ हो जाती है, क्योंकि कहा जाता है कि औरतों के बालों की चमक मर्द की वासना जगाती है, वह गुनाह है।" 13

खुमैनी के शासन ने ईरान में धर्म को इतना महत्त्वपूर्ण बना दिया कि बाकी सारी चीज़ें गैर -ज़रूरी सी होने लगी। अरब देशों कि अशान्तिपूर्ण माहौल के प्रति सब अवगत हैं की वहाँ कितनी राजनीतिक अस्थिरता बनी रहती है। अपना शासन स्थापित करने के लिए आपस में युद्ध करना आम बात है उस समय ईराक और ईरान ने इसी प्रकार का युद्ध किया था – "युद्ध की वर्तमान स्थिति यह है की दोनों देशों ने एक – दूसरे के शहरों को तबाह करने का इरादा कर लिया है जो युद्ध कि नैतिकता के विरुद्ध है। साल भर ईरानी रात को तेहरान छोड़कर आसपास के इलाके में रात गुज़ारने भागते थे ताकि जान बच सके मगर रात -दिन बराबर मिसाइल से होते हुए यह हमले उन्हें भागने से पहले ही ख़त्म कर देते हैं।" 14

अत: यह कहा जा सकता है कि 'जहाँ फव्वारे लहू रोते हैं' केवल ईरान की राजनीतिक यात्रा ही नहीं है इसमें कई ऐसे पक्ष देखने को मिले जो किसी देश के विकास में किस तरह बाधक और प्रगति का मार्ग हो सकता है उस पर भी चर्चा की गई है। एक स्त्री का दूसरे देश में जाना और वहाँ केवल यात्रा भर न करना अपितु वहाँ रहकर वहाँ कि राजनीतिक परिस्थियों को समझना और उसके बाद उन सभी तथ्यों को तमाम विरोधों के बावजूद लिखना निश्चय ही स्त्री दृष्टि से महत्त्वपूर्ण और साहसपूर्ण कार्य है। शाह से खुमैनी के शासन को देखें तो एक बात साफ़ हो जाती कि धर्म जब भी सर्वोपरि हुआ है उस देश का विकास में बाधा ज़रूर आई है। एक स्वस्थ समाज के विकास के लिए एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण कि आवश्यकता होती है जिसे समाज विकसित हो पाए। विकास कि अवधारणा में शिक्षा सबसे महत्त्वपूर्ण होती है। जब किसी समाज को ख़त्म करना होता है तो वहाँ सबसे पहले शिक्षा ख़त्म की जाती है ताकि सोचने और समझने की शक्ति को ख़त्म किया जा सके।

साहित्य में इस तरह कि रचना करना एक अपने आपमें एक अनूठा प्रयास है। तमाम विरोधों के बावजूद सच कहने कि क्षमता और उसको पूरे साहस के साथ बिन्दुवार तरीके से लिखना स्त्रीवादी दृष्टी से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। स्त्री यात्रा वृत्तान्त विषय और विचार दोनों दृष्टी अपने आप में सम्पूर्ण है। इस यात्रा वृत्तान्त में ईरान और ईराक कि महिलाओं कि स्थिति पर भी बहुत मार्मिकता से लिखा गया है। दोनों देशों में महिलाओं के स्थिति में परिवर्तन है। ईरान में जहाँ महिलाओं की आज़ादी को धर्म के आड़ में छीन लिया गया था वहीं ईराक में महिलाओं की स्थिति अच्छी थी। जब कोई स्त्री किसी देश कि यात्रा करने जाती है तो वहाँ की स्त्रियों की स्थिति का अवलोकन भी करती हैं। गरिमा श्रीवास्तव द्वारा रचित देह ही देश हो या अनुराधा बेनीवाल द्वारा रचित आज़ादी मेरा ब्रांड दोनों ही कृतियों में भी दूर -देशों में मौजूद स्त्रियों से जुड़ीं समस्याओं पर बात की गई है। कितनी अजीब है यह की सीमा -पार भी महिलाओं की स्थिति में ज़्यादा परिवर्तन नहीं है। लगभग हर जगह महिलाओं की स्थिति में समानता है। कहीं कम और कहीं ज़्यादा है।

000

संदर्भ - 1 . जहाँ फव्वारें लहू रोते हैं, नासिरा शर्मा, पृष्ठ संख्या 19, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2021, 2 वही, पृष्ठ संख्या, 20, 3. वही, पृष्ठ संख्या, 21, 4 .वही, पृष्ठ संख्या, 27, 5 . वही, पृष्ठ संख्या 30, 31, 6 . हरदेवी की यात्रा, गरिमा श्रीवास्तव, पृष्ठ संख्या 18, सेतु प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2023, 7 . स्त्री उपेक्षिता, प्रभा खेतान पृष्ठ संख्या, 65 हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, प्रथम संस्करण 2008, 8 . जहाँ फव्वारें लहू रोते हैं, पृष्ठ संख्या, 158, वाणी प्रकाशन प्रथम संस्करण 2021, 9 . वही, पृष्ठ संख्या, 87, 10 आलोचना का स्त्री पक्ष, सुजाता, पृष्ठ संख्या, 72, राजकमल प्रकाशन, दूसरा संस्करण 2021, 11 जहाँ फव्वारें लहू रोते हैं, पृष्ठ संख्या, 191, वाणी प्रकाशन प्रथम संस्करण 2021, 12 . वही, पृष्ठ संख्या, 224, 13 . वही, पृष्ठ संख्या, 158, 14 .वही, पृष्ठ संख्या, 204

शोध आलेख

(शोध आलेख)

समकालीन हिन्दी कविता में भारतीयता और सांस्कृतिक मूल्य

शोध लेखक : सारिका ठाकुर
(शोधार्थी) हिन्दी साहित्य विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय वर्धा

सारांश - कविता युग और जनमानस का प्रतिबिंब होती है, जो अपने-आप में तमाम संदर्भों को समाहित करने की क्षमता रखती है। यही कारण है कि साहित्य के इतिहास के प्रारंभिककाल से आज तक काव्य उत्तरोत्तर विकास और साहित्य के अक्षुणन भंडार को समृद्ध करती नज़र आती है। ऐसे में कविता की ज़मीन उससे कैसे वंचित रह सकती है। एक विशाल भू-खंड में फैला यह देश 'भारत' अपने में समृद्धशाली परंपरा का प्रतिनिधित्व करता नज़र आता है, जिसमें परंपरा, इतिहास, वैशिष्टता और संस्कृति का अद्वितीय समाहार है, जो कविता की ज़मीन को भी स्पर्श करती है। समकालीन कविता वर्तमान परिपेक्ष में भारतीयता और सांस्कृतिक पक्षों को अभिव्यक्त करती नज़र आती है, जो बहुरंग लिए उपस्थित है। भारतीयता की छवि, लोकजीवन, लोकश्रम, मनुष्य की जिजीविषा, मूल्यपरकता, परिवर्तन, संघर्ष, उपभोक्तावादी नागर अपसंस्कृति आदि द्वारा एक ऐसे कोलाज की निर्मिति करती है, जिसमें भारतीय बोध, प्रेम, सद्भाव, विचार, सांस्कृतिक गंध, विद्रोह, कटाक्ष व मुक्ति आदि तमाम तत्व दृष्टिगत होते हैं। यह तत्व पारंपरिक धरोहर को समाहित किए आप में उसके संरक्षण द्वारा लोगहिताय को प्रयत्नशील है। अपने मूल से जुड़ी होकर समकालीन कविता भारत और उसके सांस्कृतिक मूल्यों हेतु निरंतर संघर्ष करती नज़र आती है।

बीज शब्द- भारतीयता, परम्परा, साहित्येतिहास, संस्कृति, समकालीन काव्य, मानवीयता, प्रजातांत्रिकता, स्वच्छंदतावाद, सामाजिकता, मूल्यधर्मिता, लोकजीवन, उपभोक्तावाद, वस्तुकेंद्रण तथा व्यापारमूलक दृष्टि।

प्रस्तावना "भू-लोक का गौरव प्रकृति की पुण्य लीला स्थल कहाँ? / फैला मनोहर गिरी हिमालय और गंगाजल जहाँ / संपूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है / उनका कि जो ऋषिभूमि है, वह कौन? भारतवर्ष है"

एक विशाल भू-खंड में फैला यह देश भारत आप में समृद्धशाली परंपरा का प्रतिनिधित्व करता नज़र आता है। भारत जिसकी परंपरा समृद्ध है, इतिहास उतना ही गौरवशाली। विशिष्टता जितनी अद्वितीय है, संस्कृति उतनी ही अक्षुणन। वह जो ऋषि-मुनियों के तप, त्याग और समर्पण से पल्लवित-पुष्पित हुआ है। विभिन्न विचारों ने जिसमें सत्कर्मों की आहुति देकर गढ़ा है।

किसी देश की वैश्विक फलक पर छवि निर्मिती में संस्कृति की अहम भूमिका होती है। सांस्कृतिक पक्ष ही वह संपत्ति है, जो उसकी दिशा का निर्धारक बनती है। इसके अंतर्गत समग्र भारतवासी के आचार-व्यवहार, जीवन संस्कार, भाषिक संपदा, क्षेत्रीय विशेषताएँ, पर्व-त्यौहार, वस्त्र-आभूषण, जीविकोपार्जन आदि तमाम चीजें सम्मिलित है, जो आपस में एक सूत्र में बंधकर भारत की सांस्कृतिक विशेषता बनकर उभरती है और विविध रूपों में अभिव्यक्ति का माध्यम बनती है। ऐसे में कविता, जो युग और जनमानस का प्रतिबिंब हो उससे कैसे अनभिज्ञ रह सकती है। साहित्येतिहास के आरंभिक बिंदु से आज तक की इस सुदीर्घ यात्रा में कविता विभिन्न साहित्यिक विषयों द्वारा अभिव्यक्ति करती नज़र आती है, जिनमें राष्ट्रीय और सांस्कृतिक पक्ष भी विद्यमान रहें है। देश, काल और परिस्थिति के अनुसार उसमें बाहुल्यता व सीमितता का होना स्वभाविक है। उदाहरणस्वरूप; भारतेंदु युग में राष्ट्रीयता की भावना फूटती है, जिसकी प्रारम्भिक और सक्रिय झलक हम भारतेंदु में पाते हैं:- रोवहू सब मिलिं आवहु भारत भाई। / हा हा! भारत दुर्दशा देखी जाई। ।

और द्विवेदीयुगीन कड़ी को पार कर स्वच्छंदतावादी युग में 'राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा' के रूप में अपनी अस्मिता को विस्तार देती नज़र आती है, हालाँकि इससे पूर्व भी ये तत्व विद्यमान रहें, किंतु अप्रत्यक्ष रूप में इनकी अधिकता रही। ऐसे में प्रत्येक युगीन परिस्थितियों में नवीन रूप में साहित्यिक प्रवृतियाँ दृष्टिगोचर होती है।

सन उन्नीस सौ साठ के बाद से कविता की ज़मीन भी बदली। क्षणभंगुरता, निराशा, मोहभंग तथा अतियथार्थवाद आदि तमाम तत्वों की विशेष मौजूदगी कविता में देखने को मिलती है, किंतु उनमें भारतीय व सांस्कृतिक पहलुओं को भी देखा जा सकता है। मुक्तिबोध 'अंधेरे में' काव्य में

सारिका ठाकुर
(शोधार्थी) हिन्दी साहित्य विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय वर्धा, महाराष्ट्र-442001
मोबाइल- 9511803927
ईमेल- sarikathakur406@gmail.com

"ओ मेरे आदर्शवादी मन" की कुछ पंक्तियों द्वारा व्याप्त उस अपसंस्कृति की ओर संकेत करते हैं, जो भारतीय परंपरा में संयुक्त परिवार के विघटन, टूटन, अलगाव और संबंध विच्छेद के पश्चात उपजी है। यहाँ मूल्यों का पतन और उसके परिणामस्वरूप जीवन की विडंबना को अनुभूत किया जा सकता है। इस टूटन ने कवि को भी भीतर से तोड़ा है, जिसकी विवशता कविता में दर्शनीय है। समकालीन कविता में विद्यमान तमाम मानवीय सरोकारों को रेखांकित करते हुए विश्वरंजन जी कहते हैं- "प्रसन्नता का सबब यह भी है कि यहाँ दो-तीन पीढ़ियाँ एक साथ समकालीन कविता पर अपने संपूर्ण विश्वास के साथ सक्रिय है। और बहुतायत में। मैं व्यक्तिगत तौर पर यह भी मानता हूँ कि आज का कवि अधिक सरोकारी है। उसकी सामाजिकता में हुआ विस्तार अभूतपूर्व है। वह पूर्णत: मानवीयता, सामाजिकता और प्रजातांत्रिकता का पक्षधर बनता जा रहा है। वहाँ दिखाई देता यथार्थ से विद्रोह हिंसात्मक नहीं, वैचारिक रूप से मानवीय गरिमा की संपन्नता की गरिमात्मक आकांक्षा से लबालब है।"

प्रयोगवाद के पश्चात अकविता, विद्रोही पीढ़ी, अभिनव कविता, बीट कविता आदि काव्यांदोलनों का कविता के क्षेत्र में विशेष प्रभाव पड़ा। जिनमें जगदीश गुप्त, राजकमल चौधरी, श्याम परवार, नरेन्द्र धीर, परमानन्द श्रीवास्तव, वीरेन्द्र कुमार, रवीन्द्र भ्रमर, रामवचन राय तथा रमेशगौड़ आदि प्रमुख कवियों की सक्रियता देखने को मिलती है, किंतु समकालीन हिन्दी कविता का प्रादुर्भाव 'निषेध के निषेध' से होता है। इसके प्रवर्तक का श्रेय 1976 ई. में 'डॉक्टर विश्वंभर नाथ उपाध्याय' को जाता है, जो समकालीन कविता की भूमिका लिखते हैं। समकालीन कविता मूल्यधर्मिता से संदर्भित है, जिसका ध्येय व्यक्तिवादी और समाजविरोधी प्रवृत्तियों के निषेध द्वारा सामाजिक प्रगतिशील मूल्यों को बढ़ावा देना है। ऐसे में समकालीन कविता में व्याप्त तमाम पूर्वकालीन प्रवृत्तियों के मध्य भारतीयता व सांस्कृतिक संदर्भ की भावाभिव्यक्ति मिलती है, तो कहीं उनमें आए परिवर्तनों पर दृष्टि, तो कहीं उनके संरक्षण की चिंता आदि तमाम माध्यमों से भारतीय और सांस्कृतिक पक्षों के विश्लेषणात्मक पक्षों को हम देख सकते हैं।

समकालीन कवि भारतीयता की पुरातन छवि के साथ-साथ वर्तमान छवि पर भी दृष्टि ले जाते हैं। उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रभाव यहाँ भी व्याप्त है। वस्तुकेंद्रण और मनुष्य की व्यापारमूलक दृष्टि का भी विश्लेषण करते नज़र आते हैं। इतने लंबे समय अंतराल में आए युगीन परिवर्तनों और उससे होने वाले मूल्यों के हनन की भी छवि उकेरते नज़र आते हैं। 'मुलुक लौट आने के सपने' में शिवनारायण जी की काव्यमयी अभिव्यक्ति इस ओर ध्यान ले जाती नज़र आती है- 'खुलने लगा है अब/ सपनों का संसार/ खिलने लगा है परदेसी बाज़ार/ कल तक जो पढ़ाते थे/ रामराज्य और स्वदेशी का पाठ/ वे ही दिखा रहे आज फीलगुड और इंडिया शाइनिंग का ठाठ/ देखते ही देखते/ अपना यह मधुमय देश/ सपनों का मीना बाज़ार हो गया/ जाने कितने ही विकसित देशों के व्यापारी/ सपनों की दुकान सजाए बैठे हैं'

लोकजन और लोकजीवन के आश्रय में भारत को 'चंद्रकांत देवताले' अपनी कविता के माध्यम से देखते हैं। मनुष्य के संघर्षशील छवि में भारत की तमाम उपमाएँ विद्यमान है। इस धरा में व्याप्त प्राकृतिक विशेषताएँ, स्त्री के प्राकृतिक गुणों के रूप में उन्हें वह देखते हैं। भिन्न-भिन्न स्त्रियों द्वारा न केवल लोकजीवन के तमाम रंग यहाँ उपस्थित है, जो देश की वास्तविक बसावट और जीवन संस्कार का परिचायक है, अपितु विभिन्न जनों की कर्मशीलता, जीवनसंघर्ष, भटकाव और व्यथा को भी व्यक्त करने में सक्षम है। यथा- "एक औरत अनंत पृथ्वी को/ अपने स्तनों में समेटे/ दूध के झरने बहा रही ही है/ एक औरत अपने सिर पर रखे/ घास का गट्ठर/ कब से धरती को नापे जा रही है/ एक औरत अंधेरे में/ खर्राटा भरते हुए/ आदमी के पास निर्वसन जागति/ शताब्दियों से सोई है/ एक औरत का धड़/ भीड़ में भटक रहा है/ उसके हाथ अपना चेहरा ढूँढ़ रहे हैं/ उसके पाँव जाने कब से/ अपना पता पूछ रहे हैं"।

इस प्रकार विभिन्न रचनाएँ अलग-अलग भावबोध लिए नज़र आती है। जैसे; भारतीय यथार्थ की छवि द्वारा कहीं क्रांति, तो कहीं मानवीय अस्मिता और स्वतंत्रता की प्राप्ति पर चिंतन। मानवीय मूल्यों में व्यक्ति की भूमिका कहीं, तो कहीं लोकजीवन के आचार-व्यवहार। प्रकृति के संग सौहार्दपूर्ण संबंध को देने स्वर का प्रयास कहीं, तो कहीं खंडित जीवन की व्यथा के रूप में। वर्तमान परिवर्तित छवि और उनके प्रति स्वीकृति का भाव कहीं, तो कहीं भारतीय मूल्यों के प्रति उपहास और उपेक्षा का भाव। इस प्रकार भारत के विभिन्न संदर्भों की वैभिन्नतायुक्त अभिव्यक्ति भारतीयता की छवि को प्रस्तुत करती नज़र आती है, जिन्हें हम निम्न रचनाओं में देख सकते हैं- राधेश्याम तिवारी कृत 'सपना टूटने के बाद', ज्ञानेंद्रपति कृत 'घड़ियाँ', 'एक धुंधली तस्वीर', 'गणतंत्र दिवस', मंगलेश डबराल कृत 'दूसरा हाथ', 'सफेद दीवार', 'हत्या', विजेंद्र कृत 'चैत की लाल टहनी', दुष्यंत कृत 'सूर्य का स्वागत', वीरेन डंगवाल कृत 'अश्वारोही' व अशोक वाजपेई कृत 'प्रार्थना और चीख के बीच' आदि।

सांस्कृतिक मूल्यों के पर्व-त्यौहार, आचार-व्यवहार, भाषिक व्यवहार, परंपराओं व जीवन संस्कारों के साथ पर्यावरणीय मूल्यों को भी विशेष भूमिका है। यह देश प्रकृति की पूजा का देश है। प्रकृति में भी अध्यात्म का आश्रय प्रारम्भिककाल से प्रचलन में है। सूर्य, चंद्र, वृक्ष और नदी आदि हमारे पूजनीय रहे हैं और इनसे संबंधित पर्व आज भी हम उसी निष्ठा से मनाते हैं। ऐसे में उस प्रकृति के प्रति स्नेह व सम्मानपूर्ण भाव मानव जीवन में उसकी सार्थकता, परिवर्तित युगीन परिस्थिति में उसकी क्षतिपूर्ण स्थिति में चिंता का भाव, उसके संरक्षण और संवर्धन का प्रयास निरंतर कविता में दिखाई पड़ता है। 'नवक्रांति' में कैलाश वाजपेई लिखते हैं- 'तुम अगर परिवर्तन की पक्षधर हो/ तो मिट्टी से शुरू करना/ जो बाँझ हो रही है'

भारत की एकता और अखंडता ही उसे अन्य देशों से अलग और सशक्त बनाती है।

संयुक्त परिवार की यह छवि कई देशों के लिए प्रेरणा का स्रोत और अनुकरणीय है। संबंधों के प्रति प्रेम, त्याग, समर्पण और सेवा का भाव उसकी परिपक्वता का परिचायक है। ऐसे में उस भारतीय परंपरा में आज भी संयुक्त परिवार की मौजूदगी, उसे बचाने की जद्दोज़हद, आई वर्तमान विकृतियाँ, टूटन, के साथ पुरातन और नवीन परिवार संरचना की कशमकश मंगलेश डबराल कृत 'कुछ देर के लिए', 'पिता की तस्वीर', 'बच्चों के लिए', राजेश जोशी कृत 'बीसवीं सदी के अंतिम दिनों में', 'संयुक्त परिवार' तथा कैलाश वाजपेई कृत 'लाल डोरा' 'गैया' व 'नवदुखी' में अभिव्यक्ति पाती है।

भारत कृषि प्रधान देश है और भारत की आत्मा गाँवों में बसती है। लोक परंपरा और लोग जीवन के अभिव्यक्ति की सहजता इसमें दिखाई पड़ती है। भारत का लोग अपनी ज़मीन से जुड़े हैं और इसका रंग-ढंग लिए अपने जीवन में नज़र आते हैं। भौतिकतावादी युग में गाँव से शहरों की ओर पलायन, कृषकों की त्रासदीपूर्ण स्थिति और अपने पारम्परिक व्यवसाय को छोड़कर नए ज़मीन की तलाश की विवशता कविता में दिखाई पड़ती है। अधिकांश जन आज भी उस ग्रामीण संस्कृति से विलग नहीं हो पाए हैं। अपनी जड़ों से उनका आज भी जुड़ाव है। लोक जीवन के इस जुड़ाव पर 'पूरनचंद्र जोशी' जी की टिप्पणी गंभीर और यथार्थपरक विश्लेषण करती नज़र आती है- "अभिजनों की सारी कला और संस्कृति की जड़ें लोक संस्कृति में होती है। जब वह अपनी जड़ों से कट जाती है, यांत्रिक और प्राणहीन हो जाती है। वह बाज़ार में बिकने वाली एक वस्तु मात्र बन जाती है' जिसकी चिंता रचनाकार को बेचैन कर देती है। संपूर्ण ग्रामीण परिवेश और उससे उसमें सन्निहित आस्थाएँ, संस्कार के विलुप्तीकरण की अभिव्यक्ति ज्ञानेन्द्रपति कृत 'गाँव का घर', 'मिट गए मैदानोंवाला गाँव', 'गाँव के सिवान पर की वनस्पतित भट्ठा' में नज़र आती है।

उपभोक्तावादी संस्कृति ने मानव जीवन में जब से प्रवेश किया, मनुष्य स्वार्थी और महत्वाकांक्षी होता गया और अपनी ज़मीन से उखड़ कर अपसंस्कृति के कैक्टस में जा उलझा है। जिसने भारत के सांस्कृतिक धरोहर को न केवल क्षति पहुंचाई, अपितु उसकी संभावनाओं को भी आहत किया, जिसकी व्यापक छवि कैलाश वाजपेई कृत 'सर्ग विहीन' तथा ज्ञानेंद्रपति कृत 'उनए हैं सांस्कृतिक मेघ विद्युतत्गर्भ' में दिखाई पड़ती है।

इस प्रकार भारतीयता और सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति भिन्न-भिन्न रचनागत दृष्टि देखने को मिलती है। जहाँ कहीं उनके प्रति अपनत्व, स्नेहमयी और गौरवपूर्ण दृष्टिकोण है, तो वहीं कहीं उस पुरातन के प्रति अस्वीकार और विद्रोह का भाव। कहीं उनमें आए तमाम पक्षों पर विश्लेषपूर्ण दृष्टिकोण अपनाते नज़र आते हैं, तो कहीं संक्षण की दिशा में प्रयत्नशील। इस प्रकार एक समय अंतराल में राष्ट्र व संस्कृति की वर्तमान छवि हम देख सकते हैं, जो चिंतन के कई आयामों को स्पर्श करती है। जिसमें मूल चिंता उनके संकट पर ही है। जिसकी चिंता 'रामशरण जोशी' जी की इन पंक्तियों के माध्यम से देखी जा सकती है- "जब राष्ट्र को उपभोग की वस्तु के रुप में रुपान्तरित कर दिया जाएगा तब ऐतिहासिक विरासत, परम्परा, संस्कार, मूल्य, गर्व, गौरव, देशभक्ति, राष्ट्रवाद जैसे भावनात्मक संबल स्वत: ही अप्रासंगिक हो जाएँगे। सम्प्रभुता की परम्परागत अवधारणा बदलना शुरू हो चुका है"

निष्कर्ष - समकालीन काव्य भारतीयत के मूलभूत आधार, पारम्परिक धरोहर, मानवीय जीवन के विविध सांस्कृतिक पहलुओं को लिए नज़र आती है। साथ ही उपभोक्तावादी संस्कृति, वस्तुकेंद्रण युक्त मानसिकता और व्यापारमूलक दृष्टि से उपजी अपसंस्कृति, मानवीय संबंधों की बदलती छवि, मानवीय अस्मिता के संकट, प्राकृतिक ह्रास और जीवन से अलगाव, पारम्परिक बसावट और जीवन शैली में आए बदलाव, परम्परा की क्षति और भारतीय धरोहर के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण का विश्लेषण करती नज़र आती है। इनके प्रति चिंता इस बात का भी प्रमाण है कि वह चेतन अवस्था में आज भी जीवित है और जीवंतता को आज भी प्रयत्नशील है। आवश्यकता उन्हें समग्रता में संरक्षित करने और अपने जीवन में उसे उतारने की है। कविता में भी अभिव्यक्त चिंता उसके प्रति प्रेम और समर्पण का ही परिणाम है, जो कहीं बेचैनी के रूप में तो कहीं स्मृति के रूप में, कहीं जीवन शक्ति के रूप में, तो कहीं जीवन समृद्धि के रूप में कविता का आकार लेती नज़र आती है। इस प्रकार समकालीन कविता अतीत से प्रेरणा लेकर, वर्तमान की छवि द्वारा उसके भविष्य को सशक्त करने हेतु प्रयत्नशील नज़र आती है।

000

संदर्भ - 1. तिवारी, राजेंद्र प्रसाद. भारतीयता और हिन्दी कविता. (1987). विभूति प्रकाशन, दिल्ली. 2.कुमार, रतन. आधुनिक हिन्दी कविता का वैचारिक पक्ष. (2000). विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी. 3. जोशी, रामचरण. ईक्कीवीं सदी के संकट. (2003). राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. 4. उपाध्याय, डॉक्टर करुणा शंकर. आधुनिक कविता का पुनर्पाठ. (2008). राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली. 5. यादव, रामजी. भारतेंदु संचयन. (2011). भारतीय पुस्तक परिषद, नई दिल्ली. 6. विश्वरंजन. कविता के पक्ष में. (2011) शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली. 7. तिवारी, डॉ दयानंद. साहित्य का समाजशास्त्र. (2013) प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली. 8. वाजपेई, कैलाश. हवा में हस्ताक्षर. (2016). वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली. 9. ज्ञानेंद्रपति.संशयात्मा. (2016). राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली. 10. प्रसाद, भरत. कविता की समकालीन संस्कृति. (2017). भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली. 11.गुप्त, मैथिलीशरण.भारत भारती. (2018). लोकभारती प्रकाशन, उत्तर प्रदेश. 12. जोशी, राजेश. दो पंक्तियों के बीच. (2019). राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. 13. अंधेरे में, मुक्तिबोध. (2020). साहित्य सरोवर, दिल्ली. 14. डबराल, मंगलेश. हम जो देखते हैं. (2021). राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली

(शोध आलेख)

औपनिवेशिक समय और समाज के संदर्भ में 'बिदेसिया' नाटक

शोध लेखक : चिप्पी एम आर
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय

चिप्पी एम आर
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
कोच्चिन - 682022, केरल
मोबाइल- 8281132711
ईमेल- chippymr@gmail.com

अगर किसी देश में किसी अन्य देश ने अपना वर्चस्व कायम कर लिया हो वह देश वर्चस्ववादी देश का उपनिवेश बन जाता है। उपनिवेशवाद के तहत उस देश की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक सत्ता या अधिकार कायम किया जाता है। कोई शक्तिशाली देश द्वारा किसी निर्बल देश पर अपना आधिपत्य स्थापित करके संसाधनों का दोहन करना भी उपनिवेश है। प्राचीन काल से भारत एक समृद्ध देश रहा है। इसी वजह से कई विदेशी राष्ट्र भी भारत की ओर आकृष्ट होते थे। डच, पुर्तगाल, फ्रांस और इंग्लैंड जैसे देशों ने भारत में अपना उपनिवेश स्थापित कर लिया था। इन वैदेशिक शक्तियों में व्यापारिक संबंध के लिए हाथ बढ़ानेवाले अंग्रेज़ों ने भारत में अपने आधिपत्य स्थापित कर लिया था। आगे चलकर विभिन्न हथकंडे अपनाकर उन्होंने शासन को हथिया लिया और राजनीति में हस्तक्षेप करने लगे। उन्होंने एक प्रकार से भारतीय समाज में एक अराजकपूर्ण वातावरण को तैयार करके तत्कालीन स्थितियों का फायदा उठाया। औपनिवेशिक शासकों ने भारत को ख़ासकर बंगाल और बिहार से लूटे हुए धन से इग्लैंड में औद्योगिक क्रांति को गति प्रदान किया।

19वीं सदी के अंत तक आते-आते भारत ब्रिटेन का उपनिवेश बन गया था। इसी दौरान ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति पूर्ण रूप में संभव हो चुका था। इसके फलस्वरूप उत्पादन बढ़ाने के लिए कच्चे माल की माँग बढ़ी। इस माँग की पूर्ति के लिए भारत की कृषि पर आधारित अर्थ व्यवस्था पर व्यापक परिवर्तन लाया था। कृषि व्यवस्था को कच्चे माल के स्रोत बनाने हेतु नीतियाँ बनायी गईं। खाद्य वस्तुओं के उत्पादन के बदले कच्चे माल के उत्पादन के लिए कृषकों को मज़बूर किया। कृषि के वाणिज्यकरण के कारण ग़रीब किसान भोजन के लिए उपयोगी फसलों के बदले कीमती फसलों को उत्पन्न करने के लिए विवश हुए। प्राकृतिक प्रकोप भी फसल के लिए ख़तरा ही था। इसी वजह से छोटे-छोटे ग़रीब किसान मज़बूरीवश अस्थायी काश्तकार बनकर लगान देकर खेती करता था।

औपनिवेशिक दौर में किसान की कई श्रेणियाँ थी। इस पिरामिड के सबसे नीचे के स्तर पर भूमिहीन खेतिहर मज़दूर थे। इन्हें बंधुआ मज़दूर भी कहा जाता था। ये किसान मूलत: भूमिहीन थे तथा बड़े जोतदार किसानों की भूमि पर बँटाई की खेती करते थे। इनके ऊपर के स्तर पर कुछ छोटे किसान थे जिनके पास नाम मात्र की भूमि होती थी। ये किसान मुख्य रूप में मौसमी अनाज पैदा करते थे। पूरे साल में बाकी समय बेकार बैठते थे। इनके ऊपर पाँच एकड़ से ज़्यादा ज़मीन के मालिक तथा संपन्न किसान होते थे। इन्हें एक प्रकार से रैयत भी कह सकते हैं। इस श्रेणी के सबसे ऊपर के हिस्से में कुछ लगान वसूलनेवाले किसान होते थे। सब्यसाची भट्टाचार्य के अनुसार " ये सभी कानूनी तौर पर ज़मींदार और ताल्लुकेदार नहीं थे। किंतु ज़मींदारों की तरह ही इनमें से अनेक ज़मीन के स्वामित्व के एवज में लगान पाते थे।" इस समय में ज़मींदारी प्रथा के चलते लोगों को ज़्यादा से ज़्यादा सताकर लगान की वसूली करता था। इस माहौल में किसान तरह-तरह के शोषण के शिकार थे।

औपनिवेशिक दौर में बंधुआ मज़दूरों की अवस्था सबसे करुण थी। "बंधुआ मज़दूर का अर्थ है पैसे उधार लेकर उसे चुका न पाने के फलस्वरूप श्रम के द्वारा उसे चुकाने की कोशिश अथवा पैसे उधार लेने के लिए किसी संपत्ति को बंधक रखने के बदले ख़ुद को बंदक रखना। यह एक प्रकार से अपनी दासता के दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर करना था।" मुख्य रूप से बिहार, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु और गुजरात के कुछ इलाकों में इन मज़दूरों के बहुत बड़ा समूह होता था। ये मज़दूर सामाजिक और आर्थिक दुर्व्यवस्था के शिकार थे। भिखारी ठाकुर ने अपनी नाट्य रचनाओं के ज़रिए निम्न वर्गीय किसानों के जीवन यथार्थ और संस्कृति को प्रस्तुत किया है।

भोजपुरी अंचल में प्रवसन की एक लंबी परंपरा पहले से रही है। औपनिवेशिक शासन काल में अंग्रेज़ों की आर्थिक नीतियों की वजह से भारतीय कुटीर उद्योगों का ह्रास हुआ। छोटे-छोटे कारीगर बेकार हुए। फलस्वरूप कृषि के ऊपर बोझ बढ़ गया। प्राकृतिक प्रकोप और कुछ अन्य

कारणों से कृषि का क्षेत्र चरमरा गया था। व्यावसायिक खेती भी बढ़ने के कारण आर्थिक क्षेत्र भी चौपट हो गया था। इसी वजह से भोजपुर से किसान मज़बूरिवश कलकत्ता की ओर पलायन करने लगे। ख़ुद भिखारी ठाकुर ने भी अपनी पुश्तैनी धंधा छोड़कर कलकत्ता चला गया था। चंद्रशेखर कहता है कि "सारण के समाज में मौसमी प्रवास के लाभ अक्सर दिखाई पड़ते हैं। उदाहरणार्थ देवरिया गाँव के जो लोग बंगाल गए, उनके बारे में कहा जाता था कि उनके 'रहन-सहन में उन्नति' हुई है। चान चौरा गाँव से जो भी बाहर गया, उसे उसके घर वाले इज़्ज़त देने लगते थे, चाहे वह कितना भी कम-उम्र क्यों न हो, क्योंकि वह परिवार का कमाऊ सदस्य बन जाता था। ये प्रवासी अपने आपको अपने नातेदारों से ऊँचे दर्जे का समझते थे। इज़्ज़त से देखने की इस प्रवृत्ति के चलते भी सारण के किसानों में मौसमी प्रवास की आदत बढ़ी। हालाँकि 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध और 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध में कृषि के बढ़ते संकट की शुरूआती दौर में इन जिलों के अनेक परिवार कम लगान देने वाली ज़मींदारियों में जाकर स्थायी रूप से बस गए थे। बहरहाल, बाद में इस प्रवृत्ति में गिरावट आई और मौसमी प्रवास की प्रवृत्ति बढ़ी।" उपनिवेशवादी शासन के दौरान ऐच्छिक और अनैच्छिक रूप के प्रवसन बड़े पैमाने पर जारी थी।

लगभग तीस वर्ष की उम्र में भिखारी ठाकुर प्रवासी जीवन समाप्त कर के गाँव लौट आए थे। उसके बाद सन् 1917 में उन्होंने अपना पहला नाटक 'बिरहा बहार' लिखा जो आगे चलकर 'बिदेसिया' नाम से मशहूर हुआ। अंग्रेज़ी शासन के दौरान हाड़-ताड़ मेहनत करने के बावजूद भी किसान दो वक्त की रोटी कमाने के लिए असमर्थ थे। फलस्वरूप किसान शहर की ओर पलायन करने लगे। पलायन की विवशता ने गाँव के किसान को शहर का मज़दूर बना दिया। इस मुद्दे को आधार बनाकर उन्होंने 'बिदेसिया' नाटक की सर्जना की थी। औपनिवेशिक दिनों में विडम्बनात्मक स्थितियों से जूझते हुए अर्थोपार्जन के लिए शहर चले जानेवाला एक युवक इस नाटक का मुख्य पात्र है। यह नाटक केवल परदेश चले गए पति-पत्नियों की विरह वेदना नहीं है। बल्कि "भोजपुरी प्रदेश का ग्रामीण समाज, जो आर्थिक दृष्टि से विपन्न, ज़मींदारों महाजनों एवं भूमिपतियों द्वारा शोषित अपना शारीरिक श्रम बेचकर परिवार की आर्थिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए आंतरिक बेचैनी का वातावरण, परिवार छोड़कर, औद्योगिक नगरों की ओर कमाने हेतु, पलायन, ठग-ठेकेदारों के चक्कर में फँसकर अनजाने देशों में प्रवस कर जाना, आश्रय की खोज में किसी ठगनी, चकलावाली या वेश्या के प्रेमजाल में लटपटा जाना एवं परिवार की ज़िम्मेदार से उदासीन हो जाना और पुन: अपने जन्मभूमि की ओर लौटने का मंसूबा बनाना इत्यादि से है।" वास्तव में यह नाटक तत्कालीन भोजपुरी समाज का ही नहीं बल्कि पूरे देश के सामाजिक यथार्थ को इंगित करता था।

भिखारी ठाकुर के 'बिदेसिया' नाटक का बिदेसी एक खेतिहर मज़दूर है जिसे हमेशा काम नहीं मिलता था। जब काम मिलता था तो उचित मज़दूरी नहीं मिलती थी। इसके कारण वह अपनी नवब्याहता पत्नी प्यारी सुंदरी के सामने कलकत्ता जाकर नगद मज़दूरी करने का प्रस्ताव रखता है। "कहना मान करब ना देरी, जल्दी भेजब सनेस। बल-बुद्धि से रोजे कमाइब, नगद मज़दूरी हरमेस।" बिदेसी के सामने बाहर जाकर पैसा कमाने के सिवा और कोई चारा नहीं था।

"बिदेसी : सलाह बा कि हमार मन करता जे तनी कलकाता से जाके हो आइतीं।

सुंदरी : ए रवो, रउआ कलकाता जाए के कहत बानी, रउआ कवना बात के तकलीफ बाटे?

बिदेसी : हमरा कवनो बात के दु:ख-तकलीफ नइखे, बाकी हमार दोस्त अइलहँ कलकाता से। कलकाता के समाचार सुनि के हमरो तबियत कइले बा कि हमहूँ जाइब। हम पंद्रह दिन में लवटि के चल आइब।"

यहाँ सुंदरी अपने पति से पूछती है कि जब अपने घर में किसी बात की कमी नहीं है तो क्यों कलकत्ता जाना चाहते हो? बिदेसी कहता है कि उसका एक दोस्त कलकत्ता से आया है। उससे जो बातें सुनी उससे मेरा भी जी चाहता है कि वहाँ हो आऊँ। धनंजय सिंह का मानना है कि "किसी चीज़ की तकलीफ ना होना, दोस्त से कलकत्ता के बारे में सुनकर वहाँ जाने के लिए 'तबियत' हो जाना और पंद्रह दिन में लौट आने की बात – को हम प्रवसन के कारणों में 'स्वेच्छा' या 'मज़बूरी' में काम करने के लिए लोगों की श्रेणीबद्ध करके काफी अध्ययन हो चुका है। पर उपर्युक्त तर्क-जिसे एक नया नाम देने की ज़रूरत है, जो संस्कृति क्षेत्र से उभरकर आया है पर ऐसा नहीं है कि यह स्थिति समाज में नहीं होगी- को देखकर लगता है कि प्रवसन के 'पुल' और 'पुश' का सिद्धांत अपर्याप्त है। इसके इतर जाकर भी हमें प्रवसन के संदर्भों को समझने की ज़रूरत है। "पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा बिहार के किसान रोज़ी-रोज़गार की तलाश में कलकत्ता और आसाम के कल-कारखानों, जूट मिलों और चाय बागानों में पहुँचकर मज़दूरी करने लगे। उन्होंने इस भोगे हुए यथार्थ को लेकर 'बिदेसिया' की रचना की है। परदेश कमाने गए व्यक्ति की पत्नी, माता-पिता और परिवार के अन्य सदस्य वर्षों प्रतीक्षा किया करते थे। वर्षों तक एक दूसरों से संपर्क नहीं हो पाता था।

शहर की ओर पलायन करनेवाले किसानों को वहाँ भी बहुत सारे मुश्किलों के सामना करना पड़ा था। शहर में भी वह कुछ ज़्यादा नहीं कमा पाता है। उसे उसके घर से निकाल दिया जाता है। बाड़ीवाला और साहूकार अपना मकान किराया लेने के लिए आ जाते हैं। बिदेसी के पास पैसा न होने के कारण उसको पीट देते हैं और कपड़ा भी उतरवा लेते हैं। "बाड़ी वाला आ साहुकार आ के घर-भाड़ा आ कर्जा के तगादा करत बाड़े। भाड़ा आ कर्जा ना चकवला खातिर रक-झक तोर-मोर होता। बाड़ी वाला आ साहुकार बिदेसी के कपड़ा उतरवा लेत बाड़े। बिदेसी एक गमछी पेन्ह के घर जात बाड़े।" प्रस्तुत नाटक के ज़रिए उन्होंने व्यवस्था की शोषण की व्यापकता को प्रस्तुत किया है।

भिखारी ठाकुर के समय में भोजपुरी क्षेत्र

से युवाओं के साथ-साथ कुछ महिलाओं ने भी श्रम पलायन किया था। ये महिलाएँ मज़बूरीवश पलायन की थीं। इन महिलाओं ने भी भोजपुरी क्षेत्र से कलकत्ता पहुँचकर वहाँ की जूट मिलों में ही काम किया था। इनमें से कुछ महिलाओं ने विवश होकर वेश्यावृत्ति को भी अपना लिया था। प्रवसन के समय जो महिलाएँ पारिवारिक ढाँचे से बाहर रहीं, उन्हें तत्कालीन समाज द्वारा वेश्या या उढ़री का संज्ञा दिया गया। तत्कालीन समाज जूट मिलों में काम करना बदनामी के रूप में माना जाता था। प्रवास अपनानेवाले पुरुष वहाँ कुछ महिलाओं के साथ बिना शादी करके रहते थे। उन स्त्रियों को भी वेश्या के रूप में माना जाता था। धनंजय सिंह का मानना है कि "इन्हीं जीवन-स्थितियों के ऊपर गढ़ी गई भोजपुरी की कहावत लोक प्रसिद्ध है-'उढ़री मेहरारू, टटिहर घर आ टेम्पोरेरी नोकरी के ओर छोर ना है' यानि उढ़री औरतों, झुग्गी-झोपड़ीनुमा घर और टेम्पोरेरी नौकरी का कोई भरोसा नहीं होता कि वे कब छोड़ जाए।" भोजपुरी क्षेत्र से कलकत्ता या अन्य नगरों की ओर पलायन करने वाले ज़्यादातर पुरुष अकेले जाते थे। पत्नियों को साथ नहीं ले जाते थे। मिलों में काम करनेवाली कुछ प्रवासी औरतें भी आर्थिक अभाव के कारण काम के साथ वेश्यावृत्ति भी करती थीं। आगे ये महिलाएँ बिना शादी करके पुरुषों के साथ रहने लगी। बच्चे सहित परिवार के समान रहने वाले इन स्त्रियों को प्रवासी उढ़रियाँ कहते थे। "परंतु इन प्रवासी उढ़रियों का आदर्श परिवार का आदर्श अवश्य था और अपने समुदाय के संस्कार-आदर्श अवश्य था और अपने समुदाय के संस्कार-आदर्श भी।" 'बिदेसिया' नाटक की सलोनी भी एक प्रवासी उढ़री है। सलोनी बिदेसी के साथ अपने बच्चे समेत कलकत्ता में रहती थी। लेकिन बिदेसी के गाँव से बटोही उसकी पत्नी के संदेश लेकर आता है। उसे पत्नी और घर की याद दिलाता है तो वह व्याकुल हो जाता है। बातों-बातों में सलोनी भी एक मुद्दा बन जाती है। बटोही सलोनी को रंडी के नाम से संबोधित करता है। वह कहता है कि सलोनी ने जादू-टोना करके बिदेसी को भेड़ या सुग्गा बना लिया है। साथ में यह भी कहता है कि उसके चंगुल से बचना ही बेहतर है

"रंडी में कुछ ना बाटे, कुत्ता जइसे हाड़ चाटे, / एको घाट नाहीं तू हूँ लगब बिदेसिया, / छोड़ि द अधरम, मिजाज करके नरम, / तूँ मनवा में कर लेहूँ सरम बिदेसिया।"

यानि वह जितनी भी कसमें-वादे खाकर रो रही है, वे सब झूठ हैं। वह अब तक किसी की भी नहीं हुई है। न पास-पड़ोस की, न सास-ससुर की और न ही नैहर या ससुराल की।

बटोही सिर्फ बिदेसी को ही नहीं बल्कि सलोनी को भी समझाता है "ऐ बाड़ीवाली। बात मानो, बिना विचार के काम मत करो। थोड़ा कहता हूँ, पूरा समझो। अपना चाल-चलन, रहन-सहन अच्छा बना लो। मेरे कहन से बिदेसी को जाने दो। तुम्हारा बाज़ार बना हुआ है। तुम्हें बहुत 'छैल चिकनियाँ' (कामी पुरुष) मिल जाएँगे।" लेकिन वह मानने के लिए तैयार नहीं हो जाती है। क्योंकि बिदेसी ही उसके लिए एक आखिरी चारा है। उसने बहुत ही विपरीत परिस्थितियों से गुज़रते हुए यहाँ तक पहुँच गई है। वह समाज के क्रूर चेहरे का शिकार है। पति के अभाव के कारण वह अपनी कष्टमय ज़िंदगी गुज़ार रही थी। लेकिन उसे अभी-अभी बिदेसिया द्वारा पति समान प्यार और आश्रय नसीब हुआ है। जब वह भी उससे छीन लेने की कोशिश हो रहा है तो वह मानने केलिए तैयार नहीं हो जाती है। यह एक मज़बूर औरत की प्रतिक्रिया है जिसे हमेशा ठुकराया गया था।

भिखारी ठाकुर ने औपनिवेशिक दौर के कृषक जीवन की वास्तविकताओं को अपनी रचनाओं के ज़रिए प्रस्तुत किया है। गाँव के किसान खेतिहर मज़दूर पर औपनिवेशिक शासन और प्राकृतिक विपदाओं की वार की वजह से वह रोज़ी-रोटी केलिए ऐच्छिक और मज़बूरी में शहर की ओर पलायन करता है। इसके फलस्वरूप वह प्रवासी जीवन जीता है जिसके फलस्वरूप एक नवीन संस्कृति का उदय होता है। 'बिदेसिया' नाटक तत्कालीन औपनिवेशिक शासन नीतियों के फलस्वरूप उत्पन्न ग्रामीण जीवन व प्रवासी जीवन की समस्याओं और विडम्बनाओं को प्रस्तुत किया है। 'बिदेसिया' नाटक मात्र एक विरह कथा को ही नहीं प्रस्तुत करता है बल्कि औपनिवेशिक भारतीय समाज के स्त्री जीवन को भी प्रस्तुत किया है। साथ ही उपर्युक्त नाटक में उन्होंने उढ़री या वेश्याओं को पारिवारिक जीवन और संरक्षण मिलने का चित्रण किया है।

000

संदर्भ- 1 भट्टाचार्य, सब्यसाची, आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास 1850-1947, राजकमल प्रकाशन, 2019, पृ.69, भट्टाचार्य, सब्यसाची, आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास 1850-1947, 2019, राजकमल प्रकाशन, पृ.69, प्रधान, गोपाल(अनु.), लोकप्रिय संस्कृति द्वंद्वात्मक समाजशास्त्र संदर्भ:बिदेसिया, सांस्कृतिक संकुल, इलाहाबाद, 2011, पृ.30-31, सिंह, धनंजय, भिखारी ठाकुर और लोकधर्मिता, अनन्य प्रकाशन, 2019, पृ.32, यादव, (प्रो.) डॉ.वीरेंद्र नारायण(सं), भिखारी ठाकुर रचनावली, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, 2015, पृ.31, यादव, (प्रो.) डॉ.वीरेंद्र नारायण(सं), भिखारी ठाकुर रचनावली, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, 2015, पृ.29, यादव, (प्रो.) डॉ.वीरेंद्र नारायण(सं), भिखारी ठाकुर रचनावली, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, 2015, पृ.6-7, यादव, (प्रो.) डॉ.वीरेंद्र नारायण(सं), भिखारी ठाकुर रचनावली, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, 2015, पृ.38, यादव, (प्रो.) डॉ.वीरेंद्र नारायण(सं), भिखारी ठाकुर रचनावली, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, 2015, पृ.50, सिंह, धनंजय, भिखारी ठाकुर और लोकधर्मिता, अनन्य प्रकाशन, 2019, पृ.139, सिंह, धनंजय, भोजपुरी प्रवासी श्रमिकों की संस्कृति और भिखारी ठाकुर का साहित्य, वी.वी.गिरी, राष्ट्रीय श्रम संस्थान, नोएडा, 2008, यादव, (प्रो.) डॉ.वीरेंद्र नारायण(सं), भिखारी ठाकुर रचनावली, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, 2015, पृ.46, यादव, (प्रो.) डॉ.वीरेंद्र नारायण(सं), भिखारी ठाकुर रचनावली, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, 2015, पृ.48

(शोध आलेख)

आशान, उल्लूर और वल्लत्तोल के काव्य में राष्ट्रीय एकता की भावना

शोध लेखक : मीनू शिवन
शोधार्थी
हिन्दी विभाग, कुसाट

सारांश :

'भिन्नता' भारत भूमि की महान विशेषता है। इस तरह की एक अद्वितीय देश को एकता की सूत्र में बाँधना आसान कार्य नहीं था। विभिन्न सामाजिक सुधारकों, कार्यकर्ताओं, स्वतंत्रता सेनानियों, नेताओं आदि ने जनता में राष्ट्रीय एकता की भावना जगाकर राष्ट्र को मुक्त करने का प्रयास किया है। इनमें भारतीय साहित्यकारों की भूमिका अविस्मरणीय है। विशेषकर मलयालम साहित्यकारों ने विभिन्न विधाओं के ज़रिए, जनता में राष्ट्रीय एकता की भावना जगाने का सफल प्रयास किया है। इसमें उल्लेखनीय तीन साहित्यकार हैं – आशान, उल्लूर और वळळत्तोल। वे मलयालम के 'आधुनिक कवित्रयं' हैं। तीन अलग व्यक्तित्व होते हुए भी उन तीनों का लक्ष्य एक ही था- अपने मातृभूमि की मुक्ति, अपने मातृराज्य की उन्नति। इस केलिए उन तीनों ने राष्ट्रोन्मुखी बनकर, राष्ट्रीय भावना से युक्त कविताओं की रचना की। तीनों की शैली अलग थी। आशान मुख्य रूप से जातीय उच्चनीचत्वों, असमानताओं के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाया तो, उल्लूर ने भारतीय विरासत और संस्कृति का महिमामंडन किया। वळळत्तोल एक उत्तम राष्ट्रवादी बनकर, स्वतंत्रता सेनानियों को उत्तेजित करने का प्रशंसनीय कार्य किया।

शोध आलेख :

प्रो. सुधींद्र के शब्दों में, "भूमि, भूमिवासी जन और जन-संस्कृति तीनों के सम्मिलन से राष्ट्र का स्वरूप बनता है। भूमि अर्थात् भौगोलिक एकता, जन अर्थात् जनगण की राजानीतिक एकता, जन-संस्कृति अर्थात् सांस्कृतिक एकता- तीनों के समुच्चय का नाम राष्ट्र है। राष्ट्र में भौगोलिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक इकाइयाँ पुंजीभूत हैं।" आगे वे यह भी जोड़ते हैं- "भूमि उसका (राष्ट्र का) कलेवर है, जन उसका प्राण है और संस्कृति उसका मानस है।" राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीयता पर्यायवाची शब्द नहीं है, लेकिन दोनों में निहित आधार तत्वों में समानता है। राष्ट्रीयता एक साथ रहने और आम विरासत को बनाए रखने का संकल्प है। जबकि राष्ट्रीय एकता, एक ही देश में पैदा हुए किंतु भिन्नताओं से ओतप्रोत मानव समाज को एकजुट करने की भावना है। यह एक मनोवैज्ञानिक एवं भावात्मक विषय है। यह राष्ट्र के प्रबल अस्तित्व के लिए अनिवार्य आधारभूत तत्व है। राष्ट्र की आंतरिक शांति, सुव्यवस्था और बाह्यसुरक्षा को बनाए रखने में राष्ट्रीय एकता की भावना बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। राष्ट्र की स्वतंत्रता और उन्नति केलिए राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता परम आवश्यक है।

इसी राष्ट्रीय एकता की अभाव में, अँग्रेज़ों ने हमारे देश में पैर जमाया तो, बाद में परतंत्र भारत को मुक्त करने की संग्राम में इसी राष्ट्रीय एकता प्रयोग में आया। बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध अँग्रेज़ों के कुशासन का समय था। उनके सांस्कृतिक आधिपत्य में पड़कर, हमारी देशी संस्कृति गौण हो गई। अँग्रेज़ों के 'फूट डालो, राज करो' नीति के कारण, हमारी राष्ट्रीय एकता को आघात पहुँचा। अँग्रेज़ी शासन ने भारत की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था को बहुत ही अजीब और संकीर्ण बना दिया। इस प्रकार की परिवेश में, भारतीय जनता में राष्ट्रीय एकता की भावना जगाकर, औपनिवेशिक आधिपत्य के ख़िलाफ़ आंदोलन शुरू करना साहित्य का दायित्व था। उस ज़माने के पूरे भारतीय साहित्य ने इस दायित्व को अच्छी तरह से निभाया। इनमें मलयालम साहित्य का योगदान विशेष उल्लेखनीय है। मलयालम साहित्य में विभिन्न विधाओं के ज़रिए विभिन्न रचनाकारों ने विभिन्न वर्गों के बीच अद्वितीय एकता स्थापित करने का सफल कार्य किया है। इस प्रकार, मलयालम साहित्यकारों ने राष्ट्रीय एकता और समाज सुधार का संदेश, आम जनता तक पहुँचाया और उसकी चेतना, एक नई सामाजिक व्यवस्था के अनुकूल बदलने का प्रयास किया। एक ओर इन रचनाकारों ने आदर्शवाद पर बल दिया तो दूसरी ओर यथार्थवाद

मीनू शिवन
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, कुसाट
कोच्चिन 682022, केरल
मोबाइल- 9645941278
ईमल- samgg2114@gmail.com

पर। समानता पर आधारित एक समाजवादी-मानवतावादी समाज उस कालखंड के रचनाकारों का सपना था।

कम शब्दों में विशाल अर्थ सागर को अपने में समाहित करने की क्षमता ही काव्य की विशेषता है। मलयालम के पाठकों में राष्ट्रीय एकता की भावना उभारने में मलयालम कविता साहित्य की भूमिका बहुत ही उल्लेखनीय है। "बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में मलयालम के प्रमुख कवियों ने राष्ट्रीय चेतना और समाज सुधार की प्रवृत्तियों पर बल देकर कई मार्मिक कविताएँ लिखी थीं। इससे राष्ट्रीय चेतना प्रबल बन गई।" इस कालखंड में अनेक कवियों ने राष्ट्रोन्मुखी बनकर कविताओं के ज़रिए, अपने विचारों को अभिव्यक्ति दिया। आधुनिक शिक्षा प्राप्त जनवर्ग में, राष्ट्रीय एकता की भावना जगाने में इन कविताओं की भूमिका कम नहीं है। एक तरफ केरलवासियों के मन में राष्ट्रीय एकता की भावना जगाने में मलयालम कविता साहित्य ने सराहनीय कार्य किया है तो दूसरी तरफ राष्ट्रीय एकता की भावना मलयालम साहित्य को समृद्ध भी बना दिया।

इस धारा के मलयालम कवियों में प्रथम स्थान में आते हैं- आशान, उल्लूर और वल्लत्तोल। वे तीन 'आधुनिक कवित्रयं' नाम से जाने जाते हैं। जनता में राष्ट्रीय चेतना उभारने, तत्कालीन समय के सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध आवाज़ उठाने और लोगों को जागृत करने में इनकी भूमिका महत्त्वपूर्ण है।

'आशान' नाम से ख्यातिप्राप्त कुमारनाशान एक मानवतावादी, क्रांतिकारी कवि थे। राष्ट्रीय संग्राम को प्रत्यक्ष रूप से प्रेरणादायक कविताएँ आशान की तूलिका से नहीं निकली है। उन्होंने मुख्य रूप से जातिभेद का विरोध करते हुए, राष्ट्रीय एकता की भावना जगाने का कार्य किया है। निम्न माननेवाली जाति (ईषवा) में जन्मे कुमारनाशान, जातिगत भेदभावों के शिकार थे। इसलिए उन्होंने हर प्रकार की असमानता को एकता केलिए प्रतिबंध माना। उनके 'ओरु तीय्यक्कुट्टियुडे विचारं' शीर्षस्थ कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं – "एंतिनु भारतधरे ! करयुन्नू ? पार/ तंत्र्यं निनक्कु विधिकल्पितमानु ताये/ चिंतिक्क जाति मदिरांधरडिचु तम्मि-/ लंतप्पेडुं तनय, रेंतिनए स्वराज्यं।" कविता के भावार्थ इस प्रकार है :- 'भारत धरे, तू क्यों रो रही है ? गुलामी तेरी तकदीर है। जाति के नाम पर तेरे पुत्र आपस में लड़ते हैं तो, फिर आज़ादी की ज़रूरत क्या है।' आशान के अनुसार परतंत्रता भारत भूमि की नियति है। उनके मत में, जिस देश में जातिभेद समाप्त नहीं होती, वह स्वतंत्रता के हकदार नहीं है। आशान ने इस कविता के ज़रिए जातिभेद को राष्ट्रीय एकता और स्वतंत्रता केलिए बाधा के रूप में, प्रस्तुत करते हुए, जातीयता के विरुद्ध अपना क्रोध प्रकट किया है। 'चंडालभिक्षुकि' नाम के कविता में भी जातीय असमानता के विरुद्ध आशान का स्वर गूँज उठा है।

"माट्टुविन चट्टंगळे स्वयमल्लेंगिल
माट्टुमतुकळी निंगळेत्तान"

दुरवस्था के इन प्रसिद्ध पंक्तियाँ केरलवासियों को आज भी उत्तेजित करते हैं। यह कालजयी पंक्तियाँ है। सामाजिक सुधार और स्वतंत्रता केलिए उनकी अदम्य इच्छा इन पंक्तियों में स्पष्ट है। यह पोथी प्रेमी कट्टर हिंदुओं केलिए आशान की चेतावनी है। इस प्रकार उनकी एक ओर कविता है – 'ओरु उद्बोधनम'। इस कविता की पंक्तियाँ है – " स्वातंत्र्यं तन्नेयमृतं / स्वातंत्र्यं तन्ने जीवितं / पारतंत्र्यं मानिकळक / मृतियेक्काल भयानकं।" आशान के मत में, स्वतंत्रता ही अमृत है, स्वतंत्रता ही जीवन है। परतंत्रता स्वाभिमानियों केलिए, मृति से भी भयानक है। इस प्रकार आशान ने जातीय असमानता और परतंत्रता के ख़िलाफ़ निर्भीक ढंग से अपना आवाज़ उठाते हुए पाठकों में राष्ट्रीय एकता की भावना जगाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। समाज के पिछड़े वर्गों को जागृत करने में आशान की उल्लेखनीय भूमिका है। 'एक उदय', 'सिंहनादं' आदि भी आशान के उद्बोधनपरक कविताएँ हैं।

'उल्लूर' उपनाम से विख्यात उल्लूर एस परमेश्वर अय्यर, इस युग के अन्य वरिष्ठ कवि थे। उल्लूर तिरुवितांकूर शासन के एक सक्रिय कर्मचारी थे। इस कारण से, एक कवि के रूप में उनकी कुछ सीमाएँ थी। शासन के कर्मचारी रहते हुए, औपनिवेशिक संस्कृति और सरकारी गतिविधियों की खुली आलोचना वे नहीं कर पाते थे। फिर भी उन्होंने राष्ट्रवाद जगाने को सक्षम अनेक महत्त्वपूर्ण कविताओं की रचना किया है। अन्य कई राष्ट्रवादियों के समान, उल्लूर भारतीय संस्कृति और परंपरा के अनन्य उपासक थे।

1925 में प्रकाशित 'किरणावली' शीर्षक काव्यसंग्रह की एक कविता है – 'उद्बोधनम'। यह कविता युद्ध-संग्रामों में पराजित लोगों को फिर से जगाकर, आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है। इसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार है – "धीरनाय मुन्नोट्टु चाडिक्कुतिचु नी / पोरुका, पोरुका पुण्यवाने ! / वेट्टियुम तोल्वियुम पोरक्कळत्तिल चेन्नाल / पट्टुं इतनतुमीतेयल्ला।" कवि का कहना है कि, जय-पराजय युद्धभूमि में आम बात है। इसलिए कवि स्वतंत्रता सेनानियों को निडर होकर आगे बढ़ने की आह्वान करता है कि देशमुक्ति की धर्मयुद्ध में होनेवाली पराजय भी बाद में विजय घोषित किया जाएगा। इस प्रकार 'तरंगिणी' काव्यसंग्रह की कविता है – 'अन्नुम इन्नुम'। इस कविता में कवि ने भारतीयों की दयनीय स्थिति पर अपना दुख प्रकट किया है। यह कविता इस प्रकार है – "भूतकालमहामेरु / पुण्यशृंगत्तिल निन्नु नाँ / पतिचुपोय वर्त्तमान- / प्पाषक्कुंडिल भारतीयरे!" उल्लूर को भारत के अतीत के गौरव पर बहुत अधिक गर्व था। कवि कहते हैं कि हे भारतीय ! अतीत रूपी महामेरु शिखर से, हम आज वर्तमान रूपी कूड़े का ढ़ेर में जा गिरे हुए हैं। इस कविता के ज़रिए कवि ने वर्तमान परिस्थिति के प्रति जनता को जागृत करते हुए तत्स्थिति से बचकर आगे बढने का आह्वान किया है।

उल्लूर ने अपनी 'कल्पशाखी' काव्यसंग्रह के 'पडक्किनाव' नामक कविता के माध्यम से औपनिवेशिक शासन की आलोचना करते हुए, भारतीय जनता को स्वतंत्र होकर जीने की अपनी अधिकार के प्रति सजग किया गया है।

इस कविता की कुछ पंक्तियाँ है- "स्वतंत्रमां वायु चिलर्क मात्रं / श्वसिक्कुवानुल्लोरु वस्तुवल्ला / महीतलम तीरत्ततुविश्वशिल्पी / मल्लंटे वासत्तिनु मात्रमल्ला।" कविता का तात्पर्य यह है कि, इस धरती के सभी मानव स्वातंत्र्य के हकदार है, सिर्फ शक्तिमान लोग नहीं। 'सुखम दुखम', 'भारतीय प्रार्थना', 'ओरु वीरमाताव', 'ऐक्यगाथा', 'कर्णभूषणम', 'मातृभूमि के चरणों पर', 'मातृभूमि', 'स्वातंत्र्य' आदि कविताएँ भी राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत उल्लूर की रचनाएँ हैं।

इस युग के वरिष्ठ कवियों में आशान और उल्लूर के साथ उल्लेखनीय नाम है- 'वळळत्तोल' उपनाम से प्रसिद्ध वळळत्तोल नारायण मेनन। वे मुख्यत: राष्ट्रवादी कवि है। गाँधिजी की विचारधारा से प्रभावित वळळत्तोल की कविताओं में तत्कालीन परिस्थिति के विरुद्ध रोष और सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन की प्रबल कामना प्रकट है। उनके बहुचर्चित कविता है- सन् 1922 में लिखित 'एन्टे गुरुनाथन'। यह कविता इस प्रकार है-

"लोकमे तरवाडु तनिक्की चेडिकळुम / पुल्कळुम पुषुक्कळुम कूडित्तन / कुडुंबक्कार / त्यागमेन्नते नेट्टम, ताष्मतानभ्युन्नति"

प्रस्तुत कविता के ज़रिए कवि गाँधीजी का यशोगान करते हुए, पाठकों में राष्ट्रीय एकता की भावना जगाने का प्रयास करता है। कविता का मतलब यह है कि – 'यह पूरा विश्व उनके लिए घराना है। पौधे, घास-फूस से लेकर छोटे-छोटे प्राणी तक, सब उनके परिवार है। त्याग उनकी कमाई और विनम्रता उनकी उन्नति है। आगे कवि लिखते हैं -

"गीतय्क्कु माताव्राय भूमिये दृढ़मितु / मातिरियोरु कर्मयोगिये प्रसविक्कू / हिमवद्विंध्याचल मध्यदेशत्ते काणू / शममे शीलिच्चेषुमित्तरं सिंहत्तिने / गंगयारोषुकुन्न नाट्टिले शरिक्किित्र / मंगळं काय्क्कुम कल्पशपादपमुंडाय वरू।"

तात्पर्य यह है कि गीता के जन्मभूमि में ही, ऐसे कर्मयोगी का जन्म संभव है। हिमालय और विंध्याचल स्थित मध्यदेश में ही, ऐसे एक शेर हो सकता है, जिसका मुखमुद्रा शांति है। गंगा की इस पावन भूमि में ही ऐसा कल्पवृक्ष उग सकता है। इस कविता के ज़रिये कवि इस महान देश के उज्ज्वल अतीत का गौरवगान करते हैं। पूरे विश्व को अपने घराना माननेवाले गाँधी को एक आदर्श के रूप में कवि ने पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है।

मातृभूमि और मातृभाषा के प्रति उनकी ममता उल्लेखनीय है। वळळत्तोल के अनुसार, अपनी मातृभाषा की सम्मान नहीं करनेवालों का देश भी सम्मान का लायक नहीं है। 1924 में लिखी गई 'ऐक्यमे सेव्याल् सेव्यम', 1927 में लिखी गई 'एंटे भाषा' आदि कविताओं के ज़रिए वल्लत्तोल ने मातृभाषा के बारे में अपने विचार को व्यक्त किया है। 'एन्टे भाषा' कविता की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार है। "मट्टुळळभाषकळ केवलं धात्रिमार / मर्त्यनुपेट्टम्म तनभाषातान / माताविन वात्सल्यदुग्धम नुकरन्नाले / पैतंगळ पूर्णवळर्चनेडू।" इस कविता का भावार्थ है : मानव को अपनी भाषा ही माँ है, दूसरी भाषाएँ केवल धाय के समान है। माँ का वात्सल्य भरी दूध पीने से ही, बच्चों का पूर्ण वृद्धि संभव हो पाएगी।

1923 में वळळत्तोल द्वारा लिखित झंडा गीत है- 'पोरा पोरा'। 'वंचिप्पाट्टु' के राग में लिखी गई यह गीत के ज़रिए वळळत्तोल ने अनेक स्वतंत्रता सेनानियों को प्रभावित किया है। पंक्तियाँ इस प्रकार है-

"पोरा पोरा नाळिल नाळिल दूरदूरमुयरट्टे भारताक्ष्मादेवियुडे तृप्पताककळ / आकाशप्पोय्कयिलप्पुतुताकुमलयिळक्कट्टे; / लोकबंधुगतिक्कुट्ट मार्ग़ं काट्टट्टे।" कवि का इच्छा है कि भारतांबा के स्वराज्य ध्वजा आकाश रूपी सरोवर की ऊँचाई में नए तरंगें बनाते हुए फहराएँ। स्वतंत्रता सेनानियों को कवि विश्व के सेनानी मानता है। इस प्रकार पाठकों के मन में राष्ट्रीय एकता की भावना सुदृढ़ करने में वळळत्तोल के 'चोरा तिळय्क्कणम', 'काट्टेलियुडे कत्तु', 'मातृवंदनम', 'विषुक्कणी', 'परस्परम सहायिप्पिन', 'पारवश्यम' आदि कविताओं की भूमिका बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इस तरह उपनिवेशवादी संस्कृति के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाते हुए, भारतीय विरासत की स्तुतिगान करते हुए राष्ट्रीय एकता की भावना जगाने का सराहनीय कार्य वळळत्तोल ने किया है।

संक्षेप में आशान, उल्लूर और वळळत्तोल मलयालम कविता साहित्य के तीन अमूल्य रत्न है। राष्ट्रीय आंदोलन और उसके पूरक के रूप में एकीकृत केरल आंदोलन को आगे बढ़ाने में उनकी भूमिका बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। भारत की एकता को मज़बूत करने और जनता में एकता की भावना को पैदा करने में, इन तीनों का सृजनात्मक योगदान उल्लेखनीय है।

000

संदर्भ - डॉ. सुधींद्र, हिन्दी कविता में युगांतर, पृ. 229, वही, पृ.सं. 232, डॉ. के के एन कुरुप्प, राष्ट्रीय चेतना और मलयालम साहित्य, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं 1999, पृ सं 37, कुमारनाशान, ओरु तीय्यक्कुट्टियुडे विचारं, कुमारनाशांटे मौलिककृतिकळ (साहित्यप्रवर्तक सहकरणसंघं, कोट्टयम, 2010) पृ.सं 644, कुमारनाशान, दुरवस्था, आशांटे पद्यकृतिकळ, डी सी बुक्स, कोट्टयम, प्र.सं 1975, पृ सं 523, कुमारनाशान, उद्बोधनं, कुमारनाशांटे मौलिककृतिकळ (साहित्यप्रवर्तक सहकरणसंघं, कोट्टयम, 2010) पृ.सं 614, उल्लूर, (उद्बोधनम), किरणावली, उल्लूरकवितकळ संपूर्णम, डी सी बुक्स, कोट्टयम, 2010 पृ. सं 383, उल्लूर, (अन्नुम इन्नुम), तरंगिणी, उल्लूरकवितकळ संपूर्णम, डी सी बुक्स, कोट्टयम, 2010 पृ. सं 560, उल्लूर, पडक्किनाव, उल्लूरकवितकळ संपूर्णम, डी सी बुक्स, कोट्टयम, 2010 पृ. सं 1230, वळळत्तोल, एन्टे गुरुनाथन, साहित्यमंजरी चौथा भाग, डी सी बुक्स, कोट्टयम, 2011, पृ.सं 234, वळळत्तोल, एन्टे गुरुनाथन, साहित्यमंजरी चौथा भाग, डी सी बुक्स, कोट्टयम, 2011, पृ.सं 236, वळळत्तोल, एन्टे भाषा, साहित्यमंजरी सातवाँ भाग, डी सी बुक्स, कोट्टयम, पृ सं 365, वळळत्तोल, पोरा पोरा, साहित्यमंजरी पाँचवाँ भाग, डी सी बुक्स, कोट्टयम, पृ सं 265

(शोध आलेख)

समुद्र में खोया हुआ आदमी

शोध लेखक : गीतु दास
शोध निर्देशक : डॉ. जी शांति

शोध सार – साहित्य सदा समाज से जुडी रहती है। इसी कारण साहित्य में मनुष्य, उनके जीवन, एवं उनकी समस्याएँ सदा मुखरित होती है। सामाज से घनिष्ठ संबंध रखनेवाले एवं नई कहानी आन्दोलन के प्रमुख लेखक थे कमलेश्वर। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में समाजवादी चेतना की छाया रहती है, जिसमें समाज की आर्थिक अवस्था का चिंतन एवं मानव-मूल्यों के प्रति आग्रह विद्यमान रहती है। 'समुद्र में खोया हुआ आदमी' उपन्यास में लेखक ने मध्यवर्गीय परिवार की आर्थिक, सामाजिक एवं मानसिक विषमताओं के साथ महानगरीय जीवन की समस्याओं को भी यथार्थ परक ढंग से व्यक्त किया है। परिस्थितिवश घर के एकमात्र अर्जक की काम से निकाल देने के दौरान हुई आर्थिक समस्या, ग़रीबी के साथ-साथ उनकी घर की स्थिति एवं परिवारिक संबंध भी पूरी तरह बगड़ जाती है।

बीज शब्द- गुलाम, अस्तित्व, आर्थिक विषमता, अर्थ व्यवस्था, मानसिक संघर्ष, अधिकार, हीनताबोध, दरिद्रता बोध

मूल आलेख-

आदि मनुष्य के समय से ही समाज ने पुरुष वर्ग से रोटी कमाकर अपने परिवार को खिलाने की प्रतीक्षा रखी है। कालांतर में यह इन पर सौंपी गई एक ज़िम्मेदारी बन गई। इस व्यवस्था का पुरुष वर्ग गुलाम बन गया। स्त्रियों को भले ही उपार्जन की ज़िम्मेदारी हमेशा से ही एक विकल्प रही है, किंतु पुरुष के लिए यह उनके अस्तित्व का प्रश्न है। समाज की आदत ही ऐसी है कि पुरु वर्ग से हम कुछ ना कुछ हमेशा चाहते हैं। जो आदमी घर नहीं देख सकता और कमाने के लायक नहीं रहा, उसका कोई मूल्य नहीं रह जाती। पुरुषों का उत्तरदायित्व माना जाता है कि वे अच्छी नौकरी करके घर की देखभाल करें। जो आदमी बेरोज़गार रहता है, उसके परिवार में भी उसे हीन दृष्टि से ही देखा जाता है। कोई ऐसी चीज़ की तरह जिसे ना अपनाया जा सकता है और न ही फेंका जा सकता है। उसकी घर में उनकी कोई आवाज़ नहीं रह जाती। जब तक आदमी घर में पैसा लाता है और घर देखता है तब तक वह सबके लिए प्रिय रहता है और सब उसकी बातों को मानते हैं। इसी बात का उदाहरण भीष्म साहनी की प्रसिद्ध कहानी 'वापसी' में भी दर्शाया गया है। कोई भी आदमी को उस अवस्था से बाहर नहीं रखा जा सकता सिवाय उनके जिन्हें पेंशन जैसी कोई स्थिर आमदनी मिलती हो या उनके जिन्हें बैंक में अच्छी-खासी जमा राशी हो।

विश्व भर में हो रही हर छोटी-बड़ी समस्याओं का किसी न किसी तरह से सीधा प्रभाव आर्थिक अवस्था पर पड़ता है। चाहे वह महामारी हो, प्राकृतिक आपदाएँ हो, विमुद्रीकरण (Demonetisation) हो या सरकार की बढ़ती क़र्ज़ जैसी बड़ी समस्याएँ हों या बेरोज़गारी, महानगरी जीवन सभ्यता, व्यापार में हो रही असफलता, महँगाई, बेवक्त की मृत्यु आदि का बुरा असर मुख्य तौर पर मध्यवर्गीय जीवन एवं आम जनता पर पड़ता है।" आर्थिक विषमता से सामाजिक असंतुलन और वर्ग संघर्ष की पृष्ठभूमि तैयार होती है। नवीन औद्योगिक विकास के साथ आर्थिक विषमता बढ़ी है। पूँजी कुछ लोगों के हाथ में संचित होती रही, जबकि बहुसंख्य समाज निर्धनता की ओर बढ़ता रहा।"

कमलेश्वर का यथार्थवादी शैली में लिखा गया उपन्यास 'समुद्र में खोया हुआ आदमी'

गीतु दास
श्राअबिरामी इल्लम वनप्रस्था रोड
2/179B2, वडवल्लि
कोयम्बत्तूर 41 तमिलनाडु
मोबाइल- 7902939638
ईमेल- geethudas502@gmail.com

मध्यवर्गीय एवं निम्न मध्यवर्गीय परिवार की यथार्थ अवस्था को दर्शाता है। आर्थिक विषमताओं के कारण परिवार का बिखराव एवं मानसिक संघर्षों को इस उपन्यास में अत्यंत मार्मिक तरीके से व्यक्त किया है। उपन्यास का मुख्य पात्र श्यामलाल सिंधी ट्रांसपोर्ट कंपनी का दिल्ली में खुलने के कारण अपना कस्बा इलाहाबाद छोड़कर दिल्ली आ जाता है। दिल्ली से ही उनकी समस्याओं का शुरुआत भी होती है। एक दिन सामान की चोरी हो जाने के कारण श्यामलाल को नौकरी से बर्खास्त कर दिया जाता है। उनका परिवार दिन-ब-दिन दरिद्रता में डूब जाता है। फिर वह हरबंस की छोटी सी दुकान में काम करने लगते हैं। हरबंस ने श्यामलाल को घर-घर जाकर ऑर्डर करने का काम दे दिया। जिसमें उनकी लड़की तारा और समीरा भी साथ देते थे। श्यामलाल के तीन बच्चे हैं – तारा, समीरा और बीरन। उनकी बीवी का नाम रम्मी है जिनकी सेहत भी उतनी अच्छी नहीं रही। तारा और समीरा हरबस की काम में मदद करते थे और हमेशा ही हरबंस के आगे पीछे घूमती रहती। श्यामलाल को ऐसा ख्याल आने लगता है कि कपड़े ट्रेस करने का काम वह ख़ुद ही भी तो कर सकता है, लेकिन उनकी बेटियाँ उनके साथ देने में कोई दिलचस्पी नहीं रखती। वे कोई न कोई बहाना ढूँढ़ कर चली जाती है। इस पर श्यामलाल अत्यंत दुखी एवं क्रोधित हो जाते हैं और वह कहते हैं कि "मैं, सब समझता हूँ ! ये लड़कियाँ मुझे चलाती हैं ! अब आएँ वह हरबंस घर में ..."

तारा चालीस रुपये पर हरबंस के 'पैटर्न हाउस' में काम करती थी। श्यामलाल को यह पसन्द नहीं था कि तारा वहाँ पर काम कर रही है। वह भी किसी ना किसी बहाने बनाकर पैटर्न हाउस के आस-पास घूमता रहता था। तारा और हरबंस को भी यह बात अच्छी नहीं लग रही थी। एक दिन श्यामलाल कह देते हैं कि - कल से तारा नहीं जाएगी। लेकिन कोई भी इस बात से सहमत नहीं था। रम्मी भी तारा के ही साथ देती और वह कहती कि एक तारा ही तो है जो घर चला रही है। श्यामलाल को भी यह अच्छा नहीं लग रहा था कि अब तारा घर चला रही है। क्योंकि अब घर का अधिकार तारा के हाथ जा रहा है और धीरे-धीरे वह घर का मुख्य नहीं रहा। उसकी बात मानने वाला तक कोई नहीं था। श्यामलाल के द्वारा लेखक ने पुरुष वर्ग की मन:स्थिति का भी चित्रण किया है। उन्हें सदा यह बात कचोटती थी कि अब उनका बस किसी पर भी ना रहा। एक तरफ से श्यामलाल की मन स्थिति पर हमें सहानुभूति होती है क्योंकि वह चाह कर भी कुछ नहीं कर पाता है।

हरबंस का प्रभाव भी उनके घर पर दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा था। अब घर का हर फैसला तारा ही लेती थी। उन्हें लगने लगा है कि घर में किसी को भी अब उनकी ज़रूरत नहीं रही। श्यामलाल की पूरी आशा अब अपने छोटा बेटा वीरेंद्र पर है। वह उम्मीद रखता है कि किसी तरह से वीरेंद्र बड़ा होकर अच्छी नौकरी करेगा तो सब कुछ दुबारा ठीक हो जाएगा। वीरेंद्र भी बापूजी की अवस्था जानते थे इसलिए वह अपने पिताजी को किसी भी काम के लिए परेशान नहीं करते।

वीरेंद्र अब कॉलेज जाने लगा है। एक दिन वीरेंद्र घर आकर कहता है कि उसे नौ- सेना में चुन लिया गया है। इस ख़बर से पूरे परिवार में खुशी का माहौल बन जाता है। वीरेंद्र पिता के नाम पर मनी ऑर्डर भेजने लगता है तो थोड़ा-थोड़ा उन्हें भी घर का फैसला लेने का अधिकार मिल जाता है। लेकिन पैसे के ख़त्म होते ही घर में उनका महत्त्व थोड़ी-थोड़ी घट जाती। नौकरी में दाखिल होने के बाद बीरन का खत आता है कि तीन महीने बाद शायद छुट्टी मिलने पर वह दिल्ली आएगा। इसी बीच तारा और हरबंस का भी विवाह संपन्न हो जाता है। घर की आमदनी भी कम हो जाती है और अब समीरा भी एकदम अकेली हो जाती है। नौ-सेना में एक बार अमेरिकी दल जो दक्षिण ध्रुव प्रदेश में उतरने वाले थे, उनमें बीरन को भी शामिल कर दिया गया। वह काफी ख़ुश था कि हिम प्रदेश में उतरने वाले दल में उसे भी शामिल कर लिया गया है। लेकिन वहाँ जाने के पश्चात मालूम होता है कि सिर्फ उसे ही नहीं बल्कि हिम प्रदेश में उतरने वाले दल में अन्य देश से आए किसी भी सैनिक को शामिल नहीं किया गया। उन्हें सिर्फ अमेरिकी दल की सेवा का प्रबंध और उनका देखरेख करने के लिए लाया गया है। कुछ दिनों के बाद दल के नेता किसी ना किसी बहाने बनाकर उन्हें वापस भेज देते हैं। वे नहीं चाहते कि उनकी इस दल के श्रेय और यश अन्य देश के किसी को भी मिले। बीरन वहाँ की यात्रा के बारे में घर को एक खत लिखता है जिसमे वह छुट्टी में घर आने का बात भी करता है। इसके पश्चात घर के सभी लोग बीरन के राह देखते रहते हैं।

कुछ दिनों के पश्चात बीरन के मित्र एवं साथ काम करने वाला चरणजीत सिंह आकर बीरन की लापता होने की ख़बर सबको दे देता है। घर में सभी दिन-ब-दिन बीरन की प्रतीक्षा में रो-रोकर प्रार्थना में लीन रहते हैं। सरकार और पुलिस बीरन का केस को ले लेती है और छानबीन शुरू हो जाती है। कई दिन बाद पता न चलने पर सरकार भी बीरन की फाइल बंद करवाना चाहती है। सरकार चाहती थी कि बीरन को मरा हुआ घोषित कर दिया जाए।

श्यामलाल दिन-ब-दिन टूटता और बिखरता गया। अब उसे सिर्फ बीरन ही नहीं अपना ज़िंदगी भी समुद्र में डूबने का प्रतीत हो रही थी। बीच में वह फिर कबाड़ी का खरीदने-बेचने का धंधा शुरू करता है। लेकिन कहीं भी श्यामलाल को सफलता नहीं मिल पाती। बहुत लंबे समय के पश्चात भी बीरन का पता नहीं चलने पर हताश होकर घरवाले बीरन की मौत को स्वीकार कर लेते हैं। हरबंस के निर्देशानुसार बीरन का मुआवजा सरकार से लेने की कोशिश शुरू हो जाती है। समीरा की पढ़ाई जो बीच में आर्थिक अवस्था के कारण रोक दी गई थी, हरबंस और तारा मिलकर अपने रिश्तेदार के नौकरी के ट्रस्ट के द्वारा समीरा को नर्सिंग में भर्ती करवाते हैं। समीरा फिर हॉस्टल चली जाती है। बीरन की मौत की स्वीकृति के पश्चात घर में अब कोई भी रहना नहीं चाहता। श्यामलाल को लोहे की फैक्ट्री में चौकीदारी मिलने का कारण वह रात भर वही काम करते हैं। सिर्फ कभी-कभार ही घर में उनका आना जाना होता रहा। रम्मी अब घर में बिलकुल अकेली हो गई थी। तारा फिर

रम्मी को अपने घर ले जाती है। तारा की नन्हीं सी बच्ची का ध्यान अब रम्मी ही रखती है। धीरे-धीरे तारा रम्मी से ही घर का सभी काम करवाने लगती है। अब जब तारा दूसरी बार माँ बनने वाली है तो जान बूझ कर ही रम्मी से घर का सारा काम करवाने लगी।

यह कैसी अवस्था थी कि अपना घर होते हुए भी घर के तीनों – श्यामलाल, रम्मी और समीरा अब अलग-अलग जगहों में रहने लगे थे। कभी मिलने को मन करता तो आकर मिल जाते। समीरा को भी तारा की हरकतों का पता चल रहा था क्योंकि अब वह बच्ची नहीं रही।

उपन्यास के अंत में उन्हें बीरन का काला बक्सा और मुआवजा सरकार से मिल जाता है। रिम्मी भरी हुई आँखों से उसे स्वीकार कर लेती है जिसे वह अपने बेटे की लाश की स्वीकृति का प्रतीत देता है। इस उपन्यास में श्यामलाल के टूटते बिखरते परिवार का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया गया है जो एक समुद्र में डूबते आदमी की प्रतीति देती है।

डॉ. वीरेन्द्र सक्सेना इस उपन्यास के बारे में कहते है कि-

"समुद्र में खोया हुआ आदमी में कमलेश्वर ने घर को जहाज की संज्ञा से अभिहित किया है और इस चित्रण में उनकी भाषा बहुत ही महत्त्वपूर्ण हो जाती है, जो समूची स्थिति को प्रकट कर देती है... उसमें सांकेतिकता, रूपधर्मिता, प्रतीकात्मकता आदि गुण सहज ही मिल जाते है।"

आर्थिक मूल्य – किसी भी समाज का सम्पूर्ण ढाँचा उसकी अर्थ व्यवस्था पर रहता है। किसी भी समाज के मूल्यों को समझने के लिए उस समाज की अर्थ व्यवस्था को समझना ज़रूरी है। आज-कल पारिवारिक संबंधों का बिखाड़ना और बनाए रहना भी अर्थ पर आश्रित रहती है, जो श्यामलाल की पत्नी रम्मी के कथन से साफ़ स्पष्ट हो जाती है – "यह शहर एसा है, बिना पैसे के यहाँ कोई पहचानता ही नहीं। पैसा पास है तो दुनिया अपनी है, नहीं तो कोई साला...।" इस उपन्यास में पारिवारिक माहौल का चित्रण किया है जिसमें बाबूजी इतने साल तक घर की देख-भाल करते हैं और जब उनको नौकरी से निकाल दिया जाता है तो उनकी बेटी तारा घर चलाती है। एसी अवस्था में उनकी बात मानने वाला भी कोई नहीं रह जाता। घर में कोई यह नहीं सोचता है कि इतने सालों तक बाबूजी ने ही उनके लिए सब कुछ किया। उनके साथ देने वाला भी घर में कोई नहीं था। अपने पिता के प्रति प्रेम और सम्मान भी उनके अंदर नहीं रही। तारा में भी इस बात का अहंकार आ गया था कि अब वही घर चला रही है। अर्थ के कारण मूल्य-विघटन, पारिवारिक संबंधों में आए दरार जिससे उनकी संस्कृति व्यवहारों में भी बदलाव आते है। जहाँ परिवार में अर्थ को अधिक महत्त्व दिया जाता है, वहाँ पारिवारिक मूल्यों का कोई महत्त्व नहीं रह जाती।

निष्कर्ष – सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में अर्थ को जितना महत्त्व इस युग में प्राप्त हुआ है, उतना पहले कभी नहीं हुआ। आज 'अर्थ' के बिना व्यक्ति का अस्तित्व संभव नहीं। इसका स्पष्ट उदाहरण इस उपन्यास का पात्र श्यामलाल के द्वारा कमलेश्वर ने समाज के सामने व्यक्त किया है। मध्य-वर्गीय एवं निम्न मध्यवर्गीय परिवारों में संबंधों का विघटन आर्थिक कमी के कारण होती है जिससे उन्हें दूसरों की सहायता लेनी पड़ती है और यह उनकी ज़िंदगी में पहले से अधिक समस्याओं को जन्म देती है। साथ ही व्यक्ति यथार्थ को भी इस उपन्यास में चित्रित किया है। साथ ही संबधों के बीच आ रहे अकेलापन, हीनताबोध, अधिकार भवना, कुंठा आदि को व्यक्त करने में कमलेश्वर सफल रहे।

000

संदर्भ - 1.समग्र उपन्यास - कमलेश्वर, राजपाल एंड सन्स, दिल्ली - 006, 2020, 2.कथाकार कमलेश्वर, डॉ.के.पी. जया - जवाहर पुस्तकालय, मथुरा-001, 2007, 3.कमलेश्वर: जीवन यथार्थ के शिल्पि - सुधाराणि सिन्हा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, 4.स्वतान्त्रोत्र हिन्दी उपन्यासों में युग-बोध – डॉ.लाल साहब सिंह, अभय प्रकाशन, कानपूर, 2005, 5.कमलेश्वर - मधुकर सिंह, शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली, 6.डॉ. के. पी. जया - कथाकार कमलेश्वर, जवाहर पुस्तकालय, 2008, मथुरा

नई पुस्तक

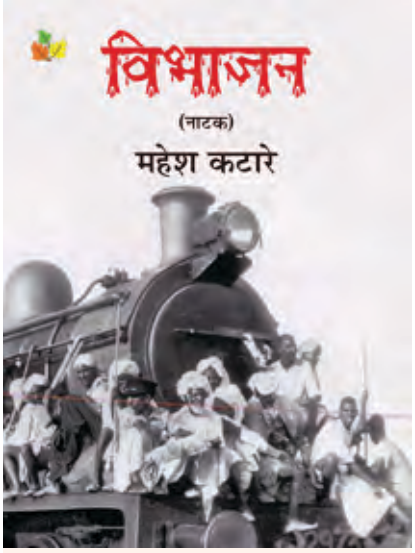

(नाटक)

विभाजन

लेखक : महेश कटारे

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

विभाजन हिन्दी के वरिष्ठ कथाकार, उपन्यासकार तथा नाटक लेखक महेश कटारे का नया नाटक है। यह नाटक हिन्दी के प्रसिद्ध कथाकार यशपाल के उपन्यास 'झूठा सच' का नाट्य रूपांतरण है। भारत तथा पाकिस्तान विभातन की पृष्ठभूमि पर आधारित यह नाटक अपने अंदर प्रेम की अनुभूतियों को भी लेकर चलता है। इससे पूर्व भी नाटक पुस्तकें लिख चुके महेश कटारे इस नाटक को लेकर कहते हैं- 'यह तीसरा नाट्यालेख है। मन पर बहुत दवाब है कि इस इक्कीसवीं सदी में भी तो 'विभाजन' के आसार तो नहीं बन रहे? लगा कि इसलिए विभाजन की भयावह त्रासदी को सस्मरण में रखना जरूरी है। एक लेखक यही या इतना तो कर ही सकता है कि स्मृतियों की पुर्नरचना बने। यह नाट्यालेख उपन्यास पर आधारित होकर भी बहुत कुछ हटकर है। घटनाओं का क्रम, संबंध, भावनाऐं आदि जो उपन्यास के 'नेरेशन' में हैं, उन्हें संवाद के माध्यम से दर्शकों तक पहुँचाना है। संवाद तो अधिकांशत: नाटक के अपने हैं और अंत भी हटकर है।'

000

(शोध आलेख)

सुशीला टाकभौरे की कविताओं में स्त्री चेतना की अभिव्यक्ति

शोध लेखक : वैष्णवी गौतम
शोध छात्रा
हिन्दी विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

शोध सार - समकालीन दलित महिला साहित्यकारों में सुशीला टाकभौरे का नाम अग्रणी है। मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जिले के बानापुरा गाँव में निम्न वर्ग में जन्म होने के कारण बचपन से ही इनका जीवन अभावग्रस्त रहा किन्तु अभावग्रस्त जीवन होने के बाद भी सामाजिक प्रवंचनाओं से ऊपर उठकर इन्होंने अपनी शिक्षा पूरी की। बचपन से ही सुशीला टाकभौरे की रुचि साहित्य लेखन में थी। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण इनकी व्रत और व्रती कहानी है जिसे इन्होंने अपनी स्कूली शिक्षा के दौरान लिखा था, जो बाद में 'टूटता वहम' कहानी संग्रह में प्रकाशित हुई। दलित एवं स्त्री होने के कारण सुशीला टाकभौरे के लेखन के केंद्र में दलित और स्त्री जाति है। भारतीय समाज में दलित और स्त्रियों की स्थिति प्राचीनकाल से ही अत्यन्त दयनीय रही है।

स्त्री किसी भी वर्ग, जाति की हो, उसकी समस्याएँ लगभग एक जैसी होती हैं। सम्पूर्ण स्त्री जाति हिंदूवादी पुरुषसत्तात्मक ढाँचे का शिकार है। सुशीला टाकभौरे ने अपनी कविताओं में स्त्री का दलित और सवर्ण रूप में पृथक विभाजन नहीं किया अपितु उसे सिर्फ एक स्त्री तक ही सीमित रखा है। अपनी कविताओं में सुशीला टाकभौरे ने स्त्री जाति का पुरुषसत्तात्मक समाज के पैरों तले दबे, असहाय, दयनीय स्थिति का चित्रण नहीं किया बल्कि इस व्यवस्था को त्यागकर, बेबसी और लाचारी के आवरण को उतारकर प्रगतिशील स्त्री के रूप में चित्रित किया है। पितृसत्ता ने सदैव स्त्री को घर और समाज से अपदस्थ किया, जिससे स्त्री का अस्तित्व खंडित हुआ। सुशीला टाकभौरे ने अपनी कविताओं में इन्हीं पारंपरिक मूल्यों को त्यागकर स्त्री जाति के स्वतन्त्र अस्तित्व को स्थापित करने का प्रयास किया गया है। यथा- आज जानकी सब जान गई है, / अब वह धरती में नही / आकाश में जाना चाहती हैं, / बिजली सी चमक कर / संदेश देना चाहती हैं / पुरुष प्रधान समाज में / स्त्री भी / समानता की अधिकारी है।1

सुशीला टाकभौरे की कविताओं में स्त्रियों का मूल स्वर यही है कि स्त्री का अस्तित्व पुरुष की अनुगमिनी नहीं अपितु सहगामिनी के रूप में स्थापित हो।

बीज शब्द- पृथक, सधवा-विधवा, प्रतिशोध, मंज़िल, अस्मिता, अस्तित्व, प्रगतिशील, सामर्थ्य, संघर्ष बंदिश, जागृति।

मूल आलेख- सुशीला टाकभौरे की कविताओं की मुख्य विशेषता यह है कि उन्होंने अपनी कविताओं में स्त्री का वर्ग विभाजन नहीं किया है। वर्ग और जाति से ऊपर उठकर वह सिर्फ स्त्री है। वर्ग और जाति के भेद उस पर लागू नहीं होते हैं। क्योंकि पुरुषसत्तामक समाज में स्त्री के शोषण का मुख्य आधार लिंगभेद है। समस्त स्त्री जाति इस भेद का शिकार है, यही भेद समस्त स्त्री जाति को एक स्थान पर ला खड़ा करता है। यथा- आप मेरी स्थिति आँकिए / मुझे यू टुकड़ों में न बाँटिये / मैं सिर्फ एक औरत हूँ / सधवा-विधवा से परे / दो परिवारों की इज्जत / के अलावा मैं हूँ / हाड़ माँस की जीवित भावना / एक मानस संसार / अपना एक अस्तित्व / इसे यूँ न मिटाइए।2

सुशीला टाकभौरे ने अधिकांशत: स्त्री चेतना से सम्बन्धित ही कविताएँ लिखी हैं। जिसमें इन्होंने हिन्दुवादी पुरुषसत्तात्मक समाज में स्त्री के शोषण, उनकी वेदना की ही अभिव्यक्ति नहीं की है अपितु इस व्यवस्था से बाहर निकलने का स्वर भी इनकी कविताओं में विद्यमान है। सुशीला टाकभौरे की कविताएँ स्त्री को उसकी असहाय दयनीय स्थिति से ऊपर उठकर, सहनशीलता के आवरण को छोड़कर अपने भीतर छिपी शक्ति को पहचानने के लिए प्रेरित करती हैं। अपनी अस्मिता, अधिकार, सामाजिक समानता के लिए उनमें चेतना का संचार करती हैं।

सदियों से भारतीय समाज में स्थापित परंपराओं ने स्त्री को सदैव मूक बनाए रखा। उसका क्षेत्र सीमित रखा। पुरुषसत्तात्मक भारतीय समाज ने स्त्री को चूल और मूल यानि रसोईघर से संतान उत्पत्ति तक ही सीमित रखा। पुरुष वर्ग स्त्री को मात्र भोग्या की वस्तु समझता है। समय की परिवर्तनकारी दृष्टि ने वर्तमान समय में स्त्री को अपने अधिकारों, सामाजिक समानता के

वैष्णवी गौतम
शोध छात्रा
हिन्दी विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी-221005

प्रति सोचने के लिए प्रेरित किया। सदियों से समाज में प्रतिस्थापित अनिष्ट परंपराओं को त्यागकर स्त्री को स्वयं अपनी पहचान बनानी होगी। अब समस्त स्त्री जाति को मूक बने रहने के आवरण को त्यागकर एक ऐसे चीत्कार की आवश्यकता है जो पुरुषसत्तात्मक समाज की नियति बदल दे। वह पुरुष की अनुगमिनी नहीं, अपितु समाज में अपना स्वतन्त्र अस्तित्व स्थापित कर सके। स्त्री जाति को ऐसे व्यक्तित्व निर्माण की प्रेरणा सुशीला टाकभौरे की कविताओं से मिलती है। इनकी कविताएँ स्त्री जाति में शक्ति स्रोत का भंडार करती हैं। सुशीला टाकभौरे स्त्रियों को स्वतन्त्र अस्तित्व स्थापित करने के लिए लाचारी, बेबसी, कमनीयता को छोड़कर सामाजिक समानता के लिए संघर्ष करने की शिक्षा देती हैं। क्योंकि संघर्ष के बिना स्त्री को पुरुषसत्तात्मक समाज में पुरुष के समान अधिकार मिलना असम्भव है। इसकी अभिव्यक्ति सुशीला टाकभौरे ने 'वह मर्द की तरह जी सकेगी' कविता में की है- औरत / अगर अलग कर दें / अपनी कोमलता, कमनीयता / लचक और झनकारमय लय / जैसे मेंहदी की मधुरता, नुपुरों की रूनझुन / तो वह तनकर चल सकेगी। / खनकती चूड़ियों की जगह / दे सकेगी शक्तिशाली हौसला / उठाकर हाथ अपने, पा सकेगी / मंज़िलों की डोर। / संघर्ष के सफ़र में / मारकर ठोकर, हर आपत्तियों को / हटा सकती है / तभी वह मर्द की तरह / जी सकेगी संसार में।3

भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति दलित वर्ग के समान है लेकिन स्त्री दलित इसलिए नहीं है कि वह कमज़ोर है, अपितु इसलिए है क्योंकि वह सहनशील है। स्त्री की सहनशीलता, शालीनता ने उसकी शक्ति को दबा दिया। स्त्री संघर्ष के पथ पर तभी आगे बढ़ कर अपना स्वतन्त्र अस्तित्व स्थापित कर पाएगी, जब वह अपने अंदर छिपी हुई शक्ति का एहसास कर पाएगी। सुशीला टाकभौरे ने 'मैंने कुछ शब्द जोड़े है' कविता में समस्त स्त्री जाति को उनके भीतर व्याप्त शक्ति की स्मृति दिलायी है यथा- नारी वह शक्ति है / जिसके सामने झुकते सभी / गर्जना सिंहनी की हो, या / प्रतिशोध नागिन का / कभी डट जाए हठ पर वह यदि / तो पार पा सकते नहीं।4

पितृसत्तात्मक समाज स्त्री के आगे बढ़ने के मार्ग का अवरोधक है। उसने नियमों को बनाकर स्त्री के अधिकार क्षेत्र को सीमित कर दिया, किन्तु इससे स्त्री का महत्त्व कम नहीं हो सकता। स्त्री समाज की धुरी है, बगैर स्त्री के सामाजिक गतिचक्र गतिमान नहीं हो सकता। स्त्री के इन सकारात्मक पक्षों को पुरुषसत्तात्मक समाज ने अनदेखा किया है। इन्हीं कारणों से स्त्री समाज, परिवार में अहम भूमिका निभाने के बावजूद पीड़ित, उपेक्षित हैं। सुशीला टाकभौरे की कविताएँ पुरुष वर्ग को स्त्री जाति पर चिन्तन करने के लिए प्रेरित करती हैं। 'यह और वह' कविता में सुशीला टाकभौरे ने स्त्री जीवन के इस कर्मपक्ष पक्ष को भारतीय पुरुषसत्तात्मक समाज के सामने प्रस्तुत किया है। जिसके द्वारा यह स्पष्ट होता हैं कि पुरुष का अस्तित्व भी स्त्री से है। जिसे सदैव पुरुष जाति ने अनदेखा किया है। स्त्री सहनशील है वह हर परिस्थितियों को सहती है, तभी पुरुष मुस्कुराता है। यथा- बिखरती ज़िंदगी की डोरियाँ / यह न सँभाले तो / वह मुश्किल में पड़ता है / अंधेरे घर में दीपक यह जलाती है / तभी वह दिन की दुनिया / देख पाता है। / कष्ट सहकर सृजनधर्मा यह / वंशबेलि बढ़ाती है / तभी वह मुस्कुराता है।5

सुशीला टाकभौरे ने अपनी कविताओं के माध्यम से समस्त स्त्री जाति की परिवर्तनकारी दृष्टि को पुरुषसत्तात्मक समाज के समक्ष प्रस्तुत किया है। स्त्री सब कुछ सहकर अपने परिवार के लिए हमेशा खुशियाँ चाहती है। इसके लिए वह हमेशा पुरुष के बदलने का इंतज़ार करती हैं। किन्तु पुरुष सदैव स्त्री को परंपरावादी रूढ़ियों में ही बँधा देखना चाहता है। स्त्री का स्वतन्त्र अस्तित्व उसे सहन नहीं है। सुशीला टाकभौरे की कविताएँ समस्त स्त्री जाति को परम्परावादी रूढ़ियों से बाहर निकलकर अपनी वास्तविक शक्ति से परिचित करवाती हैं कि आज की औरत खुद्दार है। वह आज समस्त पुरुष जाति से प्रश्न करती है- पिंजरे में बन्द मैना को / किस्सा कोई का पाठ पढ़ाते रहे, / लाज-शर्म का हिसाब लगाते रहे, / तालाबन्दी का हक जताते रहे। / जो तुमने पाया वह / तुम्हारा सामर्थ्य, / नारी ने स्वयं कुछ किया / तो बेहयाई / अब बताओ- तुम्हें क्यों शर्म नहीं आई? / गल चुकी बहुत मोमबत्तियाँ / आज वह / जंगल की आग है / बुझाये न बुझेगी / बन जाएगी / आग का दरिया।6

सुशीला टाकभौरे ने अपनी कविताओं में पितृसत्ता की रूढ़ियों में दबी हुई स्त्री का वर्णन ही किया, बल्कि इस व्यवस्था को तोड़कर आगे बढ़ती हुई प्रगतिशील स्त्री का चित्रण किया है। आज की औरत इस सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन चाहती हैं। इसके लिए वह समस्त पुरुष जाति को चेतावनी देती हैं। इसकी यथार्थ अभिव्यक्ति 'आज की खुद्दार औरत' में हुई है। यथा- पहचान उसके नए तेवर / श्रद्धा, शर्म, दया, धरम / किसमें खोजते हो? / आज यह खुद्दार औरत / अपने आप को पहचान गई है। / इसे यूँ न सताओं / वरना यह भी / खुद्दारी पर उतर आएगी / तुम्हारे सर्वस्वर को नकार कर / तुम्हें नीचा दिखायेगी।7

सुशीला टाकभौरे की कविताओं में चित्रित स्त्री प्रचलित परिपाटी एवं पारम्परिक संस्कार को छोड़कर सामाजिक बदलाव चाहती है। इसके लिए वह पुरुष जाति में बदलाव चाहती है, वह समाज में अपना स्वतन्त्र अस्तित्व पुरुष को नीचे दिखाकर नहीं स्थापित करना चाहती है बल्कि वह पुरुष का सहचर बनना चाहती हैं। स्त्री पुरुष से एक कदम आगे नहीं, बल्कि वह पुरुष के साथ-साथ चलना चाहती हैं। इसलिए वह समस्त पुरुष जाति से कहती है- करती हूँ तुमसे आशा / लौटा दो मेरा विश्वास / सहृदय मित्र बनकर मेरे / चलने दो मुझको भी साथ / बन जाओ जोतिराव फुले / मैं सावित्री सी बनकर / अर्पित कर दूँगी जीवन।8

सुशीला टाकभौरे स्त्री को पितृसत्तात्मक समाज के सीमित दायरे से बाहर निकाल कर प्रगति के मार्ग पर बढ़ती हुई स्त्री के रूप में चित्रित किया है। स्त्रियाँ आज भी सामाजिक समानता से कोशो दूर हैं। इसका प्रमुख कारण है कि आज भी स्त्रियाँ पारंपरिक मूल्यों में

जकड़ी हैं, यद्यपि समय के परिवर्तन के साथ वर्तमान समय में इनकी स्थिति में सुधार हुआ है, परन्तु यह सुधार अपेक्षित नहीं है, सदियों से ही पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री दरवाजे के पीछे से, पर्दे की आड़ से ही संसार देखती रहीं। स्त्री को दो परिवारों कुल की लाज कहकर, दायरों में बंदिस्त कर घर की चैखट तक रखा गया। सुशीला टाकभौरे की कविताएँ स्त्री को रूढ़ियों, बंदिशों से निकालकर उन्हें आत्मनिर्भर एवं संरक्षित करने में समर्थ हैं। स्त्री चेतना की यथार्थ अभिव्यक्ति सुशीला टाकभौरे ने विद्रोहिणी कविता में की है- मुझे अनन्त असीम दिगन्त चाहिए।/ छत का खुला आसमान नहीं / आसमान की खुली छत चाहिए।/ मुझे अनन्त आसमान चाहिए।9

निष्कर्ष- सुशीला टाकभौरे ने अपनी कविताओं में स्त्री को परंपरागत रूढ़ियों के आवरण को त्यागकर शक्ति और सामर्थ्य के आवरण को धारण कर चुकी प्रगतिशील स्त्री के रूप में चित्रित है, जो समस्त पुरुष जाति से सनातन व्यवस्था की जड़ता को समाप्त कर समाज में स्त्री-पुरुष की समानता के लिए तर्क करती हैं। वह अपनी शक्ति और सामर्थ्य से अपनी अस्मिता सामाजिक समानता के लिए प्रतिबद्ध है। सुशीला टाकभौरे के कविताओं में अभिव्यक्त स्त्री की सबसे बड़ी खूबी यह है कि जिस पितृसत्तात्मक समाज ने उसे शोषित, पीड़ित किया है- उसे वह रौंदकर आगे बढ़ने का स्वप्न नहीं देखती है बल्कि वह पुरुष का सहचर बनकर समाज में समानता का अधिकार पाना चाहती है। स्त्री-पुरुष की सहगमिनी बनकर जीवनपथ पर अग्रसर होना चाहती हैं। सुशीला टाकभौरे की कविताओं में स्त्री का यही मूल स्वर अभिव्यक्त हुआ है।

000

सन्दर्भ - 1.टाकभौरे, डॉ. सुशीला, काव्यरंग सुशीला टाकभौरे की सम्पूर्ण कविताएँ, प्रलेक प्रकाशन, मुम्बई, प्रथम संस्करण 2022, पृसं-158, 2.वही पृसं-171, 3.वही पृसं- 175, 4.वही पृसं- 160, 5.वही पृसं- 163, 6.वही पृसं- 173, 7.वही पृसं- 174, 8.वही पृसं- 188, 9.वही पृसं-179

पुस्तक समीक्षा

(व्यंग्य संग्रह)

गिद्धों का प्रजातंत्र

समीक्षक : ब्रजेश कानूनगो
लेखक : श्रीकांत चौधरी
प्रकाशक : इंडिया नेटबुक्स

व्यंग्य संग्रह 'गिद्धों का प्रजातंत्र' वरिष्ठ व्यंग्यकार श्रीयुत श्रीकांत चौधरी जी का पहला किंतु अदभुत संग्रह है। उम्र के 76 वर्ष पूर्ण किए और पचास वर्षों से लगातार लिख रहे श्री चौधरी की प्रकाशित इस कृति की रचनाएँ जल्दबाज़ी में पढ़ने लायक नहीं हैं। रोके रखती हैं। लंबे समय तक हमें भीतर तक झकझोरती रहती हैं। छोड़ती ही नहीं कि अगली की ओर बढ़ा जा सके। समय की विडंबनाओं और मूर्खताओं को समेटे हुए हमारी नागरिकता और विवेक पर सीधे प्रहार करती हैं। प्रबुद्ध पाठक भी हतप्रभ हो जाता है, गुस्से और असहायता से भरने लगता है। एक तरह से इन रचनाओं में वह लेखकीय साहस और बेबाकपन दिखाई देता है जो वर्तमान दौर में प्राय: खुलकर न कह पाने या बच बचाकर निकल जाने वाली विधा की सुरक्षित पगडंडी पर नहीं होता। चौधरी व्यंग्य के राजपथ पर इंकलाब का नारा बुलंद करते हुए बेख़ौफ़ गुज़रते हैं। नागरिकों का ध्यान आकर्षित करते हैं। झूठ और पाखंड के मुखौटों को हटाते हैं और कोशिश करते हैं कि आँखें मूँदे या ज़मीन में मुँह गड़ाए लोग सच्चाई से रूबरू हों।

संग्रह की रचनाओं को पढ़ते हुए लेखक की यह चेतना महसूस की जा सकती है। भूतकाल और वर्तमान की राजनीतिक बेहूदगियों पर उन्होंने प्रहार किए हैं। कई बार व्यंजना के परदे को चीरते हुए उनकी रचनाएँ सीधे सीधे लक्ष्य को भेदती हैं, चोट पहुँचाती हैं। मूक नागरिक और बेबस पाठक के भीतर की आवाज़ बन जाती है। दूसरे शब्दों में कहें तो वे शासन, सरकार के शीर्षजनों को खरी-खरी सुनाती हैं। श्रीकांत चौधरी जी की व्यंग्य रचनाओं की यही ख़ासियत है, वे गुदगुदाने की बजाए ज़रूरी आक्रोश को जन्म देने का प्रयास कर पाठक को उद्वेलित करती हैं। गिद्धों का प्रजातंत्र संग्रह में चौधरी जी ने कई शैलियों में व्यंग्य लिखे हैं। निबंध, साक्षात्कार, फेंटेसी और लघु व्यंग्य कथाएँ इसमें शामिल हैं। रचनाएँ लंबी भी हैं और कुछ स्तंभ लेखन की शब्द सीमाओं के अधीन भी, लेकिन अपने विषय का समुचित निर्वाह करती हैं। विषय कोई भी रहा हो, लेखक एक जागरूक नागरिक की अपनी राजनीतिक, सामाजिक दृष्टि से तनिक भी विचलित नहीं हुए हैं। संग्रह के आलेखों से मैं प्राय: उदाहरणार्थ अंश उद्धृत नहीं करता, उनकी आत्मा तक पहुँचने की कोशिश रहती है। यही यहाँ भी किया है। पाठक इस संग्रह को पढ़ेंगे तो न सिर्फ समय की विडंबनाओं, मूर्खताओं, छद्मताओं, पाखंडों को उधड़ता पाएँगे बल्कि एक संवेदनशील लेखक के आक्रोश और ईमानदार साहसी लेखन को भी जान सकेंगे।

000

ब्रजेश कानूनगो, 503, गोयल रिजेंसी, इंदौर 452018, मप्र
मोबाइल- 9893944294, ईमेल- bskanungo@gmail.com

(शोध आलेख)

भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष में राष्ट्रीयतावादी विचारों एवं हिन्दी कविता की भूमिका

शोध लेखक : डॉ.संतोष गिरहे
सहायक प्रोफेसर
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
राष्ट्रसंत तुकडोजी महाराज नागपुर विश्वविद्यालय

डॉ.संतोष गिरहे
सहायक प्रोफेसर
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
राष्ट्रसंत तुकडोजी महाराज नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर
मोबाइल- 9421971832, 9763246446
ईमेल- santoshmgirhe@gmail.com

भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष में राष्ट्रीयतावादी विचारों एवं कविता ने बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। हम सभी जानते हैं कि, इस देश में मुस्लिम सल्तनत की नींव मज़बूत करने के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण कारण हमारे देश के नागरिकों में व्याप्त संकुचित राष्ट्रीयता थी। इस देश में प्रत्येक शासक अपने राज्य एवं प्रदेश तक की सीमित सोच लेकर जीता रहा है। जिसके कारण इन विदेशी आक्रमणकारी शक्तियों को इस देश में अपना साम्राज्य विस्तार करने के लिए पोषक वातावरण मिला। इस देश के शासक आपस में ही एक दूसरे के दुश्मन बने; एक दूसरों के राज्य को जीतने का प्रयास करते रहे, परिणामत: विदेशी सत्ता धीरे-धीरे इस मुल्क में अपना आधिपत्य जमाने में सफल हुई और देश दासता की ज़ंजीरों में बँधता चला गया। मध्यकाल में विदेशी मुस्लिम आक्रमणकारियों के गुलाम, खिलजी, लोधी एवं मुगल वंश के सम्राटों ने अपना शासन किया। इसके बाद पोर्तुगीच, डच, फ्रेंच तथा अंग्रेज़ साम्राज्य इस देश में अपनी सत्ता बनाने में सफल हुए। इन सब में अंग्रेज़ों का शासन सबसे अधिक अन्यायकारी एवं ज़ुल्मी रहा है। उन्होंने लगभग 150 वर्षों से अधिक समय तक इस देश पर शासन किया। ऐसा नहीं है कि अंग्रेज़ शासन का किसी ने विरोध नहीं किया, परंतु अंग्रेज़ चालाक थे, उन्होंने यहाँ के देसी शासकों को कभी संगठित होने ही नहीं दिया। जो भी इनके ख़िलाफ़ आवाज़ उठाता, उनको कठिन से कठिन सज़ा का प्रावधान था तथा अपनी कूट नीतियों के कारण अंग्रेज़ सफल होते गए एवं देश का शोषण करते रहे। परंतु देश की जनता इस बात से अनजान नहीं थी, धीरे-धीरे स्वतंत्रता एवं आज़ादी का महत्त्व समझ में आया और इस देश में आज़ादी, स्वतंत्रता एवं राष्ट्रवादी विचारों की सोच बढ़ती गई। इसी को लेकर अनेक हिन्दी कवियों ने राष्ट्रीयता वादी विचारों को अपने साहित्य एवं कविताओं के माध्यम से इस आंदोलन को दिशा देने की कोशिश की है। जिसके कारण हम आज आज़ादी का अमृत महोत्सव एवं 75 वीं जयंती मना रहे हैं। देश को आज़ाद बनाने में जिन वीरों ने अपने प्राणों की आहुति दी तथा आजादी के लिए प्रयास किए उनमें हिन्दी साहित्य, साहित्यकारों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

हिन्दी की राष्ट्रीयता वादी कविता देश के नागरिकों में देशभक्ति एवं राष्ट्र अभिमान की भावना को प्रज्वलित करती थी। इस काव्यधारा को राष्ट्रीय काव्यधारा भी कहा जाता है। इस

विचारों को लेकर हिन्दी के बहुत सारे कवि अपना अहम योगदान दे रहे थे। जिनमें मैथिलीशरण गुप्त, श्रीधर पाठक, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्राकुमारी चौहान, रामधारी सिंह दिनकर, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानंदन पंत, रामनरेश त्रिपाठी आदि अनेक प्रभुति विभूतियाँ इस काव्य धारा के अंतर्गत अपनी प्रतिभा के बल पर स्वतंत्रता संघर्ष को अधिक गति प्रदान कर रहे थे।

राष्ट्रीयता वादी काव्यधारा की दृष्टि से मैथिलीशरण गुप्त का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। गुप्त जी राष्ट्रीय कवि के नाम से भी सुविख्यात थे। उन्होंने अपनी विचारधारा में राष्ट्रीयता वादी विचारों को सर्वोपरि महत्त्व दिया। वे भारतीय जनमानस को जगाने के लिए अपने गौरवशाली अतीत को याद दिलाते है, अतीत का हवाला देते हुए यह सूचित कराने की कोशिश करते हैं कि, एक समय हमारी स्थिति कितनी संपन्न थी; हमारा अतीत में कितना वैभव था। परंतु इन विदेशी आक्रांताओं के आगमन के साथ हम सब कुछ भूल गए इसे याद दिलाते हुए वे लिखते हैं- ''हम कौन थे, क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी, / आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएँ सभी। / यद्यपि हमें इतिहास अपना प्राप्त पूरा है नहीं, / हम कौन थे, इस ज्ञान का, फिर भी अधूरा है नहीं।''

मैथिलीशरण गुप्त अपनी कविता 'नवयुवकों के प्रति' में देश के नवयुवकों को देश उद्धार का संदेश देते हैं। वे लिखते हैं- ''हे नवयुवकों! देश भर की दृष्टि तुम पर लगी / हे मनुज जीवन की तुम्हीं में ज्योति सबसे जगमगी। / दोगे न तुम तो कौन देगा योग देशोद्धार में ? / देखो, कहाँ क्या हो रहा है आजकल संसार में।''1

राष्ट्रीयता वादी विचारों के प्रमुख हस्ताक्षर 'एक भारतीय आत्मा' नाम से कविता लिखने वाले मातृभूमि के सच्चे सपूत माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय काव्यधारा के श्रेष्ठ कवि एवं स्वतंत्रता सेनानी थे। युवा अवस्था में ही देश की सेवा के लिए स्वतंत्रता आंदोलन में कूद पड़े थे। राष्ट्र भावना से ओत-प्रोत काव्य लिखते थे। ऐसे ही उनकी एक कविता 'पुष्प की अभिलाषा' है, जिसमें पुष्प के माध्यम से एक सच्चे राष्ट्रभक्त की इच्छा को अभिव्यक्त किया है। चतुर्वेदी लिखते हैं- ''चाह नहीं है, मैं सुर-बाला के गहनों में गूथा जाऊँ, / चाह नहीं, प्रेमी-माला में बिध, प्यारी को ललचाऊँ, / चाह नहीं, सम्राटों के शव पर हे हरि ! डाला जाऊँ, / चाह नहीं, देवों के सिर पर चढ़ूँ, भाग्य पर इठलाऊँ, / मुझे तोड़ लेना बनमाली ! / उस पथ पर देना तुम फेंक। / मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, / जिस पथ जावें वीर अनेक।''2

माखनलाल अपनी 'जवानी' नामक कविता में नवयुवकों को सतत प्रेरणा देती हैं; देश, समाज के लिए कुछ करने के लिए उपदेश करते हैं। जवानी वास्तविक रूप में कुछ कर गुज़रने का नाम है। इस संदर्भ में उन्होंने लिखा है- ''द्वार बलि का खोल / चल, भूडोल कर दें, / एक हिम-गिरि एक सिर / का मोल कर दें / मसल कर, अपने / इरादों-सी, उठा कर, / दो हथेली हैं कि / पृथ्वी गोल कर दें?''

इतना ही नहीं तो उनकी यह भी धारणा थी कि, मानवता की संकल्पना राष्ट्रीयता के ठोस ऐतिहासिक परिपेक्ष में साकार हो सकती है। इसी को लेकर वे अपनी 'मनुष्यता' नामक कविता में कहते हैं- ''उसी उदार की कथा सरस्वती बखानती, / उसी उदार से धरा कृतार्थ भाव मानती। / उसी उदार की सदा सजीव कीर्ति कूजती, / तथा उसी उदार को समस्त सृष्टि पूजती। / अखंड आत्मभाव जो असीम विश्व में भरे, / वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे।''4

राष्ट्रीयता वादी एवं आज़ादी की लड़ाई में नवयुवकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है, इसलिए उन्हें जगाना बहुत ज़रूरी था। इसलिए सभी साहित्यकार नवयुवकों के योगदान को बढ़ाने हेतु उनको जगाने का प्रयास करते हैं। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' अपनी कविता के माध्यम से सभी भारतीयों को राष्ट्रीयता का पाठ पढ़ाते हैं, जिस से प्रेरित होकर इस जुल्मी शासक की सत्ता को उखाड़ के फेंकने की बात करते हैं। वह अपनी कविता 'कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ' में लिखते है- ''नियम और उपनियमों के यह बंधन टूट-टूक हो जाएँ; / विश्वंभर की पोषक वीणा के सब तार मूक हो जाएँ; / शांति- दंड टूटे, उस महारुद्र का सिंहासन थर्राए, / उसकी पोषक स्वासोच्छ्वास विश्व के प्रांगण में घहराए; / नाश! नाश! हाँ, महानाश की प्रलयंकारी आँख खुल जाए, / कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ- जिससे उथल-पुथल मच जाए।''5

माखनलाल चतुर्वेदी अपनी कविता में प्रखर राष्ट्रीयता वादी विचारों का समर्थन करते हैं। उन्होंने ब्रिटिश शासन की दमनकारी प्रवृत्ति पर बहुत ही खुलकर लिखा है। वह 'कैदी और कोकिल' कविता में क्रांतिकारकों की व्यथा को प्रकट करते हुए लिखते हैं- ''क्यों! -देख न सकती ज़ंजीरों का गहना? / हथकड़ियाँ क्यों? यह ब्रिटिश राज का गहना / कोल्हू का चर्रक-चूँ ?-जीवन की तान, / मिट्टी पर अँगुलियों ने लिक्खे गान? / हूँ मोट खींचता लगा पेट पर जूआ, / खाली करता हूँ ब्रिटिश अकड़ का कूआँ।''6

हिन्दी साहित्य हमेशा आशावादी रहा है; सभी जानते हैं कि यह देश हमारा है, एक न एक दिन अंग्रेज़ों को यह देश छोड़ कर जाना होगा। इसी भावना के साथ-साथ उनमें अपने अतीत गौरव की भावना भी बहुत गहरी थी। हमारा अतीत गौरवशाली था, परंतु वह गौरव आज ख़त्म हुआ है। उसे फिर से निर्माण करने की आवश्यकता थी। यही बात थी कि, हिन्दी के साहित्यकार अपनी कलम से अतीत गौरव एवं नवजागरण के लिए देश के नागरिकों में प्रेरणा निर्माण करने के लिए सतत लिख रहे थे। इन सब में एक महत्त्वपूर्ण नाम जयशंकर प्रसाद का भी आता है। इन्होंने अपने नाटकों में देश के अतीत वैभव को उद्घाटित किया है। साथ ही साथ 'जागो फिर एक बार' जैसी कविताओं के माध्यम से फिर से एक बार नवजागरण करने की कोशिश की है। वे लिखते हैं- ''उगे अरुणाचल में रवि / आई भारती-रति कवि-कंठ में, / क्षण-क्षण में परिवर्तित / होते रहे प्रकृति- पट, / गया दिन, आई रात, / गई रात, खुला दिन, / एक ही संसार के बीते दिन, पक्ष, मास, / वर्ष कितने

ही हजार – / जागो फिर एक बार।"7

'मधुमय देश' जैसी कविता के माध्यम से इस देश के उज्जवल भविष्य की कामना करते हुए राष्ट्रीय भावना को उजागर करते हैं- "अरुण यह मधुमय देश हमारा। / जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।।"8

ऐसे ही देशभक्ति के भाव उनकी 'हिमान्द्री तुंग श्रृंग से'कविता में भी दिखाई देते है- "हिमान्द्री तुंग श्रृंग से / प्रबुद्ध शुद्ध भारती / स्वंय प्रभा समुज्ज्वला / स्वतंत्रता पुकारती / अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो, / प्रशस्त पुण्य पंथ है, बढ़े चलो, बढ़े चलो।"9

सुभद्राकुमारी चौहान अपनी काव्य कला से नवयुवकों में जोश एवं उत्साह का भाव संचालित करती हैं। हमारे देश में वीरता एवं देशभक्ति की भावना से ओत-प्रोत केवल पुरुष ही थे ऐसा नहीं है, बल्कि महिलाओं ने भी इस देश के लिए अपने प्राणों की आहुति दी है। इसे 'झाँसी की रानी' कविता में सुभद्रा जी ने वीरता की मिसाल के रूप में श्रेष्ठ वीरांगना रानी लक्ष्मीबाई की वीरता को अभिव्यक्त किया है। वह लिखती है- "सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी, / बूढ़े भारत में फिर से आई नई जवानी थी, /गुमी हुई आजादी की कीमत सबने पहचानी थी, / दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी, / चमक उठी सन सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी, / बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी, / ख़ूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी।"10

कविता के माध्यम से देश को जगाना एक बहुत बड़ा कार्य था। इसे हमारे देश के साहित्यकार बखूबी कर रहे थे। देश का गौरव एवं अस्मिता दाँव पर थी, उसे बचाने की बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी हमारे कवियों पर थी। कवि कभी अपनी ज़िम्मेदारी को नहीं भूला है। इतना ही नहीं देशभक्ति एवं राष्ट्रीयता वादी विचारों को कवि कभी-कभी प्रतीकात्मक रूप में भी व्यक्त करता है। निराला की 'राम की शक्ति-पूजा' ऐसी ही एक प्रतीकात्मक कविता है। देशभक्ति एवं राष्ट्रीयता वादी विचारों को लेकर लिखने वालों में सूर्यकांत त्रिपाठी निराला सिद्धहस्त कवि थे। देशभक्ति, मानवता, विश्व कल्याण की भावना को अभिव्यक्त करने वाली कविता 'वीणावादिनी' से वे इसी का वर माँगते हैं। निराला जी लिखते हैं "वर दे, वीणावादिनी वर दे! / प्रिय स्वतंत्र-रव अमृत-मंत्र नव / भारत में भर दे।"11

ऐसे ही कुछ बात प्रतीकात्मक रूप में कवि रामधारी सिंह दिनकर अपनी कविता 'हिमालय' में करते हैं। हिमालय हमारी राष्ट्रीयता की भावना से परिपूर्ण कविता है। इस कविता में हमारी पराधीनता से मुक्ति हेतु अर्जुन, भीम या शिव जैसे देवताओं की आवश्यकता पर बल दिया गया है। दिनकर जी लिखते हैं- "कितनी मणियाँ लुट गई?मिटा / कितना मेरा वैभव अशेष ! / तू ध्यान-मग्न ही रहा, इधर / वीरान हुआ प्यारा स्वदेश !"12

कुछ ऐसे ही महिमा का गान सुमित्रानंदन पंत अपनी 'भारत गीत' में करते हैं। पंत की 'भारत गीत' देशभक्ति के साथ-साथ हमारी राष्ट्रीयता की भावना को भी उजागर करने वाली कविता है, जो भारत देश की महिमा प्रकट करती है। पंत जी लिखते हैं- "जय जन भारत, जन मन अभिमत / जन गण तंत्र विधाता ! / गौरव भाल हिमालय उज्ज्वल / हृदय हार गंगा जल, / कटि विन्ध्याचल, सिन्धु चरण तल / महिमा शाश्वत गाता !"13

निश्चित ही आज़ादी प्राप्त करना देश के सभी लोगों का अंतिम लक्ष्य था। इसके लिए सभी अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार योगदान दे रहे थे। इसमें हिन्दी साहित्य और साहित्यकारों की भूमिका काम रही है। हिन्दी के साहित्यकार कहीं भी पीछे नहीं थे; उन्होंने अपने संपूर्ण सामर्थ्य का उपयोग करते हुए इस स्वतंत्रता समर में बहुत बड़ी भूमिका निभाई है। जिसकी बदौलत आज हम खुले गगन में आज़ाद पंछी की तरह संचार कर रहे। परंतु इसके लिए बहुत से वीरों ने अपने प्राणों की आहुति भी दी है। इसे कतई भुलाया नहीं जा सकता। यह आज़ादी इन कवियों की प्रेरणा से ही, इनके द्वारा लिखी गई कविताओं से देश अंग्रेजों के ख़िलाफ़ उठ खड़ा होने में सक्षम हुआ है। इसलिए भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष में राष्ट्रीयता वादी विचारों का अपना विशेष महत्त्व रहा है।

000

संदर्भ-

1. काव्य-प्रदीप (नवयुवकों के प्रति –मैथिलीशरण गुप्त)-सं.सूर्यनारायणन रणसुभे, परिदृश्य प्रकाशन, मुंबई, पृष्ठ संख्या-13, 2. वही(पुष्प की अभिलाषा – माखनलाल चतुर्वेदी), पृष्ठ संख्या-17, 3.काव्य वैभव (जवानी-माखनलाल चतुर्वेदी) -सं. मुन्ना तिवारी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या-158, 4. काव्य मंजरी(मनुष्यता- मैथिलीशरण गुप्त)-सं. मुन्ना तिवारी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या-19, 5. काव्य-प्रदीप(कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ–बालकृष्ण शर्मा 'नवीन')-सं.सूर्यनारायणन रणसुभे, परिदृश्य प्रकाशन, मुंबई, पृष्ठ संख्या-21, 6. आधुनिक कविता सरिता (कैदी और कोकिला-माखनलाल चतुर्वेदी)- सं. अरविंद देसाई, राजपाल एंड सन्ज, पृष्ठ संख्या, 17, 7. काव्य मंजरी(जागो फिर एक बार –सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला')-सं. मुन्ना तिवारी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या-39-40,

8. आधुनिक कविता सरिता (मधुमय देश –जयशंकर प्रसाद)- सं. अरविंद देसाई, राजपाल एंड सन्ज, पृष्ठ संख्या, 21, 9. काव्य-प्रदीप (हिमान्द्री तुंग श्रृंग से – जयशंकर प्रसाद)- सं.सूर्यनारायणन रणसुभे, परिदृश्य प्रकाशन, मुंबई, पृष्ठ संख्या-19, 10. काव्य-कुंज(झाँसी की रानी-सुभद्राकुमारी चौहान)- सं.हिन्दी अध्ययन मंडल, मुंबई विश्वविद्यालय मुंबई, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या-50, 11. काव्य-प्रदीप (वर दे, वीणावादिनी वर दे!–सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला')-सं.सूर्यनारायणन रणसुभे, परिदृश्य प्रकाशन, मुंबई, पृष्ठ संख्या-23, 12. काव्य सुमन(हिमालय के प्रति-रामधारी सिंह 'दिनकर')-सं. महेंद्र कुलश्रेष्ठ, राजपाल एंड सन्ज, दिल्ली, पृष्ठ संख्या-44, 13. काव्य सुषमा(भारत गीत- सुमित्रानंदन पन्त)-सं. डॉ सुषमा, राजपाल एंड सन्ज, दिल्ली, पृष्ठ संख्या-68

(शोध आलेख)

वैश्विक परिदृश्य में हिन्दी

शोध लेखक : डॉ. मीरा कुमारी
विभागाध्यक्ष हिन्दी विभाग
बलदेव साहु महाविद्यालय लोहरदगा

भाषा हृदय की अभिव्यक्ति के साथ ही संस्कृति और सभ्यता की संवाहिका भी है। भाषा विचारों को व्यक्त करने का माध्यम होता है और हिन्दी भाषा इसमें निपुण है। भाषा जितनी सुबोध और सरल सहज होगी भाव संप्रेषण उतना ही सरल और सशक्त होगा। भारतीय भाषाओं की परंपरा इतिहास और विकास क्रम में आज भी हिन्दी का वही स्थान और महत्त्व है जो प्राचीन काल में संस्कृत का था। प्राचीन काल से लेकर आज तक हिन्दी की उपयोगिता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इसके प्रयोग करने वालों की संख्या में लगातार बढ़ोतरी हो रही है। हिन्दी अपनी आंतरिक चुनौतियों से जूझते हुए आज राजभाषा ही नहीं, बल्कि विश्वभाषा बनने के निकट है। "भारत के पड़ोसी देशों में आजकल हिन्दी साहित्य पढ़ने और समझने की तीव्र लालसा जागृत हुई है। चीन, इंडोनेशिया, मलेशिया, कोरिया, थाईलैंड, मंगोलिया जैसे समस्त एशिया से हिन्दी पत्रिकाओं की माँग आ रही है एशिया के देश में अब अंग्रेज़ी पुस्तकों में प्राप्त सूचनाओं से संतुष्ट नहीं है वह देसी दृष्टि से देसी भाषा में लिखा हुआ साहित्य खोजने लगे हैं आगे यह जिज्ञासा उनमें और भी तीव्र होगी।"1

वैश्विक स्तर पर अपनी एक नई पहचान बनाने वाली भाषा हिन्दी वर्तमान समय में विश्व के प्रत्येक क्षेत्र में प्रयोग की जाने वाली भाषा बन गई है, । भारत के हर प्रांत की अपनी-अपनी भाषा है किंतु पूरे राष्ट्र की संवाद-भाषा हिन्दी ही है। हिन्दी न केवल संख्या-बल वर्ण-विस्तार की दृष्टि से भी विश्व की प्रधान भाषाओं में से एक है बल्कि इसके बोलने वालों की संख्या विश्व में लगभग 70 करोड़ बताई जाती है।

हमारे देश के लगभग सभी क्षेत्रों यथा हिमाचल प्रदेश, राजस्थान, पंजाब, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, उत्तरांचल, बिहार, मध्य प्रदेश में हिन्दी भाषा का प्रयोग किसी न किसी रूप में होता रहा है। यह भाषा अपने अंदर अनेक बोलियाँ समेटे हुए है। आँकड़ों के आधार पर आलोकित होता है कि वर्ष 1952 ईस्वी में हिन्दी भाषा विश्व के पाँचवें स्थान पर थी जबकि 1980 ईस्वी में चीनी, अंग्रेज़ी के बाद तीसरे स्थान पर आ गई। वर्ष 1991 में की जनगणना में हिन्दी को मातृभाषा घोषित करने वालों की संख्या पूरे विश्व में अंग्रेज़ी भाषाओं की संख्या से कहीं अधिक है। हिन्दी विश्व स्तर की एक प्रभावशाली भाषा बनकर उभरी है। हम जितना अधिक हिन्दी और प्रांतीय भाषाओं का प्रयोग शिक्षा, ज्ञान-विज्ञान, प्रौद्योगिकी आदि में करेंगे उतनी ही तेज़ गति से हिन्दी भाषा का विकास होगा।

भारत की संविधान में 14 सितंबर 1949 को भारत की राजभाषा के रूप में हिन्दी को स्वीकार किया गया। यह जनसाधारण द्वारा बोली जाने वाली एक सरल भाषा है। हिन्दी पुरातन भी है और आधुनिक भी। इसी विशेषता के कारण हिन्दी को भारत की राजभाषा का सम्मान प्राप्त है। और यह हम सभी भारतीय के लिए गौरवपूर्ण बात है।

आज इस वैश्वीकरण के दौर में हिन्दी का महत्त्व और भी बढ़ गया है। आज विदेश में अनेक विश्वविद्यालयों में हिन्दी बड़े चाव से पढ़ाई जा रही है। ज्ञान विज्ञान की पुस्तक बड़े पैमाने पर हिन्दी में लिखी जा रही है। सोशल मीडिया और संचार माध्यमों में हिन्दी का प्रयोग निरंतर बढ़ता जा रहा है। यह हिन्दी के विकास के लिए एक नई पहल है। इसी संबंध में भाषाविद जयंती

डॉ. मीरा कुमारी
विभागाध्यक्ष - हिन्दी विभाग
बलदेव साहु महाविद्यालय लोहरदगा।
रांची विश्वविद्यालय, रांची, झारखंड
मोबाइल- 7903322820, 9471762211
ईमेल- meerasony728@gmail.com

प्रसाद नौटियाल जिन्होंने लगातार 20 वर्षों तक भारत और विश्व की विभिन्न भाषाओं संबंधित अध्ययन प्रस्तुत किए हैं उनका कहना है कि विश्व में हिन्दी प्रयोग करने की संख्या चीनी से भी अधिक है और हिन्दी अब प्रथम स्थान पर है। उसने अंग्रेज़ी समेत विश्व की सभी भाषाओं को पीछे छोड़ दिया है।"2

आज हिन्दी भाषा का अध्ययन विश्व के अनेक देशों में प्राथमिक स्तर पर, माध्यमिक स्तर पर तो कहीं विश्वविद्यालय स्तर पर हो रहा है। कहीं यह अपनी मातृभूमि भारत से जुड़े रहने का भावात्मक माध्यम लगता है तो कहीं इसका उद्देश्य आधुनिक भारत के अंतरमन को समझना है। विश्व में हिन्दी शिक्षण को बढ़ावा देने के लिए निजी संस्थाएँ, धार्मिक संस्थाएँ और सामाजिक संस्थाएँ तो आगे आ ही रही हैं। सरकारी स्तर पर, विद्यालय एवं विश्वविद्यालयों द्वारा भी हिन्दी शिक्षण को बखूबी संचालित किया जा रहा है उच्च अध्ययन संस्थानों में भी अध्ययन अध्यापन एवं अनुसंधान की अच्छी व्यवस्था है इस संबंध में अमेरिकी विद्वान डॉ. शोमर का कहना है कि अमेरिका में ही 113 विश्वविद्यालय और कॉलेज में हिन्दी अध्ययन की सुविधा उपलब्ध है जिसमें से 13 तो 16 स्तर के केंद्र बने हुए हैं आँकड़े बताते हैं कि इस समय विश्व के 148 विश्वविद्यालयों में हिन्दी शिक्षा की विविध स्तरों पर व्यवस्था है।"3 वस्तुत हम देखते हैं कि हिन्दी के महत्त्व को बढ़ाने के लिए राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर जो सम्मेलन हुए हैं वह सफल रहे।

इसी प्रकार हिन्दी भाषा को और अधिक प्रयोग में लाने के लिए उसके मानकीकरण पर बल दिया गया। मानकीकरण के कारण यह भाषा शुद्ध और परिनिष्ठित बनी जिससे समाज में शुद्ध हिन्दी का प्रचलन शुरू हुआ। परिणामत: हिन्दी को और प्रसिद्ध मिली। हमारी मानकीकृत भाषा खड़ी बोली है और इसी खड़ी बोली से हिन्दी साहित्य का प्रचार-प्रसार शुरू हुआ।

इस तरह से हिन्दी अपने क्षेत्रफल को आगे बढ़ते हुए वैश्विक स्तर पर शिखर तक परचम पहुँच गई और देश-विदेश में अपना परचम लहरा रही है। हिन्दी भाषा के साहित्य में भी विश्व स्तर पर बड़ी तेज़ी से विकास हो रहा है। इसमें चिंतनपरक साहित्य के रूप से सभी विधाओं पर लिखनी चलती जा रही है। जिससे उसके विकास कार्यों में तेज़ी से वृद्धि हो रही है। हिन्दी में विश्व का संपूर्ण साहित्य अनुसर्जनात्मक लेख के रूप में उपलब्ध है हिन्दी के रचनाकार अपनी सृजन शक्ति से उदारपूर्वक विश्व मन को स्पर्श कर रहे हैं।

हिन्दी साहित्य के नवीन कोष निर्मित करने में आज विदेशी विद्वानों की सहायता ली जा रही है। आज हिन्दी साहित्य का क्षेत्रफल कश्मीर से कन्याकुमारी तक ही सीमित नहीं बल्कि बाहर के देशों में भी उसका प्रभाव वैश्विक शिखर को स्पर्श कर रहा है। अनेक प्रतिष्ठित विद्वान वारांनीको, शैव आदि हिन्दी सेवक के रूप में अपनी-अपनी छवि निर्मित किए हुए हैं। एक ओर हिन्दी में धार्मिक ग्रंथ बाइबल का अनुवाद कराया गया तो दूसरी ओर बंगाल और अंग्रेजी भाषाओं के बहुत सारे उपन्यास और कहानियों को हिन्दी में अनुवादित कराया गया जिससे हिन्दी के प्रति लोगों की रुचि बढ़े। ऐसे अनुवादों से पता चलता है कि हिन्दी पढ़ने वालों की संख्या में बढ़ोतरी हुई और हिन्दी के प्रति लोगों की मनोभावना का विकास अलग-अलग रूपों में हुआ।

इन्हीं सब कर्म से आज हिन्दी का फैलाव विस्तृत हुआ है। इसीलिए आज हम हिन्दी को मात्र राष्ट्रीय भाषा ही नहीं बल्कि उसे वैश्विक भाषा का भी सम्मान प्रदान करें तो अनुचित नहीं होगा। क्योंकि यूरोपीय महाद्वीप से लेकर अमेरिका दक्षिण पूर्व एशिया के सभी देशों में हिन्दी की प्रायोगिकता और लोकप्रियता निरंतर विस्तृत होती जा रही है। हिन्दी की महता को विश्व कवि रवींद्र नाथ ठाकुर ने रेखांकित करते हुए कहा था कि "आधुनिक भारत की संस्कृति एक विकसित शतदल के समान है जिसका एक-एक दल एक-एक प्रांतीय भाषा और उसका साहित्य संस्कृति है। किसी एक को मिटा देने से उस कमल की शोभा नष्ट हो जाएगी। हम चाहते हैं कि भारत की सब प्रांतीय बोलियाँ जिसमें सुंदर साहित्य की सृष्टि हुई है अपने घर में रानी बनकर रहे। आधुनिक भाषाओं के हार के मध्य मढ़ी हिन्दी भारत भारती होकर बिराजती रहे।"4

हिन्दी को वैश्विक स्तर पर बढ़ावा देने हेतु अन्य पत्र पत्रिकाओं का संपादन प्रचुर मात्रा में राष्ट्रभाषा के रूप में किया जा रहा है। वैश्वीकरण और सूचना क्रांति के करण हिन्दी को अत्यधिक विस्तार मिल रहा है। जहाँ एक और फेसबुक, ट्विटर जैसे सामाजिक नेटवर्किंग साइटों के माध्यम से हिन्दी भाषा शैली वैश्विक स्तर पर स्थापित करने में सुगम हो सकी है।

वहीं दूसरी ओर दक्षिण पूर्व एशिया, मॉरीशस, जापान, यूरोप और अमेरिका तक हिन्दी कार्यक्रम उपग्रह चैनलों द्वारा प्रसारित हो रहे हैं। आज नवीन प्रौद्योगिकी के रथ पर सवार होकर हिन्दी विश्व व्यापी बन गई है। ईमेल ई-कॉमर्स वेब आदि अंतरजाल इस दुनिया में हिन्दी अब सुगमता पूर्वक गमन कर रहा है। गूगल, आईबीएम, याहू, माइक्रोसॉफ्ट और ओरेकल जैसे विश्व स्तरीय कंपनियाँ हिन्दी को बढ़ावा दे रही है। वहीं दूसरी और रेडियो चैनलों में भी हिन्दी कार्यक्रम का प्रकाशन किया जा रहा है। हिन्दी श्रोता वर्ग में भी उत्तरोत्तर बढ़ोतरी की है।

हिन्दी भारतीयता की चेतना है तथा सभी प्रांतीय भाषाओं के संपर्क भाषा की भूमिका निभा रही है। देश में एक प्रांत के लोगों को दूसरे प्रांत के लोगों से ऐतिहासिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक ज्ञान प्राप्त हिन्दी से ही हो रहा है। भारत के लोग जब यह समझेंगे कि हमारा अतीत और वर्तमान और हमारा साहित्य और संस्कृति एक है तब राष्ट्रीय एकता की भावना मज़बूत होगी और हिन्दी भाषा का प्रचार तेजी से अपने पटल की तरफ बढ़ेगा।

भारत सरकार द्वारा विकास योजनाएँ तथा नागरिक संरचनाओं प्रदान करने में हिन्दी का प्रयोग को बढ़ावा दिया जा रहा है। हिन्दी की शक्ति और क्षमता से हम सभी भली-भाँति परिचित हैं। महात्मा गांधी ने कहा था कि "राष्ट्रीय व्यवहार में हिन्दी को काम में लाना देश की उन्नति के लिए आवश्यक है।"5

हिन्दी के वैश्वीकरण की बात करते हुए यह बताना अत्यंत आवश्यक है कि ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रत्येक वर्ष हिन्दी भाषा में से वर्ष शब्द का चयन करती है। वर्ष शब्द यह होता है कि बीते साल के स्वभाव की स्थिति को महत्त्व बताता ही है और साथ ही साथ उसे साल का उसका सांस्कृतिक महत्त्व होता है। वर्ष 2018 में इसी तरह ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस ने नारी शक्ति को साल का हिन्दी शब्द चुना था। वर्ष 2019 में संविधान को ऑक्सफोर्ड शब्दकोश के लिए चुना गया था। वर्ष 1920 में आत्मनिर्भरता शब्द को चुना गया था। उपयुक्त चुने गए शब्द वर्ष शब्द के मानक पर खरे उतरे हैं और इस विवरण से या परिलक्षित होता है की हिन्दी का वैश्वीकरण हो रहा है।

आशा है कि आने वाले दिनों में इसकी वैश्विक स्वीकारता स्वीकार्यता और बढ़ेगी हिन्दी आज विश्व भाषा के रूप में अनेक देशों में तेजी से लोकप्रिय होती जा रही है और विदेश के विराट फलक पर अपने अस्तित्व को आकर दे रही है। हिन्दी मात्र एक भाषा ही नहीं बल्कि भारतीय संस्कृति के सबल, समर्थ और सशक्त सेतु है जो विदेशों में बसे करोड़ों प्रवासी भारतीयों और भारत मूल के लोगों के बीच में आत्मीयता का सूत्र स्थापित करने और उन्हें भारतीय तथा भारतीय संस्कृति से निरंतर जोड़े रखने में एक सशक्त माध्यम का काम करती है।

आज हिन्दी 12 से अधिक देशों में बहुसंख्यक समाज की मुख्य भाषा है। विश्व की भाषाओं के सर्वेक्षण या बताते हैं की प्रधान यूरोपीय भाषाओं जैसे अंग्रेजी, मेंडारिन, रूसी भाषा बोलने वालों के प्रतिशत में गिरावट देखी गई जबकि हिन्दी और अरबी बोलने वालों के प्रतिशत बढ़े है। यद्यपि आँकड़े अन्य अंतरराष्ट्रीय भाषाओं के महत्त्व को कम नहीं करते बल्कि हिन्दी के बढ़ते वर्चस्व को बतलाते हैं। नेपाल, श्रीलंका, अफ्रीका जैसे देशों में बसे लाखों प्रवासी भारतीय हैं जो इन देशों के अस्थाई नागरिक होने के बावजूद भी अपनी मातृभाषा के रूप में हिन्दी का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी दिन-ब-दिन सर्वाधिक प्रयोग की जाने वाली भाषा बनती जा रही है। आज सात समंदर पार तक एक चौथाई दुनिया में उसका परचम लहरा रहा है। अमेरिका, इंग्लैंड, जर्मनी, दक्षिण अफ्रीका और नेपाल देशों में हिन्दी भाषी भारतीयों की संख्या अधिक है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हिन्दी को एक नया पटल दिया जाए। नि:संदेह आज हिन्दी का फलक विस्तृत हुआ है। भारत के साथ-साथ आज हिन्दी भाषा विश्व भाषा बनने को तैयार है। वर्तमान समय में हिन्दी में वह समर्थ है जो पूरे देश को एक सूत्र में प्रयोग कर रख सकती है।

इसमें अन्य भाषाओं को आत्मसात करने की क्षमता है। यह हिन्दी की सबसे बड़ी पहचान है। हिन्दी में अनेक भारतीय भाषाओं में लिखे गए विद्वानों के ग्रंथों का अनुवाद कर इसे जन सामान्य के पठन-पाठन के लिए सरल बनाने के प्रयास किए जा रहे हैं। ज्ञान के सभी अनुशासन अपनी ही भाषा में सम्मिलित किए जा सकते हैं। विश्व में हिन्दी की उपस्थिति महत्त्वपूर्ण है। संसार में सभी भाषाओं का मूल स्वरूप ख़तरे में है और वे अपने लिपि संबंधी अस्तित्व की लड़ाई लड़ रही हैं। ऐसे में इसे स्वस्थ रखने और पालने-पोसने के लिए युवाओं को आगे आना होगा। विदेशी साहित्य का हिन्दी में अनुवाद और हिन्दी साहित्य का विदेशी भाषाओं में अनुवाद आवश्यक है।"6

हिन्दी के प्रचार-प्रसार और विकास में सभी भारतीय भाषाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। वैश्विक फलक पर हिन्दी को स्थापित करने के लिए जहाँ एक ओर साहित्यिक गतिविधियों में साहित्यकारों ने, विभिन्न पत्र पत्रिकाओं ने इसकी पृष्ठभूमि तैयार की है वहीं दूसरी ओर हिन्दी फिल्मी गीतों ने, विज्ञान के बाज़ार में कंप्यूटर, इंटरनेट आदि ने इसे विस्तृत किया है।

हिन्दी को वैश्विक प्रतिष्ठा के लिए परतंत्र भारत के अंग्रेज़ शासकों की भी भूमिका रही है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम भारतीय एक समवेत् प्रयास के साथ विधि, विज्ञान, वाणिज्य और नवीन प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हिन्दी को बढ़ावा दें। सभी देशवासी सुदृढ़ इच्छा शक्ति और दायित्व बोध के साथ हिन्दी की विकास यात्रा में सम्मिलित हों ताकि विभिन्न प्रतिमानों और निष्कर्षों से मिलकर हिन्दी विश्व भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो सके। किसी देश के विकास के लिए आवश्यक है कि वहाँ ज्ञान-विज्ञान की भाषा जनमानस द्वारा ग्राह्य हो और वह उसे आसानी से समझ सके। इसलिए हिन्दी के उपभोक्तावादी रूप के विकास की चुनौतियों को समझना होगा और इसे ज्ञान की भाषा के रूप में विकसित करना होगा, तभी इसका भविष्य सुरक्षित हो सकता है।7

हिन्दी अपनी आंतरिक चुनौतियों से जूझते हुए आज राजभाषा ही नहीं, बल्कि विश्वभाषा बनने के निकट है। इसमें अन्य भाषाओं को आत्मसात करने की क्षमता है। यह हिन्दी की सबसे बड़ी पहचान है। हिन्दी में अनेक भारतीय भाषाओं में लिखे गए विद्वानों के ग्रंथों का अनुवाद कर इसे जन सामान्य के पठन-पाठन के लिए सरल बनाने के प्रयास किए जा रहे हैं। ज्ञान के सभी अनुशासन अपनी ही भाषा में सम्मिलित किए जा रहे हैं। विश्व में हिन्दी की उपस्थिति महत्त्वपूर्ण हो गई है। संसार में सभी भाषाओं का मूल स्वरूप ख़तरे में है और वे अपने लिपि संबंधी अस्तित्व की लड़ाई लड़ रही हैं। ऐसे में इसे स्वस्थ रखने और पालने-पोसने के लिए युवाओं को आगे आना होगा। विदेशी साहित्य का हिन्दी में अनुवाद और हिन्दी साहित्य का विदेशी भाषाओं में अनुवाद आवश्यक है।

000

संदर्भ - 1. हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ संख्या-39, 2. जनसत्ता, धर्मेन्द्र प्रताप सिंह, 15 सितंबर 2019, 3. साहित्य अमृत, सितंबर 2010 पृष्ठ संख्या 39, 4. हिन्दी भाषा उदय और विकास, उदय नारायण तिवारी, पृष्ठ संख्या-191, 5. हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ संख्या-39, 6. जनसत्ता, धर्मेन्द्र प्रताप सिंह 15 सितंबर 2019, 7. साहित्य अमृत, सितंबर 2010 पृष्ठ संख्या 39

(शोध आलेख)

सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यास 'मुझे चाँद चाहिए' में स्त्री-चेतना

शोध लेखक : डॉ. श्रुति शर्मा, सह आचार्य, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

सारांश - आधुनिक काल स्त्री-चेतना के जागरण का काल है। सदियों से होते आए शोषण और उत्पीड़न ने ही स्त्री चेतना को जन्म दिया है। आज के समय में स्त्रियों की स्थिति में जो बदलाव हुआ है वह स्त्री चेतना के कारण ही आया है। शिक्षा के प्रचार-प्रसार तथा आत्मनिर्भरता के कारण स्त्री में चेतना का विकास हुआ तथा वह अपनी स्थिति को लेकर सजग हुई है। स्त्री के भीतर उत्पन्न चेतना का अर्थ उसके सोच-विचार, अनुभूतियों व निर्णय लेने की क्षमता से लगाया जा सकता है। बीज शब्द : स्त्री चेतना, सौंदर्यबोध, स्वावलंबन।

''स्त्री चेतना से अभिप्राय-स्त्री के अपने अस्तित्व बोध से हैं। समाज की एक इकाई के रूप में ''अपने होने के अहसास'' से ही अस्तित्व की पहचान होती है। किन्तु नारी अस्मिता, उसकी चेतना का प्रश्न केवल अपने होने, अपनी शक्ति और क्षमता की पहचान करने मात्र से नहीं जुड़ा है। नारी को तो अपने व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया में, अपना आपा पाने के लिए पुरातन स्थापित मिथकों से हर पल जूझना पड़ता है।1 एक स्त्री के रूप मे उसकी क्या पहचान है, वह क्या करना चाहती है, उसके सपने व आकांक्षाएँ क्या है, स्त्री-चेतना के द्वारा इन सभी बातों का अध्ययन विश्लेषण किया जाता है।

''स्त्री के भीतर उत्पन्न चेतना का अर्थ विचारों, अनुभूतियों, संकल्पों की दशा एवं क्षमता से लगाया जाता है। नारी चेतना के विकास का ही परिणाम है कि नारी आज सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, व्यावसायिक और वैज्ञानिक क्षेत्र में पुरुष के समान ही नहीं बल्कि, पुरुष से आगे बढ़कर अपनी सेवाएँ प्रदान कर रही है।''2 आज स्त्री-चेतना के कारण स्त्री के रहन-सहन, सोच-विचार व दृष्टिकोण में परिवर्तन देखने को मिल रहा है। अब वह रूढ़िवादी परंपराओं का विरोध कर रही है तथा बंधनों से स्वतंत्र होकर स्वच्छंद जीवन यापन कर रही है।

सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यास 'मुझे चाँद चाहिए' में वर्षा वशिष्ठ स्त्री-चेतना की सशक्त पात्र के रूप में सामने आती है। इस उपन्यास में वर्षा प्राचीन सनातन मूल्यों, परंपराओं, रूढ़ियों और शोषण व अन्याय के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाती है। वर्षा वशिष्ठ बचपन से ही अपने व्यक्तित्व के प्रति सजग रहती है। उसमें अपने परिवार की दकियानूसी सोच व परिवेश से बाहर निकलकर कुछ अलग करने की छटपछाहट है। इस उपन्यास में वर्षा के अपने छोटे शहर की रूढ़िवादी सोच से बाहर निकलकर रंगमंच और फिर मुंबई के सिनेमा जगत में प्रसिद्ध अभिनेत्री बनने तक की संघर्ष गाथा है। अपने घर-परिवार और जीवन के प्रति उसके मन में असंतोष का भाव रहता है। उसके मन मे प्रारंभ से कुछ प्रश्नों को जानने की जिज्ञासा रहती है ''कुछ सवालों के डंक उसे हमेशा चुभते थे। वह क्यों पैदा हुई ? उसके जीवन का उद्देश्य क्या है ? क्या जीवन की प्रकृति वैसी ही होती है। जैसी 54 सुल्तानगंज की है ? क्या उसे भी वैसा ही जीवन जीना होगा, जैसा अम्मा, दद्दा और जिज्जी का है ?''3 अपने मन की इसी छटपछाहट के चलते वह हाई स्कूल में अपना नाम यशोदा शर्मा से बदलकर वर्षा वशिष्ठ रख लेती है। माता-पिता ने उसका नाम यशोदा शर्मा रखा था लेकिन उसे यह नाम पसंद नही था। ''हाई स्कूल का फॉर्म भरते समय (आत्मान्वेषण की जीवन पर चलने वाली सुदीर्घ यात्रा की शुरूआत में) सबसे पहले अपनी विरासत को नकारते और आत्मशुद्धि करते हुए उसने अपना नाम बदल लिया - वर्षा वशिष्ठ।4 उसे यशोदा शर्मा नाम घिसा-पिटा, दकियानूसी लगता है। पिता के पूछने पर वह उन्हें उचित तर्क देकर चुप करा देती है। ''पिता ने सपने में भी नहीं सोचा था कि बित्ते भर की छोकरी नाम का सौंदर्यबोधीय विश्लेषण करके उनकी हथेली पर रख देगी। नाम जैसी सरलता से स्वीकृत चीज़ों के प्रति ऐसा नया दृष्टिकोण उन्हें तिलमिला गया।

‘''पर नाम से जाति का अता-पता तो मिलना चाहिए।''

''वशिष्ठ हमारा गोत्र है। उससे यह तो मालूम हो ही जाता है कि यह ब्राह्मण है। वैसे भी यह एक महान मुनि का नाम है।''5

इस तरह वर्षा अपने परंपरावादी सोच वाले पिता को तर्कशीलता से जवाब देती है। आगे चलकर वर्षा ऐसे कई काम करती है जो उसके सनातन रूढ़िवादी परिवार की परंपराओं के

डॉ. श्रुति शर्मा
सह आचार्य, हिन्दी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर, राजस्थान

विरूद्ध होते है। इस कार्य में उसकी प्रेरणास्रोत बनती है दिव्या कत्याल। जिनकी मदद से वह रंगमंच के क्षेत्र मे कदम रखती है और अपने जीवन को नई दिशा दे पाती है। अपने परिवार की आर्थिक स्थिति से असंतुष्ट वर्षा अपना आर्थिक स्तर सुधारना चाहती है और मिस कत्याल के कहने पर ट्यूशन पढ़ाना शुरू करती है। जब वर्षा के पिता को यह बात पता चलती है तो वे क्रोधित हो जाते हैं क्योंकि कन्या के धन को हाथ लगाना उन्हें गवारा नहीं था। पिता के पूछने पर वर्षा कहती है, "दो पैसे और आएँगे तो घर की मदद ही होगी।" उसने नरमी से कहा।

"लोग क्या कहेंगे?" यह एक असमर्थ पिता की कातर पुकार थी, जो थोड़ा लुंज-पुंज होने के बावजूद बेटी के सामने खड़ा होने की कोशिश कर रहा था। वर्षा ने इतना ही कहा, "यह ऐसी बात नहीं जिसका लोगों से कोई सरोकार हो।" थोड़ी चुप्पी के बाद पिता गहरी साँस लेकर बोले, "फिर भी यह अकरणीय है।"6 इस प्रकार वर्षा शर्मा परिवार की सात पीढ़ियों में काम करने वाली पहली कन्या बन जाती है। वर्षा जीवन में आत्मनिर्भर बनना चाहती थी। "गाँव और शहर में स्त्री के भीतर स्वावलम्बी बनने का अंकुर फूट चुका था। वर्षा भी दूसरी लड़कियों की तरह आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनना चाहती थी। स्वावलंबन का पथ कठिन था जो कि शाहजहाँपुर की सीमाओं के बाहर ही संभव था। स्वावलंबी होने की दशा में गायत्री के विवाह का मुद्दा घनघोर संकट का विषय था। पिता के पास कोई सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं थी। .... वर्षा इस सब के लिए माता-पिता को दोषी मानती थी और मर्यादा का उल्लंघन कर उनके विषय में बुरा-भला सोचती थी।"7

पुरानी परंपरा और रीति-रिवाजों के बंधनों में बँधे परिवार की वर्षा को अपने परिवार में अनेक संघर्षों का सामना करना पड़ता है। अपनी बड़ी बहन गायत्री के विवाह की चिंता व स्थिति को देखकर वर्षा निश्चय करती है कि वह विवाह की बजाय नौकरी करके आत्मनिर्भर बनना ज़्यादा पसंद करेगी। इसी कारण वह भाई महादेव द्वारा विवाह के लिए समझाने पर उन्हें साफ इनकार कर देती है, "आयु के जिस मोड़ पर मैं खड़ी हूँ उसमें शादी मुझे उतने महत्त्व की नहीं लगती जितना अपने पाँवो पर खड़ा होना लगता है।....आगे वह कहती है कि "कुपात्र के साथ बंधने से अकेले रहना अच्छा है।" 8

पिता द्वारा भी विवाह के लिए ज़ोर डालने पर वर्षा कहती है, "यह ब्याह मैं नहीं करूँगी। तुम लोग चाहे मारो, चाहे कूटो।"9 वर्षा के साँवली होने के कारण उसके घरवाले किसी भी दोहजू-तिहजू से उसका रिश्ता करने को तैयार हो जाते हैं। वे परंपरानुसार किसी से भी वर्षा का विवाह कर जिम्मेदारी से मुक्त होना चाहते है। ऐसे रिश्तों को लेकर वर्षा के मन में कई सवाल आते है।" सिलबिल की समझ में न आया कि उसमे ऐसी कौन सी नैसर्गिक या अर्जित योग्यता है, जो उसे सिर्फ दुहेजू के योग्य होने की विशेष पात्रता देती है।"10

वर्षा कॉलेज के संस्थापक दिवस के कार्यक्रम में नाटक में भाग लेती है तब भी वर्षा के रूढ़िवादी पिता उसे परिवार की इज़्ज़त के नाम पर नाटक करने से रोकते हैं वह छुट्टियों में मिस कत्याल के पास ड्रामा करने लखनऊ जाना चाहती है लेकिन वहाँ जाने से भी उसे रोका जाता है। उसे पिता के हाथ का तमाचा भी खाना पड़ता है लेकिन वर्षा की दृढ़ता के आगे पिता का क्रोध भी नहीं चल पाता। "पिता से थप्पड़ खाकर भी वर्षा उन्हें, आग्नेय दृष्टि से देखती, जिसमें चुनौती का धिक्कार था, वह सूटकेस लेकर आगे बढ़ती है और पहले के सख्त भाव के साथ एक कदम बढ़ाकर वह साँकल खोल लेती है। पिता के इस वक्तव्य का भी उस पर कोई असर नही होता, "अगर तूने बाहर पाँव रखा तो फिर घर में नहीं घुस सकती।"11 वह पूरे परिवार का विरोध करके ड्रामा करने लखनऊ चली जाती है। वह जीवन की बजाय कला का वरण करना ज़्यादा पसंद करती है।

परंपरागत सनातन मूल्यों से विद्रोह करने वाली वर्षा दिल्ली के नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा मे प्रवेश लेना चाहती है। लेकिन घर वाले उसका विवाह करना चाहते है अत: पता चलने पर वर्षा को दिल्ली जाने से रोकने के लिए हर संभव प्रयास किया जाता है।" आलाकमान का दृढ़ मत था कि इस बार सिलबिल के दरवाजे से निकलने का मतलब था हाथ से निकलना। अत: भाई महादेव ने परिवार से विद्रोह करने वाली वर्षा को बाँह पकड़कर स्नानघर में बंद कर दिया और बाहर से साँकल लगा दी। 12 लेकिन डॉ. सिंहल और मिसेज सिंहल के प्रयास से वह मुक्त हो पाती है तथा राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में प्रवेश पाकर अपनी अभिनय की यात्रा में सफलता प्राप्त करती है। वह संघर्ष करती हुई फिल्मों तक पहुँचती है तथा एक सफल अभिनेत्री बनकर अपने सपनों के चाँद को छू लेती है। जिसमें दिव्या कत्याल उसकी प्रमुख प्रेरणास्त्रोत व मार्गदर्शिका बनती है। उनके दिखाए पथ पर आगे बढ़कर वह रंगमंच के क्षेत्र में कदम रखती है। अंतत: संघर्ष पथ पर आगे बढ़ते हुए वह अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त कलाकार बन जाती है। नाटक एवं फिल्म जगत से उसे पुरस्कार प्राप्त होते हैं।

वह अपने अस्तित्व की तलाश में व पहचान निर्माण की प्रक्रिया में पारिवारिक रिश्तों की भी परवाह नहीं करती है। इसी संघर्ष यात्रा में हर्ष से उसका संबंध स्थापित होता है। वह हर्ष से प्रेम करती है लेकिन उससे विवाह वह अपना कैरियर स्थापित होने के बाद ही करना चाहती है। दुर्भाग्यवश हर्ष आत्महत्या कर लेता है और उसे हर्ष का गर्भ रह जाता है। पर वह आर्थिक रूप से स्वतंत्र है अत: किसी की दया का पात्र नही बनना चाहती। वह हर्ष के बच्चे की कुंवारी माँ बनने का निर्णय लेती है। समाज की रूढ़िगत मान्यताओं को नकारते हुए प्रेमी हर्ष की मृत्यु होने पर बच्चे की माँ बनने का यह निर्णय स्त्री-चेतना व मुक्ति का प्रमुख रूप है, "यह निर्णय कंटक पथ साबित होगा, यह समझना मुश्किल नहीं था।"

"उसे अंदाज़ था इस जीव की स्वीकृति उसके आगामी जीवन की दिशा और प्रकृति बदल देगी। पेड़ों के झुरमुट के बीच सूखे पत्तों पर चलते हुए उसने मन ही मन कहा, मैं इस फैसले का मूल्य चुकाने को तैयार हूँ।"13 उसके इस फैसले पर कला क्षेत्र में आने वाली सभी परेशानियों के बारे में जब सेक्रेटरी पांडे

वर्षा को बताते है तब भी वर्षा अपने निर्णय पर अटल रहती है। यह उसका व्यक्तिगत निर्णय है तथा उसे समाज की भी कोई परवाह नही है। अपने होने वाले बच्चे की दादी और बुआ द्वारा गर्भपात के लिए कहने पर, वर्षा उनकी बात को मानने से इंकार कर देती है तथा ज़िंदगी की राह पर अकेली चलने का निर्णय लेती है।

हर्ष की बहन सुजाता द्वारा यह कहे जाने पर कि बच्चे की परवरिश में हम मदद न करना चाहें तो, इतना सुनकर वर्षा क्रोधित हो जाती है-''आपसे मदद माँगी किसने है ? मैं जैसी दीन-हीन पैदा हुई थी, मेरा बच्चा वैसा पैदा नहीं होगा। वह अपनी माँ के घर में मुँह में चाँदी के चम्मच के साथ पैदा होगा, जैसे उसका बाप हुआ था।''14

उपन्यास में झल्ली वर्षा की छोटी बहन है जो वर्षा के पास रहने और पढ़ाई करने के लिए मुम्बई आती है और महानगर के तौर-तरीकों के अनुरूप अपने आप को ढाल लेती है। उसका खान-पान, रहन-सहन सब मुम्बई आकर बदल जाता है। जब उनके पिता अपनी बेटियों के पास रहने मुंबई आते हैं तो पिता की प्राचीन रूढ़ियों व रुचियों से परिचित वर्षा अपनी छोटी बहन झल्ली को कुछ दिनों मांस का सेवन नहीं करने की सलाह देती है। झल्ली ने विद्रोह का झंडा बुलंद कर दिया, 'वे मुझे रोक लेंगे, व्हाई कांट ही एलाउ अस अवर फ्रीडम।'15 उपन्यास में झल्ली भी स्वतंत्र चेतना से युक्त स्त्री पात्र है। अपनी स्वतंत्रता में उसे किसी का दखल बर्दाश्त नहीं है। अपने पिताजी के कारण वह अपना खान-पान नहीं बदलना चाहती। वर्षा के पिता को जब यह बात पता चलती है कि वर्षा मांस व मदिरापान करती है तो वे नाराज़ होते हैं तथा वर्षा से इस बारे में प्रश्न करते हैं, ''सिलबिल, तुम मदिरापान करती हो ?''..... यह वंश की परंपरा के अनुकूल नहीं।'' पिता ने कहा, ''अपनी सात पीढ़ियों में किसी पुरुष ने भी मदिरा को हाथ नहीं लगाया होगा-स्त्री की तो बात ही छोड़ो। ... ''परिवार की सात पीढ़ियों में किसी स्त्री ने काम नहीं किया, पर मैं कर रही हूँ।''16 इस तरह वर्षा तर्कशीलता से पिता को जवाब देती है क्योंकि वह आत्मनिर्भर है।

'मुझे चाँद चाहिए' में स्त्री के संघर्ष की कथा को गहरे पीड़ा-बोध, संजीदगी और कलात्मक संयम के साथ प्रस्तुत किया है। इसकी मुख्य पात्र रुढ़िवादी, मध्यवर्गीय ब्राह्मण परिवार की लड़की के 'यशोदा शर्मा' से 'वर्षा वशिष्ठ' बनने तक की यात्रा तथा स्त्री के संघर्ष और विद्रोह का अद्वितीय उदाहरण है। वह एक महत्वाकांक्षी लड़की है, जो परंपरागत व्यवस्था की समस्त संहिताओं को कुचलती और बाधाओं को लाँघती हुई आर्थिक आत्मनिर्भरता और शक्ति प्राप्त करती है। इसके साथ ही उसका संघर्ष जितना बाहरी और व्यवस्था विरोधी है, उतना ही आंतरिक और निजी भी। बिन ब्याही माँ के दायित्व को वह जिस गर्व के साथ स्वीकारती है, वह अद्भुत है। यशोदा शर्मा, सिलबिल, का वर्षा वशिष्ठ में रूपांतरण मध्यवर्गीय भारतीय स्त्री के आधुनिक स्त्री में बदलने की सच्ची कथा है।''17 वर्षा के चरित्र के बारे में डॉ. भानुभाई रोहित का कहना है—''जीवन के आर्थिक, सामाजिक संघर्षों से जूझती वर्षा उस बौद्धिक नारी का प्रतिनिधित्व करती है जो मेहनत और लगन से काम करती है। समाज के ऊँचे तबके पर अपना वर्चस्व स्थापित करती है और विरोधी शक्तियों से जूझती है पर आस्था नहीं खोती। वर्षा का चरित्र पुरुष प्रधान समाज में नारी के संघर्ष और अपनी अस्मिता की पहचान के लिए संघर्षरत नारी को रेखांकित करता है। यह हमारे समाज में नई नारी के प्रस्थान बिंदु की ओर भी संकेत करता हैं।''18

कला क्षेत्र में भिन्न स्तरीय भूमिका निभाने वाली अनुपमा भी उपन्यास में नारी मुक्ति के लिए तड़पती दिखाई देती है। अनुपमा स्वावलंबी स्त्री है जो घर के साथ ही समाज सेवा भी करती है। अनुपमा, चिंतामणि से प्रेम विवाह करती है लेकिन उससे ना बन पाने के कारण वह अलग हो जाती है। अनुपमा की माँ उसे दूसरी शादी करने को कहती है लेकिन अनुपमा आधुनिक विचारों की स्त्री है। वह विवाह न करके विवाह के कारण सताई जाने वाली स्त्रियों के दुखों को दूर करने तथा उनकी सहायता करने का प्रयास करती है। वह नारी मुक्ति व चेतना जागृत करने के लिए जगह-जगह जाकर नुक्कड नाटक करती है। विशुद्ध कलात्मक रंगमंच से हट कर 'सौद्देश्य रंगमंच' करने लगी। वह स्त्री की ताकत को अच्छी तरह जानती है, इसी कारण वह बिगुल नामक संस्था की स्थापना स्त्री को स्वावलंबी बनाने के लिए करती है।''अब वह राजधानी की तीन चार स्त्री संबंधी संस्थाओं से जुड़ी थी। एक समाजसेवी ने बिगुल के लिए प्रत्येक इतवार को पेट्रोल सहित अपनी मिनी बस भी अर्पित कर दी थी जिससे नुक्कड़ प्रदर्शनों में सुविधा हो जाए।''19

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि सुरेन्द्र वर्मा ने अपने स्त्री पात्रों में स्वतंत्र अस्तित्व और स्त्रीत्व, आत्मनिर्भरता को पर्याप्त स्थान दिया है। यह उपन्यास वैश्वीकरण, भूमंडलीकरण के दौर मे स्त्री विमर्श व चेतना के नए स्वरूप को रेखांकित करता है।

000

संदर्भ - 1. प्रकाश, अलका, नारी चेतना के आयाम, लोकभारती प्रकाशन, पृ. 13, 2. नारी विमर्श के संदर्भ में रांगेय राघव के उपन्यासों का मूल्यांकन, डॉ. फातिमा जेहरा, शब्द सृष्टि प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 121, 3. वर्मा, सुरेन्द्र 'मुझे चाँद चाहिए', नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, तीसरा सं. 2013, पृ. 12, 4. वही, पृ. 13, 5. वही, पृ. 15, 6. वही, पृ. 19, 7. नारी उत्पीड़न के नए रूप, डॉ. सरोज़ अग्रवाल, क्लासिकल पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली, प्रथम सं., 2009, पृ. 181, 8. मुझे चाँद चाहिए, सुरेन्द्र वर्मा, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन नई दिल्ली, तीसरा सं. 2013, पृ. 43, 9. वही, पृ. 69, 10. वही, पृ. 68, 11. वही, पृ. 60, 12. वही, पृ. 79, 13. वही, पृ. 497, 498, 14. वही, पृ. 500, 15. वही, पृ. 447, 16. वही, पृ. 473, 17. स्त्री विमर्श : विविध पहलू, सं. कल्पना वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद द्वितीय सं. 2011, पृ. 217, 18. सुरेन्द्र वर्मा : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, डॉ. भानुभाई रोहित, चिंतन प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2009, पृ. 172, 19. मुझे चाँद चाहिए, सुरेन्द्र वर्मा, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा सं. 2013, पृ. 230

(शोध आलेख)

गीतांजलि श्री के कथा साहित्य में पर्यावरणीय संवेदना

शोध लेखक : जितेन्द्र कुमार मीना, शोधार्थी, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

प्रदूषण की समस्या आज के युग की सबसे बड़ी समस्या है जिसका सामना आज बड़े-बड़े विकसित और विकासशील देश कर रहे हैं। यह समस्या अब धीरे-धीरे अन्तरराष्ट्रीय मुद्दा बन गया है। इस समस्या को हल करने के लिए आज सभी देश एकजुट हैं। प्रदूषण के बढ़ते प्रभाव के कारण वनस्पति, पर्यावरण, वायुमंडल एवं स्वास्थ्य में कई नकारात्मक परिवर्तन आए हैं। औद्योगिक क्षेत्रों में प्रगति के कारण पर्यावरण में संतुलन बिगड़ गया है। ज़हरीली गैसों को हवा और दूषित जल को समुद्रों, नदियों में प्रवाहित कर देने से मनुष्य जाति और पशु-पक्षी और वनस्पति इससे प्रभावित हुई हैं। कई देशों ने प्रदूषण की रोकथाम के लिए कई ऐसे कदम उठाए हैं जिससे पर्यावरण में संतुलन बना रहे। लेखिका गीतांजलि श्री प्रदूषण की बढ़ती समस्या को आधार बनाकर अपने साहित्य में पर्यावरण के प्रति अपनी चेतनशीलता का परिचय दिया है।

बीज-शब्द : पर्यावरण, प्रदूषण, आधुनिकता, संवेदना, औद्योगिक विकास, कृत्रिम जीवन, सांस्कृतिक चेतना।

पर्यावरण दो शब्दों परि और आवरण से मिलकर बना है, परि-चारों तरफ, आवरण-घेरा। अर्थात् प्रकृति में जो भी हमारे चारों ओर परिलक्षित होता है-वायु, जल, मृदा पेड़-पौधे, प्राणी आदि। सभी पर्यावरण के अंग हैं और इन्हीं से पर्यावरण की रचना होती है।

पर्यावरण की रक्षा एवं मानव के सतत विकास की सहगामी अवधारणा को सतत विकास, जीवन सहविकास या संपोषित विकास के नाम से जाना जाता है। प्राकृतिक संसाधनों का दोहन वर्तमान और भावी पीढ़ी के हितों को ध्यान में रखते हुए किया जाना ही संपोषित विकास है।

जितेन्द्र कुमार मीना
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर, राजस्थान

पर्यावरण समस्त पृथ्वीवासियों की साझी विरासत है। पर्यावरण संरक्षण के प्रति जन सामान्य में जागरुकता उत्पन्न करना हमारा कर्तव्य है। पर्यावरण के प्रति सामाजिक चेतना आदिकाल से हमारी जीवन शैली एवं चिन्तन का अभिन्न अंग रहा है। पृथ्वी, आकाश, नदी, वन्य प्राणी, सूर्य, चंद्रमा आदि को देवता मानकर इनकी पवित्रता की रक्षा करना हमारा परम कर्तव्य रहा है। परंतु तीव्र औद्योगीकरण एवं नगरीकरण ने हमारी मूलभूत अवधारणा से हमें दूर कर दिया है।

स्वच्छ पर्यावरण का हमारे लिए विशेष महत्त्व है। पर्यावरण हमारे शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। वह वायु जिसमें हम साँस लेते हैं, पानी जिसे हम पीते हैं, मिट्टी जिसमें खेलकर हम बड़े होते हैं, घर-आँगन-बगीचों में लगे पेड़-पौधे, उन पर पलने-बसने वाले पशु-पक्षी तथा सूर्य का प्रकाश, ये सभी हमारे पर्यावरण का एक महत्त्वपूर्ण अंग हैं। हमारे सारे क्रिया-कलाप और हमारी गतिविधियाँ ठीक न होने पर पर्यावरण असंतुलित होता है। हमारी सोच सही होने पर तथा हमारे काम करने का ढंग ठीक होने पर पर्यावरण का संतुलन बना रहता है।

मनुष्य की उपभोगी प्रकृति पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव छोड़ रही है। इसके वशीभूत होकर मनुष्य अधिक से अधिक संसाधनों का उपभोग करना चाहता है। जितना अधिक उपभोग, उतना अधिक विकास। इस अवधारणा के चलते विकसित देशों की देखा-देखी विकासशील देशों में भी लोगों में अधिक से अधिक उत्पादों का उपभोग करने की आदत बढ़ रही है।

संपूर्ण विश्व में प्राकृतिक संसाधनों का दोहन तेजी से बढ़ रहा है। अपनी उपभोगी प्रवृत्ति को सन्तुष्ट करने के लिए मनुष्य ने कुछ ऐसे पदार्थ विकसित किए हैं, जिनका उपयोग पर्यावरण को अत्यधिक प्रदूषित कर रहा है। मनुष्य की अनेक गतिविधियों के कारण वायुमण्डल में कार्बनडाईऑक्साईड तथा ग्रीन हाउस प्रभाव डालने वाली गैसों की मात्रा निरन्तर बढ़ती जा रही हैं। प्रशीतक यन्त्रों के अधिक उपयोग से वातावरण में 'क्लोरोफ्लोरो कार्बन' की मात्रा बढ़ रही है। इसकी वजह से वायुमण्डल के ऊपरी हिस्से में ओजोन की जीवन रक्षक परत प्रतिदिन पतली होती जा रही है तथा कुछ स्थानों पर फट भी गई है। इससे पृथ्वी पर पराबैंगनी किरणों का विकिरण बढ़ गया है। फलस्वरूप मनुष्य के उपर नेत्ररोग, चर्मरोग तथा त्वचा के कैंसर का प्रकोप बढ़ गया है। स्वस्थ पर्यावरण तथा स्वास्थ्य पर सबका समान अधिकार है। उपभोक्ता वादी मानवीय प्रवृत्ति से पर्यावरण अत्यधिक प्रदूषित हो जाए तथा हमारे लिए घातक बन जाए, इससे पहले यह आवश्यक है कि हम सुधर जाएँ, ताकि हम स्वस्थ रह सकें। पर्यावरण हमारे जीवन के लिए अमृत समान है। उसकी सुरक्षा करना हमारा नैतिक कर्तव्य है।

जब 'साहित्य, समाज एवं पर्यावरण' विषय पर हम चर्चा करते हैं तब यह आवश्यक है कि पर्यावरण के समस्त पक्षों पर विचार करें। साहित्य और समाज अन्योन्याश्रित हैं, उसी प्रकार साहित्य और पर्यावरण भी। पर्यावरण शब्द का सामान्य अर्थ हम भौतिक 'परिवेश' से ही लेते हैं, लेकिन जब समाज और साहित्य के साथ 'पर्यावरण' पर चर्चा करते हैं तो हमें 'पर्यावरण' को व्यापक अर्थ में देखना होगा। व्यापक अर्थ में विचार करने पर स्पष्ट है कि पर्यावरण भौतिक घटकों, दशाओं, प्रभावों का दृश्य और अदृश्य ऐसा समूह है जो सजीव-निर्जीव सभी को प्रभावित और परिवृत्त कर उन्हें प्रभावित करता है और स्वयं भी इन परिवर्तनों, क्रियाकलापों और दशाओं से प्रभावित होता है। अत: पर्यावरण के अन्तर्गत हमारी समस्त सामाजिक संस्थाएँ, सांस्कृतिक क्रिया-कलाप, आर्थिक एवं राजनैतिक दशा-दिशा आदि सब कुछ आ जाता है। इस प्रकार पर्यावरण से तात्पर्य उस समस्त वातावरण से है जिससे सम्पूर्ण जीव-जगत या ब्रह्माण्ड आवृत्त है अथवा घिरा है।

गीतांजलि श्री आधुनिकता को बुरा नहीं मानती लेकिन आधुनिकता और औद्योगिक विकास जहाँ देश की प्रगति का सूचक है तो वहीं मानव जाति के विनाश और प्रकृति की तबाही का कारण भी है। लेखिका प्रकृति के प्रति अपनी संवेदना प्रकट करती हुई मनुष्य को कृत्रिम जीवन जीने के बजाय प्रकृति की गोद में जाने का संदेश देती हैं। प्रकृति के प्रति आत्मीयता लेखिका के पर्यावरणीय चेतना को मुखर करती है। लेखिका ने भारत की जलवायु को एक सहज प्राकृतिक परिवर्तन माना है जिसे हर देशवासी सहज रूप से स्वीकार करता है वहीं विदेशों में गोरे लोग प्रकृति के सहज सौन्दर्य और मौसम परिवर्तन को झुठलाकर अपने आसपास कृत्रिम वातावरण तैयार कर लेते हैं। 'हाशिए पर' कहानी में इसकी पुष्टि होती है—''इन गोरों के लिए जो गर्मी और जाड़े में खिड़की दरवाज़े बन्द करके एयरकंडीशन कमरे में सोते हैं। तभी उन्हें वीकएंड पर जतन करके गाँव पहाड़ जंगल में जाकर बड़ी-बड़ी साँसें लेनी पड़ती हैं और एयरकंडीशनर कमरे में लौटकर मिट्टी की सुगंध व पत्तों की महक पर कविताएँ लिखनी पड़ती हैं। लेकिन अपना देशी (भारतवासी) झुलसती हवाओं में सोता है। आँगन में बूँदों के प्रहार से जागता है और पौ फटने के प्रहार से जागता है और पौ फटने से पहले आधी नींद में उठकर हल्की-फुल्की सफेद चादर तान लेता है। रात की रानी, मधुमालती, चमेली अनजाने में ही उसके फेफड़ों को सींचती हैं। कुछ चीज़ें सोचनेवाली नहीं होती। जीनेवाली होती हैं।''1

लेखिका प्रकृति को प्राण प्रदाता के रूप में स्वीकार करती हैं और गोरे (विदेशी) बनावटी जीवन जीते हैं और प्रकृति की सुंदरता महसूस करने से वंचित रहे हैं—''प्रकृति और नींद के गहरे संबंध की जिसने नींद में यानि वह वक्त जब वह एकदम असुरक्षित है, अचेतन मासूम है, खुली प्रकृति को नहीं जाना है। वह ठलुआ है! प्रकृति को हवाओं के साथ रोम-रोम में बरसने वाली चीज़ है, उसके लिए अकृत्रिम साधनों से देखनेवाली चीज़ है इसलिए नकली है खोखली है।''2

भौतिक और औद्योगिक विकास के पीछे अंधी दौड़ में शामिल सभी देश प्रदूषण की समस्या से जूझ रहे हैं और इससे उबरने के

लिए पेड़ों को बचाने के लिए प्रयास कर रहे हैं जिससे प्राकृतिक संतुलन बना रहे। लेखिका ने पेड़ों के महत्त्व को समझाते हुए प्रदूषण को कम करने का एकमात्र लक्ष्य पेड़ों के बचाव को माना है। 'हाशिए पर' कहानी की नायिका जर्मनी में अस्थायी रूप से रहती है। रजत फ्रांस में एक रिसर्च स्कॉलर के रूप में विश्वविद्यालय में पढ़ता है। दोनों एक-दूसरे के अच्छे मित्र हैं जो मिलकर देश-दुनिया की बातें करते हैं और वर्तमान स्थिति पर चर्चा करते हैं। नायिका रजत से कहती है—"जिस अस्पताल में हमने काम किया था वहाँ आने वाले रोगी बच्चों का ज़िक्र करती जो वायु-प्रदूशण के कारण बीमार फेफड़ों के साथ पैदा हुए थे। उस दौरान मैं जर्मनी की प्रतिनिधि बन जाती और रजत के फ्रांस को ख़ूब लताड़ती। वहाँ इस औद्योगिक प्रदूषण के ख़िलाफ़ आवाज़ नहीं उठती क्योंकि वह कभी उसकी चपेट में ऐसे नहीं आए हैं। फिर भी उनके पश्चिमी ओर समुद्र है जहाँ से बहकर ताज़ी हवा आती है, दूषित हवा को आगे ठेल देती। जर्मनी के पश्चिमी छोर पर फ्रांस और नीदरलैंड हैं और आगे इंग्लैंड। इन देशों में उठती जहरीली हवा का डंपिंग ग्राउँड बन गया है बेचारा जर्मनी। तभी हमारी लाइफ एंड वेजिटेशन का यह हश्र हो चला है। पर आप सब तो हँस देते हैं 'साला रोमांटिक जर्मन औद्योगिक युग में जंगल बचाने की पुकार कर रहा है, इंडस्ट्री रोकने का शोर कर रहा है।"3

लेखिका का पर्यावरण और प्रकृति के साथ लगाव है। लेखिका ने आज के भौतिक युग में लोगों को प्रकृति से कटा पाया है। आज वह प्रकृति से ज़्यादा मनोरंजन से भरपूर वस्तुओं को महत्त्व दे रहा है। आज उसका प्रकृति से नाता टूट चुका है। 'तिरोहित' उपन्यास में इस बात की पुष्टि हुई है—"पेड़ भी कटे हैं तो पत्तियों की घंटियाँ नहीं बजती। धूप-छाँव के झूले नहीं झूलते। डालियों की जगह टी.वी. के ऐन्टेना ले रहे हैं। ऐन्टेना बाग में देर तक सैर करता जो ऐन्टेना एकदम टूटने को थे उन्हें भी तार की गुलझटी बना किसी तरह गिरने से रोक रखा था। दूध फल पर कटौती करके टी.वी. खरीदे गए हैं तो एन्टेना तो बचाए रखना है।"4

इस प्रकार लेखिका ने पर्यावरण में हो रहे असंतुलन और स्वास्थ्य पर पड़ते इसके बुरे असर का प्रमुख कारण प्रदूषण को माना है। जंगलों के कटाव, औद्योगिक विकास के कारण प्रदूषण की समस्या बढ़ रही है जिसका हल केवल अधिक से अधिक पेड़ लगाकर और जंगल बचाकर ही प्राकृतिक संतुलन बनाए रखना। प्रकृति के साथ मनुष्य का सहचर्य वर्षों पुराना है और प्रकृति ही मनुष्य की जन्म प्रदाता है। अत: इनको बचाना ही हमारा दायित्व है।

साहित्य से समाज एवं सामाजिक पर्यावरण प्रगाढ़ रूप से जुड़े हैं, लेकिन आज सामाजिक पर्यावरण प्रदूषण को निर्मूल करने में साहित्य अपने को अक्षम मान बैठा है। इसके अनेक कारण हैं। साहित्य के पाठक कम हो गए, ऐसा साहित्य कम लिखा जा रहा है अथवा ऐसा श्रेष्ठ साहित्य भी है और लिखा भी जा रहा है तो वह पाठक से दूर है। इन सभी स्थितियों पर हमें गंभीरता से विचार करना होगा और सामाजिक प्रदूषण को दूर करने को एक चुनौती मानकर रचनाकार और संस्थाओं को आगे आना होगा।

भौतिक पर्यावरण प्रदूषण की स्थितियाँ भी कम घातक नहीं हैं। जिन पंचभूत तत्त्वों से इस सृष्टि का निर्माण हुआ है वे सभी भी बड़े घातक रूप से प्रदूषण के शिकार हो रहे हैं। इस प्रदूषण उन्मूलन के सारे उपाय मानो असफल लगने लगे हैं। भौतिक पर्यावरण की शुद्धता के संदर्भ सभ्यता के आदिकाल से देखे जा सकते हैं। वेदों में तो मूलत: ये ही संदर्भ सर्वाधिक हैं, लेकिन विडम्बना यह है कि उन्हें पढ़े कौन और पढ़कर जीवन में उतारे कौन? ईशावास्योपनिषद् का प्रथम मंत्र ही पर्यावरण की स्थिति को प्रकट करने वाला है - "ॐ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृध: कस्यस्विद्धनम्।।"5

अर्थात् जगत् में जो कुछ भी है उसमें ईश्वधर का वास है, वह ईश्वरर से आच्छादित है। त्याग के द्वारा अपना पोषण करो। किसी के धन का लोभ मत करो। इसी मंत्र में सब कुछ स्पष्ट हो गया है। वेद सृष्टि विज्ञान के मुख्य ग्रंथ हैं। उनमें पंचभूत तत्त्वों अथवा प्राकृतिक घटकों, उपादानों को ही देवता मानकर पूजने का प्रावधान है। जब इन्हें देवता माना गया है तो इनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धा और आस्था होनी चाहिए, लेकिन आज यह भाव नहीं रह गया है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप से गीतांजलि श्री ने अपने कथा साहित्य में धर्म और संस्कृति को समाज के लिए हितकर माना है। हर व्यक्ति की धर्म के प्रति अपनी-अपनी परंपराएँ तथा मान्यताएँ होती हैं जिसका वह अनुकरण करता है। धर्म में उसकी आस्था तथा विश्वास झलकता है। मनुष्य समाज में मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा कर प्रगति के पथ पर अग्रसर होता है। संस्कृति मनुष्य को तहजीब सलीका सिखाती है। धर्म और संस्कृति एक दूसरे से संबंधित हैं। लेखिका ने अपने साहित्य के माध्यम से भारतीय संस्कृति के प्रचलित धर्म, दर्शन, परंपरा, लोकगीत, भाषा, पहनावा, खानपान का वर्णन करते हुए विदेशी संस्कृति तथा भारतीय संस्कृति का चित्रण किया है और भारतीय संस्कृति किस प्रकार पाश्चात्य सभ्यता को प्रभावित कर रही है और पाश्चात्य सभ्यता का भारतीय संस्कृति पर कैसा प्रभाव है इसका चित्रण किया है। भारतीय धर्म व संस्कृति के प्रति लेखिका की चिन्तन दृष्टि धार्मिक एवं सांस्कृतिक चेतना का सकारात्मक पक्ष है जिससे समाज में जागरूकता आएगी।

000

संदर्भ-

1.गीतांजलि श्री, अनुगूँज, हाशिए पर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991, पृ. 115, 2.गीतांजलि श्री, अनुगूँज, हाशिए पर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991, पृ. 115, 3.गीतांजलि श्री, अनुगूँज, हाशिए पर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991, पृ. 112, 4.गीतांजलि श्री, तिरोहित, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001, पृ. 54, 5.ईशावास्योपनिषद्, सानुवाद शाङ्करभाष्यसहित, गीता प्रेस, गोरखपुर, तृतीय संस्करण, 1990, पृ. 14

(शोध आलेख)

अनुसंधान प्रक्रिया एवं उसके सोपान

शोध लेखक : डॉ.अर्जुन के तड़वी
हिन्दी विभागाध्यक्ष
आर्ट्स कॉलेज, पाटन

डॉ.अर्जुन के तड़वी
हिन्दी विभागाध्यक्ष
आर्ट्स कॉलेज,
पाटन- 384265 (उत्तर गुजरात)

प्रपोज़ल का सामान्य शब्दार्थ है – प्रस्ताव, प्रस्थापना, समावेदन, विषय-चयन, विषयाभिमुख की ओर इंगित होना। अर्थात शोध की दिशा तय करना, शोधाभिमुख होना, शोध-संकल्पनाएँ, शोधकी परिकल्पना, शोध की पूर्वधारणा, शोध की प्राक्कल्पना आदि कहते हैं।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा निर्देशित अधिनियम के तहत अनुसंधाता को विद्याचिकित्सक (PH.D) हेतु सर्वप्रथम प्रवेश-परीक्षा उतीर्ण करनी होगी। तत्पश्चात चिकित्सक के लिए अगला चरण सामान्य शोधप्रस्ताव या प्रस्थापना तैयार करनी होगी। शोध विषय की दिशा तय करके किसी मुकम्मल विषय पर अर्थात प्रमुख बिन्दुओं पर विषयानुक्रम के मुताबिक संक्षिप्त-सार लिखना होगा।

विषय संदर्भित शोध-प्रस्ताव तैयार होने के पश्चात् जो सो विश्वविद्यालय में दर्ज करें। विश्वविद्यालय की ओर से गठित समिति प्रस्तावक को विषय मान्यता प्रदत्त करती हैं। इस दौर से गुज़रने के बाद विषय संबंधी रुपरेखा, विषय अध्यायीकरण करके शोध की ओर पहल कर सकते हैं। शनै: शनै: अनुसंधाता प्रथम, मध्य, और पश्च यानी तीनों पड़ावों को पार करके शोध-प्रबंध का रुप तैयार करता हैं। विश्वविद्यालय के अधिनियमानुसार अनुसंधाता लागू टेबूल पर गुज़रता है। अंतत: अनुसंधाता मौखकी की ओर बढ़ता हैं। शोध-प्रबंध का परीक्षणकार्य और मौखिकी के पश्चात् विश्वविद्यालय विद्याचिकित्सक (PH.D) की उपाधि प्रदान करती हैं।

साहित्य वाचस्पति (PH.D) मन की गुत्थियाँ : तीन सोपान

(1)PROPOSAL –(योजना-सूत्र)प्रस्ताव, प्रस्थापना, समावेदन (प्रारंभिक दौर)

(2)SYNOPSIS –(रुपरेखा)विषयसंक्षेप, विषय-संक्षिप्तीकरण, विषय- संक्षेपिका (दूसरा मुकम्मल दौर)

(3) PROSPECT(संभावनाएँ (पूर्वेक्षण करना, मौखिकी का अंतिम दौर)

Research(अनुसंधान प्रक्रिया)

(1) विषय - समस्या क्षेत्र का कथन/ चयन (2) साहित्य / चयनित शोध-विषय की समीक्षा अर्थात विवेचन करना (3) सैद्धांतिक मूल्यों की स्थापना, वैचारिक ढाँचे का विकास (4) शोधप्रश्नबैंक, शोध परिकल्पना का स्पष्टीकरण (5) अनुसंधान विषय का अध्यायीकरण (6) शोध की साधन सामग्री – उपजीव्य-ग्रंथ, संदर्भपुस्तकें, सहायक ग्रंथ, आलोचनात्मक ग्रंथ, भू-जाल, जालपत्र, पत्र-पत्रिकाएँ, साक्षात्कार, आदि

(7) विषयसंक्षिप्तीकरण

(8)निष्कर्ष या सारांश

Summary (सारांश, संक्षिप्तकरण-विषय-संक्षेपिका, संक्षिप्त-रुप)

(1) शोध केवल आँकड़ों के संग्रह के बारे में नहीं है। विषयगत आधार-सामग्री महत्त्वपूर्ण है, किन्तुं यह शोध प्रक्रिया की एक व्यापक प्रक्रिया का हिस्सा है।

(2) शोधप्रक्रिया कुल आठ चरणों का अनुसरण करती है। विषय का चयन, अपनी शोध समस्या को स्पष्ट करना, एक शोध रेखाचित्र विकसित करना, सामग्री संकलित करना, विषय आधारित सामग्री का विश्लेषण करना और निष्कर्ष निकालना।

(3)अनुसंधाता अपनी परियोजना को अनुसंधान प्रक्रिया से संबंधित करने से आप तार्किक और व्यवस्थित तरीके से अपनी शोध समस्या का समाधान अर्थात शोधप्रश्न के उत्तर दे पाएँगे।

अनुसंधान प्रस्ताव - एक संरचित प्रस्तुति है जिसे आप अनुसंधान में कार्य करने की योजना बनाते हैं और आप इसे किस प्रकार शोधकार्य करने की योजना कैसे बनाते हैं ? वह आप पर निर्भर है।

परिकल्पना का परीक्षण करने के लिए किस प्रकार की आधार सामग्री की अनिवार्यता होती हैं? शोधकर्ता और निर्देशक दोनों मिलकर तय करते हैं अर्थात शोध क्षेत्र में शोधक ही नहीं बल्कि दोनों शोध का अनुष्ठान करते हैं।

अनुसंधान- एक शोध प्रस्ताव के अंग, प्रस्ताव का शीर्षक, समस्या के आधार पर, समस्या

का समाधान, शोध के उद्देश्यों, प्रश्नों, परिकल्पनाओं का अध्ययन।

विषय -संबंधित साहित्य की समीक्षा, विवेचन, विश्लेषण आदि।

खोज के तौर तरीके और प्रक्रियाएँ उचित योगदान।

विश्वसनीय काम करनेवाली ग्रंथसूची।

शोधप्रस्ताव या प्रस्थापना एक दस्तावेज हैं जो भविष्य में किए जानेवाले एक अध्ययन की विशेषताओं का विश्लेषण करता हैं।

अनुसंधाता की रणनीति जिसमें जाँच, तार्किक और सफलतापूर्वक सम्पन्न हो सकती हैं। विषयसंबंधी उपजीव्यग्रंथ, संदर्भपूस्तकें, आलोचनात्मक ग्रंथ।

अनुसंधान संबंधी जालपत्र बतौर- शोधगंगा, भू-जाल, पत्र-पत्रिकाएँ आदि का उपयोग करें।

शोध और समीक्षा

शोध के मूल में मनुष्य की जिज्ञासा का वैज्ञानिकपक्ष हैं। सामान्य लेखन और शोध के जरिए शोध-प्रबंध में वैज्ञानिक प्रणाली का अंतर है। शोध में हम वैज्ञानिक प्रणाली से अपने निष्कर्ष निकालते हैं और उन्हीं के आधार पर अपना मत निर्धारण करते हैं। शोध का अर्थ है सत्य की प्रमाणिक स्थापना, शोधकर्ता का अनिवार्य होता है। वह सत्य स्थिति का हो सकता हैं या सिद्धांत का शोध सदैव होते रहते हैं, पर एक स्वतंत्र अनुशासन के रुप में शोध की परिकल्पना इसी युग की हैं, आधुनिक हैं और उसका तंत्र तथा प्रविधि दोनों आधुनिक युग से ही विज्ञानों तथा समाज-शास्त्रों के नव विकसित क्षेत्रों से साहित्य में आए हैं। इसलिए उसका चरित्र मूलत: वैज्ञानिक है। बदली हुई ज़मीन और प्रयोग विधियाँ की भिन्नता के बावजूद शोध के कथ्यपरक, विश्लेषणात्मक और प्रमाण बहुल चरित्र में कोई अंतर नही आया। वह एक अनुशासन है, जो उसके रूप को बाँधता हैं।

आधुनिक युग में आकर "समीक्षा" को पहली बार ललित साहित्य के परिवार में प्रवेश मिला और उसे एक विचार प्रधान सर्जनात्मक विधा के रूप में स्वीकारा जाने लगा। समीक्षा भी साहित्य की आँख होती है। जैसे हम सभी कभी-कभी एकांत में अपने से मिलते हैं, वैसे ही साहित्य भी अपने से मिलता है, वह अपने को देखने परखने लगता हैं। और अपना रास्ता गंतव्य निर्धारित करता है अर्थात् अपना, अपनी विधाओं, अपनी कृतियों और कृतिकारों का मूल्यांकन करता है। इसी में से समीक्षा का जन्म होता है। समीक्षा साहित्य का आत्मचिंतन, आत्मसाक्षात्कार और आत्मालोचन है। शोध और समीक्षा में एक अंतर यह है कि शोध "तथ्य"अधिकांशत: पारिभाषेय होते हैं और समीक्षा के व्याख्येय पर बात नहीं है कि परिभाषाएँ व्याख्याओं से मुक्त होती हैं या व्याख्याओं में परिभाषाएँ क्रियाशील नहीं रहती, पर शोध और समीक्षा के चरित्र की पहचान इन्हीं आधारों के सहारे होती है। शोध उपलब्ध सामग्री के बीच से गुज़रते और उन्हें जाँचते-परखते हुए प्रासंगिक तथा उपयोगी तथ्यों को पहचानने का कार्य करती हैं।

समीक्षा और शोध में एक अंतर और है। और वह अंतर है, उनकी प्रविधि व प्रक्रिया के विधान का। शोधकर्ता अपना कार्य एक विशिष्ट बिन्दु से प्रारंभ करता है। उसका एक मार्ग होता है, उसका कोई गवेषणात्मक तथ्य होता है और कोई लक्ष्यगत प्राककल्पना रहती है, पर समीक्षा अपनी समस्त व्यवस्था के बावजूद किसी एक बिन्दु से संपूर्णता को देख नहीं सकती।

मसलन, साहित्य के अन्य रूप जीवन में "सत्य" सबको देखें, उसे समग्रता में ही देखती हैं। विचार यह है कि जीवंत सत्य तक "प्राणवान" सत्य होता हैं। उसका अस्तित्व इतना जटिल होता हैं कि किसी एक बिन्दु से उसकी समूची प्राणमय सत्ता को, सत्य को, संपूर्ण व्यक्तित्व को पकड़ पाना संभव ही नहीं होता। यही कारण है कि समीक्षक को कोण बदलना पड़ते हैं। कभी-कभी वह बने-बनाए मार्ग को भी छोड़ता है। दूसरा विचार यह हैंकि शोध विश्लेषण से प्रारंभ होता हैं। पद्धति निगमन-आगमन कुछ भी हो, विश्लेषण उनका मुख्य मार्ग है। समीक्षक के लिए विश्लेषण साधन है।

अंतत: वह साहित्यकार है और आख़िर संश्लेषण करने लगता है। सृजनकर्ता के लिए संश्लेषण अनिवार्य है। अत: सर्वांग पूर्ण साहित्यिक शोध में शोधकर्ता की दृष्टि व्यापक फलक पर होती हुई व्याख्या-विवेचना को स्वीकार करते हुई ही निष्कर्षों पर टिकनी चाहिए।

रूपरेखा की परिभाषा :

ज्ञान की किसी महत्त्वपूर्ण एवं नवीन उपलब्धि या नई व्याख्या की संभावना से सम्पन्न विषय का रूप या रूप की प्राक्कल्पित, तर्कसंगत, संक्षिप्त, व्यवस्थित, आधारभूत एवं सांगोपांग सूत्र-रचना या रेखांकन शोध की रूपरेखा है।

रूपरेखा : निर्माण की प्रक्रिया

रूपरेखा की कोई निश्चित परंपरा या कोई सूत्र नहीं हैं, जिसके आधार पर तुरंत बनाया जा सके। चयनित विषय के स्वरूप, क्षेत्र, सामग्री एवं आयाम के अनुसार रूपरेखा का निर्माण करना चाहिए। सामान्य सूत्र के रूप में रूपरेखा के केवल तीन भाग हो सकते हैं-

(1) विषय की प्रस्तावना या पृष्ठभूमि

(2) मूलविषय का साँगोपाँग स-विस्तार विवेचन, विश्लेषण तुलना (यदि विषय तुलनात्मक हो तो) आदि।

(3) निष्कर्ष एवं उपसंहार (प्रथम, मध्य, और पश्च भाग संदर्भिका)

रूपरेखा की संरचना : रूपरेखा शोध-प्रबंध की योजना का रेखांकन हैं। रूपरेखा के जरिए प्रबंध को आकार प्रदान किया जा सकता हैं। एक अर्थ में रूपरेखा अनुसंधान की पूर्व परिकल्पना है। यह विषय से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। विषय के प्रति दृष्टि, उसकी महत्ता और उससे संभवित निष्कर्षों और उपलब्धियों की स्पष्ट झलक रूपरेखा द्वारा ही प्राप्त होती है।

000

संदर्भ-

1.शोध की दिशा- डॉ. अनार भट्ट, 2.अनुसंधान के विविध आयाम डॉ. शिवम्, 3.अनुसंधान प्रक्रिया – डॉ रामकुमार गुप्त, 4.अनुसंधान के सिद्धांत- डॉ. अनूजा गोपलाणी

(शोध आलेख)

गिलिगडु उपन्यास में वृद्धों की समस्या

शोध लेखक : डॉ. संजय आर पटेल
हिन्दी विभाग

डॉ. संजय आर पटेल
हिन्दी विभाग
आंणद इन्स्टीट्युट ऑफ़ पी.जी. स्टडीज
इन आर्टस, आणंद, गुजरात

आधुनिक हिन्दी साहित्य में महिला लेखिकाओं का विशेष योगदान रहा है। इन महिला लेखिकाओं में मन्नुभंडारी, उषा प्रियंवदा, शिवानी, कृष्णा सोबती, ममता कालिया, अमृता प्रितम, मृदुला गर्ग, चित्रा मुद्गल आदि प्रमुख हैं।

हिन्दी गद्य साहित्य में चित्रा मुद्गल का नाम प्रमुख स्थान पर है। आधुनिक कथा साहित्य में चित्रा मुद्गल ने बहुत चर्चित उपन्यास लिखे हैं। चित्रा मुद्गल ने अपने जीवन में जो अनुभव किया उसे अपने साहित्य में स्थान दिया है। चित्रा मुद्गल ने अपनी रचना में सामाजिक परंपराओं तथा रुढ़ियों पर प्रहार किया है। साथ ही समाज में फैले स्त्री के प्रति, वृद्धों के प्रति अनादर का भाव प्रस्तुत किया है।

चित्रा मुद्गल ने अपने विचार को प्रस्तुत करने के लिए कथा-साहित्य को ही असरकारक माध्यम कहा है।-

"उन्हें कही गहरे अनुभव होने लगा था कि अनवरत प्रश्नाकुलता और क्षुब्ध बेचैनी की गहरी सघन अभिव्यक्ति के लिए कविता अनुकूल माध्यम नहीं है। ... तभी तो 'राम की शक्तिपूजा' लिखनेवाले महाप्राण निराला को 'बिललेसूर बकरिहा' लिखना पड़ा नरेश महेता, नागार्जुन, लघुवीर सहाय, महादेवी वर्मा, बच्चन आदि ने भी समय- समय पर गद्य को अभिव्यक्ति का माध्यम चुना।"

चित्रा मुद्गल ने अपने कथा-साहित्य में चार उपन्यास और आठ कहानी संग्रह लिखे हैं। चित्रा मुद्गल के उपन्यास में 'एक ज़मीन अपनी', 'गिलिगडु', 'आँवा' और 'पोस्ट बॉक्स नं. 2030 नाला सोपारा' लिखा है। कहानी संग्रह में जहर ठहरा हुआ, लाक्षागृह, अपनी वापसी, इस हमाम में, ग्यारह लंबी कहानियाँ, चर्चित कहानियाँ दिहाइना एक अदर शार्ट स्टोरीज, मामला आगे बढ़ेगा अभी आदि।

चित्राजी का 'गिलिगडु' तीसरा उपन्यास है, जो सन् 2002 में प्रकाशित हुआ था यह उपन्यास तेरह दिन की कहानी है। इस उपन्यास में दो वृद्धों की कहानी है। इस उपन्यास में प्रमुख पात्र बाबू जसवंत सिंह और कर्नल स्वामी है। इस उपन्यास में बाबू जसवंत सिह कानपुर के सेवानिवृत इंजीनियर थे। अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद अकेले हो जाते हैं। वे अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए अपने बेटे नरेन्द्र के पास दिल्ली जाकर रहते हैं। पर बेटे नरेन्द्र का दुव्यवहार देखकर जसवंतसिह दु:खी होते है। नरेन्द्र और उनकी पत्नी जसवंतसिह के प्रति कोई आदर, प्रेम नहीं है। पर जसवंत सिह की वसीयत और कुछ गहनों की लालच में नरेन्द्र जसवंत सिह को अपने पास रखते हैं। जसवंत सिह नरेन्द्र के दुर्व्यवहार के लिए नरेन्द्र को नहीं दोष देते वे

कहते हैं कि- "बुद्धि-विकास की आड़ में बड़ी ख़ूबसूरती से... संवेदना-न्यून किया जा रहा है। इतना कि बच्चे कभी परिवार में लौट ही न सकें न कभी अपना परिवार गढ़ सकें।"

नरेन्द्र और उसकी पत्नी जसवंतसिह को अपमानित करने का कोई भी मौका नहीं चूकते थे। जसवंतसिंह अपने बेटे के घर में भी बेगाना होकर रहते थे। उन्हे अपने भी बेघर की तरह लग रहा था। उनके साथ पशु जैसा व्यवहार किया जाता था। जसवंतसिह को अपने पास रखने की नरेन्द्र को मजबूरी थी। उसके साथ कुत्ते जैसा व्यवहार करते थे। जसवंतसिह कहते हैं कि-

"इस घर में एक नहीं दो कुत्ते हैं- एक टोमी और दूसरा अवकाश प्राप्त सिविल इंजीनियर जसवंत सिंह। टोमी की स्थिति निसंदेह उसकी बनिरबन मजबूरी है। उसकी इच्छा अनिच्छा की परवाह में बिछा रहता था पूरा घर उनके लिए किसी को यहाँ रहना ज़रूरी नहीं लगता। टोमी अच्छी नस्ल का कुत्ता था। सोसायटी में उनके घर का रुतबा बढ़ाता है। उसके चलते उनका रुतबा कलंकित होता है।"

एक दिन जसवंत सिंह की मुलाकात कर्नल स्वामी से हो जाती है। जसवंत सिंह कर्नल स्वामी को अपनी स्थिति के बारे में बताते हैं। जसवंत सिंह को नए शहर में एक अच्छा मित्र मिल जाता है, जो उन्हें दिल्ली घुमाता है। जूते खरीदकर देता है रेस्त्राँ में डिनर, शराब, बहुत ख़ुश रखता है।

जसवंत सिह ऐसा मानते हैं कि कर्नल स्वामी के घर में कर्नल स्वामी का मान, सम्मान आदर होता है। उसकी मरज़ी के बिना पत्ता भी नहीं हिलता होगा। तेरह दिन हो जाने के बाद भी कर्नल स्वामी जसवंत सिंह को मिलने नहीं आए थे। जसवंत सिंह को बहुत चिन्ता होती थी और वे कर्नल स्वामी को मिलने के लिए उनके घर पर पहुँच जाते हैं। जब वे कर्नल स्वामी के घर पर जाते हैं तो उन्हें पता चलता है कि तेरह दिन पहले सीढ़ियों से फिसल जाने से दिल का दौरा पड़ जाता है। और उनकी मृत्यु हो जाती है। पड़ोसियों से पूछताछ से पता चलता है कि कर्नल स्वामी का पुत्र श्री नारायरण स्वामी उनके साथ जानवर जैसा व्यवहार करता था। कई बार पैसों की लालच में आकर उनकी पिटाई भी करता था। अपने पोते को मिलने के लिए भी होस्टल छुपकर जाना पड़ता था। कर्नल स्वामी के पड़ोसी मिसिस श्रीवास्तव कहती है- "ऐसी कसाई औलादों से तो आदमी निपूता भला। इमें इस बात का कोई गम नहीं कि हमारी कोई औलाद नहीं।"

जब यह बात जसवंत सिंह को पता चलती है तो उसका मन भी बैठ जाता है। जसवंत सिंह समझते है कि कर्नल स्वामी की स्थिति उससे भी बुरी थी। जसवंत सिह कानपुर लौट जाने का विचार करते हैं। और अपनी वसीयत भी सनगुनिया के बेटे के नाम कर देते हैं। अग्निदाह का अधिकार भी वे नरेन्द्र को न देकर सनगुनिया के बेटे अभिषेक के नाम कर देते हैं।

चित्राजी का यह उपन्यास समाज में बदलते जीवन मूल्यों को, किस प्रकार नई पीढ़ी अपने बुज़ुर्गों के साथ प्रेम, आदर, सहानुभूति के बदले पशु जैसा व्यवहार करते हैं। इस उपन्यास में चित्राजी ने वृद्धों की स्थिति को केन्द्र में रखा है।

आज हमारे समाज की यह सब से बड़ी समस्या है कि जो जीवन भर काम करते हुए अपने परिवार के पोषण करने में कोई कसर नहीं रखता वह जब वृद्ध हो जाने पर उसके साथ पशु जैसा व्यवहार किया जाता है। वृद्ध वह वटवृक्ष के समान है जब वह हराभरा होता है तो छाया देता है। और सूख जाने पर उसकी लकड़ी भी हमारे काम आती है। आज के नए युग में वृद्धों के लिए नई दृष्टिकोण की ज़रूरत है। वृद्धों का मान, आदर साथ-साथ सहानुभूति देना आवश्यक है।

"बूढ़ों के साथ लोग कहाँ तक वफा करें बूढ़ों को भी मौत न आए तो क्या करें।"

000

संदर्भ - 1.चित्रा मुद्गल का कथा साहित्य, डॉ. कल्पना पाटील पृ-23, 2.चित्रा मुद्गल के कथासाहित्य का अनुशीलन है। गोरक्ष थोरात, पृ-24, 3.वही, पृ-24, 4.वही, पृ-25,

नई पुस्तक

(आलेख संग्रह)

लाजवाब शख्सियतें : कुछ लाइक्स

लेखक : अजय बोकिल

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

वरिष्ठ पत्रकार अजय बोकिल की यह नयी पुस्तक है जो शिवना प्रकाशन से प्रकाशित होकर आयी है। इससे पहले उनकी एक पुस्तक कोरोना काल की दंश कथाएँ भी शिवना प्रकाशन से प्रकाशित हो चुकी है। इस पुस्तक में अजय बोकिल ने निबंध तथा रेखाचित्र शैली का प्रयोग करते हुए संस्मरणात्मक आलेख लिखे हैं, जो अनूठी भाषा शैली के कारण बहुत पठनीय बन पड़े हैं। वे पुस्तक की भूमिका में लिखते हैं- 'इसमें विभिन्न सेलेब्रिटीज, व्यक्तियों, चरित्रों और स्मारकों पर समय समय पर लिखे गए और प्रकाशित मेरे लेखों का संकलन है। निश्चय ही किसी व्यक्ति विशेष अथवा चरित्रों पर गहन शोध के साथ लिखे गए आलेख, जीवनी आदि से इनकी तुलना नहीं हो सकती। लेकिन एक आम पाठक और प्रेक्षक की नजर से ऐतिहासिक घटनाक्रम को देखना, उसे महसूस करना तथा अपने शब्दों में अभिव्यक्त करने का अपना अलग महत्व है।'

000

(शोध आलेख)

प्रेमचंद के साहित्य में नारी जीवन के विविध पक्षों का विश्लेषण

शोध लेखक : डॉ. रमेश कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी)

डॉ. रमेश कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी)
चौधरी मनीराम गोदारा राजकीय महिला महाविद्यालय, भोडिया खेड़ा
(फतेहाबाद) हरियाणा - 125050
ईमेल - drrkm007@gmail.com

हमारी संस्कृति में विवाह एक ऐसा पवित्र बंधन है, जो स्त्री पुरुष को प्रणय के सूत्र में आबद्ध करता है। प्रारंभ में कन्याओं को स्वयंवर के माध्यम से अपना वर चुनने की स्वतंत्रता थी। बाद में माता-पिता की स्वीकृति को अनिवार्य कर दिया गया। विवाह आधुनिक समय में माता-पिता की स्वीकृति-अस्वीकृति, दहेज़, आदि असामंजस्य के कारण सफल ही नहीं हो पा रहे हैं। पुरुष की चरित्रहीनता, शंकालु दृष्टि, विलासिता, पारिवारिक कलह अथवा नारी की लिप्सा, अकर्मण्यता, स्वार्थ आदि कारण विवाह को दुखद बनाते हैं।

प्रेमचंद जी दांपत्य जीवन की सफलता, सरसता, और प्रसन्नता के लिए पुरुष और स्त्री दोनों में सद्गुणों और संमजस्य का होना अनिवार्य मानते थे, परंतु वे नारी को ही उसके लिए अधिक उत्तरदायी मानते हैं। उनके अनुसार त्याग, क्षमा, पतिव्रता आदि गुणों से दांपत्य जीवन सुखद सफल और मंगलमय बनता है। 'सती' कहानी की पात्र रूपवती पुलिया कुरूप व काले कल्लू के प्रति पूर्ण समर्पित रहती है। "जब तक वह घर नहीं आता मछली की भाँति वह तड़पती रहती है। गाँव में कितने ही युवक हैं जो पुलिया से छेड़छाड़ करते रहते हैं पर उस युवती की दृष्टि में कुरूप कलुआ संसार भर के आदमियों से अच्छा है।"1

कल्लू अपनी पत्नी को चचेरे भाई राजा द्वारा दी गई चुनरी पर पुलिया के सच बताने के बावजूद संदेह करता है। वह चरस और ताड़ी के सेवन के कारण असमय मृत्यु को प्राप्त होता है। पुलिया पर वैधव्य का पहाड़-सा टूट पड़ता है। राजा के प्रणयानुरोध को ठुकराती हुई वह कहती है- "तुम्हारे लिए और दुनिया के लिए वह नहीं है, मेरे लिए अब भी वैसे ही जीते जागते हैं। मैं अब भी उन्हें वैसे ही बैठे देखती हूँ। पहले तो देह का अंतर था अब तो वह मुझे और भी नगीच हो गए हैं।"2

पुलिया तथाकथित निम्न जाति के महिलाओं में भी शील और सदाचार का आदर्श स्थापित करती है। 'अहिंसा परमो धर्म:' कहानी की नायिका इंदिरा को अपने सतीत्व की रक्षा के लिए मुसलमानों से संघर्ष करना पड़ता है। काजी द्वारा कमरे में बंद किए जाने और धर्म परिवर्तन कर एक मुसलमान युवक से निकाह करने के लिए जबरदस्ती करने पर वह उनके धर्म और कर्म की भर्त्सना करती है- "क्या तुम्हें खुदा ने यही सिखाया है कि परायी बहू बेटियों को जबरदस्ती घर में बंद करके उनकी आबरू बिगड़ो?"3

क्षुब्ध काजी द्वारा मार डालने की धमकी देने पर वह अत्यंत दृढ़ता से कहती है- "आबरू के सामने जान की कोई हकीकत नहीं है। तुम मेरी जान ले सकते हो पर मेरी आबरू नहीं ले सकते।"4

'घासवाली' कहानी की महावीर की पत्नी पुलिया महावीर के प्रेम के प्रति पूर्णतया आश्वस्त है - "मेरे आदमी के लिए संसार में जो कुछ हूँ मैं हूँ। वह किसी दूसरी मेहरिया की और आँख उठाकर भी नहीं देखता। संयोग की बात है कि मैं तनिक सुंदर हूँ लेकिन मैं कालीकलूटी भी होती तब भी वह मुझे इसी तरह रखता।"5

प्रेमचंद जी ने ऐसी नारियों का अंकन किया है, जो विषम परिस्थितियों में भी पति के प्रति अपनी निष्ठा, विश्वास और प्रेम को अपना एकमात्र अवलंब बनाए रखती हैं। ऐसी नारियों को प्रेमचंद जी आदर्श प्रेम की प्रतिमाएँ मानते हैं। 'माँ' कहानी की करुणा से उसका पति आदित्य मरणासन्न स्थिति में जब अपने जीवन के विषय में पूछता है तब वह कहती है- "तुम्हारा जीवन देवताओं का सा जीवन था। निस्वार्थ, निर्लिप्त और आदर्श। अगर तुम मोह-माया में फँसे होते कदाचित मेरे मन को अधिक संतोष होता लेकिन मेरी आत्मा को वह गर्व और उल्लास ना होता, जो इस समय हो रहा है। मैं अगर किसी को बड़े से बड़ा आशीर्वाद दे सकती हूँ तो वही होगा कि उसका जीवन तुम्हारे जैसा हो।"6

'उन्माद' कहानी की बागेश्वरी विदेश में अपने पति द्वारा ईसाई धर्म ग्रहण करके जेनी नामक मेम से विवाह कर लेने पर अपने पति मनहर के वापस लौटने पर उसके वह पहले की अपेक्षा अधिक स्नेही व अनुरक्त लगता है। अपनी सौत जेनी द्वारा उपचार की बात सुनकर वह कहती है- "मेरे लिए इसका बीमार रहना इसके स्वस्थ रहने से कहीं अच्छा है। तब वह अपनी आत्मा को भूल गए थे, अब उसे पा गए। मेरे विचार में तब बीमार थे अब स्वस्थ हैं।"7

'उन्माद' में जेनी मनहर की हत्या करना चाहती है तो बागेश्वरी बीच में आ जाती है। उसके प्रेम के कारण ही मनहर स्वयं आत्महत्या करके उसे बचा लेता है। 'शाप' कहानी में विद्याधरी यदि सती है तो प्रियंवदा एक सफल आदर्श पत्नी है। वह शाप के कारण सिंह बने पति की सेवा पूरी तरह तन्मयता से करती है तथा प्रायश्चित करके उन्हें पुन: शापमुक्त करने में सफल रहती है। वह कहती है- "अब मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि अपने स्वामी के चरणों में पड़ी रहूँ और जब भी संसार से प्रस्थान करने का समय आए तो मेरा मस्तक उनके चरणों पर हो, अंतिम जो शब्द मेरे मुँह से निकले, वह यही कि ईश्वर दूसरे जन्म में भी इनकी चेरी बनाना।"8

'स्वर्ग की देवी' कहानी की लीला वेश्यागामी पति को भी गृहस्थी की ओर मोड़ देती है। उसका पति अंत में कहता है- "वह स्वर्ग की देवी है और केवल मुझ जैसे दुर्बल प्राणी की रक्षा करने के लिए भेजी गई है।"9

"शंखनाद" में एक अकर्मण्य पति गुमान को उसकी पत्नी कर्म की ओर अग्रसर करती है। मिठाई के लिए रोते बच्चे को पिटते देख गुमान को अपने ऊपर ग्लानि आती है - "तुमने आज मुझे सदा के लिए इस तरह जगा दिया, मानो मेरे कानों में शंखनाद कर मुझे कर्म-पथ में प्रवेश का उपदेश दिया हो।"10

इसके विपरीत 'नरक का मार्ग' कहानी की नायिका वृद्ध, शक्की, पौरुषविहीन पति से ऐसा प्रेम न पाकर-"जिस दिल के तार सदैव बजाते रहे, जिसका नशा नित्य छाए रहे।"11 उसे पति रूप में स्वीकार नहीं कर पाती तथा उसके रोगी होकर मर जाने पर भी दुखी नहीं रहती। प्रेम की खोज में घर से निकलने पर वह एक कुटनी द्वारा वेश्यालय पहुँचा दी जाती है, किंतु उस स्थिति में भी वह अधिक संतुष्ट नज़र आती है -"इस अधम दशा को भी मैं उसे दशा से न बदलूँगी जिससे निकाल कर आई हूँ।"12

प्रेमचंद जी विवाह को एक परम, पवित्र दृढ़ स्थायी और अविच्छेद्य संबंध मानते थे। तलाक को हुए जघन्य अपराध मानते थे। उन्होंने इसके कारण अनेक दंपतियों के दाम्पत्य सुख को नष्ट होते देखा था। अत: अब वह इसके घोर विरोधी थे। चाहे पति पत्नी का त्याग करे या पत्नी उसे छोड़कर चली जाए, परन्तु नारी को ही अधिक लांछन, तिरस्कार व अपमान भोगना पड़ता है। पुरुष-प्रधान समाज न केवल पुरुष को नारी से श्रेष्ठ मानकर उसके लिए नैतिकता के मापदंड भी उसके हल्के और अपरिवर्तनीय रखता है, बल्कि नारी के छोटे से छोटे अपराध के लिए भी कठोर दंड-विधान कर देता है।

प्रेमचंद ने विवाहित नारी के आदर्श और विकृत दोनों को ही रूपों की परिकल्पना की है। प्रेमचंद जी के अनुसार अभाव, कष्ट, निर्धनता में पति के प्रति सत्यनिष्ठा सेवा, भक्ति, त्याग, धैर्य आदि को बनाए रखने वाली नारियाँ आदर्श और सफलतम प्रति जीवन जीती हैं। वे पतियों की रक्षक रहकर उनकोसन्मार्ग पर लाने वाली होती हैं। इसके विपरीत विषम दांपत्य जीवन जीने वालों वाली नारियों में कुछ तो पुरुष की स्वेच्छाचारिता, पाश्विकता, परनारीगमन, वेश्यगामी आचरण के कारण कुछ अपनीअविद्या, व्यक्तित्वहीनता, स्वाभिमानभाव, कुंठा के कारण दुखी रहती है। लेखक की दृष्टि में प्रथम कोटि की विवाहिताएँ ही अधिक सुखी जीवन व्यतीत करती हैं। अत: प्रेमचंद जी ने अपने साहित्य में विवाहित नारी के विभिन्न रूपों का पूर्ण सफलता के साथ अंकन किया है। सामाजिक ताना-बाना भारतीय संस्कृति के अनुरूप रखते हुए नारी पुरुष को आगाह किया है। जीवन को सुखमय बनाने का यत्न किया है। वैवाहिक संस्कार की सार्थकता बताने में प्रेमचंद जी पूर्णतया सफल रहे हैं।

000

सन्दर्भ - 1.प्रेमचंद, मानसरोवर भाग-4 पृ.124, 2 प्रेमचंद, मानसरोवर भाग-4 पृ.130, 3. प्रेमचंद, मानसरोवर भाग-5 पृ.80, 4. प्रेमचंद, मानसरोवर भाग-5 पृ.81, 5 . प्रेमचंद, मानसरोवर भाग-1 पृ.252, 6. प्रेमचंद, मानसरोवर भाग-1 पृ.42-43, 7. प्रेमचंद, मानसरोवर भाग-2 पृ.114, 8. प्रेमचंद, मानसरोवर भाग-6 पृ.69, 9. प्रेमचंद, मानसरोवर भाग-3 पृ.73, 10. प्रेमचंद, मानसरोवर भाग-7 पृ.145, 11. प्रेमचंद, मानसरोवर भाग-3 पृ.28. 12. प्रेमचंद, मानसरोवर भाग-3 पृ.30

(शोध आलेख)

डूंगरी गरासिया समुदाय के सांस्कृतिक उत्सव

शोध लेखक : प्रो. डॉ. परेश के. पटेल, सहायक प्रोफेसर समाजशास्त्र विभाग

प्रो. डॉ. परेश के. पटेल
सहायक प्रोफेसर
समाजशास्त्र विभाग
शासकीय कला एवं वाणिज्य
महाविद्यालय, जादर
ता-इडर, जि-साबरकांठा, गुजरात

गुजरात की जनजातियों में सबसे बड़ी आबादी भीलों की है, जो कुल आदिवासी आबादी का लगभग आधा है। भीलों की कई उपजातियाँ हैं, जिनमें मुख्य रूप से भील गरासिया, भिलाला, ढोली भील आदि हैं। राजपूत राजाओं ने युवा भीलों को अपनी सेना में भर्ती किया और अक्सर उनकी सहायता करते थे। और जैसे-जैसे समय बीतता गया, उनका उनसे विवाह का रिश्ता भी जुड़ गया। इस मिश्रित रिश्ते के परिणामस्वरूप जो लोग पैदा हुए, उन्हें गुजरात में भील गरासिया या भील के नाम से जाना जाता है।

संस्कृति - (1) रॉबर्ट बास्टर्ड – "संस्कृति में हमारे सोचने के तरीके, हमारे कार्य करने के तरीके और समाज के सदस्य के रूप में हम जो कुछ भी हैं, सभी जटिलताएँ शामिल हैं।"

(2) ब्रूम और सेल्ज़निक - "संस्कृति में प्रतीकात्मक अनुभवों द्वारा निर्मित और निरंतरता में सक्षम हर चीज़ शामिल है।"

चूँकि आदिवासी लोग त्योहारों के शौकीन होते हैं, विभिन्न त्योहार दूर-दराज के रहने वाले नौकरशाहों और पेशेवरों को खुशी और उल्लास के साथ अपने मूल स्थानों पर आकर्षित करते हैं।

सांस्कृतिक उत्सव-

उत्तरायण - उत्तरायण के लिए उत्तर गुजरात की आदिवासी बोली में 'उत्तरायण' शब्द का प्रयोग किया जाता है। हिंदुओं में उत्तरायण 14 जनवरी को मनाया जाता है। जबकि आदिवासियों का पारंपरिक उत्तरायण पौष सूद से पहले शुक्रवार को मनाया जाता है। पहले के समय में, उत्तरायण मनाया जाता था पूरे आदिवासी पंथ में एक ही दिन मनाया जाता है। उत्तरायण समारोह की शुरुआत देवचकली आदिवासियों का पवित्र शगुन पक्षी है। आदिवासी युवा पौष सूद शुक्रवार को आधी रात से सूर्योदय से पहले तक देवचकली पकड़ते हैं। उतरने से पहले कुछ दिनों के दौरान, की आवाजाही होती है देवचकाली, घोंसला बनाना आदि का ध्यान रखा जाता है। ताकि घोंसले में मौजूद देवचकली रात में उपलब्ध हो सके। अन्यथा, जब वे उड़ते-उड़ते थक जाते हैं तो गाँव के युवा उन्हें पकड़ लेते हैं। वे सबसे पहले देवचकली को पकड़ कर अपने घर ले जाते हैं। ग्राम प्रधान या सम्मानित नेता। वहाँ उन्हें गोल घी खिलाया जाता है। वे अलग-अलग पलिया में घर-घर जाकर दर्शन करते हैं। जब वे घर-घर जाते हैं, तो दोपहर 12 बजे, गाँव के बुज़ुर्ग मुखी या नेता के घर पर इकट्ठा होते हैं इसके बाद गाँव के बुज़ुर्ग और युवा गाँव के जपे या होली चौक पर पहुँचते हैं। गरसिया ओनी परंपरा के अनुसार, नेता देव चकली को छोड़ते हैं और सभी की निगाहें इस बात पर होती हैं कि मुक्त की गई देवचकली कहाँ बैठती है। आदिवासी आने वाले वर्ष में उत्तरायण का अनुमान लगाते हैं। ज़्यादातर कृषि, पशुपालन और मजदूरी पर निर्भर रहने वाले ये लोग बारिश पर काफी निर्भर रहते हैं। बारिश अच्छी होती है। अच्छी फसल होने पर पशुओं के लिए चारा भी मिल सकता है और कृषि मजदूरी भी हो सकती है। हो गया। यदि देवचकाली हरे पेड़ पर बैठती है, तो यह एक अच्छा वर्ष होगा और यदि यह सूखे स्थान पर बैठती है, तो यह एक बुरा वर्ष (कम वर्षा) होगा।

दोपहर में आदिवासी अपना समय हर्ष और उल्लास के प्रदर्शन में बिताते हैं। इस समय आदिवासी युवा हारजीत के साथ डॉट (चमड़े से बनी गेंद) खेलते हैं। इससे खेल भावना, साहस, बहादुरी, टीम भावना, नेतृत्व शक्ति का विकास होता है। इस प्रकार डुंगरी गरसियाओ उथैयन का त्यौहार हर्ष और उल्लास से भरा हुआ मनाया जाता है।

नवरात्रि - शक्ति की पूजा जनजातियों के बीच भी श्रद्धा और भक्ति के साथ की जाती रही है। और अब इसमें अन्य समाजों की तरह बदलाव भी आने लगा है। आदिवासी डुंगरी गरासियाओं के बीच पारंपरिक शैली में मनाए जाने वाले नवरात्रि के त्योहार को 'नवरच्य' के नाम से जाना जाता है। आदिवासी नवरात्रि मुख्य नवरात्रि से भिन्न होती है और इसके अनुष्ठान और आचरण भी अद्वितीय और असाधारण होते हैं। आदिवासियों द्वारा शिवलिंग के आकार के पत्थर को पालियो के रूप में पूजा जाता है। यह माना जा सकता है कि पालियो शंकर का प्रतीक है और संभवत: भगवान मूर्ति के प्रतीक के रूप में स्थापित किया गया होगा।

असो सूद अगियारस या बारस, जिस दिन से नवरात्रि शुरू होती है, उसके भक्त नौ दिनों तक उपवास करते हैं। नवरात्रि के आठवें दिन को नाना "रतिज्का" के नाम से जाना जाता है। नौवें दिन को "मोटो रतिजको" के नाम से जाना जाता है। इस दिन दूर-दूर से ग्रामीण या दामाद भी नवरात्रि का आनंद लेने आते हैं। इस दिन बीमारियों से पीड़ित, राक्षसी शक्ति से पीड़ित, भूत-प्रेत, संतानहीन लोग आते हैं। ग़रीब लोग अपने इलाज के लिए आते हैं। भीड़ बढ़ जाती है। मोटो रतिज्का की रात के बाद अनुष्ठानों के साथ नवरात्रि का समापन होता है। इस प्रकार, आदिवासियों की पारंपरिक नवरात्रि में कुछ अद्वितीय विशिष्ट अनुष्ठान होते हैं। इसे मुखी धरा से अलग तरीके से मनाया जाता है। यहाँ तक कि पारंपरिक नवरात्रि में भी आस्था, विश्वास, सहयोग, संगठन आदि का महत्त्व होता है।

होली - होली मनाने के लिए डुंगरी गरासिया में फागण सुद एकम होली की स्थापना की जाती है। फागन सुद एकम की रात को, बुज़ुर्ग युवाओं के साथ इकट्ठा होते हैं और होली जलाने वाले स्थान पर जाते हैं। जहाँ अगले वर्षों की तरह पाँच छाणों को एक ही स्थान पर रखा जाता है। होली की इस रस्म को आदिवासी डूंगरी गरसिया के नाम से जानते हैं थम्बारोपायो के रूप में। उसके बाद वे ढोल बजाकर और नृत्य करके होली के त्योहार का आनंद लेते हैं। दिवाली के बाद, जहाँ गाँव या परिवार में किसी की मृत्यु हो जाती है, रिश्तेदारों को शोक मनाया जाता है और सांत्वना दी जाती है। फागन सुद एक से चौदह तक खेला जाता है, और में कुछ समूहों में, कुछ पहाड़ियों में, निवास के अनुसार अलग-अलग ढोल बजाए जाते हैं। इस अवसर पर कर्मचारी भी घर आते हैं। जिन युवाओं की शादी होती है वे होली के दिन व्रत रखते हैं। और पूनम की रात को होली जलाई जाती है। साथ ही होली के गीत भी गाए जाते हैं।

आमतौर पर होली जलाने का अधिकार चावल लाने वाले मुखी या ग्राम प्रधान को होता है, लेकिन कभी-कभी दूसरों को भी यह अधिकार दे दिया जाता है, उदाहरण के लिए, यदि कोई बेटा या बेटी है जो अवतरित नहीं है, तो ऐसी मान्यता है कि होली जलाने से पवित्र होली में उनका दु:ख दूर हो जाएगा, लेकिन अवसर मिला है। अगले दिन धुतेती की सुबह से ही ढोल बजाना शुरू हो जाता है। आदिवासियों में रंग और गुलाल से ज़्यादा महत्त्व अनुष्ठान का है। होली के बाद गेर खेलने की प्रथा पाँचवें दिन तक जारी रहती है और नृत्य, मौज-मस्ती और उल्लास को बरकरार रखने के लिए डूंगरी गरासिया के आर्थिक रूप से संपन्न लोग पूरे गाँव का स्वागत करते हैं और गेर खेलते हैं। इस प्रकार डूंगरी गरासिया का यह त्यौहार बड़े हर्ष और उल्लास के साथ मनाया जाता है।

दिवाली - दिवाली का त्योहार आदिवासी डुंगरी गरसियाओं के बीच पारंपरिक तरीके से मनाया जाता है। आदिवासी लोक संस्कृति में, नवरात्रि के बाद "नवा ददाओ" को इस दिवाली और फिर अरामबातु नावू पर्व के रूप में मनाया जाता है। इसलिए, धनतेरस से दिवाली तक, दीपक जलाए जाते हैं घर का आँगन। धनतेरस की पूजा शाम को किसी बक्से या तिजोरी पर की जाती है। दीपक जलाकर पूजा की जाती है। पारंपरिक रूप से गाय या बकरियों की भी धन के रूप में पूजा की जाती है। डूंगरी गरसिया के दिवाली त्योहार पर मेरैया का अधिक महत्त्व है। पारंपरिक समय में गाँव के लोग इकट्ठा होकर मुखिया के घर जाते हैं और सबसे पहले मुखिया के घर पर मेरैया काटते हैं। और सुबह-सुबह गाँव के लोग और जानवर काटते हैं चिल्लाकर रोशनी दिखाई। और गाँव वाले ख़ुश होकर बच्चों को पैसे देते हैं। और दीपक में तेल भी देते हैं। और पूरे गाँव में घूमने के बाद दीपक मारिया को नदी में प्रवाहित करते हैं और स्नान कराते हैं।

डुंगरी गरसियाओं में आदिवासी भाई स्नान अनुष्ठान और रामजी की पूजा के बाद मवेशियों के सींगों को रंगते हैं। जानवरों के पेट पर पेंट के निशान लगाए जाते हैं। उन्हें सजाया जाता है। घर में अच्छा प्रसाद बनाकर श्रीफल उठाते हैं और देवी की पूजा करते हैं। 12 बजे वे सालमुबारक और मवेशियों को छोड़ने के लिए घर-घर निकलते हैं।

आदिवासी दोपहर तक का समय आनंद और उल्लास के साथ मनवर में मवेशियों को दौड़ाते और खेलते हुए बिताते हैं। डुंगरी गरासिया भी मुख्य धारा के समाजों की तरह रोशनी और नए साल के त्योहार के रूप में मनाए जाने वाले दिवाली के त्योहार को भी उसी भावना से मनाते हैं। गले मिलने से एकता और आत्मीयता के गुण सीखे जाते हैं।

इस प्रकार, डूंगरी गरासिया आदिवासी समुदाय के सांस्कृतिक त्योहार होली, उत्तरायण, दिवाली और नवरात्रि हैं। इनमें से, दूसरी शिवरात्रि और जन्माष्टमी भी आस्था और भक्ति के साथ मनाई जाती है। शिवरात्रि पर, वे उपवास भी करते हैं और धार्मिक मंदिरों के दर्शन करते हैं। जन्माष्टमी के दिन भजन कीर्तन और कृष्ण जन्मोत्सव भी मनाया जाता है। इस प्रकार इस समुदाय के आदिवासी बड़े हर्ष और उल्लास के साथ त्योहारों का आनंद लेते हैं।

000

सन्दर्भ - (1) योगेश अटल - "आदिवासी भारत", (2) पण्डार, सुभाष - "डूंगरी गरासिया जाति, (3) शेलत भारतीबेन - "आदिम नस्ल संस्कृतियाँ", (4) पटेल भगवानदास - "आदिवासी जनपद और शिष्ट महाकाव्य में महिलाएँ"

(शोध आलेख)

कमलेश्वर की कहानियों में सामाजिक चेतना

शोध लेखक : डॉ. कमलेशकुमार बालूभाई पटेल
आर्ट्स कॉलेज बामणा

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में कमलेश्वर प्रमुख कहानीकार एवं कथाकार माने जाते हैं। कमलेश्वर की स्वतंत्रता की संधि स्थल के प्रमुख कथाकारों में अपनी सक्रिय एवं सार्थक उपस्थिति दर्ज है। स्वतंत्रता संग्राम में भारतीय क्रांतिकारियों के साथ रहकर अपनी सक्रिय एवं सार्थक उपस्थिति, सहभागिता रखने वाले एवं उन समस्त गतिविधियों में सम्मिलित रहकर देश प्रेम समाज सेवा आदि के पुनीत यज्ञ में आहुति देने वाले बहुत कम साहित्यकार होंगे। उन साहित्यकारों में से एक हैं- कमलेश्वर। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के समय 1940 से 1950 के दशक के मध्य राजनीतिक, सामाजिक एवं साहित्यिक क्षेत्र में अनेक परिवर्तन स्पष्ट रूप से देखने को मिलते हैं। इस समय हिन्दी कहानी साहित्य में आमूलचूल परिवर्तन देखने को मिलता है। अब कहानी केवल मनोरंजन का साधन न रहकर सामाजिक सन्देश, आम आदमी के दु:ख-दर्द, पीड़ा, हताशा, कुंठा आदि को प्रकट कराती है। अब तक यथार्थ जीवन के साथ काल्पनिक दुनिया की कहानियों को तरजीह दी जाती थी। 1940 के दशक के बाद हिन्दी कहानी साहित्य में 'नई कहानी' का जन्म हुआ। इस नई कहानी के प्रमुख कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश और एक मित्र थे दुष्यंत कुमार आदि थे।

'राजा निरबंसिया' कहानी से हिन्दी कथा साहित्य में अपनी पहचान बनाने वाले कथाकार कमलेश्वर ने 'कितने पाकिस्तान' जैसे बहुचर्चित उपन्यास लिखने तक और उसके बाद भी ज़िंदगी की अंतिम साँझ तक रचनारत रहने के बीच जीवन के अनेक उतार चढ़ाव देखे थे। उत्तरप्रदेश के एक छोटे से कस्बे मैनपुरी से निकल कर हिन्दी साहित्य की उर्वर भूमि इलाहाबाद, दिल्ली, मायानगरी मुंबई का सफ़र और पुन: दिल्ली की वापसी के बीच कमलेश्वर अपनी रचनाओं में लगातार पीड़ित और शोषित मानवता के पक्ष में संघर्ष करते दिखाई पड़ते हैं। वंचितों और शोषितों को अपनी आवाज़ देने का कमलेश्वर का यह प्रयास उनके मुंबई प्रवास के दौरान 'परिक्रमा' कार्यक्रम के माध्यम से और अधिक मुखर हो गया था। इस कार्यक्रम ने कमलेश्वर की लोकप्रियता को और बढ़ा दिया था। भारत का वह आम आदमी जिसके लिए दिन की शुरुआत रात की रोटी की व्यवस्था करने के लिए योजना बनाते हुए होती है। जिसका साहित्य और साहित्यकारों से कोई लेना-देना नहीं, उनकी समस्याओं को उठाकर कमलेश्वर ने अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता का परिचय दिया। आचार्य हजारी प्रसाद ने लिखा है की "लिखने का कार्य सामाजिक उत्तरदायित्य का कर्तव्य है। लेखक के विचारों की अच्छाई या बुराई समाज की अच्छाई या बुराई को प्रभावित कराती है। जीवन को प्रभावित, आंदोलित और चालित करने वाली जितनी भी संस्थाएँ आधुनिक समाज को ज्ञात हैं जैसे समाचार पत्र, सिनेमा, विश्वविद्यालय, अदालतें, व्यवस्थापिका, सभाएँ सबको लेखक के क्रियात्मक सहयोग की ज़रूरत पड़ती है। सबको लेखन कार्य से पोषण मिलता है। वस्तुत: संसार जितना भी आगे बढ़ता है या पीछे हटता है, उलझता है या ठिठकता है- सबका प्रधान उत्तरदायित्व लेखकों पर। स्पष्ट है की यह उत्तरदायित्व बहुत व्यापक ओर महान है।" कहानीकार एवं कथाकार कमलेश्वर ने इस लेखकीय उत्तरदायित्व का निर्वहन अत्यंत गंभीरता से किया है।

कमलेश्वर की कहानियाँ बदलती हुई भारतीय सामाजिक संरचना और मनोवृतियों का सूक्ष्म अन्वीक्षण है। उनकी कहानियों में स्वाधीन भारत में स्वप्न भंग ओर मोहभंग की स्थिति में एक दूसरे से आगे निकल जाने की होड़ भरी, पाश्चात्य संस्कृति के अन्धानुकरण से स्वयं को आधुनिक सिद्ध करने का प्रयास कराती, फलस्वरूप अपनी संस्कृति ओर परम्पराओं से विमुख होती चली जाती और जीवन की तमाम विसंगतियों को झेलते हुए विघटन का शिकार होती पीढ़ी का यथार्थ चित्रण है। कमलेश्वर ने अपने समाज की विघटनकारी स्थितियों और विसंगतियों को

डॉ. कमलेशकुमार बालूभाई पटेल
आर्ट्स कॉलेज बामणा
त.भिलोड़ा,
जि.अरवल्ली उत्तर गुजरात

बड़ी कुशलता के साथ उभारा है। कमलेश्वर एक समाज-चेता कहानीकार है। तो भला उनकी कहानियाँ समाज की गतिविधियों से कैसे वंचित रह सकती है। कमलेश्वर ने जहाँ समाज में एक तरफ सामाजिक विषमता को देखा है वही दूसरी तरफ उस वैषम्य स्थिति को भोगा भी है। 'कस्बे का आदमी' कहानी में सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति है, तो 'देवी की माँ' कहानी में एक स्त्री के आत्मसम्मान एवं दयनीयता को देखा जा सकता है। वह आत्म सम्मान की कहानी है जिसमें युवाओं को एक आदर्श रूप में दिखाया गया है। 'खोई हुई दिशाएँ' कहानी में महानगरीय जीवन के अकेलेपन, अजनबियता, विवशता, खोखलेपन को चित्रित किया है। इमानदार और दयनीय व्यक्ति का शोषण किस स्तर पर होता है इसको इस कहानी में दिखाया गया है।

कमलेश्वर की कहानियों में माध्यम वर्गीय आम आदमी को अभिव्यक्त किया गया है। आम आदमी को परिभाषित करते हुए कमलेश्वर ने लिखा है कि- "यह आदमी न जैन संशयवाद का शिकार है, न बौद्ध दु:ख वाद का, न हिन्दू भाग्यवाद का वह चाहे अतिशय अकिंचन ओर अति साधारण हो, चाहे नितांत भौतिक आवश्यकताओं का मारा हुआ, पर है वह आदमी।" कमलेश्वर की 'जॉर्ज पंचम की नाक' कहानी में आम आदमी की इज्ज़त से बड़ी है मूर्ति की हिफाजत। प्रस्तुत कहानी में कमलेश्वर ने दिखाया है की भले एक व्यक्ति की नाक कटी पर देश की नाक कटाने से बच गई। स्पष्ट है कि आम आदमी का कोई महत्त्व नहीं। कहानीकार लिखते हैं कि- "हिन्दुस्तान में दो ही तरह के तबके हैं- अमीरों के ओर ग़रीबों के सोचनेवाले और काम करने वालों के। यह अच्छी बात है कि सोच रहा है वह काम नहीं कर रहा है, और जो काम कर रहा है वह सोच नहीं रहा है।"

भारत में सामाजिक, पारिवारिक, सामाजिक बदलाव और विघटन के अनेक प्रमुख कारण है। गरीबी, स्वार्थता, खेती का स्रोत, मूल्यों में गिरावट, भौतिकता, आधुनिकता की अंधी दौड़, एकल परिवार व्यवस्था आदि। डॉ. ज्ञानवती अरोड़ा इनके ह्रास को प्रमुक कारण मानती हैं- आठवें दशक तक आते आते महानगरीय जीवन में परिवार की संस्था नहीं के बराबर है। आधुनिकरण, नगरिकरण और ओधोगिकीकरण मात्र परिवार के आपसी सबंधो में ही परिवर्तन नहीं लाए किन्तु परिवर्तन समाज के सभी सदस्यों के जीवन में प्रतिबिंबित हुआ किन्तु दूसरा तीव्रतम प्रभाव परिवारिक सबंधों पर ही पड़ा लक्षित होता है।

सामाजिक सरोकारों के प्रति गहरी सम्पृक्ति रखनेवाले संवेदनशील कहानीकार कमलेश्वर के लिए कहानी केवल मनोरंजन का साधन मात्र नहीं थी। अपने परिवारों में आनेवाले प्रत्येक बदलाव के प्रति उनकी पैनी निगाह अत्यंत ही सजग थी। यह सजगता उन्हें समाज में आनेवाली मूल्य हीनता और नैतिक पतन से भी रू-ब-रू करवा रही थी। कमलेश्वर ने स्वाधीन भारत में मनुष्य की प्रवृति में आनेवाले बदलाव को गहराई के साथ महसूस किया था। निजी स्वार्थ पूर्ति में लिप्त व्यक्ति के लिए दुसरे की संवेदनाओं ओर पीड़ा के लिए कोई स्थान नहीं होता है। यही स्वार्थ मनुष्य को संवेदनहीन और नैतिकताविहीन बना देता है। व्यक्ति की यह संवेदनशून्यता कमलेश्वर की कहानियों में यथार्थ रूप में अभिव्यक्ति पाती है। कमलेश्वर की 1947 में लिखी गई कहानी 'आधुनिक दिन आधुनिक रातें' है। मैनपुरी के परिवेश में रहते हुए कमलेश्वर स्वाधीनता के समय भारतीय समाज के उच्च वर्ग की मूल्यहीनता और संवेदनहीनता का चित्रण इस कहानी के माध्यम से किया गया है। कहानी की शुरुआत एक शोकसभा से होती है। माज़िद मरहूम की याद में आयोजित शोकसभा में मेजबान गिरधारीलाल का शराब पीकर सभा में पहुँचना और सत्यपाल द्वारा मृतक की याद में दिए जा रहे भाषण में अपनी तारीफों के पुल बाँधना उच्च वर्ग की संवेदनहीनता के शिकार हो जाने का परिचायक है।

समाज निर्माण के साथ साथ निति नियत्ताओ की कमज़ोर नीतियों के चलते कुछ समस्याए भी घर कर जाती है। आधुनिक काल में सबसे अधिक समस्याएँ उभरकर सामने आई हैं। इनमें प्रमुख हैं बेरोज़गारी, भूखमरी, अकाल, गरीबी, आवास, नारी के प्रति दृष्टिकोण आदि। आज़ादी के बाद भारातीय लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था के पश्चात कुछ तो हमें पहले से ही मिली समस्याएँ थीं। कमलेश्वर आधुनिक कालीन उन कहानीकारों में से एक हैं जिन्होंने अपने समय की समाज की समस्याओं को बहुत ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। कमलेश्वर की कहानी 'दूसरे' की सुनीता के माध्यम से शिक्षित बेरोज़गारी की समस्या को उद्घाटित किया है। "जिन दिनों कोई काम उनके हाथ में नहीं होता तब न जाने क्यों घर पराया सा लगता है। इसलिए नहीं की घर में कोई कुछ रहता है, बल्कि इसलिए कि इस संबंध में कोई कुछ नहीं कहता है।"

'राजा निरबंसिया' कहानी के जगपति के माध्यम से एक मनुष्य अपने मन में यह सोच बैठता है की यह बेकारी उसके अस्तित्व को ही समाप्त कर बैठेगी। - उसे लग रहा था की अब वह पंगु हो गया है, बिलकुल लंगड़ा है। एक रेंगता हुआ कीड़ा जिसकी न आँखें हैं, न कान, न मन, न इच्छा।" कमलेश्वर समाज-चेता कहानीकार हैं उनकी प्रत्येक कहानियों में सामाजिक सत्य का उदघाटन हुआ है। सामाजिक समस्याओं, सबंधों तथा समाज निर्माण के प्रमुख घटकों को ध्यान में रखकर आकार दिया है। कमलेश्वर का सम्पूर्ण कथा साहित्य इस बात का सबूत है। नई कहानी समान्तर कहानी आन्दोलन के पुरोधा कमलेश्वर सार्वजनिक भूमिका में एक कुशल शिल्पकार साबित होते हैं। समाज की रीति, नीतियों, परम्पराओ की सूक्ष्म पड़ताल करने में कुशलता हासिल करते हैं।

000

संदर्भ -

आचार्य हजारी प्रसाद, आधुनिक लेखको का उत्तरदायित्व, भाषा साहित्य ओर देश, पृ- 99, कमलेश्वर और कमलेश्वर पृ- 171-172, कमलेश्वर, खोई हुई दिशाएँ, समग्र कहानियाँ, पृ- 368, कमलेश्वर- समग्र कहानियाँ, पृ- 643, 664

(शोध आलेख)

भीष्म साहनी के कथा साहित्य में नारी जीवन

शोध लेखक : डॉ. आज़ाद सिंह आर. मकवाना

सारांश :

वैदिक काल से लेकर आज तक नारी के लिए बहु प्रचलित शब्द (स्त्री) है, महिमा का अर्थ पूजा है। पूज्य होने के कारण स्त्री का महिला नाम पड़ा स्त्री वामा भी है क्योंकि वह सौन्दर्य बिखेरती है- "वयति सौन्दर्यम्।" वह वामा इसलिए भी कहलाती है क्योंकि प्राय: नारी प्रतिकूल बात कहती है। वह कामिनी भी है क्योंकि वह नर के लिए विमोहन एवं आकर्षण का गहन कुंज है। सुकन्या होकर वह व्यक्ति के सत्यम को प्रकट करती है, नारी होकर नर के सुन्दरतम को प्रकाशित करती है तथा यात्रा होकर व्यक्ति के शिवम को रूप देती है। पुरुष द्वारा नारी का शोषण या कहें कि पूरे समाज की नारी के शोषण और दमन में, सक्रिय हिस्सेदारी तथा कथित सभ्य मानव समाज की पहचान रही है। स्त्री-पुरुष की आपसी ईमानदारी, वफादारी, समर्पण आदि नारी के लिए अनिवार्य पर पुरुष के लिए गौण माने जाते हैं।

भीष्म साहनी के कथा साहित्य में नारी का एक महत्त्वपूर्ण आयाम, आत्म-समर्पण भी है। यह वह चेतना है जो नारी को पुरुष की अपेक्षा कहीं अधिक सुन्दर श्रेष्ठ और स्पृहणीय बनाती है। इसी चेतना द्वारा वह पुरुष का तन जीतकर उसकी प्राणेश्वरी बनती है। जीवन में सुख-शान्ति का प्रकाश फैलाती है। यह रूप प्रमिला, कुन्तों रानी मेहतो जैसे पात्रों में सुन्दर तथा सार्थक रूप में प्रतिपादित हुए हैं। आत्म समर्पण की वह चेतना साहनी जी के कथा साहित्य में नारी पात्रों के प्रणयातुर मन को न केवल प्रेम की मादकता से डुबोती है, अपितु उसको चिन्तन की एक चारु भूमि संस्पर्श भी कराती है। आत्म समर्पण की वह चेतना रानी मेहता के जीवन को उदारता की आभा से मुक्त कर देती है।

साहनी जी के कड़ियाँ उपन्यास में जब प्रमिला का पति यछेन्द्र बिना उसको सूचना दिये रात को कमरे से बाहर निकल जाता है और सुषमा के घर पहुँच गया था। तब प्रमिला के प्रकृष्ट प्रेम

डॉ. आज़ादसिंह आर. मकवाना
गाँव : पलियापुर, तहसील : मोडासा,
जिला : अरवल्ली - 383276
गुजरात

के स्रोत से वेदना की धारा फूट पड़ती है, उसे दु:ख तो मुझे इतना कष्ट नहीं होता।

प्रमिला अपने पति के प्रति आत्म समर्पण का भाव रखती है। निशाचर कहानी में आर्थिक विवशता मातृत्व पर भी हावी हो सकती है। इस कहानी में केशरो नामक एक ऐसी नारी का चित्रण किया गया है। जो दिन निकलने से पहले ही कचरा बटोर कर अपने जीवन का निर्वाह करती है। सड़क पर जो कचरा निकलता है, उसे बटोर कर वह और उसकी बेटी अपना गुजारा करती है। चीफ की दावत में भी माता - पोषिता का रूप देखने को मिलता है, माँ तो माँ ही है। वह अपने पुत्र द्वारा किये गए सारे के सारे अपमानजनक व्यवहार को भूल जाती है, क्योंकि बेटे की ही खुशी में अपनी खुशी देखती है। साहनी जी की धरोहर कहानी में एक ऐसी बूढी माँ का चित्रण है जो अपने आँगन में आम का पेड़ लगाती है और कि वह पेड़ अच्छी तरह से फले-फूले सोचती है, कि पेड़ में जो फल लगेंगे उसकी बहू पोते, बेटा खाएँगे। माँ सोचती है कि मैं तो नहीं खाऊँगी पर कोई तो उसके आम खाएगा। आते-जाते लोग इसकी छाया में बैठेंगे, माँ उस पेड़ को धरोहर समझकर सँजोये रखने के बारे में सोचती है। इस कहानी में दो पीढ़ियों की जीवन सम्बन्धी मान्यताओं को ही उद्घाटित किया है।

नारी जीवन के विभिन्न रूपों का चित्रण साहनी जी के कथा साहित्य में देखने को मिलता है। इस दृष्टि मे उनकी चीफ की दावत कहानी भी उल्लेखनीय है। रामनाथ की माँ कहानी में सास के रूप में अपनी बहू का हमेशा भला सोचती है, भला चाहती है। उसके लिए उसे कितने भी संघर्ष क्यों न करने पड़ें, वह बहू और बेटे की खुशी को अपनी खुशी समझती है।

बसन्ती एक लड़की की कथा है जो दु:खों एवं संत्रास के वातावरण में पल-बढ़ रही है किन्तु उसके व्यक्तित्व की कर्मठता देखकर वह विश्वास कर पाना कठिन होता है वह वही बसन्ती है, जिसकी सुबह ठाठ एवं खिड़कियों से होती है। स्वच्छन्दता उसके व्यक्तित्व का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथ्य है। शायद माँ-बाप की नियमित ताड़ना-प्रताड़ना भी उसके व्यक्तित्व के विकास में कुछ योगदान दिया है। दु:ख या दर्द का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इसी तरह डाँट न खाना, खाना बसन्ती की दिनचर्या का एक अनिवार्य अंग बन गया।

बसन्ती एक रूमानी विद्रोह की प्रक्रिया से गुज़रती जिसका भविष्य उसे मालूम नहीं था। अपने भविष्य को सुरक्षित करने के लिए वह फिल्मी अंदाज़ में फूलों का आदान-प्रदान करके अपनी ओर से पूरी ब्याह की रस्म निभाती है। वह हिम्मत नहीं हारती तथा भविष्य के प्रति निराश भी नहीं होती। नारी संसार का बहुमूल्य रत्न है, उसके अन्दर माँ की आत्मा छिपी है, जो अपनी ममता लुटाने के लिए सदा-सर्वदा आधीर रहती है। उसमें पत्नीत्व की गरिमा मय निवास जो नाव के पाल की तरह बहन का स्नेह हिलोरें मारता रहता है। नारी सृष्टि का मूल है, उसके अभाव में मानवता की कल्पना भी असम्भव है, वह माँ है, वह प्रेयसी है, वह पत्नी है और वह पुत्री भी है। देवी भी है, दानवी भी, वह पतिव्रत का अद्भुत आदर्श करने वाली सती भी है। कामान्ध कुटिलता में फुँफकारती विष कन्या भी है।

नाना रूपों मानव जीवन को सदैव से प्रभावित करने वाली नारी एक अनबूझ पहेली रही है। प्राणी जगत में नारी शब्द नर के समान्तर है। इसका प्रयोग स्त्रीलिंग वाली मादा प्राणियों के प्रतीक के रूप में होता है किन्तु मानव समाज में नारी शब्द इस सामान्य अर्थ में ग्रहीत नहीं है, क्योंकि उसका स्थान नर से कहीं बढ़कर है। कोमलता दृढ़ता, स्पृहा आदि गुण नर की अपेक्षा नारी में विशेष पाये जाते हैं, यही नहीं रूप आकार शरीर संगठन कार्य व्यापार एवं जीवन-यापन की विविध स्थितियों में नारी विधाता की उच्चतम परिकल्पना सिद्ध हुई है। नारी विधाता की कमनीय कृति और नर की अनुपम सहकारिणी है।

वैदिक काल से लेकर आज तक नारी के लिए बहु प्रचलित शब्द (स्त्री) है, महिमा का अर्थ पूजा है। पूज्य होने के कारण स्त्री का महिला नाम पड़ा स्त्री वामा भी है क्योंकि वह सौन्दर्य बिखेरती है-

"वयति सौन्दर्यम्।" वह वामा इसलिए भी कहलाती है क्योंकि प्राय: नारी प्रतिकूल बात कहती है। वह कामिनी भी है क्योंकि वह नर के लिए विमोहन एवं आकर्षण का गहन कुंज है।

सुकन्या होकर वह व्यक्ति के सत्यम को प्रकट करती है, नारी होकर नर के सुन्दरतम को प्रकाशित करती है तथा यात्रा होकर व्यक्ति के शिवम को रूप देती है। पुरुष द्वारा नारी का शोषण या कहें कि पूरे समाज की नारी के शोषण और दमन में, सक्रिय हिस्सेदारी तथा कथित सभ्य मानव समाज की पहचान रही है। स्त्री-पुरुष की आपसी ईमानदारी, वफादारी, प्यारी समर्पण आदि नारी के लिए अनिवार्य पर पुरुष के लिए गौण माने जाते हैं।

000

संदर्भ - 1.भीष्म साहनी - रानी मेहता, पृ. 22, 2.भीष्म साहनी - कड़ियाँ, पृ. 118-119, 3.भीष्म साहनी - चीफ की दावत, पृ. 22, 4.भीष्म साहनी - चीफ की दावत, पृ. 22, 5.भीष्म साहनी - चीफ की दावत, पृ. 23, 6.डॉ. गोविन्द चातक - आधुनिक हिन्दी शब्दकोश, पृ. 62

लेखकों से अनुरोध

सभी सम्माननीय लेखकों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मीडिया के किसी मंच जैसे फ़ेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें पत्रिका में प्रकाशन हेतु नहीं भेजें। इस प्रकार की रचनाओं को हम प्रकाशित नहीं करेंगे। साथ ही यह भी देखा गया है कि कुछ रचनाकार अपनी पूर्व में अन्य किसी पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ भी विभोम-स्वर में प्रकाशन के लिए भेज रहे हैं, इस प्रकार की रचनाएँ न भेजें। अपनी मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ ही पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेजें। आपका सहयोग हमें पत्रिका को और बेहतर बनाने में मदद करेगा, धन्यवाद।

-सादर संपादक मंडल

(शोध आलेख)

संत पलटूदास के साहित्य में लोकाचार

शोध लेखक : रामकरण रावत,
शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

शोध सारांश - मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। आदिम जीवन से लेकर सुसंस्कृत, सभ्य समाज तक की यात्रा में मनुष्य ने अनेक रीति-रिवाज, परम्पराओं, संस्कारों एवं विश्वासों को ग्रहण किया है। ये रीति-रिवाज एवं विश्वास ही उसे समाज से जोड़कर रखते हैं और विकास की प्रक्रिया में सहायक होते हैं। स्वस्थ परम्पराएँ संस्कृति का अंग बनकर मानवीय विकास से पूरी तरह संपृक्त रहती हैं। इन परम्पराओं के साथ सामाजिक रीति-रिवाज, संस्कार, तीज-त्योहार, संरचनात्मक विश्वास विकसित होते हैं। समाज में रहने वाले व्यक्ति को इन रीति-रिवाज एवं मर्यादाओं का पालन करना मानवीय कर्तव्य बन जाता है। समाज के साथ पारिवारिक जीवन भी विभिन्न प्रकार के लोकाचारों एवं संस्कारों से आबद्ध होता है, जिसका पालन करना परिवार के प्रत्येक सदस्य का धर्म माना जाता है। जन्म से मृत्युपर्यन्त मनुष्य इन्हीं रीति-रिवाजों से जुड़ा होता है। संत कवियों का संबंध लोकजीवन से सम्बद्ध रहा है। इस कारण उनके काव्य में सामाजिक रीतियों एवं व्यवहारों के जो सन्दर्भ मिलते हैं वे सीधे-सीधे लोकजीवन से जुड़े होते हैं। लोकजीवन अपनी सांस्कृतिक परम्परा एवं रूढ़ियों से और अधिक संवृद्ध होता है।

बीज-शब्द- लोकाचार, लोक संस्कार, संस्कृति, परंपरा, लोकजीवन, सत्संग।

रीति-रिवाज का सामान्य अर्थ होता है—"परम्परा से चले आ रहे लोकाचार और जनजीवन के सामान्य व्यवहार का पालन करना। किसी विचार एवं सिद्धान्त को व्यावहारिक जीवन में उतारकर उसका आचरण करना लोकाचार होता है। आचार और विचार का समन्वय भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता है। ये दोनों एक पहलू के दो सिक्के के समान हैं। मनुस्मृति में आचार को समस्त उपासना का मूल तत्व बताया गया है।"1

समाज प्रचलित सामान्य शिष्टाचार किसी भी संस्कृति विशेष के परिचायक हुआ करते हैं। सन्तों के काव्य में अतिथि सत्कार एवं विनम्रतापूर्ण व्यवहार का विस्तार से वर्णन हुआ है। सभी के भीतर उसी परमतत्त्व की अनुभूति करना और सबके साथ समानता का व्यवहार करना संतों का स्वभाव होता है। ओमप्रकाश शर्मा के शब्दों में—"संतों ने अपने अतिथि के रूप में प्राय: सद्गुरु और परमात्मा रूपी प्रिय को माना है। इसी कारण ऐसे अतिथि के आने पर उनके मन का उल्लास उत्साहपूर्ण आवेग के साथ व्यक्त हुआ है। संतों ने अपने साहित्य में 'पाहुन', 'साहेब पाहुन' के लिए आनन्दित होकर चन्दन से आँगन पुताने तथा गज मुक्ताओं से चौक पुराने और कलश रखने की चर्चा की है। अतिथि के आगमन पर उन्हें चन्दन की चौकी पर बैठाया जाता है, गले में फूलों का हार पहनाया जाता है, चरण धोकर चरणोदक लिया जाता है। चरण छूकर प्रणाम किया जाता है और हाथ जोड़कर विनती की जाती है, ऐसे अतिथि के आने पर कोई चँवर डुलाता है, कोई न्योछावर करता है और कोई मंगलगान करता है। 2- "सतगुरु को घर ले आयोगी फूलन सेज विछावोंगी।/ सरगुन दरि के दालि बनैहों निर्गुन भात रिझावोंगी।।/ प्रेम प्रीति के चौक पुरैहों सुकृति कलश धरावोंगी।।/ रतन जड़ित कै चौकी ऊपर, सतगुरु को बैठावोंगी।।/ सज्ञान का थाल सुमति की थारी सतगुरु कैहाँ जेवावोंगी।।/ तत्व गारि के अंतर लगैइहों, त्रिकुटी महल पौढ़ावोंगी।/ 'पलटूदास' सोबन लागे सतगुरु, सुषमनि बेनियाँ डोलावोंगी।।"3

संत पलटूदास के इस पद में सद्गुरु रूपी अतिथि के आगमन पर स्वागत रूप में उन्हीं तत्त्व का व्यवहार किया गया है लेकिन सद्गुरु का राह स्वागत लौकिक न होकर आध्यात्मिक तत्वों के साथ जुड़ा हुआ है।

भारतीय संस्कृति में अपने अग्रज व्यक्तियों का अभिवादन करना, उन्हें आदर-सम्मान देना प्राचीन काल से ही प्रचलित रहा है। संत स्वभावत: न किसी को मित्र समझता है और न किसी को शत्रु। उसके लिये सभी बराबर होते हैं। इस कारण वह सभी का अभिवादन पूर्ण आदर के साथ करता है। मध्यकाल में विभिन्न सम्प्रदाय तथा गद्दियों में अभिवादन करने की अलग-अलग पद्धतियाँ प्रचलित थीं, जो आज भी किसी न किसी रूप में जीवन्त अवस्था में पायी जाती हैं। मध्ययुग में लोकजीवन में अपने बड़ों के प्रति अपना संस्कार और उनका आदर-सम्मान प्रकट करने हेतु अनेक प्रकार की प्रणाम शैलियाँ प्रचलित थीं जिनका वर्णन संतों की बानी में

रामकरण रावत
शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
मोबाइल- 7976588089
ईमेल- ramkaranr4@gmail.com

देखने को मिलता है। ओमप्रकाश शर्मा इस विषय पर अपना विचार प्रकट करते हुए कहते हैं कि- "आयु से बड़े व्यक्ति का तथा गुरुजनों का विशिष्ट जनों का अभिवादन करना संत युग में शिष्टाचार का मुख्य अंग माना जाता था। किसी पूज्य के घर आने पर उसका सम्मान आरती उतारकर किया जाता था तथा अनेक प्रकार के खाद्य सामग्री फल मेवा का भेंट कर सत्कार किया जाता था। इसके बाद प्रणाम करने की पद्धतियों में दण्डवत करना, साष्टांग लेटकर प्रणाम करना, झुककर प्रणाम करना, सिजदा, माथा टेककर प्रणाम करना, जुहार बंदगी और हाथ जोड़ने आदि का उल्लेख संतों ने किया है।"4 संत पलटूदास के साहित्य में अभिवादन की ये पद्धतियाँ विद्यमान हैं। वे संतों को प्रणाम करते हुए कहते हैं- "कै डंडवत परनाम संत सिर नायके।।"5

उन्हें खंडवत बारंबार हेली शब्द विवेकी संत जो।।6

कँवल चरण सिर नाय चूक बकसावै हो।। / श्री गुरु दीनदयाल कृपा कै ताको हो।।

पाँय परों कर जोरि करौं मैं अरजी हो।।7

इस प्रकार संत पलटूदास संतों और अपने गुरु के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुये व विनती करते हुये उनके समक्ष नतमस्तक होते दिखलाई पड़ते हैं।

कोई भी समाज अथवा परिवार अपने रीति-रिवाजों के साथ निरन्तर आगे बढ़ता रहता है। ये परम्पराएँ स्वाभाविक रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित होती रहती हैं। विकास के इस क्रम में सभ्यता के प्रभावस्वरूप समय-समय पर इन रीति-रिवाजों (परम्पराओं) में परिवर्तन भी होते रहते हैं, किन्तु जो परम्पराएँ हमारे संस्कार के साथ जुड़ जाती हैं वे अपरिवर्तनीय बन जाती हैं। पलटूदास के काव्य पर विचार करते हुये हम इसे तीन भागों में बाँट सकते हैं-1. संस्कारगत 2. रहन-सहन सम्बन्धी एवं 3. पूजा पद्धति सम्बन्धी।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था एवं संस्कृति में संस्कारों को महत्त्वपूर्ण माना जाता है। व्यक्ति जन्म के साथ ही विविध संस्कारों से जुड़ जाता है और उनके साथ ही बड़ा होता है। मनुस्मृति में कहा गया है- मनुष्य जन्म से शूद्र पैदा होता है. परन्तु यह संस्कार द्विज की उपाधि को धारण करता है- "जन्मना जायते शूद्र: संस्कारात् द्विज उच्यते: ।"8

संस्कारों के द्वारा मानव जीवन को सुसभ्य तथा सुसंस्कृत बनाया जाता है इसलिए इन्हें संस्कार कहते हैं इसकी उत्पत्ति संस्कृत के सम् उपसर्ग 'क' धातु से धञ् प्रत्यय करने पर होती है। 9 कुछ अन्य धर्मों ने भी इन संस्कारों का वर्णन किया तथा इनकी संख्या को अपने अनुसार बढ़ाया और घटाया है।

गौतम धर्म-सूत्र में संस्कारों की संख्या चालीस मानी गई है, परन्तु गृह सूत्रों में इसकी संख्या ग्यारह, तेरह और अट्ठारह स्वीकार की गई है। "10 अनेक विद्वानों के मतानुसार संस्कारों की संख्या सोलह है। जिन्हें षोडस संस्कार कहा जाता है। ये संस्कार इस प्रकार हैं—गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोनयन, जातकर्म, जन्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्रासन, चूड़ाकरण, कर्णभेद, विद्यारम्भ, उपनयन, वेदारम्भ, समावर्तन, विवाह, और अन्त्येष्टि।"11 इनमें से पन्द्रह संस्कार इस लोक तथा सोलहवाँ (अन्त्येष्टि) परलोक कल्याण के लिए माना जाता है। वर्तमान समय में इसमें से छ: संस्कार प्रधान रूप में विद्यमान हैं तथा अन्य मानव जीवन में साथ-साथ चलते रहते हैं- जन्म, चूड़ाकरण, उपनयन, विवाह, गवनाभोर अन्त्येष्टि। इनमें से तीन मनुष्यों द्वारा किया जाने वाला अत्यंत प्रचलित संस्कार हैं—जन्म, विवाह और मृत्यु (अन्त्येष्टि) तथा इनमें से भी दो प्रत्येक मनुष्य से अनिवार्यत: रूप से जुड़े हुये हैं तथा किये जाते हैं- जन्म, और मृत्यु।

संतों की बानियों में इन दोनों संस्कारों का वर्णन अनिवार्यत: रूप से उल्लेखित हुआ है। संत पलटू साहब की बानियों के अध्ययन उपरान्त यह ज्ञात होता है कि इनकी बानी में जन्म, विवाह और मृत्यु संस्कारों से सम्बन्धित अनेक पद विद्यमान हैं जिनका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार किया जा सकता है-

परिवार में किसी बच्चे का जन्म परिवार के लिए हर्षोल्लास का कारण होता है संत पलटूदास के काव्य में जन्म से सम्बन्धित अनेक पद वर्णित हैं। उन्होंने जन्म से सम्बन्धित सोहर गीत का उल्लेख अपनी कृति 'शब्दावली' में किया है - "अगना लिपाय कै बैठि, सूरज माथ नायनि हो। / ललना भइन मास दस पूर, पुत्र नाहीं जायनि हो।।"12

समाज में जन्म से सम्बन्धित एक रिवाज प्रचलित है कि जन्म के उपरान्त जब तक माँ और बच्चे को स्नान, पूजा-पाठ नहीं कराया जाता है तब तक वे अशुद्ध माने जाते हैं। उन्हें शुद्ध करने के लिए बच्चे के जन्म के छठे दिन इस रीति का निर्वाह किया जाता है। इसका उल्लेख संत पलटू साहब के काव्य में देखा जा सकता है - "ललना नवा नवा बसन मंगावहु गढ़वहु जेवर हो।। / चौक पुराइन आनि तौ कलस धराइन हो।। ललना छठी के रे दिवस. एक विप्र बुलाइन हो। / सुदिन मुहुरति साधि कै लगन घराइन हो।।"13

परम्परागत रूप से इस अवसर पर छठ्ठी के दिन ब्राह्मण को बुलाने, चौक पूरने कलश रखने तथा बच्चे के नामकरण की पूरी प्रक्रिया परम्परागत तरीके से सम्पन्न की जाती है। संत पलटूदास ने लोक परम्परा में प्रचलित संस्कारों में से विवाह संस्कार को प्रमुख स्थान दिया है। लोक-परम्परा में लड़की का पिता योग्य वर की खोज करता है। इसके पश्चात् वैवाहिक क्रिया से सम्बन्धित लोक-व्यवहार जैसे माड़ो गाड़ना, कलश स्थापना, मांगलिक गीत गाना, निर्धारित तिथि पर बारात आना, पिता द्वारा बेटी का कन्यादान और अंत में बेटी की विदाई इत्यादि क्रियाएँ सम्पन्न होती हैं।

संत पलटूदास ने विवाह सम्बन्धित समस्त प्रक्रियाओं का वर्णन 'शब्द मंगल बिहायू' के अंतर्गत किया है, किन्तु उनका विवाह उस निर्गुण निराकार परमेश्वर से सम्पन्न होता है। आत्मा रूपी कुँवारी बाला का वर रंग-रूप रहित है, जिसका न जन्म है न मृत्यु है और जो न तरुण है न बूढ़ा है, ऐसे 'वर' की तिलक चढ़ाने की कामना की गई है। विवाह के समय अन्य रीतियों में आकाश में खम्भा गाड़कर उसके नीचे तम्बू लगाया जा रहा है, पवन रूपी बाराती है, पुण्य रूपी कलश है, सुरति से गाँठ जोड़ी जा रही है और निर्गुण रूपी सिन्दूर

मँगाया गया है। "हमरा ब्याह करो मोरे बाबा तुँह से न होई निरबाह रे।। / जेकरे रंग रूप नहिं रेखा तेहि से कियो बियाह रे।। / निर्गुण सेंदुरा गंगाबहु गोरे बाबा पिया से दियायहु भरि माँग रे।। / 'पलटूदास' छूटा मोर नैहर सबका भेंट अकवार रे।।"14

मृत्यु मानव जीवन का अंतिम और निश्चित सत्य व संस्कार है। इस सत्य के घटित होते ही मानव जीवन के सांसारिक जीवन की समाप्ति हो जाती है। इस सत्य को संत पलटूदास ने स्वीकार किया और विस्तारपूर्वक मानव मात्र को अनेक उदाहरण देकर समझाने का प्रयास किया। वे कहते हैं कि इस मृत्यु से कोई बच नहीं सका है जो भी जन्म लेता है उसकी मृत्यु निश्चित है— "मरने सेती बचै न कोई जो जनमा सो मूआ है।। / एक भी मरिगे दोइ भी मरिगे मरिगे सहस अठासी है।। नौ भी मरिगे दस भी मरिगे परी काल की फाँसी है।। / छप्पन कोटि जदुबंशी मरिगे रावण दूनों भाई है।। / होय बादशाह तख्त चढ़ि बैठे उनको कबुर खोदाई है।/ ब्रह्मा मुये मुये शिवशंकर सुर नर मुनि को मारा है। / 'पलटूदास' नाम साहेब का वह ना मरता कोई है।।"15

भारतीय संस्कृति का विश्वास जीवन की सहजता एवं सरलता में रहा है। लोकमन में कभी भी धन सम्पत्ति एवं ऐश्वर्य की कोई कामना नहीं की है। संतोष जैसा सद्गुण यहाँ की बहुत बड़ी विशेषता है संत स्वभावत: 'संतोष धन' को ही सबसे बड़ा धन मानते हैं। कबीरदास जी कहते हैं कि जिसे संतोष रूपी धन मिल जाए फिर उसके लिए सभी धन धूल के समान हो जाते हैं - "गोधन गजधन वाजिधन और रतन धन खान।। / जब आवै संतोष धन सब धन धूरि समान।।"16

कबीरदास जी ईश्वर से प्रार्थना करते हुये यह भी कहते हैं कि हे साईं इतना ही दीजिए जिससे मेरे परिवार का भरण-पोषण हो सके तथा मेरे द्वार से कोई भूखा भी न जाए- "साईं इतना दीजिए जामे कुटुंब समाय।। / मैं भी भूखा ना रहूँ, साधू न भूखा जाय।।"17

संत पलटूदास ने भी सांसारिक धन-दौलत की उपेक्षा करते हुये, मन की शुद्धता साधु पुरुषों के सत्संग और राम-नाम जप को सबसे बड़ा धन बताया है वे कहते हैं कि साधु पुरुषों का वचन सबसे सच्चा सौदा है जिसे गाँठ में बाँध लेने पर कोई रिक्त नहीं रह सकता है- "साधु वचन साचा सदा, जो दिल साचा होय।। / पलटू गाँठ में बाँधिये, खालि परै न कोय।।"18

संत पलटूदास कहते हैं कि मानव को लोभ, मोह, अहंकार का त्याग कर सहज, सरल जीवनयापन करना चाहिए। इसी में मानव की महत्ता निहित है- "लोभ मोह हंकार तजि, काम क्रोध सब खोय। / पलटू यतनी कसर है, कि नाम हमारा होय।।"19

पूजा पद्धति सम्बन्धित रीति-रिवाजों के सन्दर्भ में संतों ने भोग लगाना, कलश रखना, चौक पूरना, आरती करना इत्यादि क्रियाओं का संकेत दिया है। यद्यपि इन्हें जब-जब यह लगा कि ये क्रियाएँ रूढ्र रूप ग्रहण कर चुकी हैं. तब-तब उन्होंने इसका विरोध भी किया। उनके विरोध से हमें यह आशय कदापि नहीं लगाना चाहिए कि उन्होंने ईश्वर या फिर उनके पूजन अर्चन का विरोध किया। उन्होंने केवल उन विचारधाराओं का विरोध किया जो मानव मात्र को चाहे अनचाहे हृदय से स्वीकार करना पड़ता था।

संतों के लिए उनके गुरु ही ईश्वर तुल्य थे क्योंकि ईश्वर प्राप्ति का मार्ग तो वही बतलाते थे। जन-जीवन में परब्रहा की जो पूजा पद्धति अपनाई जाती थी. उस पद्धति को संतों ने ग्रहणकर अपने ईश्वर तुल्य गुरु का उसी पद्धति द्वारा पूजन अर्चन किया करते थे। संतों की बानियों के अध्ययन के फलस्वरूप ज्ञात होता है कि ये अपने गुरु के आगमन पर उन्हें गद्दी पर बैठाते हैं, उनका पैर धुलते हैं, आरती करते हैं, फल-फूल चढ़ाते हैं, माला पहनाते हैं।

संत पलटूदास की बानियों में भी गुरु के प्रति इस प्रकार की क्रियाएँ की गई हैं। साथ ही पूजा पद्धति की प्रमुख क्रिया 'आरती' का इन्होंने अपनी कृति 'शब्दावली' में 'आरती गौरी' और 'मंगल आरती सोरठा', 'आरती बिलावल' नाम से तीन अंश लिखा है।

"आज प्रकट भये भाग हमारे श्री गुरुदेव आए मोरे द्वारे। / जगमग जोति कै चौक पुराई, ज्ञान ध्यान लै कलश धराई।। / सिंहासन ससि भान जड़ाई, गुरु मुरति को लै बैठाई।।"20

निष्कर्ष निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि संत पलटूदास का साहित्य लोकमंगल की भावना से ओतप्रोत है। इनके साहित्य में लोकजीवन की अभिव्यक्ति हुई है। लोक में प्रचलित सभी रीति-रिवाज, परंपराएँ, लोकाचार और संस्कारों का वर्णन इनके साहित्य में समरसता के साथ किया गया है। इनका पूरा साहित्य लोक एवं परलोक ज्ञान से परिपूर्ण है।

000

संदर्भ -

1. मनुस्मृति, संस्कृति संस्थान, बरेली, 1966, 1/10, 2. ओम प्रकाश शर्मा, संत साहित्य की लौकिक पृष्ठभूमि, हिंदुस्तान एकेडमी, इलाहाबाद, 1965, पृ. 200, 3. संत पलटू साहब की शब्दावली, शिवप्रकाश दास, अयोध्या, 1950, पद 8, पृ. 2., 4. ओम प्रकाश शर्मा, संत साहित्य की लौकिक पृष्ठभूमि, हिंदुस्तान एकेडमी, इलाहाबाद, 1965, पृ. 250, 5. संत पलटू साहब की शब्दावली, शिवप्रकाश दास, अयोध्या, 1950, पद 188, पृ. 44, 6. वही, पद 416, पृ. 110, 7. वही, पद 197, पृ. 47, 8. मनुस्मृति, अध्याय-10, श्लोक संख्या-65, संस्कृति संस्थान, बरेली, 1966, 9. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक संस्कृति की रूपरेखा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2009, पृ. 156, 10. पारस्कर, बौधायन बाराह, वैखानस मध्य सूत्र, 11. डॉ. राजबली पाण्डेय, हिन्दू संस्कार, पृ. 39-99, 12. संत पलटू साहब की शब्दावली, शिवप्रकाश दास, अयोध्या, 1950, पद 242, पृ. 58, 13. वही, पद 242, पृ. 58, 14. वही, पद 354, पृ. 91, 15. वही, पद 480, पृ. 128, 16. श्याम सुंदर दास, कबीर ग्रंथावली, 17. वही, 18. पलटू साहब की बानी, भाग-3, वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, 1915, साखी 69, 19. संत पलटू साहब की शब्दावली, शिवप्रकाश दास, अयोध्या, 1950, साखी 92, पृ. 245., 20. वही, पद 338, पृ. 86

(शोध आलेख)

साझी विरासत और नज़ीर अकबराबादी का काव्य

शोध लेखक : रेखा शर्मा, शोधार्थी, हिन्दी, राज ऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अलवर (राज.)
शोध निर्देशक : प्रो. (डॉ.) मीना गौतम, आचार्य, हिन्दी, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर, (राज.)

शोध सारांश

साहित्यिक इतिहास में ऐसे कम ही कवि हुए हैं जिन्होंने हिंदू-मुस्लिम संस्कृति का समन्वय दिखाया हैं। कबीर हिन्दी के प्रथम कवि हो सकते है जिन्होंने इस परम्परा का अनुसरण किया है। कबीर के पश्चात् रसखान, रहीम का स्थान हो सकता है। आधुनिक संदर्भ में ऐसे कम ही कवि हो सकते हैं जिन्होंने साझी संस्कृति का वर्णन अपने काव्य में किया हैं। नज़ीर अकबराबादी उसी परम्परा के समृद्ध कवि हैं जिन्होंने न केवल कबीर की परम्परा को आगे बढ़ाया अपितु साझी विरासत की मिषाल भी बने। किन्तु साहित्यिक परम्परा में जो स्थान नज़ीर को मिलना चाहिए था, वह उन्हें प्राप्त न हो सका। नज़ीर को तत्कालीन साहित्य संसार ने उपेक्षित किया किंतु नज़ीर के काव्य का अवलोकन किया जाए तो देखने को मिलेगा कि नज़ीर हिन्दी के पहले ऐसे आधुनिक कवि हैं जिन्होंने अपनी जनवादी चेतना के माध्यम से जन-जन के हृदय में स्थान पाया। नज़ीर अकबराबादी आधुनिक कविता के प्रस्थान बिन्दु है जिनके आधुनिक बोध से वर्तमान कविताएँ प्रभावित है। उस आधुनिकता बोध का बीज नज़ीर अपने समय में अंकुरित करने में सफल रहे। नज़ीर अकबराबादी के काल में काव्य की भाषा- ब्रज, अवधी, अरबी, फारसी हुआ करती थी ऐसे में बोलचाल की भाषा में या जनभाषा में कविता लेखन की नवीन शुरुआत नज़ीर करते हैं। नज़ीर रीतिकालीन कविता को भाषा, छन्द, के परम्परागत रूपकों से मुक्ति प्रदान कर, नई जनवादी कविता लेखन की शुरुआत करते हैं। दरबारी रंग को त्यागकर समाजोपयोगी कविता की वकालत करते हैं। नज़ीर अकबराबादी सामान्य जनजीवन से जुड़ी संस्कृति के वाहक बनते हैं और अपने लेखन का विषय बनाते हैं।

रेखा शर्मा
शोधार्थी, हिन्दी
राज ऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय,
अलवर, राजस्थान

बीज शब्द : संस्कृति, नज़ीर, समाज, काव्य, समन्वय, आदर्श, विरासत।

नज़ीर अकबराबादी हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं का समन्वय करते हुए रचना का विधान निश्चित करने में सिद्धहस्त कवि रहे हैं। निश्चित ही नज़ीर अकबराबादी का कई भाषाओं पर अधिकार था, बहु भाषाविद् प्रकाण्ड विद्वान थे, शब्दों की पकड़, भाषा शैली पर पूर्ण अधिकार व सही शब्द चयन मे सिद्धहस्त नज़ीर अकबराबादी हिन्दी-उर्दू के साहित्यकारों की पंक्ति में एक विशिष्ट स्थान रखते हैं।

नज़ीर अकबराबादी के काव्य में प्रयुक्त भाषा शैली की विशेषता रही हैं किं इनकी कविताओं का आनन्द हर वर्ग, हर उम्र, व्यक्ति भी उठा सकता है। साथ ही जनभाषा के प्रयोग के कारण अनपढ़ व्यक्ति भी उनकी कविताओं का सुनकर सीख ले सकता है। और समझकर कंठस्थ कर सकता है। नज़ीर अकबराबादी भाषा की कसौटी पर काव्य का विभाजन नहीं करते हैं। इनका काव्य हिन्दू तथा मुस्लिम दोनों समुदाय के लोग पढ़ सकते हैं। इस संबंध में रामधारी सिंह दिनकर कहते हैं कि-

"सौन्दर्य तब बढ़ता है, जब लेखक उन सभी शब्दों को भाषा की सहानुभूति से देखता है जो जनता की जीभ पर चढ़े हुए हैं।"1

भाषा संसार का वह नादमय चित्र हैं ध्वनिमय स्वरूप हैं जिसके द्वारा ही संसार संगीतमय होता है। भाषा के अभाव से संसार गुंगे बहरो की भाँति मूक होता नज़ीर अकबराबादी की भाषा सरल सुसभ्य, सुगम एवं प्रभावशाली है। उनकी भाषा विषयानुकूल है जो सामान्य से सामान्य जन से जुड़ी है, नज़ीर अकबराबादी की भाषा बाहरी आडम्बरों, बाह्य बंधनों से मुक्त जनसाधारण की भाषा है। धर्म, वर्ग तथा रंगों में भेद नहीं करते हुए कवि ने समस्त जन को एक इकाई मानकर काव्य सृजना की मिषाल कायम की हैं। कोई उन्हें मुस्लिम समझने की भूल न करे और न ही हिन्दू समझने का प्रयास क्योंकि एक कवि इस मज़हबी दुनिया से चार कदम आगे के संसार का विशिष्ट मानव होता है।

नज़ीर अकबराबादी की भाषा संकीर्णता मुक्त है, जिसमें सभी का योग है किसी एक के लिए न होकर सबके लिए लिखी कविता प्रतीत होती है। उनकी 'खुशामद' कविता की सरल भाषा का उदाहरण देख सकते हैं, वे लिखते हैं-

"प्यार से जोड़ दिये हाथ तरफ जिसके आह। / वहीं ख़ुश हो गया करते ही वह हाथों पर निगाह। / गौर से हमने जो इस बात को देखा अल्लाह। / कुछ खुशामद ही बडी चीज़ है अल्लाह अल्लाह।। / जो खुशामद करे खल्क उससे सदा राजी है।"2

नज़ीर अकबराबादी की भाषा के विषय में नज़ीर ग्रंथावली की भूमिका में डॉ. नज़ीर मुहम्मद लिखते हैं-

"मियौ नगर में ईश्वर प्रदत, प्रतिभा और लोक जीवन को बारीकी से निरखने-परखने की शक्ति अद्‌भुत थी। विषय को देखते, सोचते ही शब्दों के कैमरों में पूरा का पूरा चित्र उतार देने में वे बहुत ही सफल थे, उनको विविध भाषाओं का ज्ञान था। अरबी, फारसी, उर्दू, हिन्दी, अवधी, पंजाबी आदि पर उनका समान अधिकार था। नज़ीर अकबराबादी की भाषा बड़ी समर्थ और प्रभावोत्पादक है, भावां को सफलतापूर्वक प्रकट करने की अद्‌भुत शक्ति उनकी भाषा में है। नज़ीर अकबराबादी शब्दों के जादूगर और वाणी के बादशाह है। भाषा उनके भावों को सफलतापूर्वक प्रकट करने को मजबूर सी लगती है। काव्य और भाषा ने सरलता और सफलता के साथ शब्द चित्र उतारने शुरू किये। वे खड़ी बोली के समर्थक हैं।"3

नज़ीर अकबराबादी की भाषा में हिन्दी शब्दों को प्रयोग बहुत अधिक हुआ है जिसका कारण बोलचाल की भाषा में काव्य लेखन था। नज़ीर अकबराबादी की रचनाओं जिनमें- दशम कथा, नरसी मेहता, सुदामा चरित्र, महादेव जी का ब्याह आदि में भी हिन्दी के शब्दों का बाहुल्य हैं। ब्रज संस्कृति के प्रभावस्वरूप भी नज़ीर अकबराबादी की रचनाओं में हिन्दी की बोलियों के शब्दों का प्रयोग भरपूर मात्रा में हुआ है। होली, लल्लू जगधर का मेला, कंस का मेला, आगरे की तैराकी सभी रचनाओं मे ब्रज भाषा के शब्दों का प्रयोग प्रचुरता में हुआ। यथा 'आगरे की तैराकी' मे वे लिखते हैं-

"हर आब बोलते हैं सय्यद कबीर की जै। / फिर उसके बाद अपने उस्ताद पीर की जै। / मेरि-ओ-मुकुट कन्हैया, जमुना के तीर की जै। / फिर गोल (झुंड) के सब, अपने खुर्दों कबीर की जै। / हरदम यह कर खुशी की गुफ्तार पैरते है। / इस आगरे में क्या क्या ऐ यार! पैरते है।"4

नज़ीर अकबराबादी ने हर मेले, हर त्योहार, हर मनोरंजन के साधन में दोनों संस्कृतियों का समन्वय दिखाया है वे न केवल अल्लाह की इबादत में सिर झुकाते हैं अपितु कृष्ण भगवान की भी हृदय से जय जयकार करते हैं। नज़ीर अकबराबादी ने भाषा में हिन्दी के शब्द को प्रधानता दी है जिसका कारण उनका ब्रज क्षेत्र में रहना और वहाँ की भाषा में व्यवहार करना भी है। नज़ीर अकबराबादी की भाषा अवसरानुकूल व विषयानुसार अपना रूप निर्मित करती चलती है। कहीं बेहद अरबी-फारसी की प्रचुरता के साथ विषय को प्रभावी बनाती है, तो कहीं हिन्दी के शब्दों के साथ अपना सौन्दर्य काव्य में बनाते हैं। नज़ीर अकबराबादी ने मुस्लिम त्योहारों, मेले या मुस्लिम बुजुर्गों के विषय में वर्णन करने में अपनी शैली में परिवर्तन कर प्रयोग किये हैं। नज़ीर अकबराबादी फारसी-अरबी शब्दों का प्रयोग मुस्लिम धर्म संबंधी विषयों की रचनाओं में करते हैं। अर्थात् हिन्दू-मुस्लिम का समन्वय भाषायी आधार पर करते हुए किसी की आन्तरिक भावनाओं पर अतिक्रमण करने का प्रयास कभी नहीं किया। हजरत चिश्ती का उर्स, शब्बरात, ईद, जैसी कविताओं में अत्यधिक अरबी फारसी के शब्दों का प्रयोग करते हैं, 'ईद' नामक कविता में वे लिखते हैं- "रखते थे हम उम्मीद यह दिल में कि ईद को। / क्या-क्या गले लगाएँगे दिलवर को याद हो। / सो तो वह आज भी न मिला शोख हीलागो। / थी आस ईद की सो गई वह भी दोस्तों। / अब देखे क्या करें दिले उम्मीद्वार, आह।।"5

नज़ीर अकबराबादी ने उर्दू से रचनाओं में

अनेक प्रयोग किये हैं। नज़ीर अकबराबादी ने भाषा को सदैव विषय के अनुरूप प्रयोग किया जैसे-

'कोरा बर्तन, पंखा, बटुआ, तरबूज, आँधी आदि साधारण विषयों के वर्णन में शब्दावली भी विषय अनुरूप साधारण ही प्रयोग की। 'पंखा' पर लिखी उनकी प्रसिद्ध कविता की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

"क्या मौसम गर्मी में नमूदार है पंखा। / खूबों के पसीनों का खरीददार है पंखा। / गुलक का हर एक जा पे तलबदार है पंखा। / अब पास मेरे यार के हर बार देखा है पंखा। / गर्मी से मुहब्बत की बड़ा यार है पंखा।।"6

नज़ीर अकबराबादी ने लोक प्रचलित शब्दों का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया। नज़ीर अकबराबादी की भाषा आगरे की खड़ी बोली है तथा जिसमें ब्रज भाषा, अरबी, फारसी सभी शब्दों का प्रयोग हुआ है। डॉ. नज़ीर मुहम्मद 'नज़ीर ग्रंथावली' की भूमिका में लिखते हैं कि- "नज़ीर को 'ख़ूब' और 'ज़ोर' शब्द बहुत प्यारे हैं जिनका प्रयोग नज़ीर ने भरपूर किया है। जैसे- "क्या ! ख़ूब नर्मो नाजुक इस आगरे की ककड़ी। / हम भी बुलाके ख़ूब से नचवाबें हीजड़े। / हमें अदाएँ दीवाली की ज़ोर माती है। / ज़ोर बलदेव जी का मेला है।"7

वास्तव में साझी संस्कृति के प्रतीक नज़ीर अकबराबादी ने शब्दों में कवितानुसार बदलाव कर उनका रचना में प्रयोग किया। नज़ीर अकबराबादी की रचना 'चिडिया की तस्वीर' में उन्होंने चिड़िया की सुंदर आवाज़, ध्वनियों को शब्दों के माध्यम अभिव्यक्त किया वे लिखते हैं-

"वक्त सहर की रूहें क्या हूँ हूँ हूँ हूँ करती है। / हूँ हूँ हूँ हूँ कर ज़िक्र कुन और फयाकू करती है। / मुर्गे बोले कुकड़ू, कुकड़ मुर्गियाँ कूं कूं करती है। / तूतियाँ भी सब याद में उसकी मन्तुं मन्यूं करती है। / साँझ सबेरे चिड़ियाँ मिलकर चूँ चूँ चूँ चूँ करती है। / चूँ चूँ चूँ चूँ चूँ चूँ क्या? सब बेचूँ करती है।"8

नज़ीर अकबराबादी ने सभी जीवों की आवाज़ को काव्य में शब्दों की नवीनता के साथ प्रयोग कर शब्दों से ही रचना को संगीतमय कर दिया है नज़ीर अकबराबादी भाषा को जैसे चाहे तोड़-मरोड़ कर रचना में इस प्रकार प्रयोग करते हैं कि भाषा का सहज प्रवाह पाठक को जोड़ लेता है तथा कहीं भी शब्द असंगत या अलग नहीं परिलक्षित होता है। लघु से लघु रचना को विशिष्टता प्रदान करना नज़ीर अकबराबादी का प्रमुख धेय रहा है तो वहीं भाषा का सहज, सुबोध प्रयोग नज़ीर अकबराबादी की विषेषता रही हैं।

नज़ीर अकबराबादी ने मुहावरे का प्रयोग कर गरीबी की विडम्बना व भयावहता की गंभीरता को सहज ही समझाने का सफल प्रयास किया है। उदाहरणार्थ रोटियाँ रचना में भूख की अधिकता व भूख से पीड़ित व्यक्ति की व्यथा को भी मुहाबरे से व्यक्त करते हैं-

"भूखे ग़रीब दिल की खुदा से लगन न हो। / सच है कहा किसी ने कि भूखे भजन न होय। / यह तन जो है हर एक के उतारे का झोंपडा। / इससे है अब भी सबके सहारे का झोंपड़ा।। / पैसा ही रंग रूप है, पैसा माल है। / पैसा न हो तो आदमी चर्खे का माल है।। / करते हैं हम ! यारों! अब धूम धड्क्के। / देख जवां तो उनके छूट जाए दम छक्के। / इसके सुनते ही गजब होवे वह लाल अंगारा।। / धुनिये भी हाथ मलते है और सर को धुनते है। / कूटे है तन लोहार तो पीटे है सर सुनार।। / थी आधी रात जो हुआ भुचाल का गुज़र। / पत्ता सा घर धरा गया पाताल का जिगर।।"9

निष्कर्ष - नज़ीर अकबराबादी ने शब्दों की पुनरावृत्ति कर रचना में गेयात्मकता की वृद्धि करने का प्रयास किया जिससे रचना सहज और सरल बन पड़ी है। नज़ीर अकबराबादी ने जनसामान्य में प्रचलित भाषा को ही काव्य में स्थान दिया ताकि वे आम आदमी तक पहुँच सके नज़ीर अकबराबादी की भाषा में कहीं भी संकीर्णता दिखायी नही देती क्योंकि नज़ीर अकबराबादी की कविताओं का मूल विषय वैविध्यपूर्ण भारतीय समाज ही है।

भारतीय समाज के जनसामान्य के जीवन के सामान्य विषयों पर नज़ीर अकबराबादी ने अपनी लेखनी चलाकर उस सामान्य जीवन का यथार्थ रचना में सहज ही प्रस्तुत किया। नि:सन्देह किसी भी कवि या साहित्यकार की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उसका काव्य कितना सम्प्रेषणीय है। सम्प्रेषणता के गुण के आधार पर रचना व्यापक जन समूह तक पहुँच पाती है। नज़ीर अकबराबादी ने भाषा में संकीर्णता न रखकर उसको व्यापक बनाया ताकि हर सामानय जन तक उनके स्वर सुनायी दे सकें। नज़ीर की भाषा भी समन्वय का गुण लेकर चलती है नज़ीर अकबराबादी ने हिन्दी, उर्दू के शब्दों का खुलकर प्रयोग किया। वे वर्ग भेद, जाँति-पाँति में विश्वास नहीं रखते हैं। उनका शब्द चयन व शब्द प्रयोग में बड़ी सर्तकता बरतना ही उन्हें विषिष्ट बनाता हैं। नज़ीर अकबराबादी ने हिन्दी-उर्दू शब्दावली का जितना समन्वित संगठित, प्रवाहपूर्ण सहज प्रयोग किया है वह बेमिशाल है। नज़ीर अकबराबादी के शब्द शब्द न होकर सम्पूर्ण चित्र है, जिसमें समूचा दृश्य पाठक के अन्तर्मन में उपस्थित हो उठता है।

000

संदर्भ-

1.रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, साहित्य अकादमी, दिल्ली, 1956 ई. -आमुख से, 2.डॉ. नज़ीर मुहम्मद, नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1992 ई., पृ. 231, 3.डॉ. नज़ीर मुहम्मद, नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1992 ई., पृ. 9, 4.डॉ. नज़ीर मुहम्मद, नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1992 ई., पृ. 407, 5.डॉ. नज़ीर मुहम्मद, नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1992 ई., पृ. 323, 6.डॉ. नज़ीर मुहम्मद, नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1992 ई., पृ. 529, 7.डॉ. नज़ीर मुहम्मद, नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1992 ई., -भूमिका से, 8.डॉ. नज़ीर मुहम्मद, नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1992 ई., पृ. 86, 9.डॉ. नज़ीर मुहम्मद, नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1992 ई., पृ. 114-493

(शोध आलेख)

कथा साहित्य में चित्रित किन्नर समाज की लोक परम्पराएँ

शोध लेखक : कुमारी मीना, शोधार्थी, हिन्दी विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

लैंगिक आधार पर मानव समाज मुख्यत: दो वर्गों में बँटा हुआ है, स्त्री व पुरुष। इसी समाज में मनुष्य का एक अन्य रूप है, जो कि साधारण स्त्री-पुरुष से भिन्न है, ये वे लोग हैं, जो कुछ विशेष अंगों एवं गुण सूत्रों के विकसित न होने के सामान्य स्त्री-पुरुष से भिन्न है। भारत की विभिन्न भाषाओं में किन्नरों के लिए भिन्न-भिन्न शब्दों का प्रयोग किया जाता है जैसे तेलगु में नपुंसक, कोज्जा या मादा, तमिल में थिरू नंगई, अरावनी, गुजराती में पवैय्या, पंजाबी में खुसरा, कन्नड़ में जोगप्पा तथा छक्का, खोजा, किन्नर, हिजरा, नपुंसक, थर्डजेंडर, ट्रांसजेण्डर इत्यादि।

'किन्नर' शब्द आधुनिक किन्नौर क्षेत्र में प्राचीन काल से निवास करने वाली जनजाति विशेष के लिये प्रयोग होता आया है। जिसके उद्भव व विकास पर राहुल सांकृत्यायन ने 'किन्नर देश में' नामक अपनी रचना में विस्तृत रूप से चर्चा की है। ऐसा माना जाता है कि "यदि संभोग के परिणामस्वरूप गर्भाशय में पिता का वीर्य अधिक संचित हो जाता है तो कन्या शरीर उत्पन्न होता है, यदि माता का रज अधिक सिंचित होता है तो कन्या शरीर की उत्पत्ति होती है।"1

"माता पिता के वीर्य एवं रज की मात्रा समान होने पर नपुंसक संतान की उत्पत्ति होती है किन्नरों की उत्पत्ति के संबंध में एक मिथक यह भी है कि ब्रह्मा जी की छाया से किन्नरों की उत्पत्ति हुई है। इसके अतिरिक्ति अरिष्टा और कश्यप ऋषि से भी किन्नरों की उत्पत्ति मानी जाती है।"2

रामायण काल में किन्नरों की कथाओं की उपस्थिति के प्रमाण वाल्मीकी की रामायण और तुलसीदास की रामचरित मानस में मिलते हैं। रामचरित मानस में जब राम वनवास जा रहे थे तब नगर के सभी नगरवासी राम के पीछे-पीछे चलते गए, तब राम ने अयोध्या के नगर द्वार के निकट उन्हें रोक दिया और नर-नारियों के वापस लौट जाने के लिए कहा। जब राम वनवास से वापस लौटे तो देखा किन्नर उनका इंतज़ार कर रहे हैं, जब उनसे पूछा गया तो उन्होंने कहा कि आपने सभी नर-नारियों को लौट जाने को कहा था, पर ना तो हम नर है ना ही नारी हैं, तो हम यहाँ पर आपके वापस आने का इंतज़ार कर रहे थे। उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर राम ने उनको आशीर्वाद देते हुए कहा, कि जाओ तुम्हारा आशीर्वाद सबके लिए शुभ होगा। इसी धारणा के साथ लोगों द्वारा आज भी किन्नरों का आशीर्वाद लिया जाता है। साथ ही शुभ कार्यों में इनका आना शुभ माना जाता है।"3

महाकाव्य महाभारत में कई जगहों पर किन्नरों का उल्लेख मिलता है शिखंडी का जन्म एक कन्या के रूप में हुआ था, किन्तु उनके जन्म के समय एक भविष्यवाणी हुई कि उनका लालन-पालन एक पुत्री के नहीं वरन पुत्र की भाँति किया जाए। इसलिए स्वभाव से स्त्री एवं शारीरिक स्तर से पुरुष शिखंडी का पालन-पोषण पुरुष की भाँति हुआ। जो इतिहास में नपुंसक की भाँति जाना जाता है। महाभारत में शिखण्डी पाण्डवों की तरफ से युद्ध लड़ता है, उसकी उपस्थिति युद्ध में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होती है क्योंकि भीष्म पितामह की मृत्यु के कारण भी वही बने।

एक प्रसंग यह भी है कि अर्जुन और उलूपी का पुत्र आरावन एक किन्नर था। इसी कारण किन्नरों को कई स्थानों पर अरावनी भी कहते है। अरावनी का अर्थ अरावन के वंशजों से लिया जाता है। महाभारत की मूल कथा के अनुसार कुरूक्षेत्र में युद्ध के दौरान एक राजकुमार की नरबलि देनी पड़ती है जो माँ काली के चरणों में दी जाती है। जिसके लिए युद्ध से पूर्व अरावन बलि रूप में ख़ुद को प्रस्तुत करता है लेकिन वह इसमें श्री कृष्ण से वरदान में एक सुंदर कन्या से विवाह करने की इच्छा जाहिर करता है। किन्तु कोई भी कन्या एक दिन के लिए सुहागिन कैसे

कुमारी मीना
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय
जोधपुर, राजस्थान
मोबाइल- 7877393473
ईमेल- gms828a@gmail.com

बन सकती है। इसी वजह से श्री कृष्ण मोहिनी का रूप धारण करके अरावन से विवाह करते हैं। इसी प्रथा के कारण किन्नर जो स्त्री रूप में किन्नर माने जाते हैं तमिलनाडु के प्रसिद्ध मेले कुवागम में अरावन से एक रात की शादी करते है। "पुरे कुवामम में सत्रह दिनों तक उत्सव जैसा माहौल होता है। देश के कोने-कोने से हिजड़े कुवागम में जमा होते हैं।"6

ईसा पूर्व छठवीं सदी की बौद्धकाल की रचना (विनयपटक) में किन्नरों को आध्यात्मिक विकास का अवसर प्रदान करने का वर्णन प्राप्त होता है। मध्यकालीन भारतीय इतिहास में ये मुगल शासक के सलाहकार, प्रशासन व हरम के रक्षक के पद पर नियुक्त किये गए। 'हरम' अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है "वर्जित क्षेत्र" या पवित्र "अदृश्य स्थान" हरम वह स्थान होता था जहाँ बादशाह के अलावा किसी अन्य मर्दों का जाना बिल्कुल वर्जित होता है।

मुगलकाल में मुख्य शाही हरम आगरा, दिल्ली, फतेहपुर सीकरी, लाहौर, अहमदाबाद, बहारनपुर, दोलताबाद, मान्छू तथा श्रीनगर इत्यादि जगहों में अनेकों हरम स्थापित किए गए थे। हरम में महिलाओं की संख्या का समकालीन स्रोतों के द्वारा पता चलता है कि अकबर की हरम में पाँच हज़ार रानियाँ थी तो बादशाह जहाँगीर के हरम में तीन हजार से ज़्यादा रानियाँ थी। हरम की भाँति एक ही शासक द्वारा सैंकड़ों स्त्रियों को रखने की प्रथा भारत में अति प्राचीन है। हरम की व्यवस्था की देख-रेख के लिए किन्नरों को ही रखा जाता था। बादशाह अकबर ने हरम में किन्नर रखने की शुरुआत की थी। अलाउद्दीन खिलजी का सेनापति मलिक ग़फ़ूर किन्नर था जिसने दक्षिण भारत का विजय अभियान प्रारम्भ किया। खिलजी की मृत्यु के पश्चात सल्तनत सिंहासन का संरक्षक भी बना। इसी प्रकार शर्की वंश की स्थापना भी मलिक सरबर ने की जो किन्नर था। हमारे समाज ने सदैव किन्नरों को अपना एक हिस्सा माना और उसके साथ सामान्य व्यवहार भी किया। हरिश्चन्द वर्मा ने अपनी किताब 'मध्यकालीन भारत' में किन्नरों के लिए लिखा है—"हिजड़े हाथी पछाड़ने का दंश रखते थे और गुणी लोग अपमान सह रहे थे।"7

भारत में प्राचीन इतिहास में किन्नरों का समाज में एक सम्मानजनक स्थान रहा है और इन्हें गायन विद्या का मर्मज्ञ माना जाता था। तुलसीदास ने "सुर किन्नर नर नाग मुनीसा" के माध्यम से किन्नरों के उच्च स्तरीय अस्तित्व को रेखांकित किया है।

किन्नर समाज के लोग अपनी अलिंगी देह को लेकर जन्म से मृत्यु तक अपमानित, तिरस्कृत और संघर्षमयी जीवन व्यतीत करते हैं तथा आजीवन अपनी अस्मिता की तलाश में ठोकरें खाते है। अब्दुल रहीम की 'इंसान हूँ मैं भी' कविता की कुछ पंक्तियों में-एक दर्द बयाँ हुआ है - "भटकती रूह हूँ, निकलती जान हूँ मैं भी। / मैं एक पहेली हूँ, मगर आसान हूँ मैं भी। / कुदरत ने रचा है, मुझे जाने किस मिट्टी से। / भीतर अँधेरा है, खाली मकान हूँ मैं भी। / ये क्या कमी है, मुझमें ये क्या अधूरापन है। / ज़िंदगी के इन सवालों से परेशान हूँ में भी। / मुझ पर हँसने वालों जरा सोचकर देखो। / औरों से अलग हूँ, मगर इंसान हूँ मैं भी।"8

किन्नर जीवन पर केन्द्रित इन पंक्तियों में उनके मर्म की पीड़ा का बयान साफ दिखाई देता है। किन्नर असली इंसानियत के प्रतिरूप ही है लेकिन यह सच्चाई जानने वालों की संख्या बहुत ही कम है। समाज उसकी बाहरी शक्ल और रीतिरिवाजों के आधार पर उनको मापता है। किन्नरों के नाच-गान में उनके कला-प्रेम का दृष्टांत ही मिलता हैं। वे हर जगह गाना गाते हुए ही नज़र आते है।

किन्नर समुदाय में गुरु-शिष्य परम्परा का निर्वहन पूरी तरह होता है। इनके समुदाय का गुरु पैदाइशी किन्नर होता है। मान्यता है कि किन्नर के गुरु को इस बात का आभास हो जाता है कि उसके कौन से शिष्य की मौत कब होगी। देश के 13 अखाड़ों में एक इनका भी अखाड़ा है जिसकी महामंडलेश्वर लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी हैं।

किन्नर समाज में किसी नए सदस्य को शामिल करने के भी नियम है। नए सदस्य को शामिल करने से पहले नाच-गाना और सामूहिक भोज होता है। वहीं किन्नर व्यक्ति वैवाहिक बंधन में बंधता है। किन्नर अपने अराध्य देव अरावन से विवाह करते हैं लेकिन इनका विवाह मात्र एक दिन का होता हैं मान्यता है कि शादी के अगले दिन किन्नरों के अरावन देवता की मृत्यु के साथ ही इनका वैवाहिक जीवन ख़त्म हो जाता है।

'मैं अधूरी नहीं' नामक जीवनी में धनंजय चौहान कहती है कि "मैं अधूरी नहीं, अजूबा नहीं, अनोखी नहीं, प्रकृति की रचना हूँ। मेरा भी जन्म सामान्य बच्चों की भाँति माँ की कोख से हुआ है। मैं दूसरी दुनिया से नहीं आई। मैं एलियन नहीं हूँ। मैं दूसरों की तरह एक इंसान हूँ। वह जिस हाड़-माँस से बने है, उसी से मैं भी बनी हूँ। जो लहू की रगों में बहता है। वह मेरी रगों में दौड़ता है। पर समाज मुझे इंसान नहीं मानता। इंसानी हक नहीं देता।"10

धनंजय बचपन से ही इस बात से वाफिक थी कि वे ग़लत शरीर में हैं, उनकी समाज से अपने जेण्डर के लिए लड़ाई 5 साल की उम्र में ही शुरू हो गई थी। 6 साल की धनंजय जब स्कूल में ज्ञान बटोरने गई तो बच्चों ने उन्हें बहुत सताया लेकिन उन्हें किसी से कोई फर्क नहीं पड़ता था। वे कहती हैं कि स्कूल में वो लड़कियों के वॉशरूम में ही चली जाती थी और एक दिन उन्हें बच्चों ने वॉशरूम में ही बंद कर दिया था। बच्चों की बात फिर भी एक पल के लिए समझ आ जाए लेकिन उनके गणित के टीचर के दुस्साहस का तो कहना ही क्या लड़का-लड़की और जेंडर के असमंजस में धनंजय ने 'कथक' को अपना साथी बना लिया था एक दिन वे कथक सीखने जा रही थी तो गणित के टीचर ने उन्हें अपने घर बुलाया और उनका यौन शोषण किया और यहाँ तक कि वे लोग धनंजय को ब्लैकमेल भी करते कि अगर नहीं आए तो एग्जाम के नंबर काट दिए जाएँगे। जब लोगों को भनक लग जाए कि आप सामान्य व्यक्ति से भिन्न हो तो लोग जीना मुश्किल कर देते हैं, धनंजय 'जेंडर डिस्फोरिया' की शिकार थी। जब यह महसूस होता है कि प्राकृतिक लिंग किसी व्यक्ति के लैंगिक पहचान से मेल नहीं खाता है, उन्हें बचपन में किन्नर से बहुत डर लगता था, वे सोचती थी कि शायद किन्नर उन्हें उठाकर ले

जाएँगे। धनंजय चौहान कहती हैं कि देश के सर्वोच्च न्यायालय ने 2014 के अपने ऐतिहासिक निर्णय में हमें इंसान का दर्जा दिया। हमें समानता का अधिकार दिया इसके साथ ही वह कुछ ज्वलंत समस्याएँ है, उनकी माँग करती हैं- 1. हमें शिक्षण संस्थानों, सरकारी व गैर सरकारी प्रतिष्ठानों में आरक्षण दिया जा सके ताकि हम और हमारी आने वाली पीढ़ियाँ शिक्षा प्राप्त कर सकें। जीविकोपार्जन हेतु नौकरियाँ प्राप्त कर सकें। 2. हमारे विवाह के संबंध में स्पष्ट नियम हों। 3. हमें बच्चे गोद लेने का अधिकार मिलें। 4. सेक्स परिवर्तन हेतु शल्य चिकित्सा की मुफ्त सुविधा हो। 5. हमें अपने जेण्डर के लिए प्रमाण पत्र प्राप्त करने की प्रक्रिया सरल हो। हमें इस बात का अधिकार हो कि अपने जेण्डर को स्वयं घोषित कर दें। यह घोषणा पत्र सत्य मानी जाए। हमें प्रमाण पत्र के लिए मजिस्ट्रेट या चिकित्सकों के पास न जाना पड़ें। 6. हमारे सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार स्पष्ट हों। सम्पत्ति के जो अधिकार हैं बिल में सम्मिलित किया जाए। उनका कायन्वियन सुनिश्चित किया जाए।

"यदि यह कुछ हो सका तो मुझे आत्मिक शान्ति मिलेगी। मैं जानती हूँ कि मैंने जीवन का एक लंबा सफर तय कर लिया है। इस दुनिया को छोड़कर चलूँगी तो मुझे यह गिला नहीं होगा कि मैंने कुछ नहीं किया। चलते समय यह भी दुख नहीं होगा कि मेरा जीवन व्यर्थ गया। मुझे सुकून होगा कि मैंने दूसरों की राह आसान की। उनकी प्रगति के लिए दरवाज़े खोले"। समाज के लिये इनके मन में जो तमन्ना है वह स्पष्ट: शब्दों से देखी जा सकती है कि एक आम इंसान की भाँति अगर इन लोगों को मौका मिले तो ये कहीं भी पीछे हटने वाले नहीं हैं ये जीने के लिये एक सहारा चाहते हैं वह सहारा इनको एक समाज व सरकार कानून बनाकर ही दे सकती है।

किन्नर रूप में जन्मे बालक को सर्वप्रथम अपने परिवार द्वारा विस्थापित किए जाने का दंश भोगना पड़ता है। शारीरिक विकलांग अगर कोई बालक हो तो माता-पिता उसकी चिकित्सा के लिए धन-दौलत व्यय करने तथा अन्य प्रयास भी करते हैं और किन्नर बालक को निर्ममतापूर्वक त्याग देते हैं। सिमरन बालिया कृत "अपने घरौंदे की तलाश" में सिमरन कहती है कि-"मेरा एक ही सपना है। मेरा अपना घर हो। छोटा सा घर हो। साफ-सुथरा घर हो। कब तक किराये के घरों में रहूँ। अपने घर में रहकर कोई व्यवसाय करूँ। कब तक बधाई गाकर या भीख माँगकर जी सकूँगी? लेकिन यह सपना कब पूरा होगा नहीं जानती। जितनी हमारी ज़िंदगी कठोर होती है उतनी ही हमारी किस्मत।"12

सिमरन अपने माता-पिता की प्रथम संतान थी। अत्यंत प्यार-दुलार में नर और नारी दोनों दृष्टियों से उसके अपूर्ण शरीर व जैविक विकलांगता की ओर उनका ध्यान ही नहीं गया लेकिन धीरे-धीरे उसकी विशिष्ट चाल, स्त्रियोचित रुचियाँ- सजना, घर का काम, मर्दानी आवाज़ उसे सामान्य से पृथक कर देती थी। बचपन में लड़के उसको छक्का कहकर चिढ़ाते थे जो उसकी बालबुद्धि से दूर था, आठ वर्ष की आयु में ही साथ वालों की कुत्सित दृष्टि व व्यवहार से वह सोचती कि मैं क्या हूँ?

माता-पिता तथा छोटे भाई-बहनों से असीम प्रेम होने के कारण सिमरन परिवार में मिलने वाले तिरस्कार और प्रताड़ना को सहती रहती थी। छोटे भाई दुष्ट और उत्पाती थे। माँ सिलाई करने के बाद भी क़र्ज़ लेने की आदी थी और काम छूटने, पीने-पिलाने के आदी पिता का लाड़ अब मारपीट में बदल चुका था। बड़ी संतान होने के कारण सिमरन सबके प्रति स्वयं को उत्तरदायी मानती थी। उसने अपने साथ होने वाले दुर्व्यवहार को बार-बार दूतेला। माँ की निर्ममता सिमरन के मन की अस्तित्व की शंका को उभारती है। अपनी माँ को अन्य लोगों की माँओं की अपेक्षा ममत्वहीन पाकर वह हिल जाती है क्योंकि उसकी माँ उसके घर से निकल जाने पर कभी न तो मिलने ही गई न ही कभी उसके हाल चाल पूछने फ़ोन किया, कभी फ़ोन भी करती तो वह पैसे माँगने के लिये और तुरंत काट देती।

सिमरन- "मैंने अपने दर्द को पंक्तियों में कुछ इस तरह उकेरा है- "किन्नर हूँ मैं / किन्तु प्रकृति के पास हूँ / जन्म नहीं दे सकती हूँ मैं / किन्नर हूँ मैं। / किन्तु पुरुषार्थ के पास हूँ / भले कोमल है हृदय मेरा / किंतु अवसर दे के देखो / रण में विजय पताका लहरा सकती हूँ मैं / किन्नर हूँ मैं।"13

सिमरन अपने घरौंदे की तलाश करती है कि उसका इस समाज में क्या अस्तित्व है हम स्त्री और पुरुष का ही अंश है और वही लोग हमें अपना नहीं पाते।

निकर्ष- यह सच है कि पिछले कुछ वर्षों में दुनियाभर में किन्नरों के प्रति लोगों के नजरिये में बदलाव आया है, परन्तु भारतीय परिवेश में आज ज़रूरत एक ऐसे व्यापक कानून की है जो इनके मानवाधिकारों की रक्षा कर सके। आमजन को समाज में प्रचलित पूर्वाग्रहों व मान्यताओं से बाहर निकलकर किन्नरों के प्रति अपनी मानसिकता को बदलना होगा। किन्नर समाज शुरू से ही हमारी संस्कृति का एक अभिन्न हिस्सा रहा है और यहाँ अपनी लोक परम्परा का निर्वहन करता आ रहा है।

000

संदर्भ -

1. थर्ड जेण्डर और साहित्य, डा. एम फिरोज़ खान, विकास प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2018, पृ. स. 10, 2. वही, पृ. स. 10, 3. थर्ड जेण्डर और भाषावैज्ञानिक अध्ययन, राजकुमार, विकास प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2019, पृ. स. 30, 4. थर्ड जेण्डर और साहित्य, डा. एम फिरोज़ खान, विकास प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2018, पृ. स. 12, 5. वही, पृ. स. 12, 6. वही, पृ. स. 13, 7. थर्ड जेण्डर और भाषावैज्ञानिक अध्ययन, राजकुमार, विकास प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2019, पृ. स. 32, 8. जिन्दगी की दास्तान, विद्या राजपूत, रवीना बरिहा, विकास प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2021 पृ. स. 35, 9. वही, पृ. स. 60, 10. बंद गली से आगे, संपादक जी. पी. वर्मा, विकास प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2021, पृ. सं. 26, 11. वही, पृ. स. 35, 12. वही, पृ. स. 40, 13. वही, पृ. स. 50

(शोध आलेख)

अल्पना मिश्र के उपन्यास 'अस्थि फूल' में आदिवासी अस्मिता और प्रतिरोध का स्वर

शोध लेखक : शुभांगी सोनी, शोधार्थी, हिन्दी विभाग, राजस्थान केंद्रीय विश्वविद्यालय, अजमेर

शुभांगी सोनी
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
राजस्थान केंद्रीय विश्वविद्यालय
अजमेर, राजस्थान
मोबाइल- 6377457849
ईमेल- sonishubhangi11@gmail.com

शोध सारांश -आदिवासी आज भी अपनी लोक संस्कृति और परंपराओं से विच्छिन्न नहीं हैं और ना ही आधुनिक चकाचौंध से विचलित होते हैं। एक उत्तरदायी व्यवस्था से अपेक्षित तो यह था कि इनके विकास के लिए अतिशय संभावनाओं के स्रोत स्थापित होने चाहिए थे किन्तु खेद है कि ये आदिवासी आज भी विस्थापित, सुविधाओं से वंचित, समाज से त्याज्य और विकास की संभावनाओं से बेदखल अपने जीवन की सुरक्षा हेतु भी मोहताज हैं। जल, जंगल, ज़मीन के साथ-साथ इनकी सुरक्षा भी राजनीतिक अधिकारियों के हत्थे चढ़ गई। आदिवासी स्त्रियाँ भी आदिवासियों के निवास की ज़मीन की भाँति हथियाने की वस्तु बन गईं। प्रश्न उठता है कि विकास के नाम पर अपने पैतृक क्षेत्रों से बेदखल कर दिये जाने वाले आदिवासियों का ठौर कहाँ होगा? चूँकि यह दौर भारतीय समाज, साहित्य और राजनीति में उत्पीड़ित अस्मिताओं के मुक्तिकामी संघर्ष का दौर है। अत: वर्तमान समय में आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व के गहराते संकट के साथ प्रतिरोध के स्वर भी तेज़ हुए हैं।

बीज शब्द : आदिवासी अस्मिता, मुख्यधारा अथवा दिकु, विस्थापन, हाशिये का समाज जनांदोलन।

आदिवासियों में स्त्री-पुरुष, जाति-पाति में कोई भेदभाव नहीं किया जाता। तो प्रश्न उपजता है कि फिर आदिवासी संघर्षरत क्यों है? क्यों उनकी जीवन अस्मिता और अस्तित्व को बचाने हेतु प्रतिरोध के स्वर की आवश्यकता पड़ी और किस व्यवस्था के ख़िलाफ़? गंगा सहाय मीणा ने इस संदर्भ में आदिवासी साहित्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, "आदिवासी साहित्य अस्मिता की खोज, दिकुओं द्वारा किए गए और किए जा रहे शोषण के विभिन्न रूपों के उद्घाटन तथा आदिवासी अस्मिता एवं अस्तित्व के संकट और उनके ख़िलाफ़ हो रहे प्रतिरोध का साहित्य है। यह उस परिवर्तनकामी चेतना का रचनात्मक हस्तक्षेप है जो देश के मूल निवासियों के वंशजों के प्रति किसी भी प्रकार के भेदभाव का पुरज़ोर विरोध करती है तथा उनके जल, जंगल, ज़मीन और जीवन को बचाने के हक में उनके आत्मनिर्णय के अधिकार के साथ खड़ी होती है।"1

रमणिका गुप्ता अपनी पुस्तक 'आदिवासी विकास से विस्थापन' में स्पष्ट करती हैं कि, आदिवासियों के लिए विस्थापन का संकट आज की समस्या नहीं है अपितु इसका अस्तित्व पहले से चला आ रहा है। यदि बदला है तो इसकी रफ्तार और इसका स्वरूप। वे लिखती हैं- "आदिवासियों का पलायन और विस्थापन सदियों से होता रहा है और ये आज भी जारी है। आदिवासियों के जंगलों, ज़मीनों, गाँवों, संसाधनों पर कब्जा कर उन्हें दर-दर भटकने के लिए मजबूर करने के पीछे मुख्य कारण हमारी सरकारी व्यवस्था रही है।"2

इस उपन्यास का केंद्रीय उद्देश्य यह है कि आदिवासियों के जीवन व संस्कृति पर होने वाले अन्याय के विरुद्ध प्रतिरोध का स्वर व्यंजित हो। फिर मसला भले ही क्यों न झारखंड की नाबालिग लड़कियों को शादी के झाँसे में फँसाकर परिवार के सब मर्दों द्वारा किया जाने वाला शारीरिक अमानवीय शोषण हो अथवा देह-व्यापार में धकेल देने का मुद्दा हो या भोले-भाले आदिवासियों की जल-जंगल-ज़मीन जैसी बुनियादी आवश्यकताओं पर कब्जा करने की रणनीति में लगे राजनीतिक दलों के शूद्र स्वार्थ हों। आदिवासियों के विकास के नाम पर वोटबैंक की राजनीति पर आक्षेप करते हुए उपन्यास में दिखाया गया है- "फिकर? कौन किसकी फिकर कर रहा है? सरकार कि राजा? नेता कि दीवान? पार्टी पर पार्टी खड़ी हो जाती है। मगर फिकर करने वाला कोई नहीं बनता। सब कहते हैं– हमको झारखंड की जनता की फिकर है। हम झारखंड की जनता के लिए लड़ रहे हैं। फिर, फिर ...सब अपना घर भरने लगता है।"3

मुख्यधारा के विकसित तबके से अपेक्षित था कि अपने सादगी और पिछड़ेपन के कारण हाशिये के लोगों के विकास के लिए प्रयास कर उन्हें भी विकास के अवसर प्रदान किए जाते लेकिन हुआ इसके बिलकुल विपरीत। उन्होंने आदिवासियों के विकास के नहीं बल्कि उनके विनाश के स्रोत तलाश किए। जिसके परिणामस्वरूप आदिवासियों में उनके प्रति घृणा, आक्रोश

और भय व्याप्त हुआ क्योंकि इस शोषण की व्यवस्था में शोषक से रक्षक की भूमिका निभाने वाली व्यवस्था, कानून के निर्माता और संरक्षक भी आदिवासियों की संस्कृति को नष्ट करने वालों की भीड़ में सबसे अग्रिम पंक्ति में खड़े हैं- "दिकु सारे जंगल खा जाएँगे !/ सारी बस्तियाँ उजाड़ डालेंगे !/दिकु चले आ रहे हैं..../ दिकु काटते आ रहे हैं जंगल..../दिकु खोदते आ रहे हैं पहाड़ ..../दिकु उठाते जा रहे हैं हमारे बच्चे .../हमारी धरती का गर्भ.../हमारी औरतों का गर्भ लूटते जा रहे हैं..../दिकु नई तरह के हथियार लिए आ रहे हैं.../फौज, पुलिस, गुंडा, नेता.../न जाने कितने रूपों में दिकु हमें बेदखल करने बढ़े आ रहे हैं।"4 ये भयावह मानसिकता आदिवासियों में व्यवस्था के प्रति, उनकी छलावे भरी नीतियों और क़ानूनों के प्रति मोहभंग को दर्शाती है। सच्चाई यह है कि वे सरकार और व्यवस्था से महफूज महसूस नहीं कर पाते क्योंकि राजनीति के स्वार्थों, वोटबैंक की छलावे भरी नीतियाँ, सांप्रदायिकता और उदारीकरण ने आदिवासियों को ओर भी अधिक उपेक्षित और अपने लाभ के उपकरण के रूप में बदल डाला है।

डॉ. अर्जुन चव्हाण की पुस्तक 'विमर्श के विविध आयाम' में आदिवासी जीवन के इस आर्थिक विवशता के संकट को स्पष्ट किया गया है- "पहले हम चोरी का चीज़ है, नहीं जानता था, भीख कब्भी नहीं माँगा, इज्जत कब्भी नई बेचा, आज हम सब करता।"5 जिसमें आदिवासी आर्थिक विवशताओं और गरीबी, अशिक्षा के कारण कुछ पैसे के बदले अपनी बेटियों का विवाह के नाम पर कुछ कोड़ियों के बदले सौदा कर देते हैं। हरियाणा के सामंती मानसिकता के लोग विवाह जैसे पवित्र रिश्ते की आड़ में उस स्त्री को परिवार के जितने भी पुरुष हैं उन सबकी शारीरिक हवसपूर्ति का साधनमात्र समझते हैं। उसे मात्र 'मोल की बहू' अर्थात मूल्य देकर खरीदी गई वस्तु समझा जाता है। पितृसत्तात्मकता की इस पाशविक मनोवृत्ति पर उपन्यास के जरिये लेखिका प्रहार करते हुए कहती है- "भेड़िया आदमी के भीतर दाखिल हो गया है.....साँप आदमी के भीतर रेंग रहा है....लोमड़ी आदमी के भीतर ....आदमी के भीतर ही बाघ अपने पंजे पैने कर रहा है .....जल, जंगल, ज़मीन की रक्षा में सदियों से लगे आदिवासी भाग रहे हैं ....जंगल खाली हो रहा है।"6 मनुष्य अपने आर्थिक, सामाजिक स्वार्थों की पूर्ति में समस्त मानवीयता और प्रकृति के प्रति पाशविक मनोवृति से ग्रस्त हो गया है।

'अस्थि फूल' उपन्यास में आदिवासियों के समूचे संघर्ष के साथ स्त्री जीवन की त्रासदियों की अनगिनत कहानियों को भी आवाज़ प्रदान की गई है। जिनमें इनारा, पलाश, चंदा, पिंकी, मणिमाला की पीड़ा को अभिव्यक्त किया गया है। आत्मनिर्भरता के लिए बाहर की दुनिया में आना उस औरत के लिए कितना अभिशप्त अनुभव बन जाता है, उसकी क्षोभभरी वेदना का चित्रण करते हुए लेखिका लिखती है- "जब तक औरत अपनी ज़मीन पर है, अपने जंगल के साथ है तब तक मानुष है, तब तक लड़ने की ताकत है उसमें, लेकिन वही औरत शहर में आकर सिर्फ जिस्म बनकर रह जाती है। शहर हमारी कब्रगाह है– इतनी मज़बूत है यहाँ की कैद कि इसमें से निकलना मुश्किल। कैसे निकले? जूझते-जूझते ही ख़त्म हो जाते हैं।"7

आदिवासी स्त्रियाँ जिनकी देह तो देह, उनका गर्भ भी विक्रय की वस्तु बना दिया जाता है। इससे भी अधिक यातनापूर्ण होता है कि यदि गर्भ में लड़की है तो उस गर्भ को गिरा दिया जाता है। आदिवासी स्त्री की पीड़ा को अभिव्यक्त करती हुई लेखिका लिखती है कि- "अपने गर्भ पर स्त्री का कोई अधिकार नहीं, ठीक वैसे ही जैसे आदिवासियों को उनके उन जंगलों की सम्पदा पर कोई अधिकार नहीं, जिन्हें वे जाने कितनी पीढ़ियों से अपना घर मानते आए हैं। स्त्री गर्भ यहाँ पृथ्वी के भीतर छिपी खनिज सम्पदा के दोहन का रूपक बनकर आता है।"8 वीभत्सता और कुत्सा का चरम यह होता है कि अपने अंश के प्रति समस्त आत्मीयता, वात्सल्य के भाव को रौंदकर अपने ही गर्भ के अंश को ख़ुद ही किसी नाले में फेंककर आना- "पॉलिथीन में भर कर बाँधना है / पॉलिथीन को नाले में फेंकना है.... नए भविष्य की मृत्यु पर चुपचाप विलाप करना है.....नए भविष्य की मृत्यु को चुपचाप नाले में फेंक कर आना है....।"9 एजेंसियाँ, संगठन नारी निकेतन जैसी संस्थाओं की वास्तविकता को भी लेखिका ने बेबाकी से बयान किया है।

'अस्थि फूल' उपन्यास में लेखिका ने जनांदोलनों के नाम पर आदिवासियों की ज़मीनों को हड़पकर उन्हें उनकी ज़मीनों से विस्थापित करने हेतु नक्सली करार कर दिया जाता है अथवा जेल में डाल दिया जाता है या मार दिया जाता है। सरकार, उद्योगपति, संस्थाएँ अपने स्वार्थों के लिए किए गए गैर-कानूनी कार्यों को छिपाने के लिए बेकसूर आदिवासियों को अपराधी बना दिया जाता है- "कौन थे ये गाँव के लोग? / खेतिहर किसान? / जिनकी जमीनें सरकार ने कारख़ाना लगाने के लिए ले ली थीं। /दिनभर की मेहनत मजदूरी कर के, खाना खाकर बस अभी सोये थे कि ..../ नक्सली बताए गए !/ कौन थी चन्दा? /बीजू के प्रेम में डूबी, सवाल पर सवाल पुछती बीजू के साथ एक सुंदर दुनिया रचने भाग आई थी?/ जो दो छोटे बच्चों की माँ थी? / जो फूल की एक-एक पंखुड़ी बचा-बचा कर धरती पर पाँव धरती थी!/ पुलिस फाइल में थी – सबसे बड़ी नक्सली – चंदा!"10 इस प्रकार आदिवासियों की सादगी और भोलेपन एवं श्रमशीलता को भी तबाह कर दिया जाता है।

'अस्थि-फूल' आने वाली पीढ़ी के भविष्य के प्रति जागरूक करता है। इस उपन्यास में प्रकृति व स्त्री के अनवरत विनाश की गति को देखते हुए वर्तमान स्थिति का चित्रण मिलता है जिसमें भविष्य के अंधकार ग्रस्त होने के ख़िलाफ़ चेतावनी दी गई है—"क्या दरख्त भी मादा होते हैं ?/क्या इसीलिए वे मिटाए जा रहे हैं ?/दरख्तों के लगातार कटने के बाद एक दिन दुनिया में जंगल नहीं बचेंगे !/मादा भ्रूणों के नष्ट होते रहने के बाद एक दिन नहीं बचेगी पृथ्वी !/ कायनात नहीं बचेगी !"11 आदिवासियों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति वर्तमान समय में अत्यंत चिंता का विषय बनती जा रही है।

रमणिका गुप्ता आदिवासियों की आर्थिक विवशताओं के कारणों का परीक्षण करते हुए लिखती है—"जंगल माफिया कीमती पेड़ उनसे सस्ते दामों पर खरीदकर ऊँचे दामों दामों पर बेचता है और करोड़पति बन जाता है। पेड़ काटने के आरोप में आदिवासी दंड भरता है या जेल जाता है। सरकार की ऐसी नीतियों के कारण आदिवासी ज़मीन के मालिक बनने के बजाय पहले मज़दूर बने फिर बंधुआ मज़दूर।"12

लगातार होते विस्थापन और नक्सलवाद की आड़ में आदिवासियों की होती हत्याओं के बाद भविष्य में देश की उजाड़ दशा और विलुप्त होती मानवता की बदहाली का चित्रण पलाश कहती है "आदमी जिएगा तो गाँव जिएगा। बिना आदमी के क्या देस।"13

आदिवासी जीवन में बाल जीवन, युवा पीढ़ी से विकास के कोई सपने नहीं सँजोये जाते क्योंकि उनके पास न शिक्षा का अधिकार है और न ही अवसर। देश की व्यवस्था में देश का भविष्य बिक रहा है, देश का आधार, युवा बिक रहा है और सबसे महत्त्वपूर्ण इसके सपने नष्ट हो रहे हैं। उनके ढहते, चरमराते और उनके विनाश के गर्त में बिकते जीवन के दर्द को बयान किया गया है- "हमें बचपन में स्कूल में बहिन जी ने बताया था कि बच्चे देश का भविष्य हैं, कौन से बच्चे ? यह नहीं बताया? बच्चे अगर मंडी में पहुँचाए जा रहे हैं तो कौन सा भविष्य है ये ?"14 पाश की एक अपूर्ण कविता का अंश यहाँ सच होता दिखाई देता है जिसमें वे कहते हैं (मेहनत की लूट सबसे खतरनाक नहीं होती / पुलिस की मार सबसे खतरनाक नहीं होती/ गद्दारी और लोभ की मुट्ठी सबसे खतरनाक नहीं होती .....सबसे खतरनाक होता है, हमारे सपनों का मर जाना)। आदिवासी जीवन व्यवस्था में शिक्षा के संबंध में आने वाली चुनौतियों के संदर्भ में रमणिका गुप्ता ने 'आदिवासी लेखन एक उभरती चेतना' में चिंतन स्पष्ट किया है कि- "भौतिकवाद में बदलते परिवेश में आदिवासियों को अपनी मातृभाषा में प्राथमिक स्तर से शिक्षा सुनिश्चित करनी चाहिए। .....उसी में शामिल है आदिवासी भाषाओं को रोज़गार से जोड़ना, बाहरी तत्वों द्वारा उनकी संस्कृति में हस्तक्षेप पर रोक लगाना और उनकी संस्कृति को तार-तार होने से बचाना।"15

आदिवासियों में सरकार और व्यवस्था की खोखली योजनाओं के ख़िलाफ़ मोहभंग की मानसिकता का पता चलता है जिसमें वे अपना सर्वस्व खो देने के भाव से निराश होकर कहते हैं "कैसा भोला विश्वास था कि सब बदलेगा, सब ठीक होगा .....इंसानियत पर कैसा भरोसा था..... सरकार से उम्मीद थी .....समाज की तरफ आँख लगी रहती थीं.....कि बदलेगा .....न्याय-अन्याय की पहचान ज़रूर होगी .....बंद होगा यह कत्लेआम .....लेकिन नहीं, हमें धोखा हुआ है – यह समाज लंगड़ा हो चुका है – इसका खून नहीं खौलता – सरकारें अंधी-बहरी हो चुकी हैं- इनके मुँह आदमी का खून लग गया है, अरे इतने नौजवानों की मौत किसका दिल न दहला देगी ! इतने उजड़ते घर – इतनी औरतों की खरीद-फरोख्त – इतने बच्चों की दुर्दशा....."16 व्यवस्था की इस उपेक्षा और विश्वासघात के बदले आदिवासी स्वयं अपनी अस्मिता और अस्तित्व के प्रति चेतनाशील हुए और इस व्यवस्था के ख़िलाफ़ प्रतिरोध के स्वर को आवाज़ प्रदान की "हमें गर्भ में ही ख़त्म किया जा रहा है .....देश की सारी खनिज संपदा झारखंड के गर्भ में है। यह हमारी धरती है। इसे खोखला करके वे लोग ख़ुद मालामाल हो रहे हैं। हमें भूखों मारा जा रहा है। हम अपना हक लेकर रहेंगे।"17 भ्रष्ट शासन व्यवस्था के राजनीतिक स्वार्थों के कारणवश विस्थापित और आश्रयहीन आदिवासी अपनी अभावग्रस्त जीवन के विरोध में प्रतिकार और संघर्ष का साहस करते हैं, जो भविष्य में उनकी अच्छी दशा की संभावना को दर्शाता है।

इस उपन्यास का शीर्षक 'अस्थि फूल' कभी ना हताश होने वाले जज्बे और प्रतिकूल परिस्थितियों में भी जिजीविषा रखने की प्रेरणा देता है। अर्थात् जिसे हम मृत मान लेते हैं उसमें भी पुन: उत्पन्न होने की उत्कट जिजीविषा और जीतने का संकल्प होता है। बस ज़रूरत है एक चिंगारी की।

निष्कर्ष - अंतत: 'अस्थि फूल' उपन्यास में अल्पना मिश्र ने एक गैर आदिवासी होने के बावजूद आदिवासी संस्कृति और जीवन पर मँडराते संकट को, आदिवासियों की पिछड़ी दशा के लिए जिम्मेदार कारणों को, जन आंदोलन के यथार्थ, प्राकृतिक संपदा का अति दोहन कर धरती को खोखला बना देने की मानसिकता, विस्थापन, आदिवासी महिलाओं के ह्यूमन ट्रैफिकिंग के जाल में फँसते चले जाने की भयावह समस्या, स्वार्थी राजनीति, स्त्री-भ्रूण हत्या एवं आदिवासियों के उत्थान एवं समग्र विकास हेतु शिक्षा का महत्त्व तथा चुनौतियों को अत्यंत शिद्दत और सच्चाई, संवेदनशीलता एवं गहराई से अभिव्यक्ति प्रदान करने का प्रयास किया है।

000

संदर्भ - 1.गंगा सहाय मीना, आदिवासी साहित्य विमर्श, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, सं. 2014, पृ. 9, 2.रमणिका गुप्ता, आदिवासी विकास से विस्थापन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2018, पृ. 1, 3.अल्पना मिश्र, 'अस्थि फूल', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2019, पृ.164, 4.वही, पृ. 17, 5.डॉ. अर्जुन चव्हाण, विमर्श के विविध आयाम, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2008, पृ. 56, 6.अल्पना मिश्र, 'अस्थि फूल', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2019, पृ. 285, 7.वही, पृ. 175, 8.'अस्थि फूल' उपन्यास के फ्लेप से, 9.अल्पना मिश्र, 'अस्थि फूल', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2019, पृ. 180, 10.वही, पृ. 257, 11.वही, पृ. 185, 12.रमणिका गुप्ता, आदिवासी विकास से विस्थापन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2018, पृ. 12, 13.अल्पना मिश्र, 'अस्थि फूल', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2019, पृ. 139, 14.वही, पृ. 235, 15.रमणिका गुप्ता, आदिवासी लेखन एक उभरती चेतना, सामयिक प्रकाशन, सं. 2013, पृ. 89, 16.अल्पना मिश्र, 'अस्थि फूल', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2019, पृ.255, 17.वही, पृ. 22

(शोध आलेख)

मध्यकाल में संत साहित्य की भूमिका

शोध लेखक : शकीला देवी

सार

हमारे हिन्दी साहित्य इतिहास में मध्यकाल को ही भक्तिकाल कहते हैं। इसका समय 1375 ई. से 1700 ई. तक का माना जाता है। आदिकाल में लोगों का जीवन अस्त व्यस्त था। अमीर ज़्यादा अमीर, और ग़रीब ज़्यादा ग़रीब था। अमीर वर्ग के लोग गरीबों पर अत्याचार करते थे। ग़रीब तबके वर्ग के लोग इसे अपनी किस्मत समझकर सहन कर लेते थे। लोगों में अंधविश्वास की भावना थी जिसका फायदा पुरोहितों ने उठाया। ग़रीब लोगों का धार्मिक शोषण किया। धीरे-धीरे समाज सुधारक आए और लोगों में जागरूकता लानी शुरू की। मध्यकाल में अनेक वंशों ने शासन किया जैसे पाल, प्रतिहार, गुलाम वंश, खिलजी वंश समकालीन धार्मिक आन्दोल भी हुए। इस आन्दोलन में कबीर दास रैदास दास, मीराभाई गुरुनानक देव ने अहम् भूमिका निभाई, इस समय बाहरी धर्म का भी आगाज़ हुआ। मुस्लिम शासक के साथ मुस्लिम धर्म का आगाज़ हुआ भारत में अनेक धर्मों के लोग रहते हैं। भक्तिकाल से पहले हमारे धर्मों में अनेक कुरीतियाँ आ गई। लोगों का धर्म से विश्वास उठने लगा। उच्च वर्ग ने धर्मों का विभाजन करना शुरु कर दिया। तभी भक्तिकाल का उदय हुआ। संतों ने लोगों को जागरूक किया। संत काव्यधारा के कवियों ने लोगों को बताया कि हिन्दू और मुस्लिम धर्म अलग- अलग नहीं हैं संतों ने बताया कि मानव धर्म ही सब धर्मों का सार है। लोगों ने अपने फायदे के लिए अलग-अलग नाम से धर्म का विभाजन किया है। संतों ने अपने साहित्य में भी लोगों की भाषा का प्रयोग किया। साहित्य का विषय भी समाज को रखा। मध्यकाल में संत साहित्य ने लोक मंगल की अवधारणा को स्थापित किया। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने हिन्दीसाहित्य को तीन भागों में बाँटा - आदिकाल 2. मध्यकाल 3. आधुनिककाल। मध्यकाल लगभग भक्ति आन्दोलन का ही दौर रहा। भक्ति

शकीला देवी
द्वारा - श्री रामनरेश
मकान नंबर 210, पुलिस लाइन,
फतेहाबाद (हरियाणा) 125050
ईमेल- ramnareshbishnoi1885@gmail.com

आन्दोलन के अखिल भारतीय प्रसार में संतों और उनके साहित्य ने अहम भूमिका निभाई। इन्होंने सिद्ध किया कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। साहित्य समाज को अपने सही रूप से रूबरू करवाता है। साहित्य समाज को केवल आईना ही नहीं दिखता बल्कि उसे प्रगति के पथ पर भी अग्रसर करता है। मध्यकाल को भक्तिकाल के नाम से डॉ. रामचन्द्र शुक्ल ने नवाजा। भक्तिकाल में कवि के साथ कवयित्री की भी अहम् भूमिका रही है। भक्तिकाल में कबीर, गुरु नानक, मलूक दास, दादू दयाल जैसे कवि हुए तो मीरा बाई, दयाबाई, सहजाबाई जैसी कवयित्रियों ने भी अहम् भूमिका निभाई।

शब्दकोष - व्यक्तिवादिता, जटिलता, रहस्यमयी, कुरीतियों, प्रवर्तक, पाखंड

शोध आलेख – मध्ययुग शब्द का प्रयोगकाल के अर्थ में उतना नहीं होता जितना एक ख़ास प्रकार के पतनोन्मुख व जकड़ह हुई मनोवृति के अर्थ में होता है। 1 मध्यकाल में कवियों ने व्यक्तिवादिता का हमेशा विरोध किया और लोगों के हितों को प्रमुखता दी। मध्यकाल का दूसरा नाम भक्तिकाल है। भक्ति काल में अनेक संत कवि हुए और उन्होंने अपने अपने सम्प्रदाय की स्थापना की- रामानुजाचार्य - श्री सम्प्रदाय, विशिष्ट अद्वैतवाद, माध्वाचार्य - ब्रह्म सम्प्रदाय, द्वैतवाद, वल्लभाचार्य - रूद्र सम्प्रदाय / शुद्धाद्वैतवाद, गुरु नानक - सिक्ख सम्प्रदाय

मध्यकाल में भक्ति आन्दोलन ने भारत पर एक अलग ही छाप छोड़ी। आन्दोलन का आगाज तुर्कों के आगमन से पहले हुआ और अकबर के काल तक चला। भक्ति आन्दोलन ने मनुष्य और परमेश्वर के बीच एक रहस्यमयी संबंध स्थापित किया। संतों के सुप्रसिद्ध होने का कारण कहीं ना कहीं हिन्दू धर्म की जटिलता और उसमें आई हुई कुरीतियाँ थी। सन्तों ने लोगों को समझाया कि ईश्वर एक है। मूर्ति पूजा और ब्रह्म पूजा-पाठ एक ढोंग है। मानवता ही मनुष्य का असली धर्म होता है।

भक्ति आन्दोलन का प्रारम्भ दक्षिण भारत से हुआ। दक्षिण भारत में भक्ति आंदोलन का श्रेय आलवारों और नयनारो को दिया जा सकता है। इसके बाद शंकराचार्य, चैतन्य महाप्रभु, नामदेव, तुकाराम आदि दार्शनिक हुए। इन सभी ने लोक कल्याण की भावना से साहित्य की रचना की। 12वी. और 13वी शताब्दी में भक्ति आन्दोलन में नामदेव के साथ कबीर दास का नाम भी शामिल हो गया। सिक्ख गुरु और सिक्ख धर्म के प्रवर्तक गुरु नानक देव भी संत साहित्य के भागीदार बने। सभी संतों ने लोक मंगल की भावना से साहित्य की रचना की। इन्होंने भक्ति को लोगों के हृदय से जोड़ा। लोगों के पथ प्रदर्शक बने। मध्यकाल में संत साहित्य का लोकमंगल से गहरा संबंध था। हिन्दी शब्द सागर (आठवाँ भाग, 1971) के अनुसार लोक का अर्थ संसार, लोग, समाज, मानव जाति आदि होता हैं। लोक का अर्थ वास्तव में साधारण जनता होती है जिनकी अपनी परम्परा, अपनी संस्कृति होती है। मंगल से अभिप्राय ऐसा कार्य जो सभी को सुख दे। लोक मंगल का अर्थ होता है कि जनता की भलाई करना। लोक शब्द के बारे में डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय बताते हैं कि लोक शब्द का अर्थ उस जनसमूह से है जो किसी देश में निवास करता है। 2 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी का मानना है कि - "लोक की पीड़ा, अन्याय, अत्याचार के बीच दबी हुई आनन्द ज्योति भीषण शक्ति में परिणत होकर अपना मार्ग निकालती है और लोकमंगल और लोकरंजन के रूप में अपना प्रकाश करती है।"3

संतो ने अपनी वाणी को लोकमंगल के लिए प्रयोग किया। इन्होंने लोगों को जागरूक किया। इन्होंने लोगों को अंधविश्वास से बाहर निकालने की कोशिशकी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने कबीर दास के लिए एक बात कही थी-"कबीर ने ठीक मौके पर जनता के उस बड़े भाग को सँभाला जो नाथपंथियों के प्रभाव से प्रेम भाव और भक्ति रस से शून्य और शुष्क पड़ता जा रहा था। उनके द्वारा यह बहुत ही आवश्यक कार्य हुआ। इसके साथ ही मनुष्यत्व की सामान्य भावना को आगे करके निम्न श्रेणी की जनता में उन्होंने आत्मगौरव का भाव जगाया और भक्ति के ऊँचे से ऊँचे सोपान की ओर बढ़ने के लिए बढ़ावा दिया।"4

लोकमंगल पर तुलसीदास जी ने कहा है - "कीरति भनिति भूति भल सोई। / सुरसार सम सब कह हित होई॥

तुलसीदास जी ने लोक कल्याण की भावना से ही राम राज्य की स्थापना, शालीनतापूर्ण प्रवृत्ति और मर्यादापूर्ण जीवन जीने की बात कही है। तुलसी दास जी ने अपने साहित्य में लोक कल्याण को हीसर्वपरि रखा है। तुलसी दास जी ने एक जगह अपनी राम कथा को 'मंगल-करनि कलि-मल हरनि" कह कर सुरसरि के समान भला करने वाली कहते हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी और रामस्वरूप चतुर्वेदी ने कबीर दास को संत परम्परा का प्रमुख कवि माना है। कबीर दास ने लोगों में जागरूकता लाई। लोगों को पाखण्ड से दूर रहने के लिए कहा। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा कि"कबीर दास पहुँचे हुए ज्ञानी थे। उनका ज्ञान पोथियों से चुराई हुई सामग्री नहीं था और न ही सुनी सुनाई बातों का बेमेल भण्डार था।" कबीर दास जी घरेलू जीवन यापन करते हुए परिवार कल्याण की बात भी कही है

कबीर कहते हैं - अवधू भूले को घर लावै। / सो जन हमको भावे।। / घर में जोग, भोग घर ही में, घर ताज बन नहि जावै। / घर में जुक्त, मुक्त घर ही में, जो गुरु अलख लखावै ॥"5

इस प्रकार से कबीर दास हमेशा परिवार और समाज से जुड़े रहे हैं। संत परम्परा के कवियों ने संन्यासी जीवन पर कभी बल नहीं दिया। उन्होंनेसंसार और मानव जाति के बीच तालमेल बैठाने की कोशिश की है। समाज को सच्चाई से अवगत करवाया है। समाज को सही आईना दिखाया है। उन्होंने मानव जाति को उदाहरण देकर समझाया है कि मानवता से बड़ा कोई धर्म नहीं। परमात्मा केवल एक ही है वो हमारे हृदय में वास करते हैं। हमें उन्हें मंदिर मस्जिद में नहीं ढूँढ़ना चाहिए। कबीर दास जी ने लिखा है - "पत्थर पूजे हरि मिले तो, / मैं पूजु पहार। ताते चक्की भली, पीस

खाय संसार।"

उन्होंने लोगों को जातिवाद के बारे समझाया। मनुष्य की एक ही जाति होती है बाकी तो मनुष्य द्वारा रचाया ढोंग होता है। उन्होंने कहा हैं - जाति पूछे नहिं साधो की, पूछ लिखिए लीजिए ज्ञान। / मोल करो तलवार का, पड़ी रहने दो म्यान।।"

इस प्रकार मूर्ति पूजा, जातिवाद का संतों ने खण्डन किया। संतो ने मध्यकाल में लोगों को भविष्य बता दिया था। उन्होंने कहा कि अगर हम सब मिलकर नहीं रहेंगे, हमारी संस्कृति का पालन नहीं करेंगे तो भविष्य में ऐसा कलयुग आएगा एक बेटा माँ-बाप का सम्मान नहीं करेगा, शिष्य गुरु की महत्ता को भूला देगा। मानव को प्रेम पूर्वक रहने की सलाह दी। कबीर दास ने ढाई अक्षर प्रेम को ही प्रधान बताया - "पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुवा, / पंडित भया न कोय। / एके अक्षर प्रेम का, पढ़े सु पंडित होय।"6

ठीक इसी प्रकार मलूक दास जी ने भी हरि का भजन करने को कहाउन्होंने कहा कि ईश्वर की नज़र में हम सभी समान हैं - "हरि को भजे सो हरि को होई। हरि को ऊँच-नीच नहिं कोई।"7

इसी प्रकार गुरु नानक देव, दादू दयाल, मीरा बाई आदि ने मानवता का पाठ पढ़ाया।

भाषा - मध्यकाल में संत साहित्य में बृजभाषा, अवधी, खड़ी बोली प्रयोग ज़्यादा किया। कबीर दास की भाषा को सधुक्कड़ी भाषा कहा गया। इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि अवधी का जो रूप संतो की भाषा में मिलता है वह अपरिष्कृत नहीं है। जायसी ने अवधी भाषा को अपने साहित्य में प्रयोग करके इसके रूप में कुछ परिमार्जन किया। संत साहित्य में अवधी भाषा के साथ बात भाषा का प्रयोग भी दिखाई देता है।

संत साहित्य में संतो ने लोगों से आह्वान किया है कि गुरु की महिमा पर बल दिया, मूर्ति पूजा का खण्डन किया, अवतारवाद का विरोध किया, मोहमाया के प्रति सजगता और ज्ञान पर बल दिया। इनके साहित्य की भाषा आम लोगों की समझ की भाषा थी। इन्होंने लोगों को उदाहरण देकर समझाया कि सबसे बड़ा धर्म मानवता ही होता है। जैसे- कबीर दास जी ने कहा है कि - 'कांकर पाथर जोरि के मस्जिद लई बनाय। / ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे क्या बहिरा हुआ खुदाय !!"

संतों ने अपने काव्य को जानबूसकर साधारण भाषा में लिखा ताकि आम जन को समझ आ सके। इन्होंने साथ स्वाभाविक रसों का प्रयोग किया। इन्होंने परमात्मा का वर्णन अद्भुत रस में किया है। शांत रस का प्रयोग भी किया है। भाषा के विषय में आचार्य हमारी प्रसाद द्विवेदी जी ने कबीर को 'वाणी का डिक्टेटर'कहा है। संत कवियों की भाषा को 'खिचड़ी भाषा और सुधुक्कड़ी भाषा'कहा गया। इनकी भाषा प्रभावशाली भाषा होने के साथ-साथ सहज और सरल थी। मध्यकाल में संतसाहित्य की वजह से भक्तिकाल को स्वर्णकाल कहा गया।

निष्कर्ष - इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि मध्यकाल को भक्तिकाल कहना सही है। संत साहित्य के कारण ही भक्तिकाल को स्वर्णकाल कहा गया। इन्होंने अपने साहित्य का विषय समाज को रखा। इन्होंने आम जनता के दिलों में जगह बनाई। इन्होंने लोगों में जागरूकता लाने का काम किया। मानवता का पाठ पढ़ाया। इन्होंने लोगों को समझाया कि हिन्दू मुस्लिमभाई-भाई है। मनुष्यकी पहचान उसके गुणों से होनी चाहिए न कि जाति से।

000

सन्दर्भ -

1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : मध्यकालीन धर्म साधना, 2. कृष्ण देव उपाध्याय : लोक संस्कृति की रूपरेखा, 3 सं. धनंजय वर्मा : लोकमंगल (आचार्य रामचंद्र शुक्ल की आलोचना), 4. आचार्य रामचंद्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, 5. हजारी प्रसाद दिवबेदी : कबीर, 6. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध ' :कबीर वचनवली, 7. रामविलास शर्मा : भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश, 8. कबीर ग्रन्थावली, डॉ. श्याम सुन्दर दास,

9. https://hi.m. wikipedia.org,

10.https: // hindishala.in

नई पुस्तक

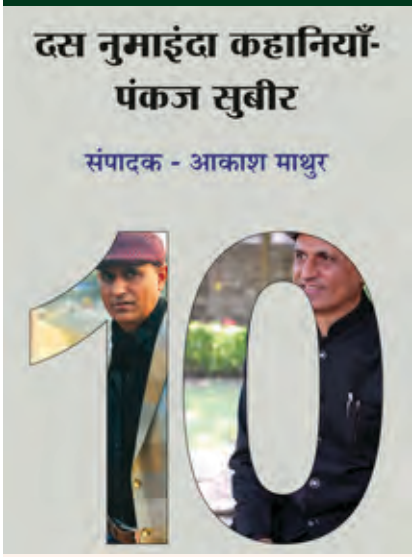

(कहानी संग्रह)

दस नुमाइंदा कहानियाँ

संपादक : आकाश माथुर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

कथा सप्तक श्रृंखला की सफलता के बाद शिवना प्रकाशन ने दस नुमाइंदा कहानियों के नाम से एक और नयी सीरीज़ शुरू की है। इस श्रृंखला की पहली किताब के रूप में कथाकार पंकज सुबीर की कहानियों का संकलन प्रकाशित होकर आया है। इस किताब का संपादन पत्रकार, कथाकार आकाश माथुर ने किया है। संग्रह में पंकज सुबीर की चर्चित दस कहानियों को शामिल किया गया है। इनमें पंकज सुबीर की चर्चित कहानियाँ- चौथमल मास्साब और पूस की रात, महुआ घटवारिन, चौथी पाँची और छठी कसम भी शामिल हैं। संपादक आकाश माथुर अपने संपादकीय में लिखते हैं- 'पंकज सुबीर को क़िस्सागो शैली का माहिर माना जाता है। इस संग्रह की कहानियाँ भी उसी शैली में लिखी गई हैं। इसमें से कई कहानियाँ उनके शुरुआती दौर की कहानियाँ हैं, लेकिन तब भी उनकी कहानियों में क़िस्सागो शैली दिखाई देती है। रोचक घटनाओं पर दिलचस्प संवादों के ज़रिये वो जब लिखते हैं, तो उसमें कुछ ख़ास होता है, जो पाठक को पकड़ लेता है।'

000

(शोध आलेख)

भूमण्डलीकृत हिन्दी कविता में दलित चिंतन

शोध लेखक : संतोष कुमारी

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध से लेकर वर्तमान तक रंग भेद नस्ल को लेकर आन्दोलन चलते रहे। दलित अस्मिता ने अपने निर्माण काल में इस अन्तर्राष्ट्रीय परिघटना के साथ ख़ुद को जुड़ा पाया है तो यह स्वाभाविक ही है। समाज सुधारकों ने अस्पृश्यता को दास प्रथा के भी अमानवीय घोषित किया है। भूमंडलीकरण के दौर में दलित अस्मिता के प्रश्न के अन्तर्राष्ट्रीयकरण की प्रवृत्ति देखी जा सकती है। विवेक कुमार जैसे युवा समाज शास्त्री दलित डायस्पोरा की चर्चा करते हुए लिखते हैं- 'भूमंडलीकरण के बदलते हुए परिवेश में दलितों ने भी अपने लिए कुछ सकारात्मक ढूँढ़ लिया है। इंटरनेट तथा सूचना क्रांति के माध्यम से दलितों ने प्रवासी भारतीयों को खोजा है। दक्षिण एशिया, दक्षिण अफ्रिका, वेस्ट इंडीज, यूरोप, अमेरिका आदि अनेक उपमहाद्वीपों में बसे अप्रवासी भारतीय दलित जिन्हें हम दलित डायस्पोरा के नाम से भी प्रकार सकते हैं, आज इन्हीं माध्यमों से अपने आपको जुड़ा पाते हैं। उन्होंने इन अप्रवासी भारतीयों के सहारे मलेरिया, लंदन बैंकूवर तथा अमेरिका में कई अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन भी आयोजित कर अप्रवासी दलित भाइयों में एकता स्थापित की है।'1 भूमण्डलीकरण- निजीकरण के दौर में कंवल भारती जैसे चिंतक दलितों के लिए कोई उम्मीद नहीं रखते हैं। वे लिखते हैं- 'भारत में आर्थिक सुधारों का पहला चरण पूरा हो चुका है जिसका परिणाम हमारे सामने है कि देश का दुनियादारी ढाँचा ओर कमज़ोर हुआ है, न कभी लोगों को शिक्षा प्राप्त हुई है, न कमज़ोर वर्गों को बुनियादी सुविधाएँ मिल पा रही हैं और यह तो विश्व बैंक की रिपोर्ट बताती है कि भारत में ग़रीबों की संख्या दो गुनी बढ़ गई हैं। इसमें 40 प्रतिशत संख्या दलित वर्गों की है जो आर्थिक सुधारों की मौजूदा राजनीतिक सत्ता में शोषण के सबसे ज़्यादा शिकार है।2

जय प्रकाश कर्दम जातीय दंश को वर्णवाद का पहाड़ा कविता में काव्य बद्ध करते हुए लिखते हैं - नहीं उठ पाए तुम अपनी / जातीय अंह मन्यता की संकीर्णता से / तुमने सुनायी हमें पेरम की कहानियाँ / सिखाया भाइचारे का सबक / जगाए तुमने राष्ट्रीयता के भाव भी / हमारे भीतर / लेकिन चूक नहीं पाए तुम / पढ़ाने से वर्णवाद का सबक।'3

संतोष कुमारी
द्वारा श्री रामपाल
गाँव व डाकघर - मोहब्बतपुर
तहसील - मंडी आदमपुर
जिला हिसार (हरियाणा) 125052
ईमेल- san9467246059@gmail.com

प्रौद्योगिकी व उद्धारतावाद ने दलितों की प्रताड़ना में वृद्धि ही की है। आरक्षण की बात की जाए तो सरकार ने सरकारी नौकरियों में जो कोटा प्रणाली का प्रावधान किया है, वह सभी में नहीं है। सरकारी संस्थाओं में जो आरक्षण प्रणाली है वह पूरी तरह से लागू नहीं हो पायी है। निजी क्षेत्रों में प्रतिद्वंद्विता इतनी गलाकाटू बनती जा रही है कि यहाँ अच्छे-अच्छे प्रतिभावन भी हाँफने लगते हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ योग्यता से समझौता करने से रही क्योंकि उनका मूल उद्देश्य मुनाफा कमाना होता है। आर्थिक उदारीकरण दलित समुदाय की रोजी रोटी की समस्या को विकराल बनाता जा रहा है। अशोक भारती दलितों से आग्रह करते हैं कि वे अपने ऊपर किए जा रहे भेदभाव पूर्ण व्यवहार को पहचाने तथा अपने अधिकारों के लिए कमर कस लें। अधिकार डब्बा पीटकर या तसला बजाने से नहीं मिलते। अशोक भारती लिखते हैं - सिर पर दुनिया का गू-मूत उठाने वाले / बलशाली हाथों से झाड़ू ले कूड़ा उठाने वाले / काश तूने उस कूड़े को हटाया होता - / जो तेरी कौम को कूड़ा बनाता हैं।'4

भूमण्डलीकरण में जाति वर्ग और नस्ल भेद राजनीतिक संघर्ष के संगठनिक परिणाम अलग और स्वायत पहचान के बरबस कुछ व्यक्तियों के चमकने के सन्दर्भ में सकारात्मक ज़रूर कहे जा सकते हैं लेकिन ज़मीनी हकीकत पर इनके शोषण के नए तरीके तलाश कर लिये गए हैं। वर्तमान हिन्दी कविता मनुष्य में मनुष्यता की तमीज़ की कविता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी कविता 'श्रेष्ठ में ब्राह्मणों के मुख से जन्मने की बात पर आश्चर्य करते हैं - ताज्जुब है ! / मनुष्य का जन्म तो होता है / सिर्फ माँ के गर्भ से / फिर आप कैसे पैदा हो गए / ब्रह्मा के मुख से ?

आज की दलित कविता में सामाजिक उत्पीड़न से उपजा विद्रोह और आक्रोश है। दलितों की छटपटाहट और समाज में उनके साथ असमान व्यवहार के प्रति विद्रोह की चिनगारी से अपमान को ध्वस्त करने की प्रतिबद्धता है। दलित रचनाओं में दबी-कुचली मौन ज़िंदगी को मुखरता का नया प्राणयाम मिलता है। इनमें एक जाति समूह के अनुभव की प्रामणिकता है, उनकी अस्मिता की पीड़ा और ललकार है, कटुता है, आक्रामकता है, अस्वीकार है, क्षोभ है, सीधा तर्क है, खण्डन-मण्डन है और एक नया तेवर है। दयानंद बरोही की कविता याद आती है जिसमें मानवता, समता, बंधुता का पाठ पढ़ाने वाले शिक्षा संस्थनों में भी जातिगत संकीर्णता बनी हुई हैं - अब दान में अँगूठा माँगने का साहस कोई नहीं करता / प्रैक्टीकल में फेल करता हैं / प्रथम अगर आता हूँ तो छठा या सातवाँ स्थान देता है।

अंबेडकर ने गाँव को जाति भेद के कारखाने कहा था। विकास की ऊँची सीढ़ी चढ़ने के बावजूद समाज पुरानी दकिया नूसी संकीर्णताओं से स्वयं को निकाल पाने में असमर्थ रहा है तथा शहरों और नगरों में आकर यह सोच कुछ स्तर तक दबी तो ज़रूर है परन्तु मौका पाते ही बलवती हो उठती है। जय प्रकाश लीलवान जाति परम्परा को कुत्सित आदर्श मानते हैं - जाति प्रथा / जिस समाज का / जिया जा रहा आदर्श / तो जाहिर है कि वहाँ / वेद-पुराण जैसे / कुत्तों की सलामती के / इतंजाम करने में ही / शासन / और समाज के बाघ / टूटकर ढेर हो जाते रहेंगे।'7

लीलवान वेद-पुराणों को कुत्ते की संज्ञा देते हैं तथा शासन को बाघ की। यह बाघ अपनी सारी ताकत कुत्तों की सलामती में ही खपाए दे रहा है। उसका सारा बल विकास के बजाय भेदभाव की वैचारिकता को टॉनिक देता है। व्यवस्था ने दलितों, शोषितों, मजलूमों को मनुष्य के रूप में कभी अपनाया ही नहीं। विकास की बेशुमार सहूलियतों से वे वंचित रहे। उनका निवाला छीनकर उन्हें दरिद्रता, अस्पृश्यता, वेदना अन्याय आदि से भरे जलते-तपते रेगिस्तान में भूखा-प्यासा तड़पता छोड़ दिया गया। शायद इसलिए जय प्रकाश कर्दम वैश्वीकृत पूँजीवाद पर प्रश्न चिह्न लगते हैं जिसमें दूधमुँह बच्चों तक को समान सुविधाएँ नहीं मिल पातीं - पिताजी ! क्यों नहीं बनाते तुम भी / मेरे लिए / इनके जैसे कपड़े / क्यों नहीं भेजते मुझको भी / इनके ही जैसे स्कूल ?8

वैश्विक दौर में सारा विश्व बदल रहा है लेकिन दलितों की दशा में कोई परिवर्तन नहीं आ रहा है। दलित वर्ग को उन्नति के मार्ग पर लाने की पहली शर्त उनके लिए शिक्षा उपलब्ध करवाना है। शिक्षा विकास के रास्तों के सारे कपाट खोलती हैं। अन्धविश्वासों, रूढ़ियों की बेड़ियों में जकड़े दलित समुदाय को प्रकाश से भर देने की वकालत करते हुए अरूण कमल लिखते हैं - उन्हें रोशनी नहीं चाहिए / एक अंधेरा जो सब अंधेरों से बड़ा और घना है / जहाँ रात ही रात है हजारों साल से / बीहड़ जंगलों / और गहरे कुओं के अंधेरे को भी / बड़ा और घना है / छोटे दिमाग़ का अंधेरा।'9

दलितों को जो आरक्षण मिल रहा है उस पर मनुवादी मानस कटाक्ष और उपदास से वार करके अपनी भड़ास निकालता है। एक नए तरह का जातीय शोषण किया जा रहा है। सूरजपाल चौहान 'कब होगी वह भोर' काव्य संग्रह की 'साजिश' कविता में एक घिनौने कृत्य का खुलासा करते हैं जिसके चलते एक दलित उम्मीदवार को कठिन प्रश्नों से, रिजर्व सीट 500 का उम्मीदवार कहवर दुत्कारा जाता है। कवि ने इस पूरे घटना चक्र का चित्र यथार्थ रूप में किया हैं - अब मेरा नंबर आया / कुर्सी पर बैठा तिलक धारी गुर्राया / नाक सिकोड़ी / फिर मुँह बिचकाया / बोला 'रिजर्व सीट...' / 'चेकोस्लावाकिया की स्पेलिंग बताना / जब तक मैं स्पेलिंग बताऊँ / उससे पहले / नॉट फाउंड सुटेबल कैंडिडेट की पर्ची / थमाते हुआ बोला - / पढ़ते लिखते हैं नहीं चले आते हैं नौकरी माँगने।'10

आधुनिक दलित रचनाकार साहित्य के ब्राह्मण विधानों-वाक्यों की रसात्मकता, कलात्मकता व अलंकरण की अपेक्षा कच्च को महत्त्व देता हैं। रचनाएँ जन भाषा में जनता से सीधे संवाद स्थापित करती है और तिरष्कृत समाज से आत्मीय संबंध बनाती हैं। दलित कविता का यह आत्म बोध इतिहास परम्परा और मिथकीय अवधारणाओं की सामाजिक-संस्कृतिक संरचनाओं से टकराकर ही

विकसित हुआ है। दलित कविता वर्तमान से मुठभेड़ ही नहीं करती वरन् वर्तमान की विसंगतियों और विडम्बनापूर्ण स्थितियों को भी उजागर करने की कोशिश करती है। वैश्विक कम्पनियाँ कुकरमुत्ते की तरह फैलकर लघु उद्योग-धंधों को लीलती जा रही है। बड़े-बड़े मॉल और शॉपिंग कॉम्पलेक्स आदि से धनाढ्य और उद्योग पतियों को अकूत सम्पति मिली है परन्तु विचारणीय है कि बड़े-बड़े मॉल्स दलित मलिन बस्तियों को उजाड़ कर बनाए जाते हैं। दलितों के गुज़र-बसर का सहारा तो छिनता ही है उनकी रोजी-रोटी पर भी लात मार दी जाती है। दलित साहित्य के आक्रोशमय रचनाकार मोहनदास नैमिशराय आर्थिक उदारीकरण से दलितों को किंचित लाभ न मिलने की बात करते हैं - वे आए / और खेतों को काटकर / ज़मीन बेचने लगे / फैक्ट्री धुआँ उगलने लगी / कंकरीट के जंगल / नर्म-नर्म छाती को छीलकर / उगने लगे / नाचने लगी भूख / उजड़ने लगे पनघट / चैपाल / बिखरने लगे कच्चे घर।'11

सर्दी-गर्मी और बरसात की परवाह किए बिना श्रमिक वर्ग हाड़तोड़ मेहनत करता है परन्तु उसका पूरा पारिश्रमिक न तो गाँव में महाजन देता है और न शहर में पूँजीपति। उसके अधिकारों की लड़ाई लड़ने का ढोंग करने वाले तथाकथित दलित नेता डॉ. अम्बेडकर की मूर्ति पर 14 अप्रैल को माल्यार्पण तो ज़रूर करते हैं परन्तु उसी मंच के नीचे बैठे दलित श्रोताओं को दुत्कारा जाता हैं। दलित वर्ग के मौलिक अधिकार कागजी हैं। यह अभी भी गुलामी और दासत्व की जंजीरों से जकड़ा हुआ लगता है। जय प्रकाश कर्दम बंधुता, समता, स्वतंत्रता का दम भरने वालों से सीधे प्रश्न करते हैं - अस्पृश्य, पशु से भी बदत्तर / निज श्वासों तक के लाले हैं / उत्पीड़न की जंजीरों में यूँ कसा-फंसा सदियों से मैं / न मुर्दा हूँ न ही जी सकता / मेरे मौलिक अधिकार कहाँ हैं ?12

वैश्वीकृत नीतियों से दलित वर्ग को कुछ विशेष लाभ मिलता दिखाई नहीं देता है। हालाँकि राजनीति में इनकी भागीदारी बढ़ी है तथा उच्च पदों पर भी इनकी उपस्थिति देखी जा सकती है। कानूनी बाध्यताएँ तथा वोट बैंक के खिसकने के डर से केन्द्रीय वर्ग ने इन्हें अपने बराबर बैठने का अवसर भी दिया है परन्तु अन्दर-अन्दर खीझ और डाह बलवली होती गई। दलित जन मानस भी प्रतिभा और सामर्थ्य के बल पर ऊपर उठने का प्रयास कर रहा है। पूर्व काल में दलितों को अशिक्षित रखकर इन पर जुल्म ढाए जाते रहे। पूँजीवादी समाज में दार्शनिक प्रवचनों तथा ग्लैमर्ड धर्म के झाँसे में फँसाकर दलित की प्रताड़ना आज तक जारी है। अपमान एवं अत्याचार को मिटाने के लिए रचनाकार सृजनरत हैं। दलित समाज अपने तिरस्कार भरे जीवन से मुक्ति चाहता है अत: चली आ रही रूढ़ियों और परम्पराओं को नकारता है। यथा स्थिति के प्रति आक्रोश और परिवर्तन में अवरोध बनने वाले कारणों के प्रति संघर्ष का रवैया दलित रचनाकार अपनाता है। सूरजपाल चौहान ख़बरदार करते हुए कहते हैं - सावधान ! / जाग रहे हैं मेरी बस्ती के लोग / वे राँपी से चमड़ा नहीं / चीर देंगे तुम्हारा पेट / और तकुए से / जुते नहीं गाँठेंगे / अब गाँठेंगी / तुम्हारी कुदृष्टि वाली आँखे।'13

दलित ने होश सँभालते ही अपने को अपमान की श्रृंखला में जकड़ा पाया। जहाँ उसके साथ शोषण की कमत्तर उम्मीद थी वहाँ भी क्रूरता मौजूदा है। भूमण्डलीय एवं वैश्वीकरण ने उसके अत्याचारों में वृद्धि की है। समकालीन दलित हिन्दी काव्य उस व्यवस्था को आड़े हाथों लेता है जो दलित को मानव से नीचे का दर्जा देती हैं। प्रतिभा, ज्ञान में प्रखर होने के बावजूद दलितों के तमाम अवसर छीनकर साधन सम्पन्न की ओर खिसका दिए जाते हैं क्योंकि वह अन्त्यज है और उसके कुर्सी पर बैठने से उच्च वर्ग को उसके तले काम करना पड़ेगा। व्यवस्था की इस कुरूपता पर दलित कवि चुप नहीं रहना चाहता।

निष्कर्षत: वैश्विक उर्वर..... माहौल के साथ संस्कृति के मलबे पर सोए दलित की पीड़ा को वाणी प्रदान करते हुए, पंक्ति में खड़े अंतिम इंसान की अनुभूतियों को अभिव्यक्ति देने के उद्देश्य से एक विशेष बौद्धिक वर्ग सामने आया है। विश्व के बदलते परिवेश में वे दलित को कहीं भी नहीं देखते हैं। दलित वर्ग में बुद्धिजीवियों द्वारा रचित साहित्य व्यवस्था के विरुद्ध, अन्याय के विरुद्ध आख्यान है। कलुषित परम्पराओं, अंधविश्वासों, पाखण्डों को समूल उखाड़ फेंकने के लिए तथा सामाजिक समता को, मानवतावादी मूल्यों को, दलित-पिछड़ों के मौन को मुखरता देना कविताओं का लक्ष्य है। समकालीन कवि दलितों को पुरानी त्रासदियों से मुक्ति दिलाना चाहते हैं। अपनी बात संयत ढंग से कहने वाले ये कवि सदियों से लाचार बेचारे लोगों को हँसता-मुस्कराता देखना चाहते हैं। मानवता को खटकने वाली वैभनस्य परिस्थितियों को परिवर्तित कर ख़ुशफहमी लाना ही रचनाकारों की प्रतिबद्धता है।

000

सन्दर्भ -

1.हंस, अगस्त 2004, पृ. 95, 2.नई शताब्दी में दलित विमर्श की भूमिका - कंवल भारती, श्याम प्रकाशन, जयपुर, 2008, पृ. 128, 3.गूँगा नहीं या मैं - जयप्रकाश कर्दम, सागार प्रकाशन, दिल्ली, 2006, पृ. 23, 4.कथादेश, फरवरी, 2008, पृ. 48, 5.अब और नहीं - ओम प्रकाश वाल्मीकि, राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 69, 6.दर्द के दस्तावेज - सं. एन. सिंह, मेघा बुक्स, दिल्ली, 2007, पृ. 10,

7.नए क्षितिजों की ओर - जयप्रकाश लीलवान, अनामिका प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 39, 8.गूँगा नहीं था मैं - जयप्रकाश कर्दम, सागर प्रकाशन, दिल्ली, 2006, पृ. 59, 9.अपनी केवल धार - अरूण कमल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999, पृ. 25, 10.कब होगी वह भोर - सूरजपाल चैहान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृ. 64, 11.आग और आन्दोलन - मोहन दास नैमिशराय, भारतीय बौद्ध महासभा, नई दिल्ली, 2000, पृ. 14, 12.गूँगा नहीं था मैं - जयप्रकाश कर्दम, सागर प्रकाशन, दिल्ली, 2006, पृ. 47, 13.क्यों विश्वास करूँ - सूरज पाल चैहान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ. 5

(शोध आलेख)

हिन्दी साहित्य में पर्यावरण चिंतन की अवधारणा

शोध लेखक : मनीष सोलंकी

मनीष सोलंकी
शोधार्थी, हिन्दी साहित्य विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)
ईमेल - Manishmali1704@gmail.com

पर्यावरण शब्द दो शब्द 'परि' तथा 'आवरण' के संयोग से निष्पनन हुआ है जिसका आशय है आस-पास का परिवेश। वर्धा हिन्दी शब्द कोश के अनुसार पर्यावरण शब्द का आशय "पृथ्वी पर संपूर्ण जड़ और चेतन पदार्थों का सम्मिलित नाम, चारों ओर की स्थिति; जैवमंडल; पारिस्थितिकी; वातावरण" है। पर्यावरण के अंतर्गत स्थल मंडल, वायुमंडल तथा जल मंडल को शामिल कर इन पर निवासरत-विचरण शील समस्त जैविक-अजैविक घटकों को मिलाकर जैवमंडल कहा जाता है।1 डॉ. प्रभाकरन हेब्बार इल्लत परिस्थिति तथा पारिस्थितिकी तंत्र को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि "परिस्थिति शब्द जीव-जन्तुओं का पर्यावरण के साथ संबंध को सूचित करने वाला शब्द है। इसके अंतर्गत प्रकृति के प्रांगण में मानव के द्वारा बनाये गए अनगिनत ढाँचे भी आते हैं। पारिस्थितिकी तंत्र एक ऐसा तकनीकी शब्द है जो किसी प्राणी के जीने लायक परिस्थिति और उसके आस-पास अन्य प्राणीजात के विविध प्रकार के जैविक-अजैविक संबंध को सूचित करता है।"2 विश्व में पर्यावरण संरक्षण के लिए चिंतन का आरंभ मूलत: औद्योगिकीकरण की उपज है लेकिन घोषित रूप से पर्यावरण चिंतन का आरंभ 1970 के दशक में आरंभ होता है जिसमें संयुक्त राष्ट्र संघ का पर्यावरण संरक्षण पर शिखर सम्मेलन 1968 में आयोजित होता है तथा 1972 में स्कॉटहोम पर्यावरण शिखर सम्मेलन आयोजित किया जाता है। धीरे-धीरे पर्यावरण संरक्षण के लिए सामान्य जन के मध्य जागरूकता लायी गई वहीं सरकारी स्तर पर कानून बनाकर पर्यावरण संरक्षण के लिए प्रयास किए जाने लगे। भारतीय संविधान के अंतर्गत अनुच्छेद 53-54 में मानव को स्वस्थ रूप से जीवन यापन करने का अधिकार दिया गया है तो अनुच्छेद 48 ए के अनुसार सरकार का यह कर्तव्य है कि वह पर्यावरण संरक्षण हेतु प्रयास करे। प्रकृति के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए तथा उसके विनाश को लक्षित कर डॉ. प्रभाकरन हेब्बार इल्लत लिखते हैं कि "प्रकृति रत्नगर्भा है। प्रकृति के विभिन्न संसाधनों का उपयोग कर समस्त जीवराशि अपना जीवन आगे बढ़ाती है। इस जगत की परमाणु से लेकर सब वस्तुएँ आपस में सुसंबंधित हैं। एक शृंखला की कड़ियों की भाँति सब इस चक्रिय गति से आबद्ध हैं। प्रकृति के ये मज़बूत संबंध मानव के विभिन्न कार्यकलापों के ज़रिये बिगड़ जाते हैं, इसका कारण भौतिक सुख-सुविधाओं को जुटाने की लोभवृत्ति है।"3 पर्यावरण संकट के प्रमुख कारकों में औद्योगिकीकरण, औद्योगिक अपशिष्ट, प्राकृतिक संसाधनों का अति दोहन, अनियंत्रित जनसंख्या वृद्धि, मानवीय आधारभूत संरचनागत ढांचे, उपभोग संस्कृति, भौतिक सुख-सुविधाओं की अनंत आकांक्षा, भौतिक यंत्र संस्कृति में वृद्धि, पेड़-पौधों, जंगल का विनाश, प्राकृतिक परिवेश में मानवीय हस्तक्षेप, जैविक विविधता पर संकट की स्थिति, कृषि के पारंपरिक तरीकों में बदलाव कर यांत्रिकीकरण तथा खाद, कीट नाशकों आदि रसायनिक पदार्थ का अतिशय प्रयोग, मृदाअपरदन, खनन कार्य तथा उससे उत्पन्न अवशिष्ट की समस्या, शहरी अपशिष्ट के निधान की समस्या, रेडियोएक्टिव पदार्थों का बढ़ता प्रयोग, बढ़ते इलेक्ट्रॉनिकवेस्ट के निधान की समस्या, नदियों के प्रदूषण की समस्या आदि शामिल है। पर्यावरण संकट तथा उससे उत्पन्न विनाश लीला के संदर्भ में के. वनजा लिखती है कि "पर्यावरण संकट मुख्यत: जैववैविध्यों का संकट और सामाजिक संकट के रूप में दृश्यमान है। औद्योगिकीकरण के बावजूद नई-नई कृषि योजनाएँ एवं नए उद्योगों के आरंभ के लिए जंगलों तथा कृषि भूमियों को तहस-नहस करने से संसार के जैववैविध्य के अधिकांश भाग गायब हो गए है। इसी वजह से प्राकृतिक संतुलन को नुकसान हुआ। अनावृष्टि, सूखा, बाढ़, भौम ताप

जैसे जलवायु में आए परिवर्तन जैववैविध्य के नाश और पेट्रोल, कोयला आदि के सीमातीत प्रयोग की उपज है।"4 बढ़ते औद्योगिक तथा तकनीकी विकास को लक्षित कर विष्णुचंद्र शर्मा लिखते हैं कि "औद्योगिक एवं तकनीकी विस्फोट के कारण जहाँ बहुमुखी विकास की संभावना के द्वार खुले हैं, वहीं विध्वंस और विनाश की आशंका भी उसी अनुपात में सिर उठाने लगी है।"5 पर्यावरण संकट के कारण ग्लेशियर का पिघलना, वैश्विक तापमान में वृद्धि तथा हरित गृह गैसों का प्रभाव, खाद्यान्न संकट, वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, मृदा प्रदूषण, ओजोन परत के क्षरण, जलवायु परिवर्तन-मौसम तंत्र में बदलाव, प्राकृतिक आपदाओं का आना, कर्क रोग-चर्म रोग आदि में वृद्धि, घरेलू तथा औद्योगिक अपशिष्ट की समस्या तथा उससे उत्पन्न बीमारियाँ, प्रदूषित जल स्रोतों से फैलती बिमारियाँ, स्वच्छ जल संकट, मरुस्थल का बढ़ता प्रसार, बढ़ता समुद्रीय प्रदूषण आदि समस्याओं से मानव अस्तित्व जूझ रहा है। औद्योगिकीकरण के कारण न केवल पर्यावरण को क्षति पहुँच रही है अपितु इससे एक साथ पर्यावरण के कई घटकों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है यथा- इनसे निकाला धुआँ, हवा में फैली राख कण तथा अति लघु धूल कण वायुमंडल को प्रदूषित करती है, इनसे निकला रासायनिक जल नदी-नालों आदि जल स्रोतों को प्रदूषित करता है, यही जल जब नदी के पानी के साथ सिंचाई में प्रयुक्त होता है तो मृदा प्रदूषण होता है, इसके अतिरिक्त औद्योगिक कच्चे माल के रूप में पेड़-पौधों को कटाना, खनन कार्य, खनन अपशिष्ट, औद्योगिक अपशिष्ट तथा मूल उत्पादन के साथ निकले अनुपयोगी उत्पादन भी इसी के कारक हैं। औद्योगिकीकरण के बढ़ने के साथ ही खनन कार्य अपनी सीमाओं को पार कर रहा है, कुछ खनिज अब केवल नाम मात्र के शेष रहे हैं। इसी से संबंधित जल का भी अतिदोहन होने से आज भूमिगत जल रहित क्षेत्र तथा फ्लोराइड युक्त जल क्षेत्र को हम यथार्थ धरातल पर देख पा रहे हैं। इसी प्रकार पर्यावरण प्रदूषण का एक और प्रधान कारक है अनियंत्रित जनसंख्या वृद्धि। उपलब्ध संसाधनों की तुलना में जनसंख्या की उक्त असाधारण वृद्धि पर्यावरण के लिए विनाश लीला बनकर प्रकट हो रही है। मानव के लिए खाद्यान्न उत्पन्न करने के लिए भी आज रसायनिक पदार्थ का अतिशय प्रयोग होने लगा है। मानव अपशिष्ट तथा मानवीय क्रियाकलापों का प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण करने की चेष्टा तथा हस्तक्षेप के कारण पर्यावरण अनियंत्रण की स्थिति में पहुँच रहा है, वैसे पर्यावरण प्रदूषण के समस्त कारकों की जड़ में मानवीय हस्तक्षेप ही प्रधान कारक है अन्य सभी कारक इसी के चतुर्दिक दृष्टिगोचर होते हैं। वर्तमान में तीव्रतम गति के साथ सड़क, पुल, रेलमार्ग, बाँध, इमारतों आदि का निर्माण मानव के आधारभूत अवसंरचनात्मक विकास के नाम पर किया जा रहा है जो कि आज किसी देश की आर्थिक समृद्धि के प्रतिमान भी है लेकिन यह कारक पर्यावरण संरक्षण के विरुद्ध है तो जल, जंगल, ज़मीन के लिए भी विनाश कारक है इससे जंगलों के विनाश, खनन तथा प्राकृतिक परिवेश में मानवीय हस्तक्षेप में वृद्धि होती है तथा कई अवसर पर मानवीय तथा अमानवीय पलायन भी देखा गया है। वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था में उपभोग की संस्कृति में अतुलनीय वृद्धि हुई हैं, इस कारण वाहनों की संख्या, वातानुकूलित परिसर, प्रशीतक यंत्र, प्लास्टिक से निर्मित पदार्थ, बढ़ते विद्युत चालित यंत्र आदि अनेक ऐसे संयंत्र तथा भौतिक उपभोग के पदार्थ का आविष्कार मनुष्य ने कर लिया है जो कि पर्यावरण को क्षति पहुँचाने में बहुत अधिक प्रभावी हो रहा है। उपभोग संस्कृति से एक ओर प्राकृतिक जीवन शैली का स्थान अधिग्रहित कर लिया है तो दूसरी ओर यह मानवीय रुग्णता में भी वृद्धि कर रहा है। कर्क रोग, मधुमेह, रक्तचाप, चर्म रोग, पेट से संबंधित बिमारियों, तनाव तथा असहनशीलता आदि में वृद्धि का कारक अधिकांश उपभोग संस्कृति है। उपभोग संस्कृति के कारण आज अनावश्यक वस्तुओं की वृद्धि हुई है जिसके कारण अपशिष्ट पदार्थ की समस्या निरंतर चरम की ओर है। मानवीय आवश्यकता में कृत्रिम वृद्धि पूँजीवादी उपभोग संस्कृति का अनावश्यक विस्तार कर पर्यावरण समस्याओं को चरम पर ले जाने के कार्य में संलग्न है। इसका एक उदाहरण वाहनों की संख्या में हुई अप्रत्याशित वृद्धि को ले सकते है। जंगलों का विनाश कर मानवीय आवास बनाये जा रहे हैं जिससे न केवल पेड़-पौधों अपितु जंगली जीवों के प्राकृतिक परिवेश में भी हस्तक्षेप किया जा रहा है। जनसंख्या वृद्धि के साथ ही कृषि उत्पाद वृद्धि की आवश्यकता महसूस की गई क्योंकि पारंपरिक तरीके की कृषि जिसमें पर्यावरण को किसी प्रकार की कोई क्षति नहीं पहुँचती थी उससे उक्त जनसंख्या की आवश्यकता की पूर्ति नहीं होने पर अधिक उत्पादन के लिए कीटनाशक का प्रयोग, रसायनिक पदार्थ का प्रयोग किया जाने लगा जो मानवीय स्वास्थ्य के लिए तो प्रतिकूल था ही लेकिन पर्यावरण के लिए भी विनाशक सिद्ध हुआ इससे जैविक क्रिया में संलग्न अनेक कीट-पतंग, खाद्यान्न पर आश्रित पक्षी, भूमि की उर्वरा शक्ति में ह्रास के साथ ही बंजर भूमि में वृद्धि आदि अनेक कारक देखे गए है। वर्तमान समय में 'वसुधैवकुटुम्बकम्' का नारा देकर विश्व ग्राम तथा विश्व परिवार की एकता की बात भले ही कि जा रही हो लेकिन सभी देशों के आपसी हित इसमें बाधक है। पर्यावरण का सर्वाधिक विनाश करने वाले देश दुनिया पर पर्यावरण संरक्षण के नियम थोप रहे हैं जबकि स्वयं परमाणु हथियार से लेकर अनेक जैव व अजैव पर्यावरण विनाशक तैयार कर मानवीय अस्तित्व को ही संकट में डाल रहे है। हथियार निर्माण, रेडियोएक्टिव पदार्थों के अपशिष्ट, इलेक्ट्रॉनिक अपशिष्ट, चिकित्सकीय अपशिष्ट, अंतरिक्ष कार्यक्रम के अपशिष्ट आदि अनेक ऐसे कारक हैं जो संपूर्ण मानव समाज के अस्तित्व को चुनौती दे रहे हैं न केवल पर्यावरण को। अत: कहा जा सकता है का जिसे आज का समाज विकास का नाम दे रहा है वह कहीं न कहीं विनाश का कारण है। बदलता मौसम तंत्र, प्राकृतिक आपदाओं की संख्या में वृद्धि, भूताप में वृद्धि, मानव की मूलभूत आवश्यकता के कारण जल, वायु,

मृदा का प्रदूषित होना तथा उनके निरंतर प्रयोग से बीमारियों-महामारियों में अप्रत्याशित वृद्धि होने को पर्यावरण विनाश के प्रत्यक्ष प्रभाव के रूप में देखा जा सकता है। पर्यावरण के इस संकट या प्रदूषण को लक्षित कर लिखा गया साहित्य पर्यावरण चिंतन संबंधित साहित्य कहलाता है। साहित्य में मूलत: इन्हीं सभी तथ्य को ध्यान में रखकर आलोचना के अंतर्गत पर्यावरण चिंतन, पर्यावरण विमर्श, पर्यावरण चेतना, पारिस्थितिकीय आलोचना, हरित आलोचना जैसे शब्द का विकास हुआ है।

हिन्दी साहित्य में पर्यावरण के एक घटक के रूप में प्रकृति का चित्रण आदिकालीन साहित्य से ही चला आ रहा है। प्रकृति का उद्दीपनकारी, आलंबनकारी तथा मानवीकरण के रूप में साहित्यिक चित्रण होता आ रहा है। वर्तमान में साहित्य में आलोचना की एक नवीन पद्धति के रूप में या अंतरानुशासनिक अध्ययन के रूप में या विमर्श वादी चिंतन के प्रभाव से साहित्य के पर्यावरण चिंतन या पर्यावरण विमर्श के रूप में आलोचनात्मक अध्ययन किया जा रहा है। हिन्दी साहित्य में अभी पर्यावरण चिंतन का आरंभिक स्वरूप सामने आया है जिसमें पर्यावरण समस्याओं पर केन्द्रित साहित्य तथा साहित्य तथा पर्यावरण के संबंध पर आधारित आलोचना लिखी जा रही है लेकिन हिन्दी साहित्य में पर्यावरण चिंतन भी अन्य विमर्श की तरह ही पाश्चात्य आलोचनात्मक मानदंड पर आधृत है।

वर्तमान में साहित्य के पर्यावरणीय चिंतन हेतु पाश्चात्य जगत में Ecocriticism शब्द ही सबसे अधिक प्रचलित है हिन्दी साहित्य में Ecocriticismके समकक्ष साहित्य में पर्यावरण चिंतन, पर्यावरण विमर्श, साहित्य की पारिस्थितिकीय आदि शब्द प्रयोग में लाए जाते है लेकिन हिन्दी आलोचक जगत इस पर अभी किसी एकमत पर नहीं पहुँच पाया है। Ecocriticismमूलत: साहित्य पाठ के माध्यम से पारिस्थितिकी तंत्र का अध्ययन है जिसमें विशेष रूप से ह्रास होते पारिस्थितिकीय तंत्र तथा उसके प्रभाव पर विचार व्यक्त किया जाता है। चेरिल ग्लोट फेल्टी लिखते हैं कि पारिस्थितिकीय आलोचना साहित्य तथा भौतिक पर्यावरण के मध्य संबंध का अध्ययन है। लॉरेंसबुएल लिखते हैं कि पारिस्थितिकीय लोचना में साहित्य तथा पर्यावरण के मध्य संबंध का अध्ययन पर्यावरणवादी भावना के प्रति प्रतिबद्धता के किया जाता है। अत: कहा जा सकता है कि जिस साहित्यिक आलोचना के केन्द्र में पर्यावरण चिंतन संबंधित साहित्य हो वह पारिस्थितिकीय आलोचना है। हिन्दी साहित्य तथा हिन्दी आलोचना में पर्यावरण विमर्श, पर्यावरण चिंतन, पर्यावरण चेतना, साहित्य की पारिस्थितिकी जैसे शब्द तो प्रचलित है लेकिन इसकी परिभाषा अभी तक नियत नहीं की गई है आलोचकों का ध्यान परिभाषा की अपेक्षा साहित्य में पर्यावरण चिंतन के अध्ययन की परिपाटी और उसके इतिहास पर अधिक रहा है। हिन्दी साहित्य में पर्यावरण केंद्रीय विषय जिसमें विशेषत: पर्यावरण के नकारात्मक प्रभाव के अंकन का चित्रण जिस साहित्य में मिलता है वह पर्यावरण विमर्श संबंधित साहित्य माना जाता है। इसी को पर्यावरण चिंतन, पर्यावरण चेतना आदि नाम से भी संबोधित किया गया है। हिन्दी साहित्य में पर्यावरण चेतना संबंधित साहित्य आदिकाल से ही लिखा जा रहा है। यह प्रकृति के नाना रूपों, प्रकृति के मनमोहक रूप, प्रकृति के प्रचंड स्वरूप में तो लिखा चला आ रहा है लेकिन पर्यावरण संकट के फलस्वरूप उत्पन्न पारिस्थितिकीय तंत्र की अव्यवस्था, पर्यावरण प्रदूषण से उपजे विनाश आदि पर समकालीन हिन्दी साहित्य की सभी विधाओं में लेखन जारी है। इस लेखन में आक्रोश का स्वर और पर्यावरण के प्रति संवेदना तो मिलती है लेकिन साहित्य के माध्यम से पर्यावरण चुनौतियों के समाधान का कोई विशेष साहित्य अभी तक नहीं मिलता है। पर्यावरण चिंतन के अंतर्गत पर्यावरण संरक्षण से संबंधित साहित्य, पर्यावरण संकट को अभिव्यक्त करने वाला साहित्य तथा उसके विभिन्न कारक, पर्यावरण संकट से उत्पन्न प्रभाव, पर्यावरण संकट से उत्पन्न प्राकृतिक विनाश तथा संभावित विनाश आदि को केंद्र में रखकर रचित साहित्य का अध्ययन किया जाता है। हाल ही में कुछ आलोचक हिन्दी साहित्य में पर्यावरण चिंतन पर केन्द्रित आलोचना के विकास के लिए अग्रसर हुए है। इनमें के.वनजा, डॉ.प्रभाकरन हेब्बार इल्लत, सुनीता नारायण, भारत डोगरे, रमेश उपाध्याय, मैनेजर पांडेय, रोहिणी अग्रवाल आदि प्रमुख आलोचक हैं। पर्यावरण केन्द्रित साहित्य लिखने वाले प्रमुख साहित्यकार ज्ञानेन्द्रपति, अरूण कमल, स्वप्निल श्रीवास्तव, उदय प्रकाश, वीरेनडंगवाल, चंद्रकांत देवताले, संजीव, वीरेंद्र जैन, नासिरा शर्मा, सुभाष पंत, रणेन्द्र, राजेश जोशी, स्वयं प्रकाश आदि प्रमुख हैं।

अत: कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य में जिस प्रकार अन्य विमर्श या वाद चले है उसी तरह पर्यावरण विमर्श या चिंतन के स्वरूप का निर्धारण अभी तक नहीं हुआ है लेकिन फिर भी इस की मूल अवधारणा को ध्यान में रखकर कविता, कहानी, उपन्यास जैसी सशक्त विधाओं में प्रधान रूप पर्यावरण संरक्षण के प्रति मानवीय दायित्व और उसके द्वारा किए गए पर्यावरण विनाश को कलमबद्ध कर सामान्य पाठक वर्ग में पर्यावरण संरक्षण की ओर ध्यान आ कृष्ट करने का प्रयास किया गया है। पर्यावरण चिंतन संबंधित साहित्य तथा आलोचना का भविष्य साहित्यिक जगत में उज्ज्वल होगा यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है।

000

संदर्भ-

1.HindiSamay.com, 2.पर्यावरण और समकालीन हिन्दी साहित्य, डॉ.प्रभाकरनहेब्बार इल्लत, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृष्ठ 16, 3.पर्यावरण और समकालीन हिन्दी साहित्य, डॉ. प्रभाकरनहेब्बार इल्लत, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृष्ठ 19, 4.साहित्य का पारिस्थितिकी दर्शन, के.वनजा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2011, पृष्ठ 100, 5.नया ज्ञानोदय, सं.लीलाधरमंडलोई, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, जून 2015 अंक, पृष्ठ 48,

(शोध आलेख)

इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कविता जनवादी अभिव्यक्ति

शोध लेखक : उर्मिला
बी.आर.पी.
खंड शिक्षा अधिकारी कार्यालय

उर्मिला
बी.आर.पी.
खंड शिक्षा अधिकारी कार्यालय
भूना (फतेहाबाद) हरियाणा
ईमेल - cuverma86@gmail.com

जन सामान्य की आशा आकांक्षा को बाजी देने का कार्य जनवादी कविता के द्वारा होता आया है। कवि का संवेदशील हृदसय सामाजिक विसंगति, आर्थिक विषमता, राजनीतिक भ्रष्टाचार, शिक्षा का अभाव और सांस्कृतिक अवमान को देखकर व्याकुल हो जाता है। इक्कीसवीं सदी के जनवादी कवियों ने कविता के साधन से व्यवस्था में परिवर्तन लाने की कोशिश की हैं। "जनवादी कविता इस जनता की ज़िंदगी को उसकी समग्रता से प्रस्तुत करती है और अपने इसी व्यापक जनाधार के कारण किसी भी समय तथा किसी भी युग में शासक वर्गों के समक्ष चुनौती के रूप में प्रस्तुत होती है।"1 इसका लक्ष्य दमनकारी व्यवस्था को नज़र करना है। सामंतवाद, साम्राज्यवाद, पूँजीवाद और वैश्वीकरण ने जनता को खोखला बना दिया है। जनता का जनतंत्र से विश्वास उठ गया है। सामान्य जनता, किसान, मजदूर, स्त्री आदि का शोषण हो रहा है। इस शोषण का चित्रण जनवादी कविता का मूल प्रति पाद्य है। डॉ. अरुणा लोखंडे के अनुसार- "जन साहित्य या जनवादी साहित्य उसी को कहा जाना चाहिए जिसमें बहुसंख्यक मज़दूरों, निम्न मध्यम वर्ग के लोगों की समस्याओं का चित्रण किया गया हो।"2

अंग्रेजी के 'डेमोक्रेसी' के लिए हिन्दी में जनतंत्र, प्रजातंत्र, लोकतंत्र, गणतंत्र आदि शब्दों का प्रयोग होता है। "जनता के द्वारा, जनता के लिए चलाया जाने वाला शासन जनतंत्र है।" जनवाद में जनता का हित महत्त्वपूर्ण है। इस विषय में अब्राहम लिंकन कहते हैं- 'उन्होंने जनवाद को एक जनतांत्रिक व्यवस्था माना है। उन्होंने इस जनवादी व्यवस्था को जनता का जनता द्वारा जनता के लिए बताया है।" 3

लोक मंगल की भावना से प्ररित साहित्य की जनवादी साहित्य है। भारत जनतंत्र देश है। इक्कीसवीं सदी में यहाँ का तंत्र कुछ स्वार्थी लोगों के हाथ में चले जाने से जनता की हालत दयनीय होती गई है। जहाँ राजनीति शिथिल, अपाहिज और व्यक्तिगत स्वार्थ का साधन बन जाती है वहाँ सामाजिक उन्नति का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। देश में भूखमरी, बेकारी, महँगाई, अकाल, दरिद्रता जैसी समस्याओं ने गंभीर रूप धारण किया था। ऐसी स्थिति में जनवादी कवि का स्वर उभरना स्वाभाविक है। भारत में जनता भले ही विभिन्न प्रान्त, भाषा, धर्म और संस्कृति में विभक्त है परन्तु अपने अधिकार प्राप्ति के वक्त उनमें एकता के दर्शन होते हैं। यही एकता जनतंत्र का आधार हैं। इसलिए जनवादी कवि जनतंत्र की रक्षा के लिए जनता में अन्याय, अत्याचार और शोषण के विरुद्ध क्रांति की भावना निर्मित करता हैं।

वर्ष 1960 के बाद हिन्दी साहित्य में जनवादी काव्य धारा का प्रारम्भ हुआ जनवादी काव्य धारा को ही साठोतरी काव्य धारा, समकालीन काव्य, विचार कविता, चेतना कविता आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है। जनवादी कविता व्यक्तिवादिता से बाहर निकलकर जन चेतना से जुड़ने वाली कविता है। जनवादी कविता अपने परिवेशगत अराजकता के परिणाम स्वरूप उभरी प्रतिक्रिया है। इक्कीसवीं सदी के अन्तर्गत 1960 के बाद भारतीय, आर्थिक और धार्मिक परिवेश में व्याप्त विसंगतियों का भारतीय जनता के जीवन पर विसंगत परिणाम होने से सबका कोह भंग हुआ। भूख, गरीबी, अभावग्रस्तता, युद्ध, आपातकाल, भ्रष्टाचार, लाल फीताशाही आदि अनेक समस्याओं के कारण भारत की आम जनता का जीवन अत्यन्त बदहाल हुआ। ऐसी विसंगत परिस्थितियों में जनवादी कवि अपनी कविताओं के माध्यम से भारतीय जन मानस के आक्रोश की तीव्र अभिव्यक्ति करने लगते हैं। जनवादी अथवा इक्कीसवीं सदी की काव्य धारा में चन्द्रकांत देवताले, नागार्जुन, निराला, लीलाधर जंगूड़ी, केदारनाथ सिंह, धूमिल, नरेन्द्र मोहन, राजेश जोशी, मंगल डबराल, उदय प्रकाश, ओमप्रकाश वाल्मीकि, सर्वेश्वर दयाल सरसेना, शमशेर बहादुर सिंह, मुक्ति बोध, त्रिलोचन आदि कमियों ने जनवादी कविता में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

इक्कीसवीं सदी की हिन्दी जनवादी कविता के महत्त्वपूर्ण के रूप में देवताले का विशेष स्थान हैं। जनवादी कविता जन-जन की भावनाओं का दर्पण होती है। समय के थपेड़ों से मानवीय मूल्य के अध:पतन ही देवताले की कविताओं की आस्था का महत्त्वपूर्ण विषय है।

वैश्विक बाज़ारीकरण की वजह से धीरे-धीरे कमतर होती जा रही मानवता उन्हें बेचैन करती हैं। आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीति फिसलन के इस दौर में वे सबसे निचले पायदान पर स्थित आम आदमी के साथ दृढ़ता से खड़े रहने के लिए प्रतिबद्ध हैं। देवताले को नारी स्वतंत्रता का अहम कवि माना जाता है। वे नारी शोषण से चिंतित हैं। पूरा विश्व मानवाधिकारों के प्रति जागरूक होता जा रहा है और भारतीय नारी की स्थिति शोचनीय बनी हुई हैं। नारी को पेट की भूख मिटाने के लिए शरीर बेचना पड़ता है जो पूरे समाज के लिए शर्मनाक है। गरीबी का अभिशाप झेलने वाली कुल वधु को वेश्या व्यवसाय के लिए मजबूर होना पड़ता है। अगर उसका पति ही उसके लिए ग्राहक तलाश करे तो यह अमानवता की पराकाष्ठा है - "अफीम के खेतों में बाँछेड़ औरतें / अपने बोधे पतियों की मौजूदगी में / देह का धंधा करती हैं / और बीड़ी के लिए माचिस माँगने के बहाने / मर्द धुँधलके में डूबी सड़कों पर / अपनी औरतों के लिए पानी के भाव / ग्राहक ढूँढ़ते हैं।" 4

जनवादी काव्य के लिए कविता का जनता से संयुक्त होना आवश्यक है। कविता को यह जनवादी चरित्र तभी प्राप्त होता हैं। जब वह जनता की आकांक्षाओं के अनुरूप, एकाम होकर, एक ओर उसकी समझ के दायरे के भीतर से निकसित तथा पल्लवित होता है वहीं दूसरी ओर उसकी समझ के दायरे को विस्तृत करते हुए उसे शिक्षित भी करता है। कवि धूमिल प्रजातंत्र के नाम पर होने वाले आम जनता के शोषण का पर्दाफाश करते हैं। सामान्य जनता झूठे आश्वासन में फँसकर शोषण का शिकार हो जाती है। धूमिल का हृदय भ्रष्ट प्रशासन से ऊब जाता है। उन्हें यह प्रजातंत्र ढकोसला नज़र आता है। वे जनता की आवाज़ में कहते हैं - "न कोई प्रजा हैं / न कोई तंत्र हैं / यह आदमी के ख़िलाफ़ / आदमी का षड्यंत्र हैं।"5

बाबा नागार्जुन की कविता में विशेष रूप से आम आदमी तथा राजनीति का यथार्थ चित्रण मिलता है। नागार्जुन की कविता में निराला जैसी सहजता, आक्रोश, व्यंग्य, अख्खड़ता, हुँकार एवं ललकार दिखाई देती है। समाज में फैले शोषण के विरूद्ध आवाज़ उठाकर शोषितों के प्रति सहानुभूति तथा अन्याय एवं अत्याचार का विरोध अपनी कविता में करके नागार्जुन ने प्रगतिवाद विचारधारा का पोषण किया। कवि नागार्जुन की सुप्रसिद्ध रचना 'प्रेत का बयान, में स्वाधीन भारत के स्वाधीन शिक्षक के प्रेत का बयान हैं, जो यमराज के सम्मुख अपनी मृत्यु का कारण बताते हुए कहता हैं- "उमर कुछ अधिक पचपन साल की / पेशा से प्रायमरी स्कूल का मास्टर था / तनखा थी तीस रुपैया, सो भी नहीं मिली / मुश्किल से काटे हैं /एक नहीं, दो नहीं, नौ-नौ महीने / थी, माँ थी, बच्चे ये चार।" 6

दरअसल स्वतंत्रता पूर्व सर्वहारा वर्ग ने आज़ादी के जो सपने देखे थे वे आज़ादी के बाद सब झूठे साबित हुए। शोषितों का करुण गान और सर्वहारा वर्ग के शोषण के विद्रोह की आँच जनवादी कविताओं की विशेषताएँ रही है। बलदेव वंशी शोषक और शोषितों के यथार्थ पर अपनी कविता 'बच्चे और भेड़िये' में व्यंग्य करते हुए कहते हैं- "पहले कभी बच्चों से डर कर भागते थे / आज बच्चे डर से भाग रहे हैं / पहले कभी बच्चे मेमने से खेलते थे / आज भेड़िये बच्चों से खेल रहे हैं।" 7

आम आदमी तो हमेशा ही साहित्य में ही नहीं समाज जीवन में भी दुर्लक्षित रहता है। अंवाछित रहता है। सच बात तो यह है कि आम आदमी के सहयोग के बिना कुछ भी संभव नहीं होता। इसी कारण अरुण कमल ने इस आम आदमी को सबसे कमज़ोर बताया हैं। कोई उसे छोटा आदमी कहता है तो कोई उसे मामूली। कवि आम आदमी को आवाज़ देता हुआ कहता हैं - "बिल्कुल, निहत्या, पर हाथ बिना ऊपर उठाए / मैं हत्यारों से मिलने जाना चाहता हूँ / जाना चाहता हूँ उसकी तरफ से / जो सबसे कमज़ोर हैं"8

केदार नाथ अग्रवाल इक्कीसवीं सदी के प्रमुख कवि हैं। तत्कालीन मानव के सामान्य लोगों का वास्तविक चित्रण इनकी कविताओं में हुआ है। अग्रवाल जी का साहित्य समस्त मानव जगत को केन्द्र में रखकर लिया गया है। इन्होंने अपनी कविताओं में निम्न वर्ग एवं श्रमिक वर्ग की समस्याओं को चित्रित किया है। समाज के शाषित एवं पीड़ित वर्ग का चित्रण करते हुए वे उन्हें हौसला दिलाते हैं। अग्रवाल जी श्रमिक जीवन के प्रति विशेष सहानुभूति रखते हैं। श्रमिक वर्ग देश में अधिक संख्या में हैं फिर भी उन्हें महत्त्वहीन माना जाता है तथा समाज द्वारा अनदेखा किया जाता है। 'कानपुर' कविता में श्रमिक वर्ग का चित्रण इस प्रकार किया गया हैं - "घाट, धर्मशालाएँ, अदालतें, / विद्यालय, वेश्यालय सारे, / होटल, दफ्तर, बूचड़खाने, / मंदिर, मस्जिद, हाट, सिनेमा / श्रमजीवी की उस हड्डी से / टिके हुए हैं - जिस हड्डी को / सभ्य आदमी के समाज ने / टेढ़ी कर के मोड़ दिया है।" 9

लोकतंत्र को चलाते वाले नकाब धारी लोक प्रतिनिधियों का नकाब उतारते हुए शासन की ग़लत नीतियों का विरोध जन कवि करते हैं। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने 'गर्म हवाएँ' कविता में मजदूर किसान की दयनीय स्थिति का चित्रण किया है। आज़ादी के बाद योजनाओं का असफल होना और ग़रीब जनता का दो वक्त की रोटी के लिए तड़पना कवि से देखा नहीं जाता। कवि देश के आर्थिक रक्षक को रेखांकित करते हुए लिखता हैं - "यह खेती हर मज़दूर भूख से मर गया / यह चौपाए के साथ बाढ़ में बह गया / यह सरकारी बाँध की रखवाली करता था / लू में लपक गया।" 10

आम आदमी की व्यथा, पीड़ा को चित्रित करना जनवादी कविताओं का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य रहा है। आज समाज बदल गया है। समाज में नैतिक पतन हो रहा है। परिवार बिखर रहे हैं। मूल्यों का विघटन हो रहा है। चारों तरफ दशहत का वातारण फैल रहा है। जिसका परिणाम आम-आदमी के जीवन पर होता दिखाई देता है। परिणाम स्वरूप आम-आदमी डर-डर कर जीवन जी रहा है। उसके इस डर को जनवादी कवि मधुर शास्त्री ने कविता में इस प्रकार प्रकट किया हैं - "क्या हो गया, / यह आदमी, / जो न खुलकर बोलता हैं। / एक ऐसा भी समय या / चंद्रमा जैसे हृदय

या, / दाग था, खलता नहीं या, / इस तरह ढलता नहीं था।"11

कवि मंगलेश डबराल पहाड़ी लोगों पर होने वाले अन्याय अत्याचार को खुले रूप में चित्रित करते हैं। जंगल में रहने वाले पहाड़ी लोग जी तोड़ मेहनत करते हैं लकड़ियाँ ढोने में औरतों की ज़िंदगी चली जाती है। मात्र उनके परिवार की स्थिति में अंतर नहीं आता। कभी अकाल से तो कभी ठेकेदार के शोषण में फँसा ग़रीब पहाड़ी जीवन उभरता ही नहीं हैं। लगता है जैसे पहाड़ियों के जीवन पर पहाड़ ही टूट गया है। पहाड़ी लोग इस स्थिति से मुक्ति का कोई मार्ग तलाश नहीं करते। पहाड़ियों का संघर्ष भूख से है। कवि ने पहाड़ी जन जीवन में व्याप्त गरीबी और भूख का चित्रण बेबाकी से किया है। मानव जीवन में भूख एक ऐसा सत्य है जिसके सामने पूरा तत्व ज्ञान फीका है। ज़िंदगी का संघर्ष एक तरह से पेट पूर्ति का ही संघर्ष होता है। पहाड़ियों के जीवन में चारों तरफ अंधेरा है। पहाड़ियों का शोषण केवल मानवी ठेकेदार और साहूकार जैसी इकाइयाँ ही नहीं करती बल्कि अकाल, बाढ़, महामारी जैसे प्राकृतिक प्रकोप भी उसकी परीक्षा लेते हैं - "चूल्हों के पास परिवारिक अंधकार में / बिखरे हैं तुम्हारे लाचार शब्द / अकाल बटोरे गए दानों जैसे शब्द।"12

इसी के अन्तर्गत वे पहाड़ी जीवन के शोषण चक्र को जनवाणी में कहते हुए इस प्रकार सुने जा सकते हैं - "जिसे तुम्हारे पर्वत लाये ये यहाँ तक / वह पहाड़ दुख की तरह टूटता आता है हर साल / सारे वर्ष, सारी सर्दियाँ / बर्फ की तरह जमती जाती हैं, निस्वप्न आँखों में / तुम्हारी आत्मा में।"13

कवि मुक्ति बोध जी ने अपनी कविता में मानव को मुक्त करने की अपेक्षा व्यक्त की है। सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक सभी दृष्टि से मानव मुक्ति की कामना मुक्ति बोध जी करते हैं। पूँजीवादी व्यवस्था कार्मिक वर्ग की सम्पूर्ण स्वतंत्रता ही छीन लेती है। इस मानवता विरोधी बात को नष्ट कर उन्हें न्याय देना कवि अपना कर्तव्य मानते हैं। शोषक वर्ग निर्दयता पूर्वक शोषितों पर भंयकर अत्याचार कर रहा है। लगातार अत्याचार के कारण शोषक वर्ग जबरदस्ती उपवास और मरने के लिए अभिशप्त हैं - "आज के अभाव के व कल के उपवास के / व परसों के मृत्यु के / दैन्य के महा के विशोभ पूर्वा / भंयकर चिंता के उस पागल यथार्थ का दीखता पहाड़।"14

त्रिलोचन जी ने अपनी कविता में जन-जन की पीड़ा, त्रासदी, दु:ख-दर्द का स्थान देकर उससे प्रतिरोध में आवाज़ बुलंद किया है। त्रिलोचन आम आदमी के कवि हैं। वे आम आदमी के दुख-दर्द का विवेचन इस प्रकार हैं - "एक बात जानता हूँ मैं कि तुम आदमी हो / जैसे हूँ मैं जो कुछ हूँ तुम वैसे वही हो / अंतर है तो भी बड़ी एकता हैं / भूख-प्यास से जो कभी कहीं कण्ट पाओगे / तो अपने से आदमी को ढूँढ़ सुना आओगे।" 15

निसंदेह इक्कीसवीं सदी के जनवादी 'कवि' आम आदमी के लिए प्रतिबद्ध नज़र आते हैं। उनका काव्य इसके अलावा व्यापक जीवन सार्चकों की अभिव्यक्ति भी करता है। सर्वहारा वर्ग की वर्गीय चेतना ही इन कवियों की रचनाओं का मूल आधार है। जनवादी कवि जन सामान्य के आर्थिक-सामाजिक शोषण के प्रति कहा ही चिंतित रहा हैं। सर्वहारा वर्ग के प्रति इन कवियों की सहानुभूति सदा ही रही क्योंकि इन्होंने जनता के संघर्ष में सदा साथ दिया है। वर्तमान जीवन की सभी विषमताओं को मिटाकर वे एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते हैं, जहाँ शोषण का नामो निशान न हो और जहाँ के नेता सद्गुणों से युक्त हैं उनके समस्त काव्य का यही उद्देश्य है।

निष्कर्षत: इक्कीसवीं सदी के जनवादी कवियों में आम आदमी की संवेदना एवं पीड़ा साफ झलकती हैं। जनवादी कवियों के काव्य में भारतीय मनुष्य जीवन के गहरे सत्य की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। उनके काव्य की प्रवृतियाँ उन्हें अपने काल के महत्त्वपूर्ण कवि सिद्ध करती हैं। इनका काव्य सामाजिक चेतना जागृत हैं। जनवादी कवियों ने अपने समकालीन परिवेश को बौद्धिक धरातल पर अपने अनुभवों के आधार पर अध्ययन कर हर स्थिति को परण लिया था। जनवादी साहित्य में निम्नवर्गीय और मध्यवर्गीय जीवन की समस्याओं से जूकने वाले मनुष्य के आक्रोश का सजीव चित्रण हुआ है। ये कवि गंभीर विषयों पर चिंता प्रकट करते हैं। इनके काव्य में गाँव तथा शहरों में मेहनत-मजदूरी, खेतीहर आदि वर्ग की क्रंदन वाणी प्राप्त होती है। जनवादी काव्य मूलत: सामाजिक क्रांति का साहित्य है। भ्रष्ट समाज व्यवस्था में संवेदनहीन समाज को जगाने हेतु जनवादी कवि अपनी कविताओं में तीव्र आक्रोश की अभिव्यक्ति करते हैं।

000

सन्दर्भ-

1. जनवादी समीक्षा दृष्टि और जनवादी रचनाकार – डॉ. इन्द्र बहादुर सिंह, शिल्पायन प्रकाशन, , नई दिल्ली, 2006, पृ. 132, 2. समकालीन हिन्दी कथा साहित्य में जन चेतना, - अरूणा लोखंडे, प्रगति प्रकाशन, आगरा, 2001, पृ.242, 3.हिन्दी की जनवादी कविता - राम किशोर शर्मा, अनंग प्रकाशन, दिल्ली, 1999, पृ. 9, 4. लकड़बग्घा हँस रहा है - चन्द्रकांत देवताले, संभावना प्रकाशन, हापुड़, 1980, पृ. 28, 5.संसद से सड़क तक – धूमिल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992, पृ.18,

6.हमने कहा था – नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014 पृ. 25, 7.काव्य गौरव - रामदरश मिश्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ. 170, 8.नए इलाके में - अरूण कमल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996 पृ. 23, 9.केदार नाथ अग्रवाल की चुनी हुए कविताएँ - सं. नरेन्द्र पुंडरीक, अनामिका प्रकाशन, कानपुर, 2011 पृ. 60-61, 10गर्म हवाएँ - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014 पृ. 79, 11 तदर्थ - मधुर शास्त्री, अनुभव प्रकाशन, गाजियाबाद (यू.पी.), 2005 पृ. 15, 12पहाड़ पर लालटेन - मंगलेश डबराल, राधा कृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1981, पृ. 61, 13वही, पृ. 60, 14मुक्ति बोध रचनावली (प्रथम खण्ड) - मुक्ति बोध, राजकमल प्रकाशन प्रा॰ लि॰, नई दिल्ली, 2011 पृ. 304, 15अरधान – त्रिलोचन, यात्री प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 1

(शोध आलेख)

इक्कीसवीं सदी में महिला उत्थान कार्यक्रम एवं योजनाएँ

शोध लेखक : डॉ. कल्पना आर. पटेल

डॉ. कल्पना आर. पटेल
श्री कलजीभाई आर.कटारा आर्ट्स कॉलेज, शामलाजी

वैदिक काल में स्त्री पुरुषों की स्थिति में समानता थी इस समय लड़कियों का उपनयन संस्कार होता था और ये भी ब्रहाचर्य आश्रम में लड़कों के समान ही शिक्षा प्राप्त करतीं थीं। इस काल में ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि उस समय लड़के लड़कियों की शिक्षा साथ साथ होती थी, सह-शिक्षा को बुरा नहीं माना जाता था। इस युग में अनेक विदुषी महिलाएँ हुई हैं। घोषा अपाला विश्वम्भरा आदि विदुषी महिलाओं ने वैदिक ऋचाओं एवं भजनों की रचना की थी। गार्गी व मैत्रेयी ऋषि महिलाएँ थी। इस काल में लड़कियों का विवाह साधारणत: युवावस्था में ही होता था बाल विवाह का प्रचलन नहीं था। लड़कियों को अपना जीवन साथी चुनने की स्वतन्त्रा थी। विधवा अपनी इच्छानुसार पुनर्विवाह कर सकती थी या नियोग द्वारा सन्तान उत्पन्न कर सकती पत्नी के रूप में स्त्री की स्थिति काफी उन्नत थी। अथर्ववेद में कहा गया है कि नववधू तू जिस घर में जा रही हैं वहाँ की तू साम्राज्ञी है। तेरे सास ससुर देवर तथा अन्य तुझे साम्राज्ञी मानते हुए तेरे शासन में आनन्दित हों। धार्मिक कार्यों के सम्पादन में पुरुष के अधिकार समान थे। धार्मिक अनुष्ठानों को सम्पन्न करने के लिए पत्नी का होना आवश्यक था। इस काल में पर्दा प्रथा नहीं थी और स्त्रियों को सामाजिक संबंध स्थापित करने का अधिकार प्राप्त थे। स्त्रियों की रक्षा करना पुरुष का सबसे बड़ा धर्म माना जाता था और उनका अपमान करना पाप इस काल में परिवार का मुखिया ही पारिवारिक सम्पति का स्वामी या संरक्षक माना जाता था अन्य पुरुषों या स्त्रियों को सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार प्राप्त नहीं थे। इस समय भी पुत्री के बजाय पुत्र के जन्म को विशेष महत्त्व दिया जाता है। कि इस काल में स्त्रियों को पुरुषों के समान ही अधिकार प्राप्त थे और दोनों की स्थिति सामान्यत: समान नहीं थी। समाज में स्त्रियों को आदर की दृष्टि से देखा जाता था।

ईसा के 600 वर्ष से ईसा में 300 वर्ष बाद तक का काल उत्तर वैदिक काल के नाम से जाना जाता है। इस काल के प्रारम्भिक वर्षों में महाभारत की रचना हुई। महाभारत काल एक संक्रान्ति काल था जिसमें नियमों की स्थिति के संबंध में विरोधी मत पाये जाते हैं। अनुशासन पर्व में भीष्म पितामह ने कहा है कि स्त्री को सदैव पूज्य मानकर उससे स्नेह का व्यवहार किया जाना आवश्यक है। जहाँ स्त्रियों का आदर होता है यहा देवताओं का निवास होता है तथा इनकी अनुपस्थिति में सभी कार्य पुण्यरहित हो जाते हैं। इस समय तक स्वयंवर प्रथा प्रचलित थी और स्त्रियों को वदों के अध्ययन की आज्ञा थी। ख़ुशहाल परिवारों में लड़कियों को उचित मात्रा में शिक्षा प्रदान की जाती थी। स्पष्ट है इस समय तक स्त्रियों की स्थिति सन्तोषजनक थी। इसी काल में जैन और बौद्ध धर्म का प्रभाव बढ़ा। इन धर्मों में स्त्रियों को सम्मान की दृष्टि से देखा गया। अनेक स्त्रियाँ धर्म प्रचार के कार्य में लगी हुई थी। इन धर्मों के पतन के साथ ही स्त्रियों की स्थिति में गिरावट आने लगी। मनुस्मृति में सर्वप्रथम स्त्रियों की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगाय गया। उन्हें वेदों को पढ़ने और यज्ञ करने से रोक दिया गया। पति की आज्ञा का पालन करना और पारिवारिक दायित्वों को निभाना ही उसका एकमात्र कार्य रह गया। अब इनके लिए उपनयन संस्कार की व्यवस्था भी समाप्ति कर दी गई। इन तथ्यों से ऐसा ज्ञात होता है कि इस काल के

अन्तिम वर्षों में स्त्रियों पर सिद्धान्त रूप कई नियन्त्रण लगा दिये गए। परन्तु वे व्यवहार रूप में अपने अधिकारों का उपभोग करती रहीं।

ईसा के पश्चात तीसरी शताब्दी से 11वीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक का काल धर्मशास्त्र काल के नाम से जाना जाता है। यह युग सामाजिक व धार्मिक संकीर्णता का युग था। अब स्त्रियाँ परतन्त्र निस्सहाय एवं निर्बल मानी जाने लगी थी। स्त्रियों को सम्पत्ति के अधिकार से वंचित कर दिया गया। उन्हें मानसिक रूप से दुर्बल माना गया। इस समय लड़की के विवाह की आयु 10 वर्ष और कहीं 12 वर्ष थी। लड़की के लिए वर का चुनाव उसके माता पिता द्वारा किया जाता था। इस काल में बहुपत्नी विवाह का प्रचलन बढ़ा तथा विधवा पुनर्विवाह पर रोक लगा दी गई। इस समय पातिव्रत्य एवं सतीत्व का एकतरफा आदर्श प्रस्तुत किया गया। इस काल में स्त्रियों की स्थिति को गिराने में शास्त्रकारों ने भी प्रमुख भूमिका निभायी। मनु ने स्वयं कहा है कि स्त्रियाँ कभी भी स्वतन्त्र रहने के योग्य नहीं है। बाल्यावस्था में उन्हें पिता युवावस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्र के संरक्षण में रहना चाहिए। इस काल में अन्तिम वर्षों में तो स्त्री को वस्तु के रूप में समझा जाने लगा और उसकी स्वतन्त्रता पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिये गए। पति को परमेश्वर के रूप में प्रतिष्ठित किया गया और सती होना आदर्श माना गया।

मुगल शासकों के काल को मध्य काल के नाम से जाना जाता है। 11वीं शताब्दी से ही भारतीय समाज पर मुसलमानों का प्रभाव बढने लगा था। इस काल में हिन्दू धर्म एवं संस्कृति की रक्षा के नाम पर स्त्रियों पर अनेक प्रतिबन्ध लगाये गए उन्हें अधिकारों से वंचित कर दिया गया और उन पर कई नियन्त्रण लागू किये गए। इस समय स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं रहा। अब 5 या 6 वर्ष तक की अबोध कन्याओं का भी विवाह किया जाने लगा। रक्त की शुद्धता को बनाये रखने और स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा के उद्देश्य से बाल विवाहों को विशेष रूप से प्रोत्साहित किया गया। इस काल में परदा प्रथा प्रचलित हुई। स्त्रियों का कार्य क्षेत्र केवल घर की चहारदीवारी तक सीमित हो गया। अब विधवाओं को पुनर्विवाह का अधिकार नहीं था। सती प्रथा को बढ़ावा दिया गया और कई विधवाओं को तो सती होने के लिए बाध्य तक किया जाने लगा। पुरुष ने जहाँ विधवाओं को सब प्रकार के अधिकारों से वंचित कर सती होने तक के लिए विवश किया वहाँ वह स्वयं एक पत्नी के होते हुए भी दूसरी और तीसरी स्त्री से विवाह करने लगा। इस काल में स्त्रियाँ पूर्णत: परतन्त्र हो चुकी थी। पारिवारिक सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से स्त्री पुरुष पर निर्भर हो गई। इस समय पति की इच्छाओं को पूरा करना ही स्त्री का एकमात्र धर्म रह गया। इस काल में स्त्री के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार में कुछ सुधार अवश्य हुआ। उन लड़कियों को पिता की सम्पति का उत्तराधिकार मिलने लगा जिनके कोई भाई नहीं था। इस काल में धर्म के नाम पर स्त्रियों का सर्वाधिक शोषण हुआ। उन्हें चेतना शून्य पुरुष की कृपा पर आश्रित और निर्बल बना दिया गया। सती प्रथा के पुन: प्रचलन पुनर्विवाह पर प्रतिबन्ध परदा प्रथा के विस्तार एवं बहुविवाह की व्यापकता ने उसकी स्थिति को बहुत गिरा दिया।

18 वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों से स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व तक का समय ब्रिटिश काल के नाम से जाना जाता है। अंग्रेजों ने यहाँ के लोगों के धार्मिक और सामाजिक जीवन में किसी प्रकार का कोई हस्तक्षेप नहीं करने की नीति अपनायी। इस के कारण उन्होंने स्त्रियों की स्थिति को सुधारने की दृष्टि से कोई प्रयत्न नहीं किया। इस काल मे विभिन्न क्षेत्रों में स्त्रियों की निम्नांकित निर्योग्यताएँ समस्याएँ बनी रहीं:

1. सामाजिक क्षेत्र में स्त्रियों को कोई अधिकार प्राप्त नहीं थे। इन्हें शिक्षा प्राप्त करने का भी अधिकार नहीं था स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व हमारे यहाँ स्त्रियों में साक्षरता 6 प्रतिशत से भी कम थी। बाल विवाह सती प्रथा एवं परदा प्रथा के प्रचलन ने स्त्री शिक्षा में विशेष बाधा पहुँचाई। स्त्रियों के सम्बन्धों का क्षेत्र पिता एवं पति के परिवार तक ही सीमित था धार्मिक कर्तव्यों का पालन ही इनके जीवन का मुख्य कार्य रह गया।

2. पारिवारिक क्षेत्र में स्त्रियों को कुछ भी अधिकार प्राप्त नहीं थे। सब प्रकार के अधिकार पुरुष कर्ती में ही केन्द्रित थे स्त्रियों का मुख्य कार्य सन्तानोत्पत्ति एवं परिवार जनों की सेवा करना था विवाह विच्छेद के अधिकार के नहीं होने से पति के दुश्चरित्र क्रूर और अत्याचारी होने पर भी पत्नी को उसके साथ अनुकूलन करना ही पड़ता था।

3. आर्थिक क्षेत्र में स्त्रियों को सन 1937 के पूर्व विशेषाधिकार प्राप्त नहीं थे। इन्हें अधिक से अधिक भरण पोषण का अधिकार प्राप्त था। स्त्री धन के अतिरिक्त इन्हें और कोई सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार प्राप्त नहीं था। स्त्री स्वयं वस्तु या सम्पत्ति के रूप में समझी जाती थी। स्त्री के द्वारा किसी प्रकार का कोई आर्थिक कार्य करना अनुचित और अनैतिक समझा जाता था। आर्थिक दृष्टि से कोई काम करना उसकी कुलनीता एवं स्त्रीत्व के विरुद्ध माना जाता था। श्री पणिक्कर ने लिखा है कि हिन्दू समाज में पुत्री के अधिकार को कानून द्वारा समाप्त कर दिया गया। पत्नी पति के परिवार का एक अंग बन गई और विधवाओं को मृत समान मान लिया गया। इस काल में स्त्रियों को पुरुषों की दया पर निर्भर रहना पड़ा।

4. राजनीतिक क्षेत्र में किसी गतिविधि में स्त्रियो के भाग लेने का प्रश्न ही नहीं उठता। जब देश परतन्त्र था और पुरुष अंग्रेजों के गुलाम थे तो स्त्रियाँ राजनीति में भाग कैसे ले सकती थी। उनका सम्पूर्ण जीवन तो घर की चहारदीवारी में ही बीतता। महात्मा गांधी द्वारा समय समय पर चलाये जाने वाले आन्दोलन में कुछ स्त्रियों ने भाग अवश्य लिया परन्तु उच्च समझे जाने वाले परिवारों में इसका विरोध किया गया। सर्वप्रथम सन 1937 में पति की सम्पति एवं शिक्षा के आधार पर कुछ स्त्रियों को वोट देने का अधिकार प्राप्त हुआ।

ईसा के 300 वर्ष पूर्व से स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व तक स्त्रियों की स्थिति में निम्नलिखित कारणों के गिरावट आती गई

1. स्त्री शिक्षा की उपेक्षा - अनेक

सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक कारणों से स्त्रियों को शिक्षा देना अनावश्यक समझा गया। यह माना जाने लगा कि स्त्रियों को नौकरी नहीं करनी है अत: उन्हें शिक्षा दिलाने की कोई आवश्यकता नहीं है। शिक्षा के अभाव में स्त्रियाँ अपने अधिकारों के प्रति जागरूक नहीं रह सकीं और एक-एक करके उनके सभी अधिकार छिनते गए। अशिक्षा के कारण वे अन्धविश्वासों कुसंस्कारों और रूढ़ियों में इस प्रकार जकड़ गईं कि अब उनमें चेतना नाम की कोई वस्तु शेष नहीं रह गई। परिणाम यह हुआ कि पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की स्थिति काफी निम्न हो गई।

2. कन्यादान का आदर्श - हिन्दू विवाह से सम्बन्धित कन्यादान के आदर्श ने भी स्त्रियों की स्थिति को निम्न करने में योग दिया। प्रारम्भ में ब्राह्म विवाह के अन्तर्गत योग्य वर को ढूँढ़ कर पिता वस्त्र और आभूषणों से सुसज्जित अपनी लड़की को दान के रूप में उसे देता था। उस समय कन्यादान का कन्यादान का महत्त्व योग्य वर को ढूँढ़ने से सम्बन्धित थे। धीरे-धीरे स्मृतिकाल के बाद कन्यादान की धारणा के अन्तर्गत कन्या को एक वस्तु के रूप में समझ लिया गया। अब यह माना जाने लगा कि जो वस्तु दान में दी जा चुकी है। उसे न तो वापस लिया जा सकता है और न ही पुन: उसका दान किया जा सकता है। जिस व्यक्ति ने कन्यादान के रूप में उन्हें ग्रहण किया है वह जैसा चाहे वैसा ही उसका उपयोग कर सकता है। इस प्रकार के विश्वासों का परिणाम यह हुआ स्त्रियों के अधिकार छिनते गए।

3. बाल विवाह - स्मृतिकार बाल विवाह के पक्ष में थे। उन्होंने कम आयु में ही लड़की का विवाह कर देना माता पिता का धार्मिक कर्तव्य माना। परिणाम यह हुआ कि लड़कियों के लिए विवाह संस्कार ने ही उपनयन संस्कार का स्थान ले लिया और लड़कियों के लिए शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं रही। ऐसी स्थिति में उन्हें अपने व्यक्तित्व के विकास का अवसर नहीं मिला। वे पुरुष की दासी बन कर रह गईं और किसी भी रूप में उनका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रहा। घर की चहारदीवारी में सन्तानों का पालन पोषण और अन्य सदस्यों की सेवा करना ही उनका कार्य रह गया। परिणाम यह हुआ कि उनकी स्थिति गिरती गई।

4. संयुक्त परिवार व्यवस्था - संयुक्त परिवार प्रणाली ने स्त्रियों की स्थिति को गिराने में सक्रिय योग दिया है। संयुक्त परिवार में स्त्रियों को कोई स्वतन्त्रता नहीं होती और न ही उनके कोई आर्थिक अधिकार होते है। उन्हें तो पुरुषों की कृपा पर निर्भर रहने वाली आश्रित नारियों के रूप में जीवन बिताना पड़ता है। परिवार में वयोवृद्ध स्त्री की आज्ञा का पालन और सभी सदस्यों की सेवा करना ही उनका प्रमुख धर्म माना गया। संयुक्त परिवार ने स्त्रियों को चेतना शून्य बनाकर सब अधिकारों से वंचित कर दिया।

5. पुरुषों पर आर्थिक निर्भरता - पति ही पत्नी का भरण पोषण करने वाला माना गया है और इसी कारण उसे भर्ता कहा गया है। ऐसी स्थिति में पत्नी का अपने पति पर आश्रित होना स्वाभाविक ही है। उत्तर वैदिक काल के बाद स्त्रियों के सम्पति सम्बन्धी अधिकार समाप्त कर दिये गए। उन्हें अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पुरुषों पर निर्भर रहना पड़ा। पति पर आर्थिक निर्भरता के कारण पत्नी किसी भी अवस्था में पति से संबंध विच्छेद करने या परिवार की सदस्यता छोड़ने की बात सोच भी नहीं सकती थी। पुरुषों पर इस आर्थिक निभरता का परिणाम यह हुआ कि स्त्रियों की स्थिति निम्न होती गई।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद पिछले करीब 50 वर्षो में स्त्रियों की स्थिति में कान्तिकारी परिवर्तन आया है। अब उनकी स्थिति में काफी सुधार हुआ है। डॉ. श्रीनिवास के अनुसार पश्चिमीकरण लौकिकीकरण तथा जातीय गतिशीलता ने स्त्रियों की सामाजिक आर्थिक स्थिति को उन्नत करने में काफी योग दिया है। वर्तमान में स्त्री शिक्षा का प्रसार हुआ है। कई स्त्रियाँ औद्योगिक संस्थाओं और विभिन्न क्षेत्रों में नौकरी करने लगी है। अब वे आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर होती जा रही है। उनके पारिवारिक अधिकारी में वृद्धि हुई है।

000

नई पुस्तक

(उपन्यास)

सुगंधा

लेखक : मुरारी गुप्ता

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

कहानीकार, पत्रकार मुरारी गुप्ता का पहला उपन्यास सुगंधा- एक सिने सुंदरी की त्रासद कथा, शिवना प्रकाशन से प्रकाशित होकर आया है। उपन्यास ग्लैमर और अपराध की दुनिया की कहानी कहता है। इस उपन्यास को लेकर युवा उपन्यासकार नवीन चौधरी लिखते हैं- 'मुरारी गुप्ता का ताजा उपन्यास 'सुगंधा: एक सिने सुंदरी की त्रासद कथा' पाठकों के लिए एक नया और ताजा अनुभव पेश करता है। मुरारी गुप्ता के उपन्यास की अच्छी बात यह है कि उपन्यास की कहानी अपने आप में युनिक है। इसीलिए मैंने पहली पंक्ति में ही कहा है कि यह पाठकों को बिलकुल ताजा अनुभव देगा। यह पाठकों को गुदगुदाता भी है। सोचने पर विवश भी करता है। उन्हें पूरे विश्व की सैर भी करवाता है। उपन्यास एक बिलकुल अलहदा दुनिया से रूबरू करवाता है। उपन्यास के ट्विस्ट काफी दिलचस्प है जो पाठक को बांधकर रखते हैं। नई पीढ़ी के लिए यह उपन्यास एक बड़ा कैनवास जैसा है। कई मायनों में इस उपन्यास को ग्लोबल नोबेल भी कहा जा सकता है।'

000

(शोध आलेख)

आदिवासी सांस्कृतिक : अवधारणा

शोध लेखक : दिलीप कुमार
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय,
उदयपुर

दिलीप कुमार
36, अरावली कॉम्प्लेक्स, न्यू आर. टी. ओ. रोड, पहाड़ा, उदयपुर 313001
राजस्थान
ईमेल - dilipbeniwal89@gmail.com

भारत सांस्कृतिक विविधता का देश है। यहाँ विभिन्न प्रकार की जातियाँ निवास करती है भारतीय समाज को मोटे रूप में हम तीन भागों में बाँट सकते हैं —1. आदिवासी समाज 2. ग्रामीण समाज 3.नगरीय समाज1

इस विभाजन का आधार भौगोलिक पर्यावरण एवं सामाजिक सांस्कृतिक लक्षण है। आदिवासी समाज अपेक्षित रूप से एक पृथक समाज है, जिसकी एक निश्चित भाषा एवं धर्म है। आज के विश्व में आदिवासी अपेक्षित रूप से सामाजिक व आर्थिक रूप से पिछड़े हैं, लेकिन आदिवासी समाज का स्थान महत्त्वपूर्ण है। आदिवासी हमारी प्राचीन संस्कृति की अमूल्य धरोहर है। आदिवासी शब्द 'आदि' और 'वासी' इन दो शब्दों से मिलकर बना है। 'आदि'अर्थात् जो सबसे पहले से है और 'वासी'का अर्थ 'निवासी' अत: 'सबसे पहले के निवासी'

गंगा सहाय मीणा ने आदिवासी शब्द को परिभाषित करते हुए लिखा है कि-"आदिवासी देश के मूल निवासी माने जाने वाले तमाम आदिम समुदायों का नाम है।"2

भारत में लगभग 461 आदिवासी समुदाय है जो सारे देश में फैले हुए हैं जनगणना 2011 के अनुसार इनकी जनसंख्या 8.1 प्रतिशतहै।3

"संस्कृति एक ऐसी चीज़ है जिसे लक्षणों से तो हम जान सकते हैं, किंतु उसकी परिभाषा नहीं दे सकते। कुछ अंशों में वह सभ्यता से भिन्न गुण है अंग्रेजी में कहावत है की सभ्यता वह चीज़ है जो हमारे पास है संस्कृति वह गुण है जो हम में व्याप्त हैं मोटर, महल, सड़क हवाई जहाज, पोशाक और अच्छा भोजन ये तथा इनके समान सारी अन्य स्थूल वस्तुएँ संस्कृति नहीं सभ्यता के समान है मगर पोशाक पहने और भोजन करने में जो कला है वह संस्कृति की चीज़ है।"4 आदिवासी संस्कृति में वेशभूषा का अपना अलग योगदान है यह आदिवासियों को एकता और आदिकाल की संस्कृति को संभाले हुए दिखाई पड़ती है। सजने-सँवरने का रिवाज अभी प्रचलनमें नहीं आया है यह प्राचीन काल से चला आ रहा है इसी अनुरूप आदिवासी भी अपनी अलग–अलग परंपरागत वेशभूषा धारण करते हैं व सजते-सँवरते हैं, आदिवासियों की वेशभूषा हर जाति में अलग-अलग होती है, इनकी रंग बिरंगी पारंपरिक वेशभूषा हर किसी को मोहित कर देती है।

आदिवासी समुदायों ने जंगलों में रहते हुए अपनी संस्कृति की विरासत कायम रखी है और पूरे आत्म सम्मान के साथ जीते रहे हैं इसी संदर्भ में रमणिका गुप्ता ने लिखा है कि "एक पराजित समूह होते हुए भी आदिवासियों ने अपनी संस्कृति भाषा अपने जीने की सामूहिक शैली परंपराओं और रीति-रिवाजों की विरासत को ज़िंदा रखा हैं।"5

आदिवासी संस्कृति प्रकृति से निकटता से जुड़ी रहती है। इसके विपरीत आभिजात्य संस्कृति का अधिकांश कृत्रिमता लिए होता है। व आदिवासी जीवन में प्रतिमान गढ़कर या शास्त्र रचकर संस्कृति को जड़ नहीं बनाया जाता जबकि कुलीन संस्कृति को व्याकरण में बाँधकर जड़ बनाया जाता है जिससे वह जटिल व दुरूह होती रही है। लोक नृत्य और शास्त्रीय नृत्यों के भेद से इसे आसानी से समझा जा सकता है। व आदिवासी संस्कृति का गहरा जुड़ाव श्रम से है। उदाहरणार्थ, फसलों की बुआई-निराई-कटाई से संबंधित नृत्य-गीत सहज रूप में रचित-सृजित होते हैं। इससे भिन्न कुलीन संस्कृति फुरसत की उपज है। फुरसत आलस्य का ही दूसरा नाम है जो मनुष्य की सृजनशीलता का विरोध या कहें नकार है। फुरसत की निर्मिति एकाकी घटना-क्रम होता है न कि सहज-सृजन। व दोनों संस्कृतियों में एक बड़ा अंतर जो दिखाई देता है वह है अनौपचारिकता एवं औपचारिकता का। अनावश्यक औपचारिकता को भद्र संस्कृति के लिए अनिवार्य माना गया है। उठना-बैठना, खाना-पीना, कपड़े पहनना, यहाँ तक कि चलना, हँसना, सब कुछ औपचारिक और नपा-तुला। सांस्कृतिक आयोजनों के दौरान बैठने का क्रम तय करना भी औपचारिकता है, आदिवासी संस्कृति में सब कुछ सहज, भोला, मासूम, ईमानदार दिखता है। व आदिवासी परंपरा में सांस्कृतिक अवदान अर्थात् किस ने क्या जोड़ा या घटाया, यह गुमनाम-अनाम रहता है, जबकि भद्र संस्कृति में सांस्कृतिक अवदाता के नाम की पहचान व ख्याति का

आग्रह है। कुछ के अलावा कोई नहीं जानता कि आदिवासी परंपरा के लोकगीत, नृत्य, नौटंकी और भी बहुत कुछ किसने कब रचे। भद्र परंपरा में सांस्कृतिक सृजन का अधिकांश नामजद होता है। भद्र समाज में सांस्कृतिक विकास प्रेरणा के स्रोतों पर मुख्यत: निर्भर होता है यथा गुरू, ग्रंथ व अन्य अगुवा व्यक्ति और अब मीडिया भी। आदिवासी संस्कृति वास्तविक जीवन पर आधारित होती है। आदर्शों का आग्रह भद्र संस्कृति में होता है जबकि आदिवासी संस्कृति यथार्थ केन्द्रित रहती आई है। आदिवासी संस्कृति में अधिकांश जन की भागीदारी सृजन में होती है। साधारण सा व्यक्ति कुछ न कुछ रच सकने की क्षमता रखता है, जबकि भद्र परंपरा में संस्कृति के प्रेरक तत्वों की विशिष्ट श्रेणी रहती आई है जिसकी अलग से पहचान हमें दिखती है। व आदिवासी सांस्कृतिक संसार में प्रकृति-प्रेम, आदिम सौंदर्य-बोध, नृत्य-गीत, कलात्मकता, उत्सव-पर्व-मेले, धार्मिक आस्थाएँ, सामाजिक संस्कार, मिथक, गणचिन्ह, कथा-कहावत-पहेली-मुहावरे, खेल-कूद, एवं मनोरंजन की अन्य क्रियाएँ भद्र संस्कृति की तरह फुरसत के क्षणों को भरने वाली चीजें न होकर सम्पूर्ण जीवन, यथा मनोविज्ञान, आचरण, सिद्धांत एवं परंपरा, सृजनात्मकता, मूल्य-व्यवस्था से गहरा संबंध रखने वाली क्रियाशील प्रयोजनधर्मी सहज एवं आत्मीय अभिव्यक्तियाँ हैं। इस परिप्रेक्ष्य में कार्लमार्क्स ने महत्त्वपूर्ण बात यह कही है कि "संस्कृति के सबसे मूल्यवान तत्व वे हैं जो शोषक वर्ग के हितों का विरोध करते हैं और शोषित वर्ग के हितों की रक्षा में सहायक होते हैं। ये तत्व शोषित वर्ग को धरोहर के रूप में बहुधा वर्गहीन आदिम समाजों से प्राप्त होते हैं।"6

"आदिवासी का अपना धर्म 'सरना' है जो प्रकृति का धर्म है। वह पेड़ों और अपने पूर्वजों की पूजा करता है। दफनाए गए या जलाए गए पूर्वजों की कब्रों या श्मशानों को चिह्नित करने तथा उसकी स्मृति बनाए रखने हेतु वह उन पर पत्थर लगाता है-जिन्हें वह 'ससन' कहता है और उनकी पूजा करता है। 'ससन' पर उसके पूरे समाज का, पूरे समूह का हक होता है। वे इन 'ससन' यानी पत्थरों (जो बड़ी-बड़ी चट्टानें होती है) को अपनी ज़मीन के पट्टे की तरह मानता है। उसका धर्म उसके जीने का नियम है, इसलिए वह व्यावहारिक है। उसका 'बोंगा' (देवता) और कोई नहीं, उसका पूर्वज ही है जो उसका मित्र है, जिसे वह अपने दुख-सुख में शामिल होने के लिए आमंत्रित करता है। मन्त्री बना पेड़ों पर रहता है, आकाश में नहीं विचरता। उसके देवता की जड़ें धरती में हैं बल्कि सच तो यह है कि वह किसी भगवान को नहीं स्वीकारता, न देवता को मानता है। यह केवल 'स्पिरिट' की अवधारणा पालता है, जो अच्छी भी हो सकती है और बुरी भी। वह अपनी पहचान अपने धर्म से नहीं, बल्कि यह पूछे जाने पर कि "तुम कौन हो?मैं आदिवासी हूँ कहता है।"7

भारत के आदिवासी वर्तमान समय में तीव्र संक्रमण के दौर से गुज़र रहे हैं, आधुनिक समाज के संपर्क से पूर्णतया वह कभी वंचित नहीं रहे आदिवासी भारतीय संस्कृति व इतिहास में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

आज हम आज़ादी के अमृत महोत्सव के दौर में भी आदिवासी समुदायों को समाज की मुख्यधारा से अलग-थलग पड़ा हुआ पाते हैं। आदिवासी समुदाय आज भी जल, जंगल, ज़मीन, पहाड़, लोक संस्कृति, मूलभूत अधिकार, स्वास्थ्य व स्त्री अस्मिता से जुड़ी हुई समस्याओं से पूर्ण रूप से घिरा हुआ है। आदिवासी आरंभ से ही प्रकृति के साथ रहे हैं लेकिन वर्तमान में इनके वनों पर गैर आदिवासियों ने कब्जा कर लिया है इससे यह पलायन को मजबूर हो गए हैं वर्तमान दौर में आधुनिकरण की आपाधापी में आदिवासी अपने आप में अनेक समस्याओं का सामना कर रहे हैं इन समस्याओं में पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक मुख्य है। "आदिवासी समाज व संस्कृति हिंदुओं की रीति रिवाज को ही अपनाते हैं इनकी प्रथा, रीति-रिवाज हिंदुओं की संस्कृति का ही पर्याय है।"8

आदिवासी समुदायों को विभिन्न संवैधानिक प्रावधानों और आरक्षण के बावजूद आदिवासी समाज का एक बड़ा भाग सामाजिक आर्थिक एवं शैक्षिक दृष्टि से पिछड़ रहा है वर्तमान समय में स्थानीय सरकारों ने इनके हितों को सुरक्षित करने के लिए विभिन्न कल्याणकारी योजनाएँ संचालित की है लेकिन यह उनकी मूल पहुँच से अभी भी दूर है आज सरकारें केवल इनका वोट बैंक के लिए इस्तेमाल करती हैं, इनका शिक्षा का स्तर आज आजादी के 75 वर्ष बाद भी 75% तक भी हम नहीं पहुँचा पाए हैं। यह हम सबके लिए अत्यंत सोचनीय विषय है कि जो शिक्षा ही इनकी मूलभूत आवश्यकता है और प्रगति में प्रत्येक समाज को आगे बढ़ा सकती है, लेकिन वह भी उनके लिए दूभर हो गई है।

आदिवासी हितैषी अनेक संगठन उनका आमूलचूल बदलाव करने के नाम पर आज भी इनका बराबर इस्तेमाल कर रहे हैं। आदिवासियों की अपनी संस्कृति है जो गैर आदिवासियों से कई मायनों में विशिष्ट है क्या यह सही नहीं है कि हिंदू धर्म आज भी वर्ण व्यवस्था के मार्ग से मुक्त नहीं हो पाया है जबकि आदिवासी समाज में वर्ण व्यवस्था के लिए कोई स्थान नहीं है स्त्री-पुरुष के रिश्ते की दृष्टि से आदिवासी समाज हम सब के लिए एक आदर्श समाज की भूमिका के रूप में हमारे सामने है। उच्चतर जीवन मूल्य लोभ लालच से मुक्त जीवन की संस्कृति है।

आज के वैश्वीकरण के समय में कारपोरेट जगत का बोल बाला है, सांप्रदायिकता, जातिवाद, राजनीति की क्रूरता, मीडिया का बाजारीकरण, उपभोक्ता वाद, बाज़ारवाद इत्यादि वैश्वीकरण के दौर की सच्चाई जिनके लिए अनगिनत चुनौतियों से जूझना पड़ रहा है, इसलिए ऐसी स्थितियों में आदिवासी भाषा साहित्य संस्कृति की तरफ विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है कभी इस देश के बड़े भाषाविद सुनीति कुमार चटर्जी ने यह भी भविष्यवाणी की थी कि "आदिवासी भाषाएँ अपनी मौत मरती जाएगी और दो तीन सौ साल में ख़त्म हो जाएगी।"9

इस वैश्वीकरण के समय में आदिवासी अपनी भाषा के बिना अपनी संस्कृति को कैसे

बचाएँगे आज इस विकास वादी युग में आदिवासी यदि भूख और थकान की ज़िंदगी जी रहा है तो शायद यह जीवन की सबसे बड़ी विडंबना है।

शशि भूषण अपनी कविता 'हमें असभ्य रहने दो' में लिखते हैं कि- 'हमें मत भगाओ यहाँ से, / बाबा आदम के जमाने से, / जब शायद तुम भी नहीं आए थे यहाँ, / तब से मिट्टी और इसी जंगल में, / जीती आई हैं हमारी कई–कई पुतें, / मत विस्थापित करो हमें।'10

एक विकासवान आदिवासी समुदाय के लोगों को जंगली, वनवासी, असभ्य, बर्बर, गिरिजन, लँगोटियाँ, ईडियट, आदि शब्दों से संबोधित करना स्वयं अपनी संस्कृति पर प्रश्नचिन्ह खड़ा करना है कि तुम अपने समाज और संस्कृति में कहाँ खड़े हो ? आज आदिवासी शब्द के उच्चारण से ही अनेकों बिंब सहज ही बनने लगते हैं। प्रत्येक सदी से छला, सताया, नंगा किया और सोची समझी साजिश के तहत वन जंगलों से जबरन भगाया जाता रहा मनुष्य। सांस्कृतिक वैभव से इतराने वाला यह कर्तव्य शील मनुष्य परंतु वर्तमान में अन्याय ग्रस्त, लाचार तथा पशुवत जीवन यापन करने वाला मनुष्य वेदना से लोकोचार है। सांस्कृतिक मूल्य ही अनेक सामूहिक जीवन की विशेषता है। भारतीय संदर्भ में आदिवासी जातियों को देखें तो पूर्व से पश्चिम तक तथा उत्तर से दक्षिण सीमा तक आदिवासी समुदाय अनेक जातियों में बटा हुआ है लेकिन आदिवासियों का जातीय स्वरूप व्यापक होते हुए भी इनका केंद्रीय भाव प्राकृतिक उद्यमों से जुड़ा हुआ है।

आदिवासियों की संस्कृति समृद्ध है, बस उसको सहजना और सँभालना प्रत्येक आदिवासी व्यक्ति एवं अन्य संस्थाओं का नैतिक कर्तव्य है। आज हमने इस दौरे में ऐसे व्यक्ति या संस्थाओं को देखा है जो आदिवासियों के उत्थान के लिए अनेक प्रकार के फंड और सरकारी सहायता प्राप्त करके आदिवासियों की नैतिक समस्याओं से इतर अपने स्वयं के जीवन यापन का स्तर सुधारने में लगे हुए हैं। आदिवासी समुदाय अपने आपको आदिवासी कहने में हमेशा से ही गौरवान्वित महसूस करता है। उनके जेहन में आदिवासी कहने से जो भाव उत्पन्न होता है, वह पिछड़ा या विकृत भाव नहीं है वह हमेशा इस भाव में इस शब्द के साथ गर्व महसूस करते हैं। आदिवासियों की संस्कृति, नाच, गान, कला, कौशल, बौद्धिकता, दर्शन एवंइतिहास आदि बहुत समृद्ध है।

जन संचार के माध्यम, फ़िल्म, सीरियल आदि में हम देखते हैं कि आदिवासियों को एक गैर सभ्य, हीन एवं निम्न स्तर का दिखाया जाता है लेकिन यह उनका निम्न स्तर नहीं बल्कि यह उनकी संस्कृति को सहजकर अपने सामने प्रस्तुत करने का एक जीवंत उदाहरण है। समय के साथ, वे भी अपने जीवन में बदलाव चाहते हैं लेकिन उनके मूल में उनकी जीवन में हमेशा ही रहता है कि वह अपनी संस्कृति को स्थापित रखे उस संस्कृति को आने वाली पीढ़ियों को बताएँ कि हम किस तरह से जीवन यापन करते हैं एवं हमारी संस्कृति का अर्थ क्या है, समाज में उनका स्तर क्या है, यह सब देखने के लिए, रखने के लिए वे आज भी अपनी संस्कृति को अपनाएँ हुए हैं यह प्रत्येक देश की संस्कृति के लिए गौरवान्वित करने वाला पल है कि वह संस्कृति हम समाज के सामने, वैश्वीकरण के जमाने में अन्य देशों के सामने रख पा रहे हैयह केवल इन्हीं आदिवासियों केकारण ही ऐसा संभव हो पाता है। यहीं उनके जीवन का मूल है की वह अपनी संस्कृति को सर्वोच्च स्वीकार करते है।

निष्कर्षत: हम कह सकते है कि विकास की इस आँधी में एक तरफ हम एसी, रेफ्रिजरेटर, जेट विमानों की कल्पना करें और दूसरी तरफ हम एक सुंदर जंगल, पहाड़, नदी, झरनों की कल्पना करें तो यह दोनों विपरीत है। इन दोनों में असमानता है यह दोनों हमेशा एक साथ नहीं चल सकते यह हमें और आपको सोचना होगा कि हमें क्या चाहिए? जल, जंगल और ज़मीन चाहिए या जेट विमान, रेफ्रिजरेटर, एसी और आधुनिकीकरण की चकाचौंध भरी ज़िंदगी चाहिए जीवन एक अनमोल कृति है। आदिवासियों ने जो संस्कृति सहज और सँभाल करके हमारे सामने प्रस्तुत की है, उस संस्कृति को सँभालना, सहजना हम सबका नैतिक कर्तव्य है। यदि हम इस नैतिकता के पाठ को पढें तो हमारे जीवन में जो विकृतियाँ आ रही है, बीमारियाँ फैल रही है उनमें निश्चित रूप से कमियाँ होगी। आदिवासी संस्कृति का जो वर्तमान स्वरूप हमारे सामने उपलब्ध है। जो सदियों से उन्होंने सँभाल कर रखा है। वर्तमान समय में हम सब का यह कर्तव्य है कि आदिवासियों के साथ मिलकर उनकी संस्कृति को सँभालने के लिए जो भी प्रयास बन पड़ता है, वह प्रत्येक व्यक्ति को करना चाहिए, जिससे उनके अंदर यह भाव आएगा कि हमारी संस्कृति को सँभालने के लिए आज पूरी संस्कृति, पूरा समाज हमारे साथ अडिग खड़ा है। ये भाव उन्हें और अधिक मज़बूत करेगा एवं आने वाले समय के लिए हमें उनकी संस्कृति को समझने का, हमारी आने वाले पीढ़ी को उनकी संस्कृति को समझने का मौका ज़रूर मिल पाएगा।

000

संदर्भ -

1.समाज शास्त्र भाग प्रथम, यूनिट 6, एनआईओएस नई दिल्ली संस्करण 2012 पृष्ठ संख्या 41. 2.आदिवासी साहित्य विमर्श, संपादक गंगा सहाय मीणा, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर लिमिटेड संस्करण 2014 पृष्ठ संख्या 19. 3.भारतीय जनगणना, 2011 जनगणना निदेशालय, नई दिल्ली. 4.संस्कृति भाषा और राष्ट्र, लोक भारती प्रकाशन, रामधारी सिंह दिनकर, पृष्ठ संख्या 11. 5.आदिवासी अस्मिता के प्रश्न, रमणिकागुप्ता, पृष्ठ संख्या 353. 6.मार्क्स और पिछड़े हुए समाज, रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन 2007पृष्ठ संख्या41. 7.आदिवासी कौन, संपादक रमणिका गुप्ता, पृष्ठ संख्या 6. 8.आदिवासी दुनिया, हरिराममीणा, पृष्ठ संख्या 169. 9.आदिवासी कौन, संपादक रमणिकागुप्ता, राधा कृष्णा नेशनल बुक ट्रस्ट 2013 पृष्ठ संख्या 15. 10.कथाक्रम, त्रैमासिक पत्रिका 2011 आदिवासी विशेषांक, पृष्ठ संख्या 59.

(शोध आलेख)

डॉ. उषा यादव की कहानियों में मानवीय मूल्यों का विघटन

शोध लेखक : कविता
शोधार्थी
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय,
रोहतक

कविता
शोधार्थी
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय
रोहतक, हरियाणा

प्रस्तावना-

आज प्रौद्योगिकी की तीव्र प्रगति और बदलती सामाजिक संरचनाओं के साथ, मौलिक नैतिक सिद्धांत और गुण नष्ट होते दिख रहे हैं। सोशल मीडिया और इंटरनेट के प्रसार ने व्यक्तियों के बीच अलगाव पैदा कर दिया है, जिससे वास्तविक मानवीय संपर्कों की जगह आभासी अनुभवों ने ले ली है। स्वार्थी लक्ष्य और भौतिक लाभ को अक्सर दूसरों के प्रति सहानुभूति और करुणा पर प्राथमिकता दी जा रही है। इसीलिए वर्तमान समय में समाज में मानवीय मूल्यों का ह्रास एक गंभीर चिंता का विषय बन गया है।

"मूल्य' अंग्रेजी के शब्द 'Value' का हिन्दी पर्याय है। यह किसी पदार्थ का ऐसा आन्तरिक गुण है, जिसके आधार पर उसे सप्राण अथवा निष्प्राण पदार्थ की प्रतिष्ठा सम्पूर्ण समाज में होने लगती है। उर्दू में एक शब्द 'क़द्र' है। उसका भाव किसी पदार्थ के 'मूल्य' की स्वीकृति है 'मूल्य' शब्द मूल+यत से निष्पन्न है जिसका भाव किसी वस्तु के विनिमय में दिया जाने वाला धन या दाम।"1

आधुनिक युग बड़ी ही तीव्रता से परिवर्तित हो रहा है जिसमें परम्परागत एवं नवीन मूल्यों में टकराव, संघर्ष एवं संक्रमणशीलता दिखाई दे रही है। मनुष्य की भौतिक साधनों के प्रति आसक्ति एवं बढ़ते हुए पूँजीवाद ने एक नई अर्थ संस्कृति को जन्म दिया है। राजनीतिक स्तर पर बढ़ते हुए भ्रष्टाचार, बेईमानी, अराजकता, अधिकारों का दुरुपयोग, अकर्मण्यता आदि विकृतियों से समाज आक्रान्त हुआ है और जीवन के प्राय: सभी क्षेत्रों में इन विकृतियों का प्रभाव गहराई तक है जिससे समाज में मूल्य विघटन और मूल्यहीनता की स्थितियाँ उत्पन्न हुई हैं। "मूल्यों की नींव पर पारिवारिक रिश्तों की डोर मज़बूती से बँधी रहती है परन्तु औद्योगीकरण, पाश्चात्य प्रणाली का प्रभाव, भोगवादी दृष्टि, विलासी भौतिकवादी प्रवृत्ति स्वार्थन्धता आदि विविध कुप्रवृत्तियों ने पारिवारिक मूल्यों को तोड़ दिया है। इसीलिए वर्तमान युग में संयुक्त परिवार तो क्या एकल परिवार भी टूटने लगे हैं।"2

पारिवारिक संबंध और सामुदायिक बंधन कमज़ोर होते जा रहे हैं, जिससे व्यक्तिवाद और जवाबदेही की कमी हो रही है। डर, असुरक्षा और व्यक्तिगत सफलता की चाहत अक्सर नैतिक विचारों पर हावी हो जाती है। परिणामस्वरूप, ईमानदारी, सत्यनिष्ठा और एक-दूसरे के प्रति सम्मान को नुकसान हुआ है, जिससे समुदायों के भीतर विश्वास में गिरावट आई है। इस पर डॉ. रीता का मत है "नैतिकता मनुष्य को उत्थान की ओर अग्रसर करती है पर आज स्थिति यह है कि हमारे समाज से नैतिकता की भावना ही लुप्त होती जा रही है। फलस्वरूप समाज विघटन की ओर बढ़ रहा है। आज नैतिक मूल्यों में जो गिरावट आई है उसका मूल कारण टूटती हुई नैतिक मान्यताएँ हैं।"3

इसी संदर्भ में डॉ. विष्णु प्रभाकर का मानना है कि "ब्रह्मचर्य की बहुत महिमा थी। उसकी इतनी जकड़ हम पर लगा दी, कि यहाँ तक कर दिया गया कि बहन भाई को एक कमरे में बैठने नहीं दिया गया। गुरुकुल के समय लंगोट बाँध कर पढ़ाई होती थी। मनुष्य तो मनुष्य है। उनमें धीरे-धीरे प्रतिक्रिया होने लगी। जितनी जकड़ थी, उतनी ही तेज़ी से बंधन टूटने लगे। दमित वासनाएँ उभरती हैं तो समाज में उच्छृंखलता आ जाती है। आज हमने पिता से मुक्ति चाही। आज हमने सैक्स से मुक्ति चाही। नारी के बंधन को हमने सैक्स से जोड़ा।"4

डॉ. उषा यादव ने 'ठीकरे का मोल' कहानी के माध्यम से मानवीय मूल्यों के विघटन की समस्या को पुरज़ोर उठाया है। लेखिका ने विशंभर के माध्यम से मानवीय मूल्यों के विघटन का यथार्थ चित्रण किया है। वह अपनी पुत्री के लिए रिश्ता देखने आए मेहमानों के सामने अपने पिता का मान-सम्मान नहीं रखता। उनके सामने वह अपने पिता को विराजमान नहीं होने देना चाहता है। उसका मानना है कि उसके पिता के वृद्ध जीवन को देखकर कहीं मणिका को देखने आए हुए मेहमान नाराज़ न हो जाएँ और मणिका के रिश्ते में कोई खलल पड़ जाए। इसके लिए वह उस दिन अपने पिता दीपचंद को घर से बाहर रहने का आदेश देता है और धमकाते हुए

कहता है "दरअसल तुम पागल ठहरे। कब, "किसके सामने, क्या बकवास करने लगोगे, इसका मुझे भरोसा नहीं है। बेहतर है अपनी परछाई भी उस दरमियान यहाँ न पड़ने दो। तुम्हारी किसी बेहूदी हरकत से उन लोगों के सामने में शरमिंदा नहीं होना चाहता।"5

इसी संदर्भ में वह अपने पिता को घर से बाहर जाने के लिए दोबारा फिर से कहता है "अब खड़े-खड़े मेरा मुँह क्या देख रहे हो?" विश्वम्भर खीझ उठा "दफा हो जाओ यहाँ से!" 6

लेखिका एक पुत्र द्वारा पिता को धमकाने के संदर्भ में मानवीय मूल्यों के नष्ट होने का चित्रण करती है, क्योंकि भारतीय संस्कृति और परंपरा के अनुसार पिता और पुत्र के बीच गरिमापूर्ण संबंध पाया जाता है। कहानी में वर्णित वाक्यांश भारतीय संस्कृति और परंपरा के अनुसार, एक पुत्र के मुँह से हरगिज़ नहीं निकल सकता, परंतु पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित संस्कृति और उसका चोला ओढ़ने वाली नवीन पीढ़ियाँ अपने माता-पिता और बुज़ुर्गों को मान-सम्मान नहीं दे पा रही हैं और उन्हें तिरस्कृत कर रही हैं। दीपचंद को अपनी पोती के प्रति अथाह प्रेम है, वह मेहमानों के साथ बातचीत करना चाहता है जो उसका रिश्ता देखने के लिए आए हैं, परंतु उसका पुत्र विशंभर इस बात की स्वीकृति नहीं देता। "दीपचंद चले ज़रूर गए, पर उनका मन घर में ही धरा रहा। मणि उनकी लाड़ली पोती ही नहीं, आँखों की पुतली है। उसकी शादी के प्रसंग से ख़ुद को अछूता रखना उनके हृदय को कैसे गवारा हो सकता था? इसीलिए मंदिर की सीढ़ियों पर बैठने के बाद भी अनमने रहे।"7

घर से बाहर निकल जाने का आदेश पाकर बूढ़ा दीपचंद अपना समय व्यतीत करने के लिए मंदिर में जाने की सोचता है और पार्क में टहलने का मन बनाता है, ताकि वह पूरा दिन वहाँ पर गुज़ार सके और शाम के समय घर में दाखिल हो सके। वह सोचता है कि उस वक्त घर के सारे मेहमान जा चुके होंगे और मणिका के रिश्ते के लिए निर्धारित कार्यवाही हो चुकी होगी। "पूजा की थाली और जल से भरा लोटा लिए मंदिर आने वाली कॉलोनी की महिलाओं को जब अपनी वजह से असुविधा होती देखी तो दीपचंद सीढ़ियों से उठ खड़े हुए। उनके कदम पार्क की ओर बढ़ गए। सुबह का समय होता, तो वहाँ प्रात: भ्रमण करने वालों की भीड़ मिलती। दो-चार संगी-साथी भी घड़ी भर बोलने बतियाने को मिल सकते थे।"8

मानवीय मूल्यों के ह्रास का लेखा-जोखा इस बात से भी देखा जा सकता है कि बूढ़े दीपचंद को अच्छे कपड़े पहनने के लिए नहीं दिए जाते और उन्हें खाने के लिए वांछित खाद्य सामग्री भी भरपूर मात्रा में नहीं दी जाती है। "दीपचंद की निगाह अपनी वेशभूषा पर गई पाँव में बेटे द्वारा फेंक दी गई पुरानी चप्पलें, देह पर मैली-कुचली धोती और घटियापन में उससे होड़ लेती हुई आधी आस्तीन की बंडी। सिर पर बेतरतीब बाल। चेहरे पर बढ़ी हुई खिचड़ी दाढ़ी सर्वांग में किसी भिखारी की झलक यह स्थिति तब थी, जब सारे घर के कपड़े वाशिंग मशीन में घुलते थे। उनके लिए साबुन की एक बट्टी तक पचीस दफे फरियाद के बाद मुहय्या होती थी।"9

हद तब हो जाती है जब विशंभर मणिका का रिश्ता देखने आए हुए मेहमानों के सामने अपने पिता का परिचय होता है। घर में पेड़ पौधों की रखवाली करने वाले 'माली' कह कर देता है? वह इस बूढ़े 'माली', यानी दीपचंद, का दुनिया में कोई न होने की बात कहता है और भूखा मरने के अलावा वह उसे माली का कार्य करके दो वक्त की रोटी का गुजारा देता है। पुत्र विशंभर रिश्तेदारों के सामने बूढ़े दीपचंद का परिचय करवाता हुआ कहता है कि "अरे भाई साहब, आप अभी तक उस फटेहाल आदमी के बारे में ही सोच रहे हैं, यह तो हमारा माली है। थोड़ा सिरफिरा और पागल किस्म का बूढ़ा है। पर मैंने तरस खाकर काम पर लगा रखा है। बेचारा दुनिया में अकेला है। किसी और बंगले में तो इसे काम मिलेगा नहीं। हमारे यहाँ लगा रहने पर कम से कम भूखा तो नहीं मरेगा!" 10

अंतत: लेखिका पाठकों को मानवीय मूल्यों के ह्रास और उससे निपटने के लिए चिंतन-मनन के विषय को उजागर करने के लिए दीपचंद के कथन को अंकित करती है कि "वह समझ नहीं पा रहा था कि अपनी मूढ़ता पर कितना पछताये, जिस व्यक्ति के प्रति कृतज्ञता जतलाने के लिए यह परिवार उसकी चौखट पर आया, उसी का उसने 'माली' कहकर परिचय दिया है। यह सच है कि, बुढ़ऊ...न, न, पिताजी का हुलिया उस समय ऐसा नहीं था कि किसी प्रतिष्ठित परिवार से परिचय कराया जा सकता। पर उनकी इस फटेहाली का ज़िम्मेदार कौन है?" 11

डॉक्टर उषा यादव 'ठीकरे का मोल' कहानी के माध्यम से मानवीय मूल्यों के ह्रास को पिता-पुत्र के संबंधों के माध्यम से दिखाया है। एक तरफ बूढ़ा दीपचंद अपनी सारी उम्र अथक मेहनत करके विशंभर को इस मुकाम पर पहुँचाता है, परंतु दूसरी ओर पुत्र विशंभर, जो अपने माता-पिता को कूड़ा-कचरा समझकर उन्हें रिश्तेदारों के सामने ही जलील करने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ता। कहानी में वर्णित यह संवाद नवीन पीढ़ी के लिए प्रश्न उठाता है कि घर में हो रही वृद्धावस्था की इस दशा-दिशा के लिए आख़िरकार जिम्मेदार कौन है - शिक्षा, वे या फिर वृद्ध जिन्होंने उनका पालन-पोषण करके उन्हें इस लायक बनाया।

उषा जी ने 'गैंगरेप' कहानी में भी प्रोफेसर हर्षिता के गैंगरेप की झूठी ख़बर उड़ाए जाने वाले दो लड़कों के माध्यम से मानवीय मूल्यों के पतन का चित्रण किया है। भारतीय समाज में गुरु और शिष्य की परंपरा वैदिक काल से ही उत्तम कोटि की रही है, परंतु वर्तमान समय में पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव के कारण यह मूल्य बिगड़ते जा रहे हैं। वैदिक काल में गुरु के द्वारा शिष्य यानी विद्यार्थी को ग़लत कार्य किए जाने पर मारपीटाई और डाँट-डपट लगाई जाती थी, परंतु आज के विद्यार्थी को किसी ग़लत कार्य करने पर डाँट-डपट लगाने पर वह उसे अपने मान-सम्मान, तिरस्कार के रूप में लेता है।

'गैंगरेप' कहानी में ऐसे ही मान-सम्मान की तिरस्कार के तहत की जाने वाली साजिश

में दो लड़कों के द्वारा एक झूठी वीडियो का प्रचार कर उसे डॉक्टर हर्षिता से जोड़कर गैंगरेप की झूठी ख़बर प्रसारित की जाती है। डॉक्टर हर्षिता के द्वारा आपत्ति दर्ज की जाने पर अख़बारवालों के द्वारा इस वीडियो की जाँच की जाती है। जाँच के दौरान साज़िशकर्ता दोनों लड़कों को पकड़ लिया जाता है और उनसे उनके द्वारा रची हुई साज़िश की सच्चाई सामने आती है। दोनों लड़कों ने यह साज़िश प्रोफेसर हर्षिता को सबक सिखाने के उद्देश्य से की थी, क्योंकि प्रोफेसर हर्षिता के द्वारा एक बार उन्हें क्लास में किसी ग़लत कार्य के लिए डाँटा गया था, और अपने गुरु की डाँट से आहत होकर दोनों लड़कों ने इस कार्य को अंजाम दिया था।

जब 'सुप्रभात' अख़बार के अधिकारियों द्वारा प्रस्तुत की गई जानकारी को जाँचने का प्रयास किया गया, तब उन्हें पूरी तरह से स्पष्ट हो गया कि इस गैंगरेप की ख़बर झूठी और निराधार है। इसमें 'सुप्रभात' अख़बार के अधिकारियों द्वारा दावा किया गया कि फोटो और वीडियो में प्रदर्शित महिला और तथाकथित स्थान के व्यक्ति के बीच कोई संबंध नहीं है। प्रोफेसर हर्षिता ने सुप्रभात अख़बार के अधिकारियों की बात पर आपत्ति जाहिर करते हुए कहा कि "देखिये बेहूदगी बहुत हो चुकी मुझे वही ठोस सबूत चाहिए।"12

हर्षिता ने इस गैंगरेप की ख़बर के विरोध और आपत्ति के बाद, जब यह अख़बार द्वारा संबंधित विषय पर स्पष्टीकरण किया जाता है, एक साज़िश के रूप में प्रस्तुत की जाती है। दो लड़कों द्वारा इस गड़बड़ी की साजिश रची जाती है, जिन्होंने एक वीडियो और सबूत प्रदान किए हैं। इन सबूतों की जाँच के बाद, यह बात निकल कर सामने आती है कि सभी सबूत नकली और झूठे हैं। 'सुप्रभात' अख़बार द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली वीडियो में दिखाई जाने वाली महिला वास्तव में किसी अन्य स्थान पर थी। हालाँकि, इस विषय पर यह साज़िश विश्वविद्यालय के द्वारा रची गई थी, जहाँ डॉ हर्षिता ने दो छात्रों को क्लास में ग़लत काम करने पर डाँटा था। इन छात्रों में से एक छात्र कहता है कि "आप लोग समझते क्या हैं, हर्षिता मिस को सबक सिखाने के लिए हमने यह साज़िश रची थी।"13

इसी विषय पर बात रखते हुए दूसरा लड़का कहता है कि "मिस को तो याद भी नहीं होगा, पर एक दिन अपनी क्लास की एक लड़की को छेड़ने की वजह से इन्होंने हमें डाँटा था। पूरी क्लास के सामने हमें काफी बकवास किस्म की नसीहत दी थी। हम तो अपने माँ-बाप का उपदेश नहीं सुन सकते, उनकी बकवास कैसे बरदाश्त करते? इस जुर्म की सज़ा तो उन्हें झेलनी ही थी।"14

गहन जाँच और छानबीन के दौरान तथाकथित गैंगरेप का सच सबके सामने आता है, परंतु विश्वविद्यालय के बच्चों को इस कार्य पर ज़रा सी भी ग्लानि नहीं है। उनके द्वारा यह कार्य प्रोफ़ेसर हर्षिता को सबक सिखाने के लिए किया गया था। इस विषय पर वे कहते हैं कि "हमें इस वक्त भी अपने किए पर कोई पछतावा नहीं है। इन्होंने हमें पूरी क्लास के सामने अपमानित किया। हमने इन्हें पूरी सोसाइटी के सामने ज़लील किया। सिर्फ अपने अपमान का बदला भर लिया है, बस।"15

इस विषय पर, एक अन्य लड़का अपने विचारों को आगे बढ़ाते हुए और प्रोफेसर हर्षिता द्वारा उनके साथ किए गए तिरस्कार का प्रतिशोध लेने के लिए योजित की गई साज़िश के बारे में कहता है कि "हम काफी दिनों से मौके की तलाश में थे। कई योजनाएँ बनाई भी थीं, पर सफल नहीं हो सकीं। पूर्व छात्र सम्मेलन वाले दिन मिस शायद अस्वस्थ थीं। उन्हें कोने वाले क्लास रूम में अकेली बैठी देखकर हम दोनों ने चुटकियों में उन्हें मज़ा चखाने का सोच लिया। हमें खुशी है, हमारी योजना सफल हुई।"16

निष्कर्ष - अंतत: कहा जा सकता है कि मानवीय मूल्यों का ह्रास एक चिंताजनक मुद्दा है जो हमारे समाज के ढाँचे के लिए महत्त्वपूर्ण चुनौतियाँ पैदा करता है। व्यक्तिवाद, भौतिकवाद और प्रौद्योगिकी के प्रभाव के बढ़ने के साथ, सहानुभूति, करुणा, अखंडता और दूसरों के प्रति सम्मान जैसे आवश्यक मानवीय गुण कम हो रहे हैं। मूल्यों का यह क्षरण लोगों के एक-दूसरे के साथ बातचीत करने के तरीके, परिवार और सामुदायिक संबंधों के टूटने और सामूहिक कल्याण के बजाय स्व-हित पर बढ़ते ध्यान से स्पष्ट है। इस समस्या के समाधान और मानवीय मूल्यों के क्षरण को रोकने के लिए व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों स्तरों पर ठोस प्रयासों की आवश्यकता है। सबसे पहले, कम उम्र से ही नैतिक शिक्षा और नैतिक मूल्यों को बढ़ावा देना महत्त्वपूर्ण है। स्कूलों, परिवारों और समुदायों को चरित्र-निर्माण और सहानुभूति और करुणा को बढ़ावा देने वाले गुणों को स्थापित करने पर ज़ोर देना चाहिए। इसके साथ-साथ नैतिक शिक्षा, सांस्कृतिक मूल्यों और सहानुभूति पर नए सिरे से ज़ोर देने की आवश्यकता है। एक-दूसरे के प्रति जिम्मेदारी की भावना पैदा करके और अच्छे व्यवहार को बढ़ावा देकर, हम अपने समाज में मानवता के सार को पुन: प्राप्त और सुदृढ़ कर सकते हैं। ऐसा वातावरण बनाना महत्त्वपूर्ण है जो दूसरों की भलाई के लिए समझ, दयालुता और विचार को बढ़ावा दे, जिससे समुदाय अथवा समाज अधिक सामंजस्यपूर्ण और नैतिक रूप से समृद्ध बने।

000

संदर्भ - 1.वामन शिवराम आप्टे, हिन्दी संस्कृत-हिन्दी कोश, पृष्ठ 812, 2.डॉ. अरुणा गुप्ता, छठे दशक की हिन्दी कहानी में जीवन-मूल्य, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1989, पृष्ठ 65, 3.रीता शर्मा, गिरिजा कुमार माथुर के काव्य में जीवन-मूल्य, अनामिका प्रकाशक एवं वितरक, नई दिल्ली, संस्करण 2009, पृष्ठ 236, 4.विष्णु प्रभाकर, मेरे साक्षात्कार- खंड 10, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1994, पृष्ठ 85, 5.उषा यादव, 'ठीकरे का मोल', पृष्ठ 14, 6.वही, पृष्ठ 14, 7.वही, पृष्ठ 14, 8.वही, पृष्ठ 15, 9.वही, पृष्ठ 19, 10.वही, पृष्ठ 20, 11.वही, पृष्ठ 21, 12.डॉक्टर उषा यादव, 'गैंगरेप', पृष्ठ 48, 13.वही, पृष्ठ 52, 14.वही, पृष्ठ 53, 15.वही, पृष्ठ 53, 16.वही, पृष्ठ 53

(शोध आलेख)

लोक परंपरा में जूंझार देवताओं का अखण्ड कीर्तिमान

शोध लेखक : मंजीतसिंह
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
मोहनलाल सुखाड़िया
विश्वविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान

मंजीतसिंह
41, अरावली कॉम्प्लेक्स, न्यू आर.टी.ओ. रोड, यूनिवर्सिटी कैम्पस के पास, उदयपुर, 313001, राजस्थान
ईमेल- mjbhati999@gmail.com

भारतीय संस्कृति में परंपराओं का अपना एक जीवन रहा है, जो मनुष्य की श्रेष्ठ कामनाओं से युक्त है। संस्कृति में जो आध्यात्मिक तत्व है वो वैदिक युग से ही परंपराओं पर आरूढ़ होकर हर युग में आम आदमी के जीवन में नैतिक उपलब्धियों का कारण रहा। लोक भौतिक विकास का चाहे कोई भी स्तर प्राप्त करले, किंतु परंपराओं का संसार उसका अपना है जो नित्य रहेगा। लोक जिस संस्कृति की बात करता है परंपरा उसकी धुरी है और यह धुरी अध्यात्म के गहरे जुड़ाव से संबंध रखती है। मानव मन अपने चेतन, अचेतन में प्रत्येक विचार से जो अनुभूति ग्रहण करता है उसमें वो परम सत्ता के सानिध्य के प्रति नतमस्त करहता है। लोक में इसी अध्यात्म से संस्कृति की और बहुत सी चीज़ें विकसित होती रही जो परंपरा में सम्मिलित कर दी गई। इससे लोक परंपरा समृद्धि से सम्मोहन रखती है। इसी कारण युगों-युगों से चली आ रही बातें स्थायित्व पाकर बरकरार है।

लोक प्रकृति के प्रति सदैव कृतज्ञ बना रहा है। प्रकृति के महान चमत्कारों की पूजा करता है। लोक प्रकृति के जिन रूपों की पूजा करता है उसकी परंपरा किसी एक शताब्दी से नहीं है, अपितु जहाँ से ऐतिहासिक युग की परिभाषा स्पष्ट होती है वहीं से प्रारंभ हुई थी, लोक देवता इसी परंपरा का हिस्सा रहे हैं। मानवीय गुणों में जो सर्वश्रेष्ठ है वही तो देवरूप है। लोक उन्हीं को देवता की उपाधि देता है जो मनुष्य जीवन के कल्याण को सोपान देते हैं। मानव जीवन ईश्वरीय शक्ति का ही अंश है, इसकी शुभ कामना रखने वाले अपना जीवन इसी लोक की पूँजी के लिए खपा देते हैं, लोक उन्हीं व्यक्तियों को देवता का दर्जा देकर सम्मानित करता है। इसी परंपरा में जूंझार देवता लोक में विशिष्ट स्थान रखते है। विशिष्ट इसलिए है कि लोक मान्यता में वीरता की पराकाष्ठा इन्हीं जूंझार देवताओं के उदाहरणों से परिभाषित की जाती है। हमारी संस्कृति के मूल में मंगल का मनाव कल्याणार्थ की गूँज जो सुनाई देती है उसे तुलसी अपने शब्दों में बाँध कर कहते हैं-

परहित सरिस धर्म नहीं भाई। पर पीड़ा सम नहि अधमाई।।
निर्नय सकल पुरान बेदकर, कहेक शान जानहि कोविन्द नर।।1

इसी छंद को चरितार्थ करते हुए अपना जीवन परहितार्थ युद्ध में लड़ते हुए त्यागने वाले व्यक्ति लोक में देवता बन गए। किंतु जूंझार होना युद्ध में वीरता का चरम स्तर है जहाँ सर कटने के बाद भी योद्धा का घड़ कबंध युद्ध करता हुआ कोसों दूर कई घंटे बिता देता था। इसी कारण लोक परंपरा इन वीर योद्धाओं को विशिष्ट सम्मान देती है।

जूंझार शब्द लोक में जिन अर्थों से सुशोभित है वो इस प्रकार है-

"जूंझार– (वि. स. युद्धकार) 1.परोपकार के लिए युद्ध में वीर गति प्राप्त करने वाला, 2.पीर,

3. शक्तिशाली, 4.वीर योद्धा

भोमियौ – वि. जानकर, विज्ञ 2. चतुर, दक्ष 3. मूल निवासी, 4.बाहुबल से अधिकृत भूमि का स्वामी, 5. क्षेत्र विशेष का विशेष जानकार, 6. लूटेरा डाकू, 7. किसी क्षेत्र या भूमि का सार्वभौम स्वामी 8. वह छोटा भू-स्वामी जो पुलिस का कार्य करता था।

मामौजी– 1.परोपकार में वीरगति प्राप्त करने वाला व्यक्ति

जायसी कृत 'पद्मावत' महाकाव्य में भी जूंझार शब्द का उल्लेख मिलता है। गौरा बादल युद्ध यात्रा खण्ड" -

बादल राय मोर तूं बारा का जानसि कस होई जुझारा।"2

कतिपय इन शब्दार्थों के बाद हम अगर साहित्य में देखें तो ऐसे कई उद्धरण हैं जिनमें वीर

योद्धाओं के सिर कटने पश्चात कबन्ध का युद्ध करना बताया जाता है।

पृथ्वीराज के राजकवि चन्दरबरदाई द्वारा रचित पृथ्वीराज रासो में जूंझार होने के स्पष्ट दृष्टांत है-

लरत सीस तुट्यो सुसर। धर उठ्यौ करि मार। / घरी तीन लौ सीस बिन। कट्टे तीस हजार।।2253।।3

स्थानीय लोकगाथाओं में भी जूंझार होने के कई दृष्टांत मिलते हैं। 'बगड़ावत लोकगाथा' में कबंध युद्ध का दृश्य है, जिसमें वक्ष स्थल पर आँखें उग आना तथा लम्बे समय तक भयंकर युद्ध करने का वर्णन किया गया है।

घड़ टूटयो माधो पड़यौ हिया में आगी आँख। / दुनिया में डाकी बाजसी खांडो धरती नाँख॥

तनै धणा गाढा रंग बाघजी का नेवा। / माथो पड़या पछे अस्सी पहर तलवार बजाई।। 4

कबीर ने भी जूझने को सराहा है जिस का वर्णन 'सूरातन को अंग' में मिलता है-

कबीर सोई सूरिवां मन सौ माडे जूझ। / पंच पियादै पकरि के दूरि करे सब दूजि।।

सूरासोई सराहिए लड़े धनी के हेत। / पुरिजा पुरिजा होइ परै तक न छाडे खेत।।5

हालाँकि कबीर इंद्रियों की बात करते हैं किंतु जूझने का सादृश्य प्रकट करके वीर योद्धा का स्वरूप दर्शाते हैं।

मध्यकाल में जो राज व्यवस्था थी उसमें सामंत व ठिकानेदार तथा गाँव के मुखिया प्रशासन की छोटी-छोटी इकाइयों के माध्यम से व्यवस्था सँभालते थे। गावों की रक्षा हेतु भी एक मुखिया होता था, जो बाह्य आक्रमणों तथा लुटेरों से जन-धन की हानि की रक्षा करता था। इनस भी छोटे-बड़े युद्धों में बलिदान देने वाले वीर योद्धाओं को लोक तब से लेकर आज तक सम्मान देता आया है, जूंझार परंपरा की इस अद्वितीय शौर्य पराकाष्ठा पर विज्ञान भले ही उँगली उठाये किंतु लोक सदियों से इसे मान्यता देता रहा है। जिसे लोक की मान्यता प्राप्त है, उस विश्वास को चुनौती नहीं दी जा सकती। लोक को अपनी भावनाएँ किसी न किसी तथ्यगत कारण से ही प्रकृति की इस ईश्वरीय शक्ति के आगे नतमस्तक है।

दो-दो मैला नित भरे, पूजे दो-दो ठौड़। / सिर कटियो जिण ठौड़ पर, धड़ जूँझी जिण ठौड़।।6

कई वर्षों से ऐसे स्थान पर मेल भरते हुए आए है जहाँ वीर योद्धाओं के सर व धड़ वीर गति को प्राप्त हुए नियत तिथि-वार को लोक की आस्था परवान पर होती है तथा लोक अपने विश्वास से इन धारणाओं को पुष्ट करता है। राजस्थान की धरती वीरों की भूमि रही है इसमें कोई दो राय नहीं है कि राजस्थान का पूरा इतिहास मातृभूमि की रक्षा हेतु रण खेत रहे वीरों को समेटे हुए है। व्यवस्थाएँ चाहे अलग रही हो, अभी गणतंत्र और पहले राजतंत्र किंतु मातृभूमि तो मातृभूमि ही रहती है। आम जन-धन की रक्षा प्रत्येक वीर का प्रथम धर्म था। राज स्थान में पग-पग ऐसे वीर जुझारों का अस्तित्व रहा, जिसको चरितार्थ करती है यह पंक्तियाँ-

जूंझारां हर झुपडी, हर घर सतियाँ आण। / हर वाटी माटी रंगी, हर घाटी घमसाण।।7

लोक परंपरा में गीतों के वीरोचित स्वरों में इन जूंझारों के स्तवन की पूँजी को लयबद्ध किया गया है। जन कल्याण के लिए इस भावना से मस्तक देने की परंपरा की लोक पूजा क्यों न करें?

हिन्द पिछाणो आप बळ, करो घोर घमसांण। / बिण माथे रण माँडणो, हरबळ में रजथान।।

सह देसां सूरा हुवा लड़िया ज़ोर हमेस। / सिर कटिया लड़नो सखी इण घर रीत विसेस।।8

इन लोक मान्यताओं में विश्वास के कुछ कारण अवश्य है, वो कारण है-त्याग। बिना किसी प्रलोभन या प्रयोजन के इस महान त्याग से ही लोक इन्हें सम्मान देता है।

धरम जाता धरा पलटता त्रिया पड़ता ताव। / ओ तीनू दिन त्याग रा कुण रंक कुण राव।।

अर्थात् -बलपूर्वक धर्म परिवर्तन करवाये जाने पर या अपनी मातृभूमि पर दुश्मन का अधिकार होने पर या अबला की इज्ज़त पर आँच आने पर ये तीनों ही दिन उत्सर्ग के हैं इसमें क्या रंक और क्या राजा!"9

जैसा कि हम पहले लिख चुके है कि बाह्य आक्रमणों से वैदिक व प्राचीन संस्कृति पर चोट की जा रही थी। इससे रक्षा हेतु प्राणोत्सर्ग लोक विश्वास मंस महान कार्य रहा अगर तत्कालीन परिस्थितियों पर नज़र डालें तो हमें यह जानने में आता है कि किन-किन मुख्य कारणों से लोक परंपरा में वीर योद्धा रण में जूंझार हुए।

बाह्य आक्रमणों से छोटे-छोटे गाँव व नगरों को अधिक नुकसान होता था। इसकी रक्षा की जिम्मेदारी ग्राम के वीर व सम्मानित मुखिया पर रहती थी। आतताइयों द्वारा धर्म भ्रष्ट करने तथा धार्मिक आस्था के प्रतीकों पर आघात करने पर रक्षार्थ वीर का जूझना।

आर्थिक व धार्मिक दृष्टि से गोधन ही उस समय व्यक्ति समृद्धि का आधार था। गोधन को लूट से बचाने के लिए जूझना यह एक महत्त्वपूर्ण कारण था, कृषि या अन्य भौतिक संसाधन इतने व्यापक नहीं थे कि व्यक्ति का गुजारा चल सके। मरूस्थल की निर्जीवता व पानी की कमी से केवल पशुधन ही मानव खाद्य उत्पादन का जरिया था। दूसरी तरफ गाय से प्राप्त सम्पूर्ण सामग्री धार्मिक व आर्थिक रूप से उपभोग की जाती थी इसी की रक्षा के लिए युद्ध में सर तक दे दिया जाता था। लोक देवता पाबूजी राठौड़ के जीवन चरित से सब परिचित है उनकी कथा में उद्घृत है-

बोल न करड़ा बोल, आँटीला ठाकर अबै। / करस्यां साचा कोल, सर देस्यां गायाँ सटै।

पाणी पवन प्रमाण, धर अम्बर हिन्दू धरम। / अब मोही धांधल आण, सिर देस्यूँ गायाँ सटै।"10

गाँव को लूटने वाले आतताई गाँव की स्त्रियों पर अत्याचार करते थे। इसी स्त्री रक्षा हेतु वीर रण में जूझने को तैयार रहते थे, स्त्री सतित्व की रक्षा इन वीरों का प्रथम धर्म रहा।

उपरोक्त कारण जनित परिस्थितियों से वीर योद्धा रणखेत रहते थे। यह सभी प्रयोजन आम जन से संबंधित है। मानव कल्याण व रक्षा की प्रमुख भावना लोक संस्कृति का मूल

तत्त्व मानता है कि जिस व्यक्ति ने अपने जीवन में शारीरिक व मानसिक रूप से सत्य गुण की रक्षा की है, वो व्यक्ति मन विचार व प्राण से उतना ही शुद्ध है तथा नैतिक रूप से प्रकृति की दैवीय शक्ति के उतना ही करीब। कहने का तात्पर्य यह है कि लोक प्रत्येक सैनिक या लड़ने वाले वीर को जूंझार की संज्ञा नहीं देता बल्कि उस की यह मान्यता है कि व्यक्ति अपने जीवन में जितनी शुद्धता के साथ विचार वान रहता है उतना ही शुद्धता से अगर जीवन में नैतिक ताबरते तो उसमें देवत्वयाक हें दैवीय शक्ति का पुंज अधिक विकसित होता है। लोक की मान्यता मनुष्य को जीवन में नैतिकता के साथ यथार्थ में उतना ही शुद्ध आचरण करने की चाह रखती है।

सिर देवै पर कारणे, सिर झेलै पर तांण। / बीतां बातां गीतड़ा बढ़ बढ़ करै बखाण।।

यहाँ के शूरवीरों को धन्य है जो परकाज हित अपना मस्तक कटा देते हैं तथा दूसरे के संकट को अपने सिर पर झेल लेते हैं। कवियों के गीतोंव कथाओं में ऐसे शूरवीरों की कीर्ति का बढ़-चढ़ कर बखान किया जाता है।"11 ऐसे कई कीर्तिमान है जिनमें जूंझारों के सर एक स्थान तथा धड़ कुछ या कोसों दूरी पर रणखेत रहे। दोनों जगह पर लोक में स्थान बना प्रतीक स्वरूप उनकी उपासना की जाती है ऐसे उदाहरण कई स्थानों पर देखने को मिल सकते हैं उनके कीर्ति स्वरूप लोगों ने कई गीतों व छंदों की रचना की थी यो जनमानस में आज भी प्रचलित है।

विण माथै बढे ढलां, पौढे करज उतार। / तैण सूरां रो नाम ले, भड़ बाँधे तरवार।।

मुझ अचंभौ है सखी, कंत बखाणु कीस। / विण माथै दळ बाढियौ, आँख हियै के सीस। ।12

समय बदला, व्यवस्थाएँ बदली, सीमाएँ बदली और अब समस्त अखण्ड स्वरूप भारत भूमि रूप से सुशोभित है। लोक संस्कृति के मायने यथावत है क्योंकि लोक अपनी परंपराओं में विश्वास को मरने नहीं देता। अब जूंझार परंपरा के लिए वैसी परिस्थितियाँ नहीं है। किंतु लोक वर्तमान में भी इस परंपरा का संवर्द्धन कर रहा है। भारतीय सेना में अपना लोहा मनवाने वाले वीर बाँकुरे जब शहादत को प्राप्त करते हैं तो लोक उन्हें जूंझार स्वरूप सम्मान देकर ऊँचा स्थान देता है। सैन्य व्यवस्थाओं के बदलने से युद्ध के मायने भी बदल गए है लेकिन मातृभूमि के लिए हँसते-हँसते प्राण न्यौछावर करने वाले जाँबाज़ आज भी देव योनि में पूजनीय है।

समाज के बदलते स्वरूप में हम परंपराओं के मायने नहीं बदल सकते लोक की मान्यताओं में बिना किसी अवरोध के सैंकड़ों वर्षों से जूंझार स्तवन जारी है क्योंकि उसकी प्रासंगिकता है। किन मायनों में? इसका उत्तर हम उनके जीवन को आदर्श स्वरूप में देख सकते हैं। लोक संस्कृति के अस्तित्व की रक्षा, धर्म की रक्षा, निर्बल की रक्षा, स्त्री की रक्षा, मानवीय मूल्यों की रक्षा हेतु जीवन का त्याग वीर ता की उच्च पराकाष्ठा में कैसे अप्रासंगिक हो सकता है। लोक मानता आया है एक ऐसी सुदृढ़ चेतना वसहूलियत से जिसे विज्ञान अवरुद्ध नहीं कर सकता क्योंकि लोक का अपना विज्ञान है, जिसकी सीमाएँ लोक स्वयं निर्धारित करता है। भौतिकता के इस युग में लोक परंपरा की इस आध्यात्मिकता का स्वर कभी मंद नहीं पड़ने वाला। समूचे समाज के सामने जूंझारों के कीर्ति मान के ऐसे उदाहरण है जिनसे युवा आदर्श स्वरूप शिक्षा ग्रहण कर मानव कल्याण के नए स्तंभ स्थापित कर सकता है। शौर्य की पराकाष्ठा के ऐसे विरलेसं योग से युवा पीढ़ी साहस जुटाकर तमाम आततताई बुराईयों का सामना कर सकती है, पर जरूरी है कि लोक के इन विश्वासों का अध्ययन करना तथा लोक परंपराओं से सानिध्य स्वरूप उन तत्वों की तलाश करना जो वीर जूंझार देवताओं के समकक्ष परिलक्षित होते हैं।

शोध सार प्रथम अध्ययन से लोक संस्कृति में आध्यात्मिकता के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। इसी परंपरा में जूंझार देवताओं की अभिव्यक्ति की गई है। इस के बाद जूंझार शब्द का अर्थ प्रकट किया गया, साहित्य में उन उद्धरणों की चर्चा जहाँ जूंझार शब्द व्यक्त हुआ है। जूंझार देवता और लोक से संबंधित चेतना अभिव्यक्त की गई है। परिस्थिति जनित कारणों का उल्लेख जिन में जूंझार होना दर्शाता है। लोक परंपरा में जूंझार देवताओं के कीर्ति मान का स्तवन और लोक द्वारा आदर्श स्वरूप प्रस्तुतीकरण समाज को संदेश देने की परिभाषा को स्पष्ट रूप से व्यंजित है। भारतीय संस्कृति के प्रतिपालकों का असल मायने में क्या स्थान होना चाहिए लोक परंपरा द्वारा सदैव इसका निर्वहन कर रहा है। लोक संस्कृति के इस महत्त्वपूर्ण अध्याय में मानव जीवन की विशेष परिकल्पना का लक्षण उद्धृत करने का प्रयास किया गया है।

000

संदर्भ-

1. गोविन्द सिंह राठौड़ : भारतीय संस्कृति के प्रतिपालक, सुधन प्रकाशन, जोधपुर, 2018, पृ.9, 2. वही, पृ.15-16, 3. वही, पृ.30, 4. वही, पृ.31, 5. महिपाल सिंह राठौड़ : लोक देवता जूंझार जी: एक अनुशीलन, राज स्थानी लोक देवी-देवता परंपरा अर साहित्यिक दीठ (सं. गजेसिंहराजपुरोहित), राजस्थानी ग्रंथागार, सोजती गेट जोधपुर 2021, पृ.59, 6. गोविन्द सिंह राठौड़ : भारतीय संस्कृति के प्रतिपालक, सुधन प्रकाशन, जोधपुर, 2016 पृ.12, 7. रघुनाथ प्रसाद तिवाड़ी :राजस्थान के वीर जूंझार, राजस्थानी ग्रंथागार, सोजती गेट, जोधपुर 2019, पृ.34, 8. वही, पृ.34, 9. महिपाल सिंह राठौड़: लोक देवता जूंझार जी :एक अनुशीलन, राज स्थानी लोक देवी-देवता परंपरा अर साहित्यिक दीठ (स. गजसिंहराज पुरोहित), राजस्थानी ग्रंथागार, सोजती गेट जोधपुर 2021, पृ.57, 10. महिपाल सिंह राठौड़: लोक देवता पाबूजी राठौड़, राजस्थान के लोक देवता (सं. विक्रम सिंह भाटी), राजस्थानी शोध संस्थान, रॉयल पब्लिकेशन, जोधपुर 2017, पृ.30, 11. रघुनाथ प्रसाद तिवाड़ी :राजस्थान के वीर जूंझार, राजस्थानी ग्रंथागार, सोजती गेट जोधपुर, 2019, पृ.36. 12. गोविन्द सिंह राठौड़ : भारतीय संस्कृति के प्रतिपालक, सुधन प्रकाशन, जोधपुर, 2016, पृ.34

(शोध आलेख)

शोषण के विरुद्ध लड़ाई में पुलिस की भूमिका की खोज: 'काहे री नलिनी'

शोध लेखक : पूनम सिवाच,
शोधार्थी, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक
शोध निर्देशक : डॉ. आशा सहारण
प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक

पूनम सिवाच
शोधार्थी
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय
रोहतक, हरियाणा

प्रस्तावना - 'काहे री नलिनी' कहानी में डॉ. उषा यादव ने पुलिस बल की सभ्य और सतर्क प्रवृति को कुशलता से चित्रित किया है और जघन्य अपराधों से निपटने में पुलिस की महत्त्वपूर्ण भूमिका पर ज़ोर दिया है। कहानी नैतिक कर्तव्य, लचीलापन और विपरीत परिस्थितियों में न्याय की खोज के विषयों की पड़ताल करती है। उषा यादव के कहानी 'काहे री नलिनी' में लेखक ने न्याय, प्रतिशोध और जबरन वेश्यावृत्ति में फँसी महिलाओं की दुर्दशा के विषयों की पड़ताल की है। कहानी आईपीएस अधिकारी नंदिता के इर्द-गिर्द घूमती है, जिसकी चाची नलिनी अपने गाँव के तीन युवकों द्वारा किए गए जघन्य अपराध की शिकार हो जाती है। नलिनी को नौकरी दिलाने के नाम पर धोखा दिया जाता है और बाद में वेश्यावृत्ति में बेचे जाने से पहले उसके साथ जबरन बलात्कार किया जाता है। यह निंदनीय घटना नंदिता को गहराई से प्रभावित करती है, जो अपनी चाची के लिए न्याय माँगने और नलिनी जैसी कम उम्र की लड़कियों के शोषण को समाप्त करने का संकल्प लेती है।

आईपीएस नंदिता की मौसी नलिनी का अपराधियों द्वारा जबरन बलात्कार किया जाता है और उसे देह व्यापारियों के हवाले कर दिया जाता है, जो उन्हें नौकरी के नाम पर बेवकूफ़ बनाते हैं। नंदिता की मौसी नलिनी गाँव के तीन युवकों द्वारा नौकरी के झाँसे में फँस जाती हैं। नौकरी के लोभ में, वे तीनों लड़के नलिनी मौसी को शहर में ले जाते हैं और वहाँ उसे अनैतिक कार्यों का शिकार बनाकर, उसे कोठे में बेच देते हैं। उषा यादव गाँववालों के द्वारा सुनी बातों के आधार पर लिखती हैं कि "करीब चार साल बाद गाँव की लड़कियों से पता चला कि अभागी नलिनी को गाँव के तीन मनचले युवकों ने अपनी लच्छेदार बातों के जाल में फँसा लिया था। उसे शहर ले जाकर अच्छी नौकरी दिलाने के सब्जबाग दिखाए थे। गाँव की भोली-नादान पंद्रह बरस की नलिनी उनकी बातों में आ गई। पिता की अकाल मौत से टूटी और माँ की तपेदिक की बीमारी के लंबे इलाज की चिंता से बेहाल होने की वजह से उनके साथ शहर चली गई। उसके बाद क्या हुआ, कोई नहीं जानता।"1

इसी प्रसंग में आगे उषा जी लिखती हैं कि "गाँववाले दबी ज़बान में कहते थे कि नलिनी को उन युवकों ने बीस हज़ार रुपये में किसी कोठे पर बेच दिया है। जिस माँ के इलाज के लिए वह लड़कों के बहकावे में आई, वह माँ भी तीन महीने बाद ही रोती कलपती चल बसी। बीमारी से ज़्यादा बेटी द्वारा उठाए गए कदम ने उसे तोड़ दिया था। वह गाँव में किसी को मुँह दिखाने लायक न रही थी।"2

दुर्भाग्यपूर्ण घटनाक्रमों ने नलिनी मौसी के साथ जो हानिकारक व्यवहार हुआ, उससे नंदिता को गहरा आहत महसूस होता है। नंदिता निरंतर उस अपराधी क्रिमिनलों से बदला लेने के बारे में विचार करती है और नलिनी जैसी बालिकाओं के प्रति हो रहे कुकृत्य को समाप्त करने के निर्धारित उद्देश्य में दृढ़ संकल्प बनाती है। उसके लिए वह भारतीय पुलिस सेवा में आईएएस की बजाय आईपीएस का चयन करती है, ताकि वह दुष्कर्म संबंधी व्यापार को ख़त्म करने में पुलिस के माध्यम से सक्षम हो सके। इंटरव्यू के दौरान नंदिता से पुलिस विभाग का चुनाव करने के बारे में पूछा जाता है तो वह कहती है कि "अन्याय और शोषण के विरोध के लिए, गूँगों की आवाज़ बनने के लिए, ख़ासकर दबी-कुचली औरतों के मूक दर्द को ज़ुबान देने के लिए।"3

हर समय नंदिता को अपनी मौसी का चेहरा याद आता है। वह सदैव उन तीन युवाओं से प्रतिशोध लेने और नलिनी मौसी की तरह दबाव में फँसी हुई बालिकाओं को सुरक्षित और ख़ुशहाल जीवन देने के विचार में रहती है कि "तुम्हें तो मैं देह-व्यवसाय में धकेले जाने से नहीं बचा सकी, पर तुम्हारी जैसी हज़ारों-लाखों मजबूर लड़कियों को जबरन दैहिक शोषण से ज़रूर

बचाना चाहती हूँ। इस नौकरी में मेरे आने की वजह तुम हो, सिर्फ तुम।"4

डॉ. उषा यादव ने 'काहे री नलिनी' कहानी में पुलिस के सभ्य व सतर्क रूप का चित्रण मनकुमारी और दूधीमाया जैसी दो अबोध बालिकाओं के जबरन देह व्यापार से बाहर निकाले जाने से जोड़कर भी चित्रित किया है। दिलबहादुर नाम का व्यक्ति उसी के गाँव की रहने वाली दो लड़कियों 'दूधीमाया' और 'मनकुमारी' को दिल्ली में जॉब दिलवाने के बहाने दिल्ली ले आता है। परंतु दिलबहादुर दिल्ली आकर अपने मित्र पदम के द्वारा दोनों लड़कियों को कोठा नंबर बावन की मालकिन सायरा को बेच देता है। दोनों लड़कियों के बेचने के उपक्रम में वह दलाली खाता है। डॉ. उषा जी दोनों लड़कियों के शहर आने के बाद होटल ठहरने के प्रसंग को चित्रित करती हुई लिखती हैं कि "कितना मज़ेदार है? न?" छूकर देखो, चादर कितनी रेशमी और कोमल है!' दूधीमाया भी मुसकराई। अपना घर, अपना गाँव बेतरह याद आने पर भी दोनों लड़कियाँ बहुत ख़ुश थीं। ज़िंदगी में तरक्की पाने के लिए कुछ कठोर फैसले तो लेने ही पड़ते हैं। उन्हीं में से एक यह है घर छोड़ने का फैसला।"5

दिलबहादुर दोनों नाबालिग बच्चियों को पदम के माध्यम से सायरा के कोठे पर पहुँचाता है। सायरा, दोनों बच्चियों के चेहरों को देखकर, औरतों पर गहरा प्रभाव डालती हैं। डॉ. उषा जी सायरा के प्रसन्नता भाव को चित्रित करती हुई लिखती है कि "स्त्री शायद काफी प्रसन्न थी, भीतर से नोटों की दो मोटी गड्डियाँ लाकर उसने दिलबहादुर को थमा दीं। रुपया पाते ही पहले उस शख्स ने अस्पताल में पदम से लिया हुआ उधार चुकाया और फिर दाएँ-बाएँ देखे बिना एक झटके से वहाँ से बाहर निकल गया।"6

सायरा द्वारा दोनों नाबालिग बच्चियों से देह व्यापार का कारोबार किए जाने का आदेश दिया जाता है। यह दोनों को अपने-अपने नाम बदलने के विषय में कहती है कि "देखो, मैंने तुम्हारे नाम बदल दिए हैं। दूधीमाया का नया नाम 'सपना' और मनकुमारी का 'माधुरी' है भूलना मत।"7

कोठा नंबर बावन में पहुँचने पर, दिलबहादुर द्वारा दोनों बच्चियों को पैसे के बदले बेचने की सच्चाई सामने आती है। इस सच्चाई को जानकर, दोनों लड़कियाँ अत्यंत आहत हो जाती हैं। डॉ. उषा यादव दोनों बच्चियों के मनोभावों का चित्रण करती हुई लिखती हैं कि "गलीचा बनाने के कारखाने में काम करनेवाली दो छोटी लड़कियाँ। रात-दिन खटने पर भी दो वक्त की रोटियों का सुभीता नहीं। ऐसे में इसका सिर्फ सब्जबाग दिखाना ही काम आ गया। वे दोनों समझ बैठीं कि घर छोड़ते ही एक कल्पवृक्ष के नीचे पहुँचकर सारी अधूरी इच्छाएँ पूरी कर लेंगी। किंतु घर छोड़कर भी उन्हें मिला क्या? सिर्फ कोठा नं. बावन।"8 दूधीमाया आईपीएस नंदिता को बताती है कि उन्हें उनके गाँव के ही दिलबहादुर नामक व्यक्ति ने सायरा की कोठे पर बेच दिया है। दिलबहादुर ने उन्हें और उनकी बहन मनकुमारी को दिल्ली शहर में नौकरी दिलाने का बहाना बनाया था। लेकिन वास्तविकता में, वे यहाँ आकर देह व्यापार के लिए कोठे पर बेच दिए गए हैं। इस सच्चाई के सामने आईपीएस नंदिता स्तब्ध रह जाती है और उनके द्वारा अनुभव की गई दु:खभरी भावना को देखते हुए वे दिलबहादुर को सख्त सजा दिलाने की सोच में इंगित करती है कि "दिलबहादुर जैसे लोगों को तो ज़रूर ही जेल की सलाखों के भीतर करना चाहिए। अबोध और निर्दोष बच्चियों को, सिर्फ अपनी चार पैसे की कमाई के लिए जबरन देह व्यवसाय में धकेलने जैसे जघन्य अपराध का अपराधी है वह।"9

कोठा मालकिन सायरा और पदम द्वारा किए जाने वाले इस घिनौने काम पर आईपीएस नंदिता को बहुत रोष आता है। वह सायरा से ख़ुद नारी होने के नाते और इस तरह के घिनौने काम करने के बारे में धमकाते हुए कहती है कि "बच्चियाँ आख़िर हैं। क्या? किसी दंपती की गोद में डाला गया कुदरत का अनमोल तोहफा ही न! किसी घर-आँगन में चिड़ियों जैसी चहकती बच्चियाँ कितनी बचपन मोहक लगती हैं। घर की फुलवारी में कलियों जैसी महकती बच्चियाँ कितनी कोमल होती हैं और वही बच्चियाँ अपनी झील-सी गहरी आँखों में सिर्फ हिमशिला समेटे नज़र आएँ, तो उन्हें देखकर किसे दु:ख न होगा? किसी शख्स को उन्हें पत्थर में तबदील करने का हक नहीं है। ऐसे नृशंस पशु को भगवान् भी माफ नहीं करेगा।"10

आईपीएस नंदिता ने सायरा और पदम को सज़ा दिलाने के लिए विशेष सतर्कता के साथ पुलिसिया कार्रवाई को आगे बढ़ाया। वह देह व्यापार की इस पापी और दुष्कर्मिणी को जेल की सलाखों के पीछे पहुँचाने के लिए सामाजिक सुधार संगठनों के प्रबंधकों को बुलाती है। सायरा और पदम के बयानों को संग्रहित करने के लिए उनके सामने नोटिस बनाए जाने का उद्देश्य होता है, ताकि पुलिस के ख़िलाफ़ किसी भी प्रकार के आरोप और बयानों के परिवर्तन का संदेह नहीं उठा सके और पुलिसिया कार्रवाई स्पष्ट और सुगम हो। इसके बाद, अपने मोबाइल नंबर को निकालते हुए, नंदिता ने एक नंबर डायल किया। "हैलो, अपर्णाजी हैं? देखिए, यहाँ जी.बी. रोड पुलिस चौकी से मैं डी.सी.पी. नंदिता बोल रही हूँ। ऐसा है कि एक नाबालिग लड़की और एक कोठा मालिकिन पकड़ी गई हैं। उम्मीद है कि कोठे से कुछ और लड़कियाँ भी बरामद होंगी। उनके बयान के वक्त आपकी उपस्थिति जरूरी है। दोपहर दो बजे थाने पर मैं आपका इंतज़ार करूँगी।"11

इस कड़ी में ही नंदिता ने झट दूसरा नंबर डायल किया, "हैलो, 'रोशनी' की अध्यक्ष स्मिता ठाकुर से बात कराएँ। जी.बी. रोड पुलिस चौकी से मैं डी.सी.पी. नंदिता बोल रही हूँ।"12

आईपीएस नंदिता सायरा को कठोरता से धमकाती है। सायरा, औरत होने के बावजूद, अन्य महिलाओं पर अत्याचार करती है। आईपीएस नंदिता, महिला-महिला के ख़िलाफ़ किए जाने वाले अत्याचार पर विचार करते हुए कहती है कि "यह लड़की तो बीमार है। पीलिया की मरीज़ है। इस हालत में भी इससे पेशा कराती हो तुम?"13

इसी प्रसंग में नंदिता सायरा को बेइज़्ज़त

करती हुई कहती है कि "मैं पूछती हूँ तुम्हारी कोई बेटी नहीं है?"14

नाबालिग बच्चियों द्वारा जबरन देह व्यापार कराने से नंदिता का मन बहुत पीड़ित होता है। वह एक महिला के रूप में, महिला की पीड़ा को समझती है। हालाँकि, कोठा मालिक सायरा ख़ुद एक महिला होने के बावजूद, नाबालिग बच्चियों पर अत्याचार करती है। वह इन नाबालिग बच्चियों को पैसे के लिए अनजान लोगों के साथ बिस्तर साझा करने को मजबूर करती है। आईपीएस नंदिता, नारीत्व की महिमा के प्रश्न को उजागर करते हुए सायरा से कहती है कि "जो भी हो, एक माँ तो हो न! एक औरत तो हो न! कोई इनसान दूसरे इनसान के प्रति इतना हृदयहीन कैसे हो सकता है कि एक नाबालिग लड़की के गरम गोश्त को भूखे भेड़ियों के सामने परोसता रहे?" 15

डॉ. उषा यादव ने अपनी कहानी 'काहे री नलिनी' में रामवीर और मोहनलाल जैसे भ्रष्ट पुलिसवालों के निलंबन के माध्यम से भी पुलिस के सभ्य और सतर्क रूप का चित्रण किया है। यह कहानी जीबी रोड पुलिस थाने में स्थित दो हवलदार, रामवीर और मोहनलाल कोठा मालकिन सायरा से हफ्ता वसूली को दर्शाती है। जब दूधीमाया इस मामले की पुलिस में शिकायत करती है, तो आईपीएस नंदिता पुलिसवालों को कोठा नंबर बावन में छापेमारी करने के आदेश देती है और यहाँ की संचालिका सायरा को गिरफ्तार करवाने का निर्देश देती है। जब सायरा गिरफ्तार होती है, तो वह रिश्वत के दबाव में आईपीएस नंदिता के साथ मामले को सुलझाने की बात करती है। उसकी बातों में हफ्ते के हिसाब से दिए जाने वाले पैसे का भी जिक्र होता है। सायरा, हफ्ता वसूली के दौरान रामवीर और मोहनलाल हवलदार के नाम को उजागर करते हुए कहती है कि "रामवीर भैया बेचारे भी हमेशा हमसे मिलकर रहे। चुपचाप आए, पैसा लिया और लौट गए। कोई चिक-चिक नहीं। उन बेचारों की भलमनसाहत की कायल हूँ मैं। आज तक हमें कोई तकलीफ नहीं दी।"16

इस हफ्ता वसूली के विषय में रामवीर और मोहनलाल के साथ अच्छे बर्ताव और पुलिस द्वारा कार्रवाई न करने के आश्वासन के विषय में सायरा आईपीएस नंदिता को बताती है कि "थाने से रामवीर भैया का आना हो या चौकी से मोहन भैया का पहुँचना हो, हमें आज तक परेशान नहीं होना पड़ा। मोहन भैया के हँसमुख स्वभाव की क्या कहूँ! हफ्ता वसूली के बाद हमेशा एक ही बात कही, 'सायरा, चैन की वंशी बजाओ।"17

बावन नंबर कोठे की मालकिन, सायरा, आईपीएस नंदिता को रामवीर और मोहनलाल द्वारा हफ्ता वसूली के विषय में सच्चाई बताती है। इसके बाद आईपीएस नंदिता दोनों भ्रष्ट पुलिसवालों के ख़िलाफ़ शिकायत दर्ज करने का आदेश देती है। वे एक ईमानदार ऑफिसर हैं और पुलिस के कानून का सही उपयोग करके उचित कार्रवाई करती हैं। आईपीएस नंदिता सायरा द्वारा दोनों हवलदारों के हफ्ता वसूली के मामले को टेप रिकॉर्डर में रिकॉर्ड कर लेती हैं, ताकि दोनों हवलदारों और सायरा की बातों की सच्चाई को बाद में बदला न जा सके।

इस बारे में डॉ. उषा जी लिखती हैं कि "नंदिता ने भी पल भर गहरी दृष्टि से उसकी ओर देखा और फिर अपने खुले पर्स के भीतर से चलता हुआ टेप रिकॉर्डर निकालकर उसका स्विच ऑफ कर दिया। सायरा सब कुछ समझ गई। पल भर में उसका चेहरा म्लान हो गया। पर अब हाथ मलने के सिवाय कर भी क्या सकती थी?" 18

आईपीएस नंदिता द्वारा शिकायत दर्ज करने पर पुलिस विभाग द्वारा दोनों कांस्टेबलों पर निश्चित कार्रवाई की जाती है और उन्हें सस्पेंड कर दिया जाता है। इस बारे में डॉ उषा यादव लिखती हैं कि "आरोप सिद्ध हो जाने के कारण उन दोनों को सस्पेंड कर दिया गया। विभागीय जाँच शुरू कर देने की बात भी इसी मीटिंग में तय की गई। जाहिर था अब दोनों को अब आधी तनख्वाह मिलनी है। वरदी व अन्य पदक जमा कर देने हैं। हर परेड पर अपनी हाजिरी लगानी जरूरी है। यह भी जाहिर था कि विभागीय जाँच ही यह सिद्ध करेगी कि उन्हें नौकरी पर बहाल किया जाए अथवा निकाल दिया जाए। मीटिंग ख़त्म हो गई।"19

निष्कर्ष - 'काहे री नलिनी' कहानी में, डॉ. उषा यादव अन्याय और शोषण का मुकाबला करने में पुलिस बल की भूमिका के विषय की पड़ताल करती हैं, विशेष रूप से जबरन वेश्यावृत्ति के जाल में फँसी महिलाओं से संबंधित। कहानी आईपीएस नंदिता, एक समर्पित और दृढ़ पुलिस अधिकारी की है, जो अपनी चाची नलिनी की दुखद परीक्षा का बदला लेने के लिए प्रेरित हो जाती है। नलिनी को उसके ही गाँव के तीन युवकों ने धोखा दिया और बलात्कार किया, जो उसे रोज़गार देने का लालच देकर अंतत: उसे वेश्यालय में बेच देते हैं। अपनी चाची की दुर्दशा से बुरी तरह प्रभावित होकर, नंदिता ने इस तरह के अत्याचारों से लड़ने के लिए पुलिस बल में करियर चुना। नलिनी जैसी लड़कियों को छुड़ाने और वेश्यावृत्ति के धंधे को ख़त्म करने की अपनी इच्छा से प्रेरित होकर, नंदिता ने उत्पीड़ितों के लिए एक आवाज़ के रूप में अपनी भूमिका निभाई। कहानी में अन्य लड़कियों, मनकुमारी और दुधिमाया की कहानियों पर भी प्रकाश डाला गया है, जिन्हें दिल बहादुर नाम के एक व्यक्ति द्वारा वेश्यावृत्ति के लिए मजबूर किया जाता है। जैसा कि कथा सामने आती है, डॉ. उषा यादव इन युवतियों के लचीलेपन और ताकत और एक दयालु और सतर्क पुलिस बल के महत्त्व पर प्रकाश डालती हैं।

000

संदर्भ -

1.उषा यादव, काहे री नलिनी, सत्साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2011, पृष्ठ 15, 2.वही, पृष्ठ 15, 3.वही, पृष्ठ 10, 4.वही, पृष्ठ 10, 5.वही, पृष्ठ 30, 6.वही, पृष्ठ 36, 7.वही, पृष्ठ 37, 8.वही, पृष्ठ 37, 9.वही, पृष्ठ 49, 10.वही, पृष्ठ 49, 11.वही, पृष्ठ 50, 12.वही, पृष्ठ 50, 13.वही, पृष्ठ 52, 14.वही, पृष्ठ 52, 15.वही, पृष्ठ 52, 16.वही, पृष्ठ 66, 17.वही, पृष्ठ 66, 18.वही, पृष्ठ 66, 19.वही, पृष्ठ 77

(शोध आलेख)

वर्तमान दौर में हिन्दी पत्रकारिता का बदलता स्वरूप

शोध लेखक : स्नेह लता

स्नेह लता
द्वारा श्री राजेंद्र सिंह
एम. ए. हिन्दी

भूमिका - वर्तमान दौर की हिन्दी पत्रकारिता अपने सबसे उन्नत रूप में हमारे सामने खड़ी है। आज भाषीय परिप्रेक्ष्य में अंग्रेजी सहित दूसरी भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता को कड़ी चुनौती दे रही है। हिन्दी पत्रकारिता का गौरवशाली अध्याय रहा है, जिसका शंखनाद 19वीं सदी में कलकत्ता से पं. युगल किशोर शुक्ल द्वारा 'उदन्त-मार्तण्ड' नामक साप्ताहिक पत्र के प्रकाशन से शुरू होता है। ध्यान रखने की बात है कि तत्कालीन हिन्दी पत्रकारिता को आज जैसी साधन एवं सुविधाएँ प्राप्त नहीं थी, परंतु उनका एकमात्र कर्त्तव्य एवं अंतिम लक्ष्य 'स्वतंत्रता एवं राष्ट्रीयता' थी। यही वजह है कि ब्रिटिश साम्राज्य की गुलामी से भारत को मुक्ति दिलाने में हिन्दी पत्रकारिता का योगदान महत्त्वपूर्ण एवं ऐतिहासिक रहा है।

इस संदर्भ में हिन्दी पत्रकारिता के वर्तमान स्वरूप पर चर्चा करते हैं तो हम देखते हैं कि वर्तमान दौर की हिन्दी पत्रकारिता का चरित्र आज कुछ और है। आइए निम्न बिन्दुओं द्वारा वर्तमान हिन्दी पत्रकारिता के बदलते स्वरूप को जानते हैं।

राष्ट्रीय भावना - गुलाम भारत में पत्रकारिता तथा इससे जुड़े कर्मठ पत्रकारों का चरित्र एवं लक्ष्य एक था। राष्ट्र की स्वतंत्रता उनके अंतिम लक्ष्य थे। इसके लिए वे जेल जाते थे, कारावास भोगते थे। विदेशी सरकार उनके प्रेसों को जब्त कर लेती थी। समाचार-पत्रों की ग्राहक संख्या भी बहुत कम थी। कुल मिलाकर यह अत्यधिक नुकसान का सौदा था, परंतु पत्रकार सब कुछ सहकर भी देश की स्वतंत्रता के लिए वचनबद्ध थे। आज हिन्दी पत्रकारिता के मूल्य कई मायनों में पूरी तरह से परिवर्तित हो गए हैं। "आज़ादी के पहले हिन्दी पत्रकारिता का कोई व्यवसायिक दृष्टिकोण नहीं था। इस महत्ती कार्य से वही लोग जुड़ते थे जिनका एकमात्र मकसद भिन्न प्रकार के सामाजिक मुद्दों को प्राथमिकता देना होता था अथवा अपने आदर्शों के लिए प्रतिकुल एवं विषम परिस्थितियों से संघर्ष करना होता था। आज का मीडिया मे ऐसा कुछ देखने को नही मिलता हैं।"1

आज के बहुत से पत्रकारों के ख़ुद के अपने राजनैतिक और आर्थिक हित है। पत्रकार राष्ट्रीयता की भावना को छोड़कर अपने लक्ष्यों के स्वार्थ हेतु विभिन्न पार्टियों की प्रसिद्धि और वोट बैंक बढ़ाने के लिए अप्रत्यक्ष रुप से प्रचार का काम करते हैं। राष्ट्रीयता की भावना उनमें केवल मात्र अपने स्वार्थ पूर्ति और संबंधित पार्टी को लेकर ही देखी जाती है।

सम्पादन -गुलाम भारत में पत्र-पत्रिकाएँ केवल अ़बारी कागज नहीं होते हैं, उनका अपना एक सम्पादन चरित्र तथा कौशल होता है, जो वर्तमान दौर की हिन्दी पत्रकारिता में देखने को नहीं मिलती है। समाचार पत्र-पत्रिकाएँ सिर्फ अ़ख़बारी कागज, स्याही और लोहे से निर्मित कीलों का समुच्चय मात्र नहीं है और न ही उसकी रूह मशीनों या ईंट-पत्थर से बने ईमारतों में बसते हैं। यह सब अपनी-अपनी जगह जरूरी हैं लेकिन समाचार पत्र-पत्रिकाओं का असली व्यक्तित्व इन सबके उपयोग द्वारा उसमें जान और रूह डालने वाले सम्पादन कौशल से बनता है। हिन्दी पत्रकारिता के वर्तमान दौर का तकाजा यह है कि इस क्षेत्र में मूल्य तथा व्यक्तिगत रुझान दोनों तक पर रखकर सिर्फ एक वस्तु पर ध्यान रखा जाता है और वह है 'समाचार तत्व' (News Value)। वर्तमान समय में विकास के नज़रिए से हिन्दी पत्रकारिता का क्षेत्र व्यापक और बहुआयामी तथा बहुउद्देश्यीय हो गया है। पत्रकारिता के जो नवीन रूप सामने आए हैं, उनमें खेल पत्रकारिता, फोटो पत्रकारिता, खोजी पत्रकारिता, सिने पत्रकारिता, आर्थिक, पत्रकारिता, संसदीय पत्रकारिता, रेडियो-टीवी पत्रकारिता, वेब पत्रकारिता, वृतांत पत्रकारिता, संदर्भ पत्रकारिता, व्याख्यात्मक पत्रकारिता तथा ग्रामीण पत्रकारिता इनमें मुख्य हैं।

क्षेत्रीय स्तर पर निकलने वाले पत्र- पत्रिकाएँ - वर्तमान समय में प्रिंट मीडिया पर

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का प्रभुत्व है, आज प्रिंट मीडिया नया पाठक वर्ग तैयार करने के लिए भाषा के साथ-साथ कई प्रकार के प्रयोग में व्यस्त है।" क्षेत्रीय भाषाओं में निकलने वाले प्रमुख समाचार पत्र-पत्रिकाओं की संख्या अनगिनत हैं, जिनकी लोकप्रियता चर्चा का विषय है। "इन प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं में उस भाषा का प्रयोग किया जा रहा है, जो शहरी आभिजात्य वर्ग का युवा अपनी रोज़मर्रा की ज़िंदगी में बोलता है। साहित्यिक, उर्दू आदि श्रेष्ठ भाषायी शब्दों का प्रयोग बहुत हद तक कम हो गया है। ब्रिटिश शासनकाल में यह न के बराबर था, इसीलिए, सत्तर-अस्सी के दशक में प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं की तुलना वर्तमान समय में प्रकाशित होने वाले पत्र-पत्रिकाओं से करें तो यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।"2

भाषा- भाषा के स्तर पर एक विराट बदलाव देखने को मिलता है। हाल के वर्षों में एक नया चलन भी चल पड़ा है, वह है "हिंग्लिश" का प्रयोग। आम बोलचाल की भाषा के आवरण में अधिकांश समाचार पत्र-पत्रिकाओं में अंग्रेजी के बहुत शब्द घुस गए हैं। प्राय: हिन्दी के पत्र-पत्रिकाओं को देखा जाता है कि उनके शीर्षक अंग्रेजी के शब्दों को लिए होते हैं अथवा उनका शीर्षक अंग्रेजी में होता है। नई पीढ़ी के परिशिष्टों के नाम पर कुछ में रोमन लिपि तक का चलन देखा जा रहा है। ब्रिटिश भारत में जन्मी हिन्दी पत्रकारिता की भाषा साहित्यिकता लिये थी अर्थात् पत्रकारिता की भाषा साहित्य की भाषा में रची-बसी हुई थी। ऐसे में हिन्दी पत्रकारिता साहित्य के बहुत करीब थी। इससे एक बात स्पष्ट होती है कि तत्कालीन पत्रकारिता के साथ साहित्यकारों का जुड़ाव बहुत गहरा और आत्मीय था। अगर हम आज़ादी से पहले की "हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास पर नज़र डालेंगे तो पता चलेगा कि कलकत्ता से प्रकाशित होने वाला पहला हिन्दी साप्ताहिक समाचार पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' जो 30 मई, 1826 दिन मंगलवार, पं. युगल किशोर शुक्ल से लेकर भारतेंदु हरिश्चंद्र, पंडित मदनमोहन मालवीय, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी सहित सैकड़ों ऐसे नाम हिन्दी साहित्य में दर्ज हैं; जो अपने समय के लोकप्रिय साहित्यकार एवं रचनाकार रहे हैं।"3

टीआरपी की रेटिंग(टेलीविजन रेटिंग पॉइंट)- टीआरपी की रेटिंग जिसकी फुल फॉर्म टेलीविजन रेटिंग पॉइंट होती हैं। यह एक कसौटी है जो चैनल और कार्यक्रम की लोकप्रियता को पाठकों के समक्ष रखती है और इसको पाठकों की पसंद के हिसाब से देखा जाता है कि किस चैनल को जितने अधिक दर्शक देखते हैं। उसकी उतनी अधिक टीआरपी यानी प्रसिद्धि मानी जाती है। टीआरपी के लालच में और न्यूज़ चैनल को नंबर वन बनाने की होड़ में पत्रकारिता में बदलाव आता जा रहा है। इसके लिए रोमांचक कार्यक्रम और झूठ का सहारा भी लिया जाता है। सुनने में आता है की "वर्तमान समय में टीआरपी के लिए न्यूज़ चैनलों द्वारा देखने वालों के लिए पैसे तक की पेशकश की जाती है। उनको प्रति एपिसोड या प्रति कार्यक्रम के हिसाब से पैसे दिए जाते हैं जबकि ब्रिटिश भारत में टीआरपी नाम की कोई चीज़ नहीं थी। उस समय पत्र-पत्रिकाओं का स्वरूप साफ सुथरा और वास्तविकता पर आधारित था। संपादक पत्र-पत्रिकाओं के प्रचलन के लिए किसी भी प्रकार की पैसे की पेशकश नहीं करते थे।"4

विज्ञापन- वर्तमान समय में विज्ञापन ने हिन्दी पत्रकारिता पर बहुत व्यापक असर डाला है। आज स्थिति ऐसी बन चुकी है कि विज्ञापनदाता ही संपादकीय सामग्री का नसीहत दे रहे हैं, बल्कि छपनेवाली सामग्री की निगरानी भी करते हैं। वर्तमान में समाचार पत्रों में परिशिष्टों की संख्या लगातार बढ़ रही है। ऐसे हालात में परिशिष्टों में संपादकीय सामग्री को कितनी जगह मिलेगी, यह विज्ञापनों की स्थिति से तय हो रहा है। प्रेस को अभिव्यक्ति की आजादी का हक है, लेकिन "यह अधिकार वह ख़ुद विज्ञापनों के हवाले कर देता है अथवा उसका सौदा कर देता है। समाचार पत्र-पत्रिकाओं पर पूरे-पूरे पन्ने के विज्ञापनों का कहें तो एकछत्र कब्जा दिखता है। किसी विशेष स्थिति पर पृष्ठों की संख्या बढ़ा दी जाती है। केवल विज्ञापन प्राप्ति के लिए समाचार पत्र-पत्रिकाएँ आकर्षक एवं रंगीन पृष्ठ छापते हैं। यह उद्देश्य तथा स्थिति ब्रिटिश भारत की हिन्दी पत्रकारिता का मूलमंत्र था। वर्तमान दौर में पत्रकारिता की स्थिति एवं दृश्य पूर्णता भिन्न है।"5

घटनाओं की रिपोर्टिंग- आज के समय में यह बात किसी से छिपी नहीं है कि हिन्दी पत्रिकारिता को बाज़ारवाद ने अपने आगोश में ले लिया है। "आज हम समाचार से तात्पर्य उन घटनाओं की रिपोर्टिंग से लगाते हैं जो हम मे रोमांच पैदा करे। भले ही उस घटना का साधारण जनता से कोई लेनादेना हो या न हो। आज उन्हीं समाचार पत्र-पत्रिकाओं का बोलबाला है, जो अपने ख़बरों और विषयवस्तु के जरिये सनसनी पैदा कर रहे हैं। ख़बरों में सनसनी है, तभी समाचार पत्रों के चलने की उम्मीद बनी रहती है अन्यथा नहीं, लेकिन यह बात पूरी तरह सत्य नहीं है"6 लेकिन इसे नकारा भी नहीं जा सकता है। वर्तमान समय में वहीं कुछ समाचार पत्र-पत्रिकाएँ ऐसे भी हैं, जिन्होंने सामाजिक दायित्व का पालन बड़ी मुस्तैदी से कर रहे हैं और अपने ख़बरों और विषय-वस्तुओं के द्वारा सनसनी पैदा न कर साधारण लोगों की बातों को प्रमुखता देते हैं।

राजनीतिक प्रभाव- राजनीतिक प्रभाव की अगर बात की जाए तो उसका सीधा असर आज के न्यूज़ चैनलों पर देखा जा सकता है। न्यूज़ चैनलों पर सरकारी पार्टियों से संबंधित विज्ञापन प्रसारित किए जाते हैं जिसमें सरकारों द्वारा किए जाने वाले कार्यों का विवरण और सरकारी कामकाज के तारीफों के कसीदे गाए जाते हैं। न्यूज़ चैनल पार्टी प्रचार का माध्यम बन गए हैं। कई बार तो न्यूज़ एंकर रिपोर्टिंग देख कर ऐसा लगता है कि वह न्यूज़ चैनल के लिए काम कर रहे हैं या पार्टी प्रचार में पार्टी कार्यकर्ता के रूप में कार्य कर रहे है। इसकी तुलना अगर ब्रिटिश भारत के अख़बारों या पत्र-पत्रिकाओं से की जाए तो आज का मीडिया राजनीतिक दलों के हाथों बिक चुका है। जिसको विद्वानों ने "पेड मीडिया" का नाम दिया है यानि पैसे लेकर न्यूज़ छापना या फिर

पार्टी प्रचार के लिए पत्रकारिता के संसाधनों का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रयोग करना।"7

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का बढ़ता दायरा- आज यह देखा जा रहा है कि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का प्रचार-प्रसार और प्रयोग करने का तरीका आए दिन बढ़ रहा है। ब्रिटिश भारत में पत्रकार अपनी ख़बरों के संपादन और प्रकाशन को हस्त लिखित सामग्री और मुद्रित पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से करते थे। जैसे ही विज्ञान ने तरक्की की तो पत्रकारिता का माध्यम कंप्यूटर, सैटेलाइट आदि हो गए। आज के समय ख़बरों के संपादन और मूल्यांकन के लिए कंप्यूटर की सहायता ली जाती है। सभी प्रकार के टंकण और मुद्रण के कार्य कंप्यूटर से किए जाते हैं। कंप्यूटर में नित्य प्रतिदिन सॉफ्टवेयर के माध्यम से इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के प्रचार प्रसार का कार्य आसान हो गया है। एक क्लिक मात्र से आप ख़बरों को किसी भी देश के कोने में पहुँचा सकते हो। आज यह देखा जा रहा है कि ख़बरों में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के प्रचार प्रसार का कार्य का माध्यम यू ट्यूब, फेसबुक, इंस्टाग्राम, व्हाट्सएप आदि हो गया है जो की ख़बरों को बड़ी तेज़ी के साथ पाठक तक पहुंचाते हैं। ख़बरों के सभी चैनल ऑनलाइन इंटरनेट के माध्यम से ख़बरें देने लगे हैं। घरों में लगने वाले डिश टीवी तथा केवल चैनलों पर भी ऑनलाइन न्यूज़ चैनलों को सब्सक्राइब किया जा सकता है।

ख़बरों के प्रसिद्ध प्रस्तुतीकरण का तरीका- ब्रिटिश भारत में ख़बरों के प्रस्तुतीकरण के लिए पत्र-पत्रिकाओं या अख़बार का सहारा लिया जाता था। उनके प्रस्तुतीकरण का तरीका सरल और सौम्य था। प्रस्तुतीकरण के विषय में किसी भी प्रकार के अशोभनीय या रोमांच पैदा करने वाले शब्दों का प्रयोग नहीं होता था। ख़बरों को किसी भी प्रकार से रहस्यमयी बनाकर नहीं दिखाया जाता था। जैसी ख़बर है उसके स्वरूप को वैसा ही बना कर दिखाया जाता था। लेकिन अगर वर्तमान समय के ख़बरों के प्रस्तुतीकरण की बात की जाए तो इस समय ख़बरों के प्रस्तुतीकरण में रोमांच और रहस्य के साथ दिखाया जाता है, एबीपी न्यूज़ पर एक कार्यक्रम आता था जिसका नाम था "सनसनी" उसमे लिखा होता "चैन से सोना है तो जाग जाइए" इस कार्यक्रम में अपराध से संबंधित ख़बरें दिखाई जाती थी, जिनको फिल्मों की भाँति खुफिया रहस्य और संदेहास्पद रूप से दिखा जाता था। कभी कभार तो उन कार्यक्रम को देखकर ऐसा लगता है की वास्तविक सच्चाई को ना दिखा कर न्यूज़ चैनल फिल्मों के उपविभाग की तरह काम करने लगे हैं। खेल की ख़बरों को भी बहुत रोमांचक और हतप्रभ तरीके से दिखाया जाता है। विशेषकर भारत-पाकिस्तान के दौरान होने वाले मैचों को खेल भावना के स्तर से न दिखाकर उनको सीमा पर संबंधित विवाद और समझौतों के रूप में दिखाया जाता है।

न्यूज़ चैनलों के ख़बरों को देखकर ऐसा लगता है कि विश्व में देश- दुनिया, नियम-नीति कुछ न होकर केवल मीडिया ही सर्वोपरि है। न्यूज़ चैनल वाले किसी भी घटना क्रम में अपनी तरफ से किसी को भी दोषी साबित कर देते हैं। ऐसा ही मामला सुशांत सिंह राजपूत के केस में हुआ। " जब न्यूज़ चैनलों की तरफ से टीआरपी की होड़ में रिया चक्रवर्ती को बिना जाँच और पड़ताल के सुशांत सिंह राजपूत की हत्या का दोषी बना दिया हालाँकि न्यायालय द्वारा जाँच करने के बाद अभियुक्त को बरी कर दिया।"8 इस प्रकार न्यूज़ चैनलों के न्यूज़ प्रस्तुतीकरण का तरीका दिन-ब-दिन निचले स्तर पर जा रहा है। जहाँ ख़बरों में वास्तविक ना होकर केवल आनंद और मनोरंजन का भाग ही रहता है।

निष्कर्ष- हिन्दी पत्रकारिता का अपना एक गौरवपूर्ण इतिहास रहा है, जहाँ ब्रिटिश भारत में पत्रकारिता के साथ-साथ सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक स्थिति को एक उचित और भावपूर्ण दशा और दिशा दी थी। वर्तमान समय में हिन्दी पत्रकारिता के स्वरूप को देख कर बहुत ही दु:ख के साथ यह कहना पड़ता है कि भूमंडलीकरण के परिवेश में हिन्दी पत्रकारिता अपनी मूलभूत दशा और दिशा दोनों से अलग-थलग हो चुकी है। यह कहना उचित होगा कि हिन्दी पत्रकारिता अपने दायित्व-कर्त्तव्य के मार्ग से भटक गई है। आज का मीडिया समाज के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों के यथार्थ को न दिखा कर, ख़बरों को एक ओढ़नी से ढकने का काम करता है। ख़बरों में रंग-बिरंगे और बहूविज्ञापनों का चित्रण बढ़ता जा रहा है। समाचार और विचारों में किसी प्रकार का कोई चाव नहीं दिखता उन्हें केवल विज्ञापन आदि सजावट का कार्य ज़्यादा पाया जाता है। आजकल के पत्रकार ख़बरों की सत्यता और पुष्टि के लिए ज़्यादा जोखिम नहीं उठाते। उन्हें जिस प्रकार की भी सामग्री मिल जाती है उसी को मिर्च मसाला लगाकर दर्शकों के सामने परोस दिया जाता है। जिसमें सत्यता का पक्ष ना के बराबर होता है। इसके साथ साथ वर्तमान काल का मीडिया राजनीति से बहुत ज़्यादा प्रभावित होकर अपना कार्य करता है। मीडिया संस्थानों ने अपने पसंद अनुसार अपने राजनीतिक हितों की पूर्ति हेतु अपनी अपनी पसंद अनुसार पार्टियों का चुनाव कर रखा है और पत्रकारिता मंच का प्रयोग उनके विज्ञापन और पार्टी प्रचार में कर रहे हैं। पत्रकारिता के बदलते स्वरूप की तरफ चिंतन बहुत ज़रूरी है क्योंकि पत्रकारिता को चतुर्थ स्तंभ के रूप में देखा जाता है जिसका कार्य देश दुनिया और समाज की ख़बरों को निष्पक्ष तरीके से दिखाना ताकि आम जनता, ग़रीब आदमी और दीन - दलित के साथ हो रहे अन्याय को रोका जा सके।

000

संदर्भ - 1.डॉ. श्यामकुमार कश्यप, टेलिविजन की कहानी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ. 185ए 2.वही पृ.214ए 3.वही पृ.185ए 4.वही पृ.260ए 5.वही पृ.251ए 6.वही पृ.204ए 7.वही पृ.249ए 8.वही पृ.206ए 9.डॉ. श्यामकुमार कश्यप, खबरें विस्तार से, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, 2008, 10. तनेजा जयदेव, रंगकर्म और मीडिया, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002

(शोध आलेख)

स्त्रीवादी विमर्श के संदर्भ में साहित्यकारों का विशेष चिन्तन

शोध लेखक : संदीप कुमार
पंजीकरण संख्या - 23521014
श्री जगदीशप्रसाद झाबरमल टिबड़ेवाला विश्वविद्यालय

संदीप कुमार
श्री जगदीशप्रसाद झाबरमल टिबड़ेवाला विश्वविद्यालय
विद्यानगरी झुंझनू, राजस्थान, 333001
ईमेल- sandeepmachra123@gmail.com

हिन्दी साहित्य में पिछले पचास वर्षों में अनेक नए-नए आंदोलन हुए, जिनमें से 'स्त्रीवादी विमर्श' प्रमुख है। इसी 'स्त्रीवादी विमर्श' ने हमें समाज में स्त्री की स्थिति समझने का दृष्टिकोण प्रदान किया है। प्राचीनकाल से ही स्त्री को धर्म, समाज, रूढ़िवादी परम्पराओं के नाम पर शोषित और भेदभावपूर्ण व्यवहार का सामना करना पड़ा है। वर्तमान में स्थिति कुछ हद तक बदल चुकी है। महिला मुक्तिकामी आन्दोलनों ने स्त्री को पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त करने के लिए जागरूक तथा प्रोत्साहित किया। सदियों से हो रहे पुरुषों के अत्याचार के विरुद्ध नारी-मुक्ति के लिए आन्दोलन हुए। स्त्रीवादी चिन्तन द्वारा स्त्रियों की अधीनता के यथार्थ को समझने और उसकी जड़ों तक पहुँचने की कोशिश की जाती रही है।

स्त्रीवाद के सन्दर्भ में कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं -

प्रभा खेतान के अनुसार - 'नारीवाद' समझ से मेरा आशय है एक आन्दोलनकर्ता की हैसियत से व्यक्ति, स्त्री के निजी जीवन को समझना, उसकी मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक समस्याओं को सुलझाना ताकि वह चुनाव की सम्भावनाओं से वंचित न रहे। (1)

मृदुला गर्ग के अनुसार – "नारीवाद' के 'फेमिनिज्म' शब्द का सार्थक अनुवाद नारी चेतना ही है। हर वह स्त्री पुरुष 'फेमिनिस्ट' माना जाना चाहिए जो नारी चेतना या दृष्टि से सम्मान हो।" (2)

'स्त्रीवाद' से जुड़ा स्त्रीवादी विमर्श साहित्य संबंधी विमर्श माना जाता है। डॉ.रोहिणी अग्रवाल के अनुसार विमर्श का अर्थ है- "विमर्श यानी वाद-विवाद-संवाद। यानी किसी भी समस्या या स्थिति को एक कोण से न देखकर भिन्न मानसिकताओं दृष्टियों, संस्कारों और वैचारिक प्रतिबद्धताओं का समाहार करते हुए उलट-पुलट कर देखना, ऐसे समग्रता में समझने की कोशिश करना और फिर मानवीय संदर्भों में निष्कर्ष प्राप्ति की चेष्टा करना।" (3)

स्त्री-विमर्श पुरुष और स्त्री के बीच परम्परागत भेदभाव की जगह स्त्री के प्रति सकरात्मक पक्षपात की बात करता है। वस्तुत: इस दृष्टिकोण से देखा जाए तो स्त्री विमर्श अपने समय और समाज के जीवन की वास्तविकताओं तथा संभावनाओं को तलाशने वाली दृष्टि है।

बलवन्त कौर अपने लेख में लिखती हैं -"नारीवाद एक स्वस्थ दृष्टिकोण है, जो एकाकी नही.....यह पुरुषों का नहीं उनकी मानवीयता घटाने वाले उस छद्म मुखौटे का प्रतिकार है जो मर्दानगी के नाम पर गढ़ा गया है और जिसके पीछे झूठी अहम्मन्यता और उत्पीड़क प्रवृत्ति के अलावा कुछ नही। नारीवाद पुरुष विरोधी झंडा लेकर आगे चलने वाला नकारात्मक आंदोलन नही बल्कि एक स्वस्थ मानवीय दृष्टिकोण है।" (4)

स्त्रीवाद को बार-बार परिभाषित करने की चेष्टा की जाती है, परन्तु किसी स्पष्ट परिभाषा में इसे व्यक्त करना संभव नहीं है। कुछ विचारकों के अनुसार केवल पश्चिमी नारीवाद के बजाय भारतीय नारीवाद पर ज़ोर दिया जाना चाहिए। इसमें यह समस्या आएगी कि फिर नारीवाद केवल भारतीय भी नहीं रह पाएगा इसे और तोड़ा जाएगा। हिन्दू और मुसलमान, अमीर-ग़रीब, सवर्ण और दलित नारीवाद में। इससे स्त्री की छवि, उसके हस्ताक्षर, इतिहास में हस्तक्षेप पर कम चर्चा होगी और अलग-अलग खेमों में बाँटने की कोशिश ज़्यादा होगी।

स्त्रीवाद का गहरा संबंध स्त्री के संघर्ष से है। स्त्री की जीवन शैली तथा समाज में उनकी स्थिति के बारे में है। किस तरह स्त्री को शारीरिक, आर्थिक और मानसिक शोषण से गुज़रना पड़ा है और स्त्री की स्थिति में कैसे परिवर्तन लाया जाए, इसके प्रति नारीवादी विचारक चिन्तन करते हैं।

स्त्रीवादी आंदोलन, स्त्री मुक्ति आंदोलन एक-दूसरे के समानार्थी शब्द हैं, परन्तु आज नारीवाद या फेमिनिज्म की संज्ञा हर उस विचार या आंदोलन को दी जाने लगी है जो कि समाज में समानता और स्वतंत्र पहचान के विचार को किसी भी रूप में उठाता है। इसकी अलग-अलग धाराओं-प्रवृतियों को दर्शाने के लिए उन्हें उग्र परिवर्तनवादी इकोफेमिनिज्म, समाजवादी इकोफेमिनिज्म, बर्जुआ इकोफेमिनिज्म और मार्क्सवादी इकोफेमिनिज्म आदि नाम दे दिए जाते

है। सत्रहवीं शताब्दी में स्वतन्त्रता की माँग, शिक्षा व समानता के लिए उठाई गई लेकिन धर्म के ठेकेदारों ने उनकी आवाज़ को वहीं दफन कर दिया, लेकिन अंदर ही अंदर सुलगती चर्चाएँ 18वीं शताब्दी तक आते-आते फिर से भड़क उठी। धीरे-धीरे स्त्रियों को आभास होने लगा कि रीति-रिवाज, धार्मिक बंधन, नियम-कानून सब पुरुषों की सुविधा के लिए हैं। नारी का अस्तित्व सिर्फ पुरुष के लिए है इसी भावना को महसूस करते हुए वह अपनी मुक्ति की आवाज़ बुलंद करने लगी। डॉ. रोहिणी अग्रवाल के अनुसार- ''इसके लिए विश्व में घटने वाली चार प्रमुख घटनाओं का उल्लेख करना बेहद ज़रूरी है। सन् 1789 की फ्रांसीसी क्रांति, जिसने स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व जैसी चिरवांछित मानवीय आकांक्षाओं को नैसर्गिक मानवीय अधिकार की गरिमा देकर राजतन्त्र और साम्राज्यवाद के बरअक्स लोकतान्त्रिक शासन व्यवस्था के स्वस्थ और अभीप्सित विकल्प को प्रतिष्ठित किया। दूसरे भारत में राजा राममोहन राय की लम्बी जद्दोजहद के बाद 1829 ई. में सती प्रथा का कानूनी विरोध, जिसने पहली बार स्त्री के अस्तित्व को मनुष्य के रूप में स्वीकारा। तीसरा, सन् 1848 में सिनेका फॉल्स, न्यूयार्क में ग्रिमके बहनों की रहनुमाई में आयोजित तीन सौ स्त्री-पुरुषों की सभा, जिसने स्त्री दासत्व की लम्बी शृंखला को चुनौती देते हुए स्त्री मुक्ति आंदोलन की नींव रखी और चौथे, सन् 1867 में प्रसिद्ध अंग्रेज़, दार्शनिक और चिंतक जॉन स्टुअर्ट मिल द्वारा ब्रिटिश पार्लियामेंट में स्त्री के वयस्क मताधिकार के लिए प्रस्ताव रखा जाना, जिसने कालांतर में स्त्री-पुरुष के बीच स्वीकारी जाने वाली अनिवार्य कानूनी और संवैधानिक समानता की अवधारणा को बल मिला। असल में इस फ्रेमवर्ष के बिना स्त्री विमर्श को उसकी समग्रता जाना ही नही जा सकता। संयुक्त रूप में ये चारों घटनाएँ एक तरह से विभाजक रेखाएँ है, जिसके एक ओर पूरे विश्व में स्त्री उत्पीड़न की लगभग एक सी यूनिवर्सल परम्परा है तो वहीं दूसरी ओर इससे मुक्ति की लगभग एक-सी तड़प और अकुलाहट की संघर्ष कथा।'' (5)

19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में कुछ पुरुष विचारकों ने स्त्रियों की स्थिति को सुधारने की माँग की थी और सदी के अंत तक कुछ जागरूक स्त्रियों ने भी इसमें योगदान दिया। जिस समय उत्तर भारत में उच्च वर्ण की स्त्रियों को पर्दे में रखा जाता था कि उन्हें सूर्य की किरणें भी न छू सके। उसी समय भारत में महाराष्ट्र स्थित पूना में भारत की प्रथम शिक्षिका ''श्रीमती सावित्रीबाई फुले'' पैदा हुईं। भारत के इतिहास में पहली बार पूना के निवासी महात्मा फुले ने महिलाओं के लिए स्कूल खोला, उन्होंने अपनी पत्नी सावित्री की सर्वप्रथम शिक्षा दी और शिक्षिका बनाया। उन्होंने अतिशूद्रों, महार, माँग आदि जातियों के लिए स्कूल खोले। उस समय पूना शहर घोर कट्टरपंथियों पेशवाई ब्राह्मणों का गढ़ था, फिर भी उन्होंने हार नहीं मानी और उसी के परिणामस्वरूप आज स्कूलों, कॉलेजों में इतनी ज़्यादा संख्या में शिक्षा पा रही हैं। महात्मा फुले जी ने 'सत्यशोधक समाज' की स्थापना की। जहाँ पर प्रत्येक व्यक्ति को यह वादा करना पड़ता था कि वह बेटी को समान रूप से शिक्षित करेगा।'' (6)

अब महिलाएँ धीरे-धीरे जागरूक होने लगी थी। महिलाओं के लिए महिला संगठन बनने लगे थे। सबसे पहले पंडिता रमाबाई ने 'आर्य महिला समाज' नामक संगठन बनाया। जिसने सती-प्रथा, पर्दा प्रथा आदि का विरोध किया। इसके पश्चात 'भारत महिला परिषद' नामक संगठन बना जो आज भी स्त्रियों के विकास के कार्य कर रहा है। असहयोग आंदोलन ने भी महिला मुक्ति को अपना प्रमुख मुद्दा बनाया। इसी आन्दोलन के कारण महिलाएँ सर्वप्रथम घर की चहारदीवारी तोड़कर बाहर आई थी। इस आंदोलन के परिणामस्वरूप महिला की अबला छवि को समाप्त कर दिया था। कांग्रेस ने भी महिला सहभागिता पर बल दिया। भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन एक तरह से महिलाओं की स्वाधीनता का भी आंदोलन था। विभिन्न आंदोलनों से उत्पन्न नवीन चेतना ने नारी को सचेत किया इसलिए इस युग को 'नारी जागरण युग' भी कहते हैं। उन्नीसवी सदी की महिलाओं के मन में वे प्रश्न उठने लगे, जिनका जवाब पुरुष-प्रधान समाज के पास नही था। महिलाओं ने स्वयं कलम चलाई और अपनी दुर्दशा के बारे में लिखा। कुसुम त्रिपाठी ने कहा-''19वीं सदी की आरंभिक सुधारवादी आन्दोलनों का उद्देश्य कानूनी व समाजिक तरीकों से औरत की स्थिति में सुधार लाना था। पंडित रमाबाई ने विधवा बेसहारा औरतों के रहने के लिए आवास गृह भी स्थापित किए। महाराष्ट्र में ज्योतिबा फूले का आंदोलन, तमिलनाडु में पेरियार का आन्दोलन, आंबेड़कर का दलित आंदोलन, पितृसत्तात्मक व्यवस्था को ललकारने में कामयाब रहा। कम्युनिस्टों ने पहली बार औरत के शोषण के प्रश्न पर ऐतिहासिक, भौतिकवादी व्याख्या का सहारा लिया और उनकी पूर्ण मुक्ति का मुद्दा उठाया।'' (7)

डॉ. रोहिणी अग्रवाल के अनुसार- ''आज स्त्री विमर्श न आयातित नारा है, न अकादमिक बहस का मुद्दा। वह स्त्री समाज की अस्मिता की माँग है- साँस लेने की तरह नैसर्गिक और अनिवार्य। इसका एक सिर यदि पितृसत्तात्मक व्यवस्था के निरीक्षण-पुनरीक्षण से जुड़ा है, तो दूसरा स्त्री नियति को उसकी समग्रता और विविधता में जानने से। हाँ, धरती की तरह कितने ही खंडों-सरहदों ने बँटी है- स्त्री वर्ग, जाति, धर्म, हैसियत। फिर कुछ और उपविभाजित-शिक्षित या अशिक्षित, आधुनिक या पुरातनपंथी, नौकरी पेशा या हाउसवाइफ, पुरुषवादी या मानवतावादी ? निस्संदेह प्रभुत मात्रा में उपलब्ध है। पुरुषों की पुरुषवादी स्त्रियाँ जो बकौल कृष्णा सोबती पहले अपनी दया से पुरुष की हिंसा पकाती हैं और फिर पुरुष की हिंसा से अपनी दयनीय स्थिति मजबूत करती हैं।'' (8)

राजेंद्र यादव के अनुसार -''जिस प्रकार एक दलित को जन्म और जाति के अपमान से निरन्तर गुज़रना पड़ता है उसी तरह न जाने कितनी यंत्रणाएँ है जिन्हें सिर्फ स्त्री ही भोगती है। मासिक धर्म, प्रजन्ना, बलात्कार, परनिर्भरता जैसे न जाने कितने अनुभव है जिन्हें स्त्री के सिवा कोई नही जानता।'' (9)

डॉ. रोहिणी अग्रवाल ने अपने लेख में बताया है कि ''विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के मुताबित भारत में हर 54 मिनट में एक महिला के साथ बलात्कार होता है। कुल केसों में से केवल 16 प्रतिशत मामले ही दर्ज होते है जबकि 84 प्रतिशत अनेक दबावों के अधीन एफ. आई. आर. तक दर्ज नहीं करा पाती। इनमें से भी 100 में से केवल 4 बलात्कारियों को सजा मिल पाती है। इससे भी निन्दनीय स्थिति रोहिणी जी इस बात को बताती है कि बलात्कार में निरपराध स्थिति मानसिक-भावनात्मक संबल पाने की बजाय कलंकिनी एवं अपराधिनी के रूप में समाजिक दंड विधान की क्रूरता झेलने को बाध्य होती है।

इस स्थिति में एक सवाल भी उठता है कि असल बलात्कारी कौन है- पुरुष विशेष या उसे अभयदान देता समाज ? स्त्री देह के साथ जुड़ी पुरुष जाति की 'इज़्ज़त' ने अपना पता बदला हो या न हो, स्त्रियाँ अब इन छदम आवरणों को उतार फेंकने को व्यग्र हैं।'' (10) स्त्रीवादी आंदोलनों और विकसित अर्थव्यवस्था के बावजूद आज भी स्त्रियों को यही शिक्षा दी जाती थी वह आदर्श माता, पत्नी, बहन बनकर अपना जीवन सार्थक करें। स्त्रियाँ भी इस धारणा को स्वीकार करने के साथ-साथ यह आत्मसात कर लेती थी, परंतु स्त्री मुक्ति की अकांक्षा उसके मन में जीवित थी। स्वतंत्रता के बाद कांग्रेस ने भी महिलाओं से किए वादों को पूरा करने का प्रयास किया। संविधान में स्त्रियों को समान अधिकार दिए जाने की घोषणा की गई, परन्तु कुछ वर्षों बाद सुधारवादियों को इनके प्रयास संतोषजनक नहीं लगा। राधा कुमार ने बताया, ''समान नागरिक संहिता के निर्माण की माँग 1930 के दशक में उठाई गई। सुधारवादियों की इस माँग पर कार्यवाही तब हुई जब तत्कालीन कानून मंत्री बी. आर. अम्बेडकर की अध्यक्षता में एक अन्य समिति की स्थापना हुई। अम्बेडकर समिति द्वारा बिल में विवाह की आयु सीमा बढ़ाने, स्त्रियों को तलाक का अधिकार देने, मुआवजा तथा विरासत के अधिकार के साथ-साथ दहेज को 'स्त्रीधन' मानने के सुझाव दिए गए।'' (11)

महिलाओं में नवजागरण उदय के दौरान स्त्रियाँ वकील, हाईकोर्ट की जज, राशन की कर्मचारी, बैंक कर्मचारी, प्राइवेट फर्म से लेकर पब्लिक सेक्टर तक में काम करने लगी।

समाज मे कुछ ऐसी औरतें है कि जिन्हें उनके परिवारवालों तथा पति ने त्याग दिया है। परित्यक्ता औरतों की पहली बैठक मार्च 1988 में समता आंदोलन ने बुलाई। इनकी माँगें थी- पारिवारिक सम्पति में स्त्री-पुरुषों को समान अधिकार, पिता के जितना माता के हस्ताक्षर को महत्त्व, निर्वाह खर्च 500 रुपये से अधिक परित्यक्ता के लिए स्वतंत्र राशन कार्ड, गाँव में दो बीघा ज़मीन, सरकारी गृह निर्माण योजना में समावेश सभी परित्यक्ताओं की जिम्मेदारी सरकार उठाए। इन माँगों को लेकर कई तरह के विवाद उठे। इनमें से बहुत सी माँगें 1995 में सरकार ने मान ली। नक्सलवादी नारी मुक्ति संघ के आंदोलन में बिहार का 'नारी मुक्ति संघ' वर्तमान शोषण उत्पीड़नमूलक समाज व्यवस्था को उखाड़ फेंककर नव जनवादी समाज का निर्माण करना चाहता है। इस नारी मुक्ति संघ ने पुरुष प्रधान समाज के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाई। पति द्वारा पिटाई, घर में बहुओं की हत्या तथा सभी प्रकार की नारी यातनाओं के ख़िलाफ़ नारियों को जागरूक करने का काम किया है।

वर्तमान समय में आज़ादी के बाद से चले आ रहे अनेक स्त्रीवादी आंदोलनों का ही परिणाम रहा कि अब भारतीय समाज में स्त्री शिक्षा, संवैधानिक अधिकारों, नौकरियों के कारण आर्थिक स्वतंत्रता, निरन्तर बदलते समय और समाज में बदलती मान्यताओं पर नारीवादी आन्दोलनों का ही प्रभाव है की शिक्षित और स्वाबलम्ब कुछ प्रधानता के बावजूद भी परिवारों ने स्त्रियों का प्रतिरोध मुखर होने लगा। स्त्रियाँ जब नौकरी और व्यवसाय करने लगी तो उन्हें घर और बाहर की दुनिया के अन्तर, अनुभव और संकट भी समझ आने लगे हैं। बेटी, बहू और माँ की भूमिकाओं के अलावा उन्हें स्वयं अपनी भूमिका का एहसास होने लगा है।

निष्कर्ष - निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि स्त्रीवादी आंदोलनों की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ रही है। इसके परिणामस्वरूप स्वायत महिला संगठन बने, स्त्री मुक्ति संगठन बने, स्त्री जागृति समिति, नारी अत्याचार, विरोधी मंच, स्त्री-शक्ति संगठन बने तथा कई महिला पत्रिकाएँ इन संगठनों द्वारा शुरू की गई। इन आंदोलनों के प्रभावस्वरूप ही स्त्रियों में स्वयं के प्रति निर्णय लेने और समाज में उसकी क्या भूमिका हो, स्वतंत्र अस्तित्व हो की चेतना का विकास हुआ। बेशक नारी मुक्ति आंदोलन स्त्री को उसके महत्त्वपूर्ण लक्ष्यों तक पहुँचाने में सफल नहीं हो पाए, परन्तु फिर भी इन आन्दोलनों ने स्त्रियों को समय के साथ बदलने और परिस्थितियों को अपने अनुकूल ढालने के लिए स्वयं को तैयार करने की प्रेरणा दी। आज की स्त्री अपनी सीमा व सामर्थ्य की पहचान कर अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए संघर्षरत है। वह अपने जीवन की कर्त्ता निर्देशक स्वयं है। वह अब पितृसत्तात्मक सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था के विरुद्ध चल रहे अपनी अस्मिता एवं अस्तित्व के संघर्ष को मंज़िल तक का संकल्प ले चुकी है।

000

सन्दर्भ - 1. प्रभा खेतान, उपनिवेश में स्त्री, पृ. 24, 2 डॉ.एम.परिराज अहमद, वांङ्मय, डॉ. शशि प्रभा पाण्डेय, नारीवादी लेखन दशा और दिशा, पृ.63, 3. डॉ. रोहिणी अग्रवाल, इतिवृत्त की संचेतना और स्वरूप, पृ. 264, 4. बलवंत कौर, आलेख, हंस, मार्च 1999, पृ. 98, 5. स्त्री विमर्श के सन्दर्भ में समकालीन हिन्दी, आलेख, हरिगंधा, अगस्त 2003 पृ. 42, 6. कथा साहित्य, डॉ. रोहिणी अग्रवाल, पृ. 27, 7. कुसुम त्रिपाठी, जब स्त्रियों ने रचा इतिहास, पृ. 146, 8. डॉ. रोहिणी अग्रवाल, बड़ी समस्याओं को बुनते छोटे-छोटे सच, हंस, नवम्बर 2002, पृ. 190, 9 .राजेंद्र यादव, सदी का औपन्यासिक अंत, पृ. 167 -168, 10. डॉ. रोहिणी अग्रवाल, देह के पार द्वार पर अनादृत स्त्रियाँ और हिन्दी कथा साहित्य, पृ. 89, 11. राधा कुमार, स्त्री संघर्ष का इतिहास, पृ. 202,

(शोध आलेख)

हिन्दी उपन्यासकार भगवानदास मोरवाल के उपन्यासों में सांस्कृतिक परंपराएँ एवं प्रथाएँ

शोध लेखक : सुकेश कुमारी
शोधार्थी – हिन्दी विभाग,
गुरुकुल काँगड़ी समविश्वविद्यालय
शोध निर्देशक : प्रो० सुचित्रा मलिक
हिन्दी विभाग,
गुरुकुल काँगड़ी समविश्वविद्यालय

सुकेश कुमारी
शोधार्थी - हिन्दी विभाग,
गुरुकुल काँगड़ी समविश्वविद्यालय
हरिद्वार (उतराखंड)

किसी भी प्रान्त की संस्कृति के संरक्षण के लिए वहाँ की विशिष्टताओं का साहित्य में समावेश महत्त्वपूर्ण है। साहित्य क्षेत्रीय - इतिहास, जनजीवन एवं संस्कृति के संग्रह का प्रमुख माध्यम हैं, परन्तु भौगोलिक परिवेश, जनजीवन, इतिहास, और संस्कृति पर आधारित साहित्य का पर्याप्त विश्लेषण नहीं हुआ है। साहित्य की विविध विधाओं में उपन्यास विधा का फलक सबसे व्यापक है एवं यही विधा यथार्थ के सबसे नजदीक है। उपन्यास एक ऐसी विधा है जो किसी भी परिवेश अथवा समाज सम्पूर्ण चित्रण करने में समर्थ हैं। भगवानदास मोरवाल के उपन्यासों में सांस्कृतिक परंपराएँ एवं प्रथाओं की झलक स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है जिसके अंतर्गत संस्कृति, धर्म, समुदाय, लोक व्यवहार, लोक परंपरा, लोकगीत, लोक कथाएँ, लोक प्रथाएँ आदि का चित्रण मिलता है। संस्कृति मूलरूप से किसी व्यक्ति या समाज की जीवन पद्धति ही है जिसमे रहन-सहन, खान-पान, उत्सव, और रीति-रिवाज जब शामिल होते हैं। साहित्य किसी स्थान की विशेषताओं से समाज को समग्र रूप से अवगत कराता है और उसका जन जीवन से परिचय कराकर उसे लोकप्रियता प्रदान करता है।

व्यक्तित्व एवं कृतित्व

अपने लेखन के माध्यम से लोकमानस की अनुकृतियों को उकेरने वाले कथाकार भगवानदास मोरवाल के उपन्यास ने उन्हें साहित्य में अलग पहचान दी है। मोरवाल जी का जन्म 23 जनवरी 1960 को जिला मेवात, हरियाणा के छोटे से कस्बे नगीना में अत्यंत पिछड़े, मज़दूर परिवार में हुआ। मोरवाल को अनेक राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय सम्मानों से नवाजा जा चुका है। मोरवाल के उपन्यास 'काला पहाड़', 'बाबल तेरा देस में', 'रेत', 'नरक मसीहा', तथा 'हलाला' है। उपन्यासों के अलावा मोरवाल के छह कहानी संग्रह और एक कविता संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं। मेवात की संस्कृति, सभ्यता से मोरवाल का मन रचा-बसा है। उपर्युक्त उपन्यासों में से काला पहाड़, बाबल तेरा देस में, रेत, में मेवात (हरियाणा), राजस्थान तथा उत्तरप्रदेश का चित्रण दिखाई देता है। मोरवाल अपने उपन्यासों में लगभग अछूते विषय को उठाते हैं और फिर गहन शोध के बाद उसको पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। मोरवाल का बहुत गहरा लगाव अपनी सांस्कृतिक धरोहर के प्रति है। मेवात की बड़ी गहरी सांस्कृतिक और रचनात्मक पहचान उनको हैं।

संस्कृति- संस्कृति जीवन का एक ढंग है और इस ढंग का प्रभाव उस समाज पर पूर्णत: छाया रहता है जिसमें मनुष्य जन्म लेता है। मनुष्य पूजा करता है, पर्व त्यौहार मनाता है, शादी करता है, श्राद्ध करता है ये सभी संस्कृति का ही अंश हैं। संस्कृति आदान-प्रदान से ही बढ़ती है। एक देश की संस्कृति का दूसरे देश की संस्कृति पर पूर्ण प्रभाव पड़ता है। जिसने विश्व के अत्यधिक देशों एवं जातियों की संस्कृतियों को अपनाकर अपनी संस्कृति से उसका समन्वय किया है।

डॉ. वासुदेव अग्रवाल के अनुसार- "संस्कृति मनुष्य के भूत, वर्तमान और भावी जीवन का सवाँगपूर्ण प्रकार है। हमारे जीवन का ढंग हमारी संस्कृति है। संस्कृति हवा में नहीं रहती, उसका मूर्तिमान रूप होता है। जीवन के नाना विविध रूपों का समुदाय ही संस्कृति है।" साहित्य कला, दर्शन और धर्म से जो मूल्यवान सामग्री हमें मिल सकी है उसे नए जीवन के लिए ग्रहण करना, यही सांस्कृतिक कार्य की उचित दिशा और सच्ची उपयोगिता है। संस्कृति वह गुण है जो हममें व्याप्त है। संस्कार आत्मा से सम्बन्धित होते हैं। जन्म से मृत्यु तक वह संस्कारों में बँधा रहता है। संस्कृति ऐसी वस्तु है, जो मनुष्य में पूर्णत: व्याप्त होती है। झोंपड़ी में निवास करने वाला व्यक्ति भी सुसंस्कृत हो सकता है, दूसरों के सुख-दु:ख को समझ सकता है। सामान्य रूप में संस्कृति शब्द का प्रयोग शिक्षण एवं प्रशिक्षण के द्वारा सुधार करने के लिए होता है। व्यक्ति उस समय सुसंस्कृत कहलाता है, जब वह ज्ञान के क्षेत्र में विशिष्ट अधिकार प्राप्त कर लेता है तथा शिष्टाचार द्वारा दूसरों को प्रभावित कर लेता है। मनुष्य को उन्नत एवं विकसित करने में संस्कृति का विशिष्ट योगदान होता है।

संस्कृति का विस्तार व्यापक होता है। संस्कृति उस सामाजिक व्यवहार का नाम है जो परम्परागत रूप में मानव में विद्यमान होती है। संस्कृति निरंतर एक जैसी नहीं रहती है। समय एवं परिवेश के अनुसार उसमें व्याप्त परिवर्तन होता रहता है। संस्कृति मनुष्य का साथ जन्म-जन्मान्तर रहती है। कहा भी जाता है कि जिसका जैसा संस्कार होता है, उसका उसी के अनुसार पुर्नजन्म भी होता है। संस्कृति वास्तव में शरीर का नहीं, आत्मा का गुण है। "संस्कृति शब्द का संबंध संस्कार से है, जिसका अर्थ है, संशोधन करना, उतम बनाना, परिष्कार करना। संस्कृत शब्द का भी यही अर्थ है और संस्कार व्यक्ति के भी होते हैं और जाति के भी, किन्तु जातीय संस्कारों को ही संस्कृति कहते हैं। भाववाचक होने के कारण संस्कृति एक समूहवाचक शब्द है।"

समाज में प्रचलित विचारों, रूढ़ियों, मूल्यों, विश्वासों, धर्मों, रीति-रिवाजों आदि के संयुक्त रूप को मोटे तौर पर परंपरा कहा जा सकता है। इस प्रकार, परंपरा सामाजिक विरासत (प्रथाओं, रूढ़ियों, आदतों, विश्वासों, रीति-रिवाजों, धर्मों, कानूनों आदि) का वह सारहीन पक्ष है जो हमारे व्यवहार के स्वीकृत तरीकों को दर्शाता है और जिसकी निरंतरता पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरण की प्रक्रिया द्वारा बनाए रखी जाती है। इसी प्रकार रॉस द्वारा दी गई परिभाषा-परंपरा का अर्थ है चिंतन और विश्वास करने की पद्धति का हस्तांतरण।

प्रथा का संबंध एक लम्बे समय से प्रयोग में लाई जाने वाली लोक-रीतियों से होता है। दूसरे शब्दों में, इसके अन्तर्गत वे क्रियाएँ आती हैं, जिन्हें पीढ़ियों से स्वीकार किया जाता रहा है। इन्हीं प्रथाओं के कारण हम नवीन क्रियाओं को करने में कुछ हिचकिचाहट का अनुभ्व करते हैं। व्यक्ति का व्यवहार प्रथाओं से प्रभावित होता है।

मैकाइवर और पेज के अनुसार- "समाज से मान्यता प्राप्त कार्य करने की विधियाँ ही समाज की प्रथाएँ हैं।"

परंपरा हमारे समाज की प्रगति व समृद्धि का प्रतीक है। शादी ब्याह, तीज त्यौहार, व्रत और उत्सवों को मनाते समय बहुत सारी परंपराओं को मनाया जाता है। जो प्रत्येक समाज में भिन्न भिन्न रूपों मैं देखी जाती है। जैसे शादी ब्याह के अवसरों पर हल्दी लगाकर वर वधू को शुभाशीष दिया जाता है। ऐसे ही मेवात में भी विवाह प्रारंभ होने के पूर्व से लेकर वधू के घर आ जाने तक अनेक परंपराओं को मनाया जाता है। विवाह के समय न्यौता देना एक महत्त्वपूर्ण प्रथा है। यह न्यौता केवल नाई द्वारा ही संपूर्ण ग्राम को दिया जाता है, जो संपूर्ण ग्राम में गुड़ बाँटते हुए न्यौता देता है। भगवानदास मोरवाल के उपन्यास 'काला पहाड़' न्यौता परंपरा के दो अर्थ दिए हैं। "एक का अर्थ निमंत्रण है और द्वितीय का अर्थ मेवात की एक ऐसी परंपरा जो प्राय: प्रत्येक ग्राम और प्रत्येक कस्बे में प्रचलित है। इसके अंतर्गत विवाह पक्ष को अपनी पुत्री या पुत्र का विवाह करने में बहुत आर्थिक सहयोग प्राप्त होता है। इस परंपरा के अंतर्गत वही धन विवाह करने वाले को वापस मिलता है, जो उसके द्वारा समय समय पर दूसरे के यहाँ विवाह अवसरों पर निमंत्रण दिया जाता है।"

उपन्यास 'काला पहाड़' में मेवात की इस आकर्षक परंपरा का सार्थक चित्रण किया गया है। सलेमी के विवाह और अनेक कहानियों में इस परंपरा को दर्शाया गया है।

भगवानदास मोरवाल के उपन्यास में शादी-ब्याह अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। भारतीय समाज में नैतिकता की स्थापना के लिए, सामाजिक मर्यादा को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए सामाजिक मूल्यों की सुरक्षा के लिए तथा सामाजिक विकास के लिए शादी-ब्याह की परंपरा अपना विशिष्ट स्थान रखती है। विवाह एक ऐसा आदर्श है जिसके आधार पर मनुष्य परिवार की नींव डालता है। सभी जाति, ग्राम, में शादी-ब्याह के कुछ अलग रीति-रिवाज होते हैं। मोरवाल के उपन्यास में शादी-ब्याह के अवसर पर जो संस्कार संपन्न किए जाते हैं, उनका अत्यंत सुंदर वर्णन हुआ है।

शादी-ब्याह एक ऐसा मौका है, जिसमें सभी लोगों को साथ मिलकर कार्य करना पड़ता है। मोरवाल जी के 'बाबल तेरा देस में' उपन्यास में बत्तों और हीरा की तीन लड़कियों की शादी में पूरे मौहल्ले के लोग एकजुट होकर काम करते हैं। यहाँ तक कि खाने का मेनू भी साथ बैठकर ही तय करते हैं। "यार, अब बूरा-पूरी का ज़माना ना रहा, अब तो खड़ा खाणा का फैसन चल रो है..... ऐसो कर मीठा में लड्डू, दो साग और पूरी कर दे बस्स..... यासू जादा ना कोई ज़रूरत है और न तेरी गुंजास है।" दादी जैतूनी पाँच हज़ार रुपये दे जाती है, ताकि तीन लड़कियों की शादी में काम आ जाएँ। बत्तों मना करती है तो कहती है बाद में धीरे-धीरे करके दे देना। तब बत्तों पैसा रख लेती है। इस प्रकार मोरवाल ने हिन्दु-मुस्लिम एकता को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। सभी औरतें कन्यादान करती हैं। शकीला, हसीना, जैतूनी सब अपनी तरफ से कुछ-न-कुछ अवश्य ही देते हैं। फेरों के समय सबकी आँखें गिली हो जाती है। इस तरह बत्तों और हीरा के अकेले का प्रसंग न होकर ये पूरे गाँव का ही प्रसंग बन जाता है।

इस तरह हम कह सकते हैं कि कभी-कभी कम उम्र में किया गया ब्याह ग़लत परिणाम भी लाता है। मोरवाल के उपन्यास 'बाबल तेरा देस में' मुबारक अली के साथ कुछ ऐसा ही होता है। जिसका परिणाम मुबारक अली आगे की पढ़ाई भी पूरी नहीं कर पाता है। मुबारक अली दसवीं में ही है, तब अच्छा रिश्ता मिलने पर शादी कर दी जाती है। लड़की का बाप पटवारी है और दोनों भाई सरकारी नौकरी करते हैं। इस वजह से शादी कर दी जाती है। शकीला इसका विरोध भी करती है पर उसकी बात को कोई नहीं मानता शादी होकर ही रहती है और मुबारक अली दसवीं में फेल भी हो जाता है। आगे चलकर शादी तलाक में बदल जाती है। इस प्रकार मोरवाल ने बताना चाहा है कि- जल्दबाज़ी में किए गए फैसले कभी-कभी अच्छा परिणाम नहीं लाते है।

मेवात परंपराओं का धनी कस्बा है। मेवात के छोटे से गाँव नगीना में सभी महिलाएँ चाहे मेक (मुसलमान) हो या हिन्दू अपने परंपरा रीति रिवाज, उत्सव-त्योहार, विवाह आदि में सम्मिलित होकर बड़े आनंद पूर्ण तरीके से मनाते हैं। गाँवों में इन्हीं मेलों उत्सवों के दौरान

साम्प्रदायिक सद्भावना बनाए रखने में स्त्रियों का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। विवाह हो या कोई महोत्सव 'चाक पूजने' की परंपरा वर्षों से चली आ रही है। सलेमी अपने निकाह के दिनों को याद करते हुए चाक पूजने की रस्म के बारे में सोचता है कि "सबसे आगे चल रही सल्ला नाई की घरवाली ने नाज, गुड़, सरसों का तेल और चावल से भरे खरोले को सिर से उतार कर चाक के पास रख दिया। उधर गुलकंदी बड़ी बूढ़ियों के साथ मिलकर चाक पूजने की रस्म पूरी करती रही और इधर औरतों के समूह से गीतों के स्वर फूटते रहे।" ठीक उसी शाम को 'भात नामक' दूसरी रस्म मनाने की परंपरा है। चाक पूजने की रस्म को पूरा करने के बाद भात की रस्म को किया जाता है। इसमें दूल्हे के मामा को इस रस्म में बुलाया जाता है। जो अपनी बहन के परिवार के साथ साथ कुम्हारनी को नेग देकर पूरा करता है। लेखक इसके बारे में लिखते हैं-"सलेमी की माँ के भाई-भतीजों ने अपनी हैसियत से बढ़ कर भात दिया। सलेमी के लिए कपड़े लत्ते तो उन्होंने दिए ही बल्कि मान में भूरे खां, सलेमी की माँ के लिए तीनों लत्ते दोनों फूफियों के लिए दो दो रुपये भी दिए सलेमी के लिए पाँचों कपड़े यानी तहमद, कुर्ता, साफी, बनियान और जुर्राब के अलावा कुरम की जूतियाँ और अन्य ज़रूरत का सामन भी दिया। इसके अलावा सक्का, नाई, फकीर, कुम्हार, चूहड़ा सबका नेग बड़े चाव से दिया बरकत ने।"

शादी-ब्याह में 'बनवारा' नामक रस्म की जाती है। इसमें दूल्हे को घर बुलाकर अच्छा भोजन करवाया जाता है। सलेमी को भी रोबड़ा की माँ बनवाकर बड़े- धूम धाम से देती है। "सचमुच महताब ने बड़े धूमधाम से निकाला सलेमी का बनवारा सलेमी की तो ऐसी आवभगत हुई की थोड़ी देर के लिए वह अचकचा गया उसे लगा जैसे ब्याह उसका बाप नहीं बल्कि रोबड़ा का बाप महताब कर रहा है। रोबड़ा की माँ ने उसे बड़े चाव और लाड़ से पकाए हुए चावलों पर ख़ूब घी बूरा डाल कर खिलाया। बीच बीच में रोबड़ा की दोनों भावजें कभी सलेमी की सांतल में तो कभी उसके गाल पर चिकोटी भर लेती। चिकोटी भरते ही थोडी़ देर के लिए सलेमी के मुँह से सिसकारी फूट पड़ती लेकिन साथ ही साथ उसे गुदगुदी भी होने लगती।"

'शकुंतिका' उपन्यास में 'नामकरण' प्रथा का चित्रण मिलता है। जब बालक का नाम रखा जाता है। भगवती और दशरथ अपने बेटे-बहू को बच्चा गोद लेने की बात कहते हैं तो वह दोनों इस बात से सहमत हो जाते हैं। फिर बच्चा गोद लेने की प्रक्रिया में लग जाते हैं। सभी निर्णय करते हैं कि लड़के की बजाय लड़की को गोद लिया जाए। परिवार के सभी सदस्यों को बहुत खुशी होती है। सबसे ज़्यादा खुशी उन्हें तब होती है जब वह बच्ची को घर लाते हैं। उसका स्वागत बहुत अच्छे तरीके से करते हैं। सिया उसकी आरती उतारती है। परात में महावर घुले पानी में बच्ची के पैरों के तलुओं को डुबोकर घर में प्रवेश करवाया जाता है। सिया द्वारा उसका नामकरण भी उसी समय कर दिया जाता है। "आरती उतरने के बाद जयंती आगे बढ़ने ही वाली थी कि सिया ने एक बार फिर टोक दिया, "चाची इतनी भी क्या जल्दी है। इतना कह वह रूपेश की तरफ मुड़ी, "चाचा, पीहू को अब आप गोद में लीजिए। लो, इस मरी सिया ने तो इसका नाम भी धर दिया। दुर्गा हँसते हुए बोली।" घर में प्रवेश के समय ही सिया गोद लाई गई बच्ची का नामकरण भी कर देती है। जो 'नामकरण' प्रथा के अन्तर्गत आता है।

'काला पहाड़' उपन्यास में मनीराम के पुत्र का नामकरण सलेमी के द्वारा किया जाता है, क्योंकि मनीराम ने जब अपने पुत्र का नाम हीरा रखा तो सभी लोग उस नाम का मज़ाक बना रहे थे इसलिए मनीराम सलेमी को नामकरण के लिए कहता है।

'शकुंतिका' उपन्यास में रूपेश एवं जयंती जब पुत्री को गोद लेते है तो परिवार के सभी जनों को अत्यधिक प्रसन्नता होती है सभी परिवार के जन मिलकर बच्चे के जन्म के पश्चात जो रस्में-रिवाज करते हैं। वो सब रस्मे मनाई जाती है। पुत्री का गृह प्रवेश, कुआँ पूजन की रस्म जो की पुत्र होने पर की जाती है लेकिन ये बेटी के घर आने की प्रसन्नता में करते हैं। जयंती के मातृपक्ष के पुत्री के और परिवार के लिए बहुत उपहार लाते हैं इस रस्म को छट्टी कहा जाता है। "जयंती के मातृपक्ष वालों ने पीहू को ही नहीं बुलबुल को भी ढेर सारे उपहार दिये। जब जयंती के मातृपक्ष वालों ने इससे पूर्व सिया, गार्गी और बुलबुल के जन्म पर रिवाज के अनुसार पहले भी बहुत कुछ दिया।" बच्चे के जन्म के अनेक रस्म रिवाज परिवार एवं माता पिता द्वारा मनाए जाते हैं। दशरथ भगवती सहित बलवंत रुपेश का मान भी बड़े भव्य तरह से किया गया। जो अनुभूति उन्हें आज हो रही है, इससे पूर्व नहीं हुई।

'रेत' उपन्यास में कंजर समुदाय की एक महत्त्वपूर्ण प्रथा पूछा जाता है कि तुम क्या बनोगी? तब वह भी यही कहती है कि बुआ बनूँगी, क्योंकि भाभी की जीवन शैली प्रपंच एवं यातनाओं से भरी होती है, जबकि बुआ (खिलावड़ी) बनकर देह-व्यापार का व्यवसाय करने वाली युवतियाँ अर्थोपार्जन करती है, इसलिए उन्हें पर्याप्त स्वतंत्रता भी प्राप्त होती है। कंजर जाति में मत्था ढकाई की प्रथा पूर्ण होने के उपरांत कंजर किशोरी खिलावड़ी का धंधा कर सकती है। "इस तरह यह एक ऐसी परंपरा है जिसके द्वारा खिलावड़ी के क्रिया व्यापार को एक सामाजिक वैधता प्रदान करने का प्रयास किया जाता है।"

000

संदर्भ -

डॉ. सुचित्रा मलिक, वृन्दावन लाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासों में लेखक संस्कृति, पृ.स.1-2, डॉ. द्वारिका प्रसाद, साहित्यिक निबंध, पृ.सं.401, भगवानदास मोरवाल, काला पहाड़, पृ. सं.109, भगवानदास मोरवाल, बाबल तेरा देस में, पृ. सं.201, भगवानदास मोरवाल, काला पहाड़, पृ. सं.118, भगवानदास मोरवाल, काला पहाड़, पृ. सं.120-121, भगवानदास मोरवाल, काला पहाड़, पृ. सं.111, भगवानदास मोरवाल, शकुंतिका, पृ. सं. 58, भगवानदास मोरवाल, शकुंतिका, पृ. सं. 71, सतीश पांडेय (संपादक) सृजन संदर्भ पृ.सं.66

(शोध आलेख)

जयप्रकाश कर्दम और दलित कविताओं की सामाजिक वैचारिकी

शोध लेखक : कुन्ती मीणा
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय,
जोधपुर, राजस्थान

कुन्ती मीणा
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय
जोधपुर, राजस्थान

शोध सारांश

जयप्रकाश कर्दम ने दलित विमर्श को एक नई दिशा एवं गति देने का कार्य किया है। वे पुरानी मनुवादी व्यवस्था, पुरानी परम्पराओं, रीति-रिवाजों एवं पाखण्डों के स्थान पर मानवता, वैज्ञानिकता एवं तर्क को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। आस्था, अंधविश्वास, अंधश्रद्धा का उन्होंने बहिस्कार किया है इसलिए उनका साहित्य दलित जीवन में आए बदलाव को रेखांकित करने और उनकी बेहतरी के लिए, उनमें चेतना जगाने का कार्य करता है। वे अपनी रचनाओं में महात्मा बुद्ध, महात्मा फूले एवं डॉ. अम्बेडकर की वैचारिकता को लेकर आगे बढ़ते हैं। इस कारण उनकी रचनाओं में दलित आंदोलन की शुरूआत एवं गति देने वाले इन महापुरुषों के विचारों की छाप सर्वत्र देखने को मिलती है। शोषणकारी व्यवस्था के प्रति तीव्र आक्रोश एवं प्रतिकार उनकी रचनाओं में देखने को मिलता है उनकी रचनाओं के पात्र हजारों सालों की शोषणकारी व्यवस्था को अस्वीकार कर उसके प्रति खुला विरोध एवं प्रतिकार करते हैं। उन्होंने अपने आसपास हो रहे तमाम घटनाक्रम को ध्यान में रखते हुए अपनी रचनाओं का ताना-बाना बुना है।

बीज शब्द : दलित, आस्था, अंधविश्वास, शोषण, यथार्थ, सामाजिक वैचारिकी।

दलित साहित्य का उद्देश्य दलितों के भोगे हुए यथार्थ को दुनिया के सामने लाना मात्र नहीं बल्कि भटके हुए शोषित समाज को नया रास्ता भी दिखाना है। इसलिए दलित साहित्य दलितों को मुक्ति का आंदोलन बनकर उभरा है। जयप्रकाश कर्दम लिखते हैं- "दलितों ने जैसा नारकीय और पशु तुल्य जीवन जिया है, जितनी यातनाएँ, अपमान और जिल्लत को भोगा है उन सबका यथातथ्य चित्रण तथा उसकी आशा अभिलाषा, संघर्ष, जिजीविषा तथा उपलब्धियों की अभिव्यक्ति भी दलित साहित्य में मिलती है। चूँकि साहित्य समाज के दर्पण का ही नहीं उसके पथ प्रदर्शन का भी काम करता है। वह समाज को प्रेरणा और दिशा देता है।"1

दलित साहित्य मात्र साहित्य नहीं है बल्कि दलित मुक्ति का आंदोलन है। वह सामाजिक क्रान्ति के रूप में उभरा है। जो भारतीय समाज की सदियों से चली आ रही संकीर्ण मानसिकता का विरोध कर समाज में समानता, स्वतन्त्रता एवं बन्धुता के लिए संघर्षरत है। इस सन्दर्भ में रजतरानी 'मीनू' लिखती हैं- "साहित्य सामाजिक परिवर्तन का महत्त्वपूर्ण हथियार होता है, जो मानसिक रूप से विचारों को बनाने व बिगाड़ने का कार्य करता है। दलितों ने भी इस हथियार का सहारा लेकर समाज में नए मूल्य स्थापित करने की कोशिश की है।"2

जयप्रकाश कर्दम के प्रयास एक लेखक की अपेक्षा सामाजिक कार्यकर्त्ता के रूप में रहे हैं। उन पर सामाजिक क्रान्ति के जनक माने जाने वाले महात्मा फूले एवं डॉ. अम्बेडकर के विचारों का गहरा प्रभाव है। जिन्होंने जीवनपर्यन्त समाज की भेदभावपूर्ण व्यवस्था की समाप्ति के लिए संघर्ष किया और देश की ग़रीब व दलित जनता को पतन की गर्त से बाहर निकालने का प्रयास किया। जयप्रकाश कर्दम ने अपनी रचनाओं के माध्यम से दलित समाज में फूले व अम्बेडकर के विचारों एवं शिक्षा के परिणामस्वरूप आई जागरूकता एवं परिवर्तन को रेखांकित करने का

प्रयास किया है, इतना ही नहीं उन्होंने इन नवीन परिस्थितियों के परिणामस्वरूप दलित वर्ग के समक्ष आने वाली चुनौतियों के समाधान तलाशने की कोशिश भी की है। वे एक लेखक की अपेक्षा एक सामाजिक कार्यकर्त्ता के रूप में हमारे सामने आते हैं। शीलबोधि लिखते हैं- "डॉ. जयप्रकाश कर्दम में उन कारणों की समझ है जो दलितों के पतन का कारण बने हैं। साहित्य अपने आप में समाज को शिक्षित करने वाली संस्था है। साथ ही सामाजिक परिवर्तन का औजार भी, इसलिए हमारा भावी सामाजिक जीवन कैसा होगा, न्यूनाधिक रूप से यह इस बात पर निर्भर करता है कि आज किस तरह का साहित्य लिखा जा रहा है।" वे यह भी मानते हैं कि "साहित्य की चेतना समाज को चेतन बनाती है, साहित्य की जीवंतता जीवंत समाज का निर्माण करती है। चेतना और जीवंतता किसी समाज के अस्तित्व और प्रगति का आधार है।"3 इसलिए उनके साहित्य में परिवर्तन की गूँज है।

उनका मानना है दलितों की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन के बिना उनकी राजनैतिक एवं आर्थिक स्थितियों में परिवर्तन नहीं हो पाएगा। वे दलितों के सामाजिक परिवर्तन को समाज एवं राष्ट्र दोनों के लिए आवश्यक मानते हैं, वे लिखते हैं-"इसमें सन्देह नहीं कि दलितों में सामाजिक चेतना का संचार हो जाने पर आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में बहुत बड़ा बदलाव आ सकता है। यह बदलाव देश और समाज के दूरगामी हितों की दृष्टि से बहुत शुभ होगा।"4 इसलिए वे दलितों द्वारा लेखन को एक सामाजिक क्रान्ति के रूप में देखते हैं, क्योंकि अब तक दलितों का लिखना तो दूर बोलने पर भी प्रतिबंध रहा है। वे कलम को दलितों की आज़ादी के लिए संघर्ष में एक हथियार के रूप में देखते हैं। अब तक के पारम्परिक साहित्य में सवर्ण समाज का ही अधिपत्य रहा है। उन्होंने ऐसे साहित्य की रचना की जिससे सदियों तक समाज में उनका वर्चस्व कायम रहा जिसके माध्यम से उन्होंने सदियों तक दलितों को मानसिक एवं शारीरिक रूप से गुलाम बनाए रखा है, किन्तु अब दलितों ने भी कलम की ताकत को पहचान लिया है। इसलिए दलित साहित्य के माध्यम से वे दलितों में चेतना का संचार कर सामाजिक परिवर्तन का कार्य कर रहे हैं। जयप्रकाश कर्दम 'कलम' नामक कविता में दलितों को कलम के महत्त्व के प्रति जागरूक करते हुए लिखते हैं- "पुख्ता कर दी जाती है गुलामी / अंत्यजों की / तीर, तलवार और खंजर रही है कलम / बर्बर और बेरहम हाथों की / सीखना होगा दलितों को भी / कलम का महत्त्व / हथियार के रूप में उसका प्रयोग / क्योंकि कलम से / लिखे जा सकते हैं / परिवर्तन के गीत / ध्वस्त किए जा सकते हैं / अन्याय के किले।"5

"इसलिए उनके लेखन में जो कोशिश है वह व्यक्ति को उसकी गिड़गिड़ाहट व याचना की नियति से मुक्त कर सीधे स्तर खड़े और स्वाभिमान व आत्मविश्वास से भरे व्यक्ति के रूप में स्थापित करने की रही है। वे व्यक्ति के गौरव के लिए जो खाका खींचते हैं उसमें वह सब आ जाता है जिसमें व्यक्ति की चेतना और उससे उत्पन्न सक्रियता एक ऐसी वस्तुस्थिति है जो किसी राष्ट्र, समाज की उन्नति के लिए आवश्यकता के रूप में मानी जाती है।"6

जयप्रकाश कर्दम लिखते हैं कि दलितों द्वारा लिखित साहित्य करुणा एवं रस का साधन मात्र बनकर न रह जाए। उससे सामाजिक बदलाव भी होना चाहिए जिससे प्रेरित होकर दलित अपने शोषण एवं अन्याय के प्रति आंदोलन कर सकें। दलित सदियों तक कीड़े-मकोड़ों की तरह जीवन जीते आया है। अब वह समय आ गया है जब दलितों को एकजुट होकर अन्याय एवं शोषण के विरुद्ध क्रान्ति करनी होगी। वे 'क्रान्ति का बिगुल बजा दो' नामक कविता में लिखते हैं- "परिवर्तन के दस्तावेज़ बन जाओ /मेरे शब्दों अब / कीड़े-मकोड़े मत बने रहो /उतार कर फेंक दो / अपनी केंचुली/फुफकार कर खड़े हो जाओ / अपनी हुँकार से/धरती आसमान को हिला दो / अन्याय की इस दुनिया में/आग लगा दो/ क्रान्ति का बिगुल बजा दो।"7

दलित साहित्य को वे दलितों की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन के लिए एक महत्त्वपूर्ण हथियार के रूप में देखते हैं जिससे समाज में भेदभाव को बढ़ाने वाली एवं समाज को खोकला करने वाली रूढ़िगत परम्पराओं को समाप्त किया जा सकता है। अपने साहित्य के माध्यम से उन्होंने भटके दलित समाज को एक सकारात्मक दिशा देने का प्रयास किया है। जयप्रकाश कर्दम स्त्रियों को समाज में समान भागीदार के रूप में देखते हैं। स्त्रियाँ हमेशा से पीड़ित एवं शोषित रही हैं, किन्तु डॉ. अम्बेडकर के विचारों एवं दलित आन्दोलनों के परिणामस्वरूप दलित स्त्रियों में चेतना का संचार हुआ है। वे भी समाज हित के लिए पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर संघर्ष कर रही हैं। समाज हित में दलित स्त्रियाँ भी त्याग एवं समर्पण कर रही हैं। उनकी रचनाओं में शिक्षित ही नहीं अनपढ़ स्त्रियाँ भी समाज के प्रति जागरूक हैं।

दलित विमर्श साहित्यिक एवं सामाजिक आंदोलन बनकर उभरा है। वह ऐसे व्यक्ति का हिमायती है जो हजारों वर्षों से अस्पृश्यता, शोषण एवं अन्याय का शिकार रहा है। वह ऐसे धर्मग्रन्थों, रीति-रिवाजों, विश्वासों एवं परम्पराओं का विरोध करता है जिन्होंने समाज में रहने वाले मनुष्यों के बीच भेदभाव व घृणा को जन्म दिया। वह ऐसे समाज की स्थापना के लिए एक आंदोलन है जिसमें सभी मनुष्य समानता, स्वतन्त्रता व बन्धुता के साथ रह सकें। किसी भी मनुष्य को ऊँचा व नीचा न माना जाए, किन्तु दलितों का सामाजिक जीवन असमानता, भेदभाव, अन्याय, शोषण एवं तिरस्कार पूर्ण रहा है। जिसका प्रमुख कारण वर्ण व्यवस्था आधारित समाज रहा है जिसमें उच्च वर्णों को समाज में सम्मान व विशेष अधिकार प्राप्त थे जबकि शूद्र व अत्यंज जातियों को समाज में घृणा व अपमान की दृष्टि से देखा जाता था उन्हें मौलिक अधिकार भी प्राप्त नहीं थे। उच्च वर्णों ने ऐसे धर्म ग्रन्थों की रचना की जिसके कारण हजारों वर्षों तक तथाकथित निम्न वर्ण को गुलाम बनाकर रखा गया। उदाहरण के लिए व्यासस्मृति की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं- "वर्द्ध की नापितो गोप: आशाप: कुम्भकारक: / वणिक्किंत कायस्थ मालाकार कुटुम्बिन: /

वेरटो भेद चाण्डाल: दासो श्वपच कोलका: / एषा सम्भाषणात्स्नानं दर्शनादर्कनीक्षणम्।''8

अर्थात् बढ़ई, नाई, ग्वाल, कुम्हार, बनिया, किरात, कायस्थ, भंगी, कोल, चाण्डाल ये सब अंत्यज (नीच) कहलाते हैं। इनसे बात करने पर स्नान और इनको देखने पर सूर्य के दर्शन से शुद्धि होती है। ऐसे मनुस्मृति व अन्य धार्मिक ग्रन्थों में कितने ही उदाहरण भरे पड़े हैं जिसने समाज को तोड़ने व भेदभाव को बढ़ावा देने का कार्य किया है। शूद्रों व अत्यंजों के शोषण व उन पर होने वाले अत्याचारों को जायज ठहराया गया है, यथा 'मनुस्मृति' के अनुसार- ''एक जाति द्विजातिस्तु वाचा या क्षिपेत्र् जिह्वा या प्रान्युवार्च्छेद जघन्य प्रभवोहि स:।''9

अर्थात् जो शूद्र ब्राह्मण को कड़े शब्द कहे, राजा उसकी जीभ काट ले, क्योंकि वह नीच जाति में जन्मा है। मनुस्मृति के इसी गैर मानवीय विधान के कारण डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने मनुस्मृति का दहन किया जिसे दलित विमर्श एक सामाजिक क्रान्ति के रूप में देखता है।

दलित विमर्श का मूल स्वर वेदना और विद्रोह से उपजा है। यह दलितों की हज़ारों वर्षों की यातनामय जीवन की अभिव्यक्ति ही नहीं बल्कि मुक्ति की छटपटाहट भी है जो प्राय: सभी दलित साहित्यकारों में दृष्टिगोचर होती है। दलित विमर्श समाज की वर्णव्यवस्था को समाप्त कर जाति विहीन समाज की स्थापना के लिए एक सामाजिक आंदोलन है। वह समाज में भेदभाव को समाप्त कर एक स्वस्थ समाज की स्थापना के लिए संघर्ष का आह्वान है जिसमें सभी मनुष्यों को सम्मान व अधिकार प्राप्त हों। वह हज़ारों वर्षों की शोषण परम्परा को समाप्त कर एक समतामूलक समाज की एक नई इमारत खड़ी करने की वास्तुकला है जो शोषण के विरुद्ध विद्रोह व प्रतिकार करता है। मोहनदास नैमिशराय लिखते हैं- 'क्रान्ति का हथौड़ा/महलों की पुख्ता दीवारों को / भले न तोड़ पाए/पर क्रान्ति की गूँज अभी जिन्दा है / यह सब सुनने के लिए ही/क्रान्ति का हथौड़ा रुकने न पाये।''10

दलित साहित्य दलितों के शोषणमय जीवन की स्वानुभूतिपूर्ण यथार्थ की अभिव्यक्ति है जिसे उन्होंने सदियों तक भोगा व सहन किया है। दलित साहित्यकारों ने समाज में रहकर जो शोषण व अपमान सहा है उसी की अभिव्यक्ति उन्होंने की है। कंवल भारती की कविता 'क्या हूँ मैं' दलितों की सदियों की पीड़ा को अभिव्यक्त करती है।

''मैं सदियों से पल रहा हूँ/आतंक के साये में / झेल रहा हूँ यातनाओं के दंश/गाँव कस्बों में, शहरों में / राज्य के आतंकवाद के हाथों दी गई/जी रहा हूँ विस्थापित ज़िंदगी / मैं सदियों से अपनी पीड़ा को/अपने विस्थापित होने के अहसास को / अपने चारों ओर व्याप्त दहशत के साये को / यातनाओं के दंश को अभिव्यक्ति दे रहा हूँ।''11

दलित साहित्य में परम्परागत साहित्य की भाँति प्रेम, नखशिख चित्र, आनन्द, रोमानियत, अध्यात्म नहीं है बल्कि भोगा गया यथार्थ है जिसमें दिन-रात मेहनत करने, मरने, खपने के बाद भी धन ऐश्वर्य तो दूर दो जून की रोटी भी नसीब नहीं हो पाती। समाज की इसी सच्चाई को बयान करती है। ओमप्रकाश बाल्मीकि की कविता 'फिर भी' से ली गई कुछ पंक्तियाँ- ''काटे जंगल/खोदे पहाड़/बोये खेत/फिर भी भूखे रहे। / बनाई नहरें/खोदे कुएँ/लगाए नल/फिर भी रहे प्यासे / हाथों में अथाह शक्ति/सीने में धैर्य मन में विश्वास / फिर भी सही दुत्कार/नहीं बोये काँटे / बाँटे सिर्फ सगुन प्यार के / फिर भी रहे अछूत...।''12

दलित साहित्य शोषण का चित्रण मात्र नहीं करता बल्कि समाज में हो रहे इस शोषण के विरुद्ध विद्रोह व प्रतिकार भी व्यक्त करता है। मलखान सिंह अपनी कविता 'सुनो ब्राह्मण' में इस सामाजिक व्यवस्था के प्रति आक्रोश व्यक्त करते हैं— ''मत भूलो कि अब/मेहनतकश कंधे / तुम्हारा बोझ ढोने को तैयार नहीं/बिल्कुल तैयार नहीं हैं।''13

दलित विमर्श जाति आधारित सामाजिक व्यवस्था की जमकर आलोचना करता है जिसमें आदमी की पहचान उसकी जाति से होती है। आज के भूमंडलीकरण व आधुनिक युग में भी जातिवाद समाप्त होने का नाम नहीं ले रहा है। इसी सत्य को उजागर करते हुए प्रेमशंकर 'जाति' नामक कविता में लिखते हैं- ''वे /सभ्य हैं/आदमी से/हाथ मिलाने के बाद / वे...../हाथ धोते हैं, माँजते हैं / और फिर/मुस्कराकर कहते हैं.... / हम एक हैं।''14

निष्कर्ष-

इस प्रकार दलित विमर्श ने दलित समाज के यथार्थ को उसकी अच्छाई बुराई के साथ पूरी शिद्दत से अभिव्यक्ति प्रदान की है। उसने दलितों की सामाजिक दुर्दशा के कारणों की खोज करते हुए शोषण के किलों को ढहाने का कार्य भी भली-भाँति करने का प्रयास किया है। शिक्षा के कारण दलित समाज में जो स्वाभिमान व जागृति आई है उसकी सफल अभिव्यक्ति दलित साहित्य के माध्यम से हो रही है। दलित वर्ग को जब तक समाज में सम्मान प्राप्त नहीं होता तब तक दलितों के लिए प्रगति व समानता का स्वप्न अधूरा है।

000

संदर्भ-

1.जयप्रकाश कर्दम, इक्कीसवीं सदी में दलित आन्दोलन, पृ. 58, 2.रजतरानी 'मीनू', हिन्दी कथा साहित्य : अवधारणाएँ एवं विधाएँ, पृ. 48, 3.शीलबोधि, दलित साहित्य की वैचारिकी और डॉ. जयप्रकाश कर्दम, पृ. 44, 4.जयप्रकाश कर्दम, इक्कीसवीं सदी में दलित आन्दोलन, पृ. 19, 5.जयप्रकाश कर्दम, तिनका तिनका आग, पृ. 30, 6.शीलबोधि, दलित साहित्य की वैचारिकी और डॉ. जयप्रकाश कर्दम, पृ. 34, 7.जयप्रकाश कर्दम, तिनका तिनका आग, पृ. 17, 8.निरंजन कुमार, मनुष्यता के आइने में दलित साहित्य का समाजशास्त्र, पृ. 80, 9.वही, पृ. 81, 10.सं. जयप्रकाश कर्दम, दलित साहित्य वार्षिकी 2015, पृ. 123, 11.निरंजन कुमार, मनुष्यता के आइने में दलित साहित्य का समाजशास्त्र, पृ. 87, 12.निरंजन कुमार, मनुष्यता के आइने में दलित साहित्य का समाजशास्त्र, पृ. 86, 13.रामचन्द्र व प्रवीण कुमार, दलित चेतना की कविताएँ, पृ. 57, 14.वही, पृ. 33

(शोध आलेख)

राजपूत रनिवासों में उप-पत्नियों की स्थिति : ऐतिहासिक विश्लेषण

शोध लेखक : डॉ. निर्मला कुमारी मीणा, सहायक आचार्य, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

शोध सारांश

मध्यकालीन राजपूताने के इतिहास से सम्बन्धित विभिन्न स्रोतों से हमें राजा-महाराजा द्वारा किये गए कार्यों एवं उपलब्धियों की जानकारी बड़ी ही सुगमता से मिल जाती है। परन्तु राजपूत राजाओं को प्रभावित करने वाले अनेक पक्ष जैसे उनके रनिवास आदि पर विस्तृत चर्चा नहीं की गई है। राजपूतों को बहुविवाह से विशेष लगाव था तथा वे इसे प्रतिष्ठा का प्रश्न मानते थे। राजपूत शासक अपने रनिवास में रानियों के अतिरिक्त अनेक उपपत्नियाँ रखते थे। उपपत्नी वस्तुत: वह स्त्री होती थी जिसको राजा बिना विवाह किये अपने साथ रखता था अत: वह राजा की रखैल या सेवा में आई हुई स्त्री होती थी। वह किसी भी जाति या धर्म की हो सकती थी।1 राजपूत रनिवास जिसे रावला, अंत:पुर भी कहा जाता था, इनका इतिहास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। जिन पर हालाँकि कुछ इतिहासकारों ने लेखनी चलाई है यथा- मुहणोत नैणसी का नैणसी री ख्यात, बाँकीदास का बाँकीदास री ख्यात, कर्नल जेम्स टॉड का एनाल्स एण्ड एण्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, शशि अरोड़ा का राजस्थान में नारी की स्थिति, डॉ. विक्रम सिंह राठौड़ का राजपूत नारियाँ नन्दकिशोर पारीक का राजदरबार और रनिवास, रतनलाल मिश्र का राजा-महाराजा और उनकी पासवानें, सुखवीर सिंह गहलोत का राजस्थान के रीति- रिवाज इत्यादि। तथापि राजपूत रनिवासों में उपपत्नी प्रथा का क्या स्वरुप था इस पर विशेष कार्य नहीं हुआ हैं इस विषय पर शोध पत्र में चर्चा की जाएगी।

राजपूत शासक अपने रनिवास में रानियों के अतिरिक्त अनेक उपपत्नियाँ रखते थे। समाज के अन्य वर्गों में उपपत्नी रखने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था परन्तु साधन सम्पन्न शासक वर्ग ही

डॉ. निर्मला कुमारी मीणा
सहायक आचार्य, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान

अधिकतर उपपत्नियाँ रखते थे। राजपूत रनिवासों में विभिन्न प्रकार की उपपत्नियाँ होती थी। जिन्हें उनके प्रभाव के आधार पर विभिन्न नामों से पुकारा जाता था यथा- पासवान, पड़दायत, खवास, बड़ारन, पातर, डावणी, खालसा, गोली इत्यादि।2 इन उपपत्नियों का पद सोपान होता था जिनमें पासवान व पड़दायत सबसे उच्चत्तम दर्जे की उपपत्नी होती थी। 3 पासवान सबसे अधिक प्रभुत्व वाली उपपत्नी होती थी। पासवान से तात्पर्य था राजा के पास रहने वाली। यह पदवी राजा द्वारा स्वयं दी जाती थी। हालाँकि पासवानों से महाराजा कभी विवाह नहीं करते थे और उन्हें कभी भी महारानी का दर्जा प्राप्त नहीं होता था।

इसी तरह यदि कोई स्त्री बाहर से राजा को पसन्द आ जाती थी तो उसे 'परदा' इनायत कर दिया जाता था और वे स्त्रियाँ 'परदायत' या 'पड़दायत' कहलाती थी।4 मुख्यत: ये स्त्रियाँ अपने गुण व रुप सौन्दर्य के बल पर राजा का मन मोह कर जनानी ड्योढी अथवा रनिवास में प्रवेश पाती थी। पड़दायत पदवी सम्मानपूर्वक दी जाती थी जिस स्त्री को पड़दायत बनाया जाता था, उसे इस अवसर पर सोना इनायत किया जाता था, उसे पैरों में सोना पहनने का अधिकार तथा हाथी दाँत का चूड़ा पहनाया जाता था।5 परन्तु नन्हीं जान को महाराजा जसवंत सिंह ने पाँव में हीरा पहनने का अधिकार दिया था। बही संख्या 1621 के अनुसार महाराज श्री तख्तसिंह ने अपनी रखैल रूपजीत को पड़दायत की पदवी दी और पैरों में सोना तथा हाथों में हाथी दाँत चूड़ा पहनने का अधिकार दिया था।6

अंत:पुर में प्रवेश पाकर ये बड़े ही ठाठ से रहती थी। इनके लिए अलग से महल बनवाये जाते थे। सेवा चाकरी के लिए दासियाँ उपलब्ध करवायी जाती थी। इनकी आय व खाद्य सामग्री का प्रबन्ध भी रानियों की भाँति राजकोठार से निर्धारित होता था। इनकी निश्चित आय हेतु राजा गाँव भी इनको दान कर दिया करते थे जिससे ये उपपत्नियाँ अपना जीवन विलासितापूर्वक व्यतीत करती थी। महाराजा विजयसिंह ने विक्रम संवत् 1848 को जालौर का पट्टा पासवान गुलाबराय के नाम कर दिया था।

ऐसी सुन्दरियों में जयपुर की रसकपुर का नाम बहुत प्रसिद्ध है। इसने महाराजा जगतसिंह को व्यक्तिगत रूप से अपनी मुठ्ठी में ही नहीं किया अपितु राज्य के शासन को अपने ढंग से चलाना आरंभ कर दिया।7 जोधपुर महाराजा गजसिंह का पासवान अनारा के प्रति प्रेम, महाराजा जसवंतिंसंह का नन्हीं जान के प्रति बेहद लगाव, जयपुर महाराज माधोसिंह की पासवान रूपराय, जोधपुर के मानसिंह की पासवान सुखसेज राय, ये प्रमुख उपपत्नियाँ थी जिन्होंने अपने प्रभाव से राजनैतिक निर्णयों में हस्तक्षेप किया।

राजपूत रनिवासों में कुछ उपपत्नियाँ बलात कारणों से भी बनाई जाती थी। जैसे कि किसी सुन्दर स्त्री पर मोहित होकर शासक उसे उसकी इच्छा के विरुद्ध अपने रनिवास में ले जाता था। मोटा राजा उदयसिंह ने जीवा पँवार की पत्नी को उसके पति की हत्या कर फलौदी में उपपत्नी बनाया था।8 बलात कारण के अतिरिक्त कुछ आर्थिक मजबूरी भी होती थी जिसके कारण ग़रीब असमर्थ पिता अपनी पुत्री को डोली में विदा कर राजमहल में छोड़ आते थे।9 वे उपपत्नी की तरह स्वीकार कर ली जाती थीं।

पासवान व पड़दायत जैसी उच्च श्रेणी की उपपत्नियाँ शासकों पर अपना पूर्ण प्रभाव रखती थी व राजनैतिक निर्णयों में भी हस्तक्षेप करती थीं। जोधपुर के महाराजा विजयसिंह की पासवान गुलाबराय वास्तविक महारानी की शक्तियों का उपभोग करती थी। वह दीवानों की नियुक्ति एवं बर्खास्तगी करती थी। जब कभी अवसर मिलता तो गुलाबराय विद्रोह प्रवृत्ति वाले सरदारों को अपमानित करने में नहीं चूकती थी।10 उसने शासक के हस्ताक्षर से अपनी इच्छानुसार कई ताम्रपत्र भी बाँटे थे। 1500 रुपये की रेख तक के गाँव सासंण में दिये थे।11 उसने शेरसिंह को युवराज बनवाया जिससे बड़े-बड़े सरदार उससे अप्रसन्न भी हो गए थे। इस संबंध में पं. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने लिखा है कि "महाराज की गुलाबराय पर विशेष कृपा थी। वह उसके कहने में चलता था तथा एक प्रकार से राज्य कार्य का संचालन उसके ईशारे से ही होता था।12

इसी प्रकार जोधपुर महाराजा नन्हीं जान नामक पासवान के गुलाम थे। वे बहुधा उस पालकी का पाया अपने कंधे पर रखते थे जिस पर नन्हीं जान बैठकर राजमहल से अपने घर जाती थी। अनेक सरदार दरबार में इज़्ज़त प्राप्त करने के लिए नन्हीं के मुख की ओर निहारा करते थे।13

जयपुर के महाराजा जगतसिंह एक मुस्लिम नर्तकी रसकपूर के प्रति विशेष लगाव रखते थे। जगतसिंह ने रसकपूर के नाम का सिक्का भी जारी किया। राजा जगतसिंह रसकपूर को अपने साथ हाथी पर बैठाकर बाज़ार से निकलता था और चाहता था कि सभी सामन्तगण उसके प्रति वही सम्मान दिखाये, जो अन्य रानियों के प्रति दिखाया जाता था।14 जौहरी बाज़ार का रंगीन काँच का महल आज भी रसकपूर की कहानियाँ कहता है।

जयपुर के महाराजा माधोसिंह के जीवन में एक सामान्य दासी रूपराय शक्तिशाली पासवान बन बैठी थी। उसको महाराजा ने 5 हज़ार की जागीर भी प्रदान कर रखी थी। नौकर-चाकर उसकी सेवा में हरदम हाजिर रहते थे। वह रनिवास में सर्वोच्च पद पर आसीन थी।15

ये पासवानें रनिवासों में बड़ा ही विलासिता पूर्ण जीवन व्यतीत करती थीं। इन्हें आने-जाने के लिए पालकी में बैठने का अधिकार होता था। कुछ दान पुण्य करती थी तथा मंदिर, महलों, किले, सरायों आदि का निर्माण भी करवाती थी। जैसे विजयसिंह की पासवान गुलाबराय ने गुलाबसागर, कुंज बिहारी का मंदिर बनवाया था। रसकपूर ने जौहरी बाज़ार में रंगीन काँच का महल, रूपराय ने जयपुर में गोपाल जी का मंदिर आदि। उत्सवों और त्यौहारों पर शासकों की ओर से इनाम के तौर नकद राशि भी प्रदान की जाती थी।16 इनके अपने ब्राह्मण व ज्योतिषी होते थे जो इनके लिए धार्मिक अनुष्ठानों का संपादन करते थे। पासवानों के बच्चों का

भरणपोषण उच्च स्तर पर होता था। इनके पुत्र-पुत्री भी धाय माँ के संरक्षण में पलते थे। इनके संतानों को राजा-महाराजा हाथ-खर्च हेतु जागीर प्रदान करते थे। इन उपपत्नियों की सन्तानों का विवाह दूसरे राजा की पासवान की सन्तान के साथ सम्पन्न होता था। महाराजा विजयसिंह की पासवान गुलाबराय के पुत्र तेजसिंह का विवाह जयपुर नरेश माधोसिंह की खवासन की पुत्री के साथ सम्पन्न हुआ था।17 राजा के जीवित रहते यदि इनकी मृत्यु हो जाती थी तो राजा अपनी जिम्मेदारी समझते हुए मृत्युभोज आदि कर्मकाण्ड करवाता था।

रनिवासों में इनकी स्थिति का एक अन्य पहलू भी था जो कि इनके अंधकारमय पक्ष को प्रकट करता है युद्ध अभियानों एवं अन्य देशाटन के समय विलासिता हेतु प्रमुख उपपत्नियाँ राजा के साथ जाती थीं परन्तु यदि राजा की सेना शत्रुसेना से हार जाती थी तो ऐसी स्थिति में उनकी सुरक्षा करना कठिन हो जाता था। ऐसी स्थिति में उनको मौत के घाट उतार दिया जाता था। महाराजा जसवंतसिंह के काल में औरंगजेब के भय से उनकी ग्यारह पड़दायतों को सिवाणा में जलाकर मार दिया था।18 अगर उसके जीवित रहते उसके प्रेमी राजा की मृत्यु हो जाती तो उसे चिता पर अपनी काया भस्म करनी होती थी। अन्यथा उनकी हत्या कर दी जाती थी। राजाओं के लिए यह प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया था कि उसके साथ अधिक से अधिक स्त्रियाँ सती हो। जब जयपुर के महाराजा जगतसिंह की मृत्यु हुई तो 38 स्त्रियों को चिता पर बैठाकर जला दिया गया। इन अभागी स्त्रियों में 19 दासियाँ और शेष पासवानें, पड़दायतें थी।19

जब राजा उनके प्रभाव में होते थे तो वह उनकी उन्नति का समय होता था। उस समय उनके हाथों में असीम शक्ति होती थी परंतु जैसे ही वह राजा की नजरों से गिर जाती तो या तो उसे सारा जीवन कैद में बिताना पड़ता था या फिर किसी सरदार की तलवार के वार से अपना सिर कटाना पड़ता था जैसे रसकपूर को उसके अंत समय में नाहरगढ़ किले में कैद कर दिया गया जहाँ जेल की अंधेरी कोठरी में यातना भुगतते हुए अपने प्राण त्याग दिये।20 गुलाबराय को भी धोखे से ठाकुर सरदारसिंह ने मौत के घाट उतार दिया क्योंकि सामंत गुलाबराय के व्यवहार से नाराज़ थे। अनारा को भी सरदारों ने छल से मार दिया था। जसवंतसिंह की पासवान नन्हीं जान को उनके सरदारों ने महाराजा के जीवन से निकालकर दूसरी औरत को प्रवेश दिला दिया और राजा नन्हीं जान को भूलकर नन्हीं बाई में मग्न हो गए और नन्हीं जान को रनिवास से निकाल दिया गया। माधोसिंह की पासवान रूपराय पर अंग्रेजों ने सरकारी धन गबन करने का आरोप लगाया व उसे महल छोड़ने के लिए बाध्य किया।21 हालाँकि कुछ उदाहरण ऐसे भी मिलते कि यदि पासवानें विधवा होने पर महल में रहना चाहती थी तो उसकी जीविका का प्रबन्ध कर दिया जाता था। उन्हें 'पासवान जी' कहकर पुकारा जाता था। राजकुमार उन्हें 'मीठी माँ' कहकर पुकारते थे और इनकी मृत्यु होने पर सम्मान के साथ इनका दाह संस्कार किया जाता था।

वास्तव में देखा जाए तो वृद्धा उपपत्नियों को छोड़कर नवयौवना उपपत्नियों का अंत अच्छा नहीं होता था। क्योंकि एक तरफ तो राज्य के सरदार भी उनके अवैधानिक प्रभाव से असन्तुष्ट रहते थे, जो मौका मिलते ही उनके साथ बर्बरता पूर्ण व्यवहार करते थे। दूसरी तरफ कामुक राजा-महाराजा आयु से उतरती उपपत्नियों से दूरी बना लेते थे और उनकी जगह नई-नई स्त्रियों को रनिवासों में ले आते जिससे उनकी स्थिति दासी की तरह हो जाती जो कभी रनिवास की मालकिन की हुआ करती थी। विवश होकर ये पासवानें/पड़दायतें अंत:पुर का त्याग करके अंधकारमय जीवन जीने को विवश हो जाती थी जिसको आचार्य चतुरसेन ने अपने उपन्यास गोली में रोचक ढंग से पेश किया है।

हालाँकि उत्कर्ष के समय में ये उपपत्नियाँ राजनीतिक, आर्थिक व धार्मिक सभी निर्णयों को प्रभावित करती थी। परन्तु जिस वैभव, ऐश्वर्य के लिए ये जीवन भर इतना हाय-हाय करती थी। अपने अंत समय में ये हर चीज के लिए मजबूर हो जाती थी। इस प्रकार इन विभिन्न उद्धरणों के माध्यम से राजपूत रनिवासों में उपपत्नियों की स्थिति का एक धुँधला चित्र प्रस्तुत किया गया है जो उस समय के पुरुष प्रधान समाज में विचार करने योग्य है।

000

संदर्भ-

1.अमरावत, विक्रमसिंह, ख्यात साहित्य का ऐतिहासिक अध्ययन, 2004, पृ. 198, 2.उपर्युक्त, पृ. 198

3.डॉ. शर्मा, वसुमति, राठौड़ राजवंश के रीति-रिवाज, जोधपुर, 2000, पृ. 35, 4.पारीक, नंदकिशोर, राजदरबार और रनिवास, जयपुर, 1984 पृ. 94, 5.डॉ. राठौड़, विक्रम सिंह, राजस्थान की संस्कृति में नारी, पृ. 30, 6.महाराज तख्तसिंह की पड़दायत श्री रुपजीत री बही, क्रमसंख्या 1621, पत्रसंख्या-54, विक्रम संवत् 1919, 7.मिश्र, रतनलाल, राजा महाराजा और उनकी पासवानें, जयपुर, 2007, पृ. 15, 8.डॉ. सिंह, रघुवीर, जोधपुर की ख्यात, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1988, पृ. 127, 9.उपर्युक्त, पृ. 431, 10.मिश्र, रतनलाल, राजा महाराजा और उनकी पासवानें, पृ. 22, 11.जोधपुर पट्टा बही, रा.रा.अ.बी., 1784-90 ई., नं. 4, पृ. 49-163, 12.ओझा, गौ.ही., जोधपुर राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, अजमेर, 1938, पृ. 154, 13.जोधपुर पट्टा बही, विक्रम संवत् 1824-42, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, पृ. 38, 14.डॉ. पूनिया, प्रमिला, राजस्थान के इतिहास में रानियों की भूमिका, जयपुर, 2000, पृ. 94, 15.मिश्र, रतन लाल, राजा महाराजा और उनकी पासवानें, पृ. 100, 16.जोधपुर हकीकत बही, नं.-14, विक्रम संवत् 1901-1905, पत्रांक 468-469, रा.रा.अ. बीकानेर, 17.डॉ. भाटी, नारायण सिंह, महाराजा तख्तसिंह जी की ख्यात, 1993, पृ. 26, 18.डॉ. सिंह, रघुवीर, जोधपुर की ख्यात, 1998, पृ. 238। , 19.मिश्र, रतनलाल, राजा महाराजा और उनकी पासवानें, पृ. 10-11, 20.उपर्युक्त, पृ. 19, 21.उपर्युक्त, पृ. 104

(शोध आलेख)

मध्यकालीन राजस्थान में नगरीकरण एवं व्यापार : एक अवलोकन

शोध लेखक : डॉ. कुलवन्त सिंह शेखावत, सहायक आचार्य, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर राजस्थान

डॉ. कुलवन्त सिंह शेखावत
सहायक आचार्य
इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर, राजस्थान

शोध सारांश - मध्यकालीन राजस्थान में नगरीकरण की प्रक्रिया का विशिष्ट महत्त्व है। मध्यकालीन राजस्थान में एक ओर हमें झालरापाटन, पाली, भीनमाल, बाड़मेर एवं नागौर जैसे प्राचीन ऐतिहासिक नगरों का अस्तित्व दिखाई देता है, जोधपुर, जयपुर, बीकानेर, कोटा एवं उदयपुर जैसे नगरों का उदय राजधानी नगरों के रूप में हुआ। मध्यकालीन राजस्थान के विभिन्न नगर अपने व्यापारिक महत्त्व के कारण अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पहचान बना चुके थे। इनसे गुज़रने वाले व्यापारिक मार्गों का बड़े-बड़े व्यापारिक कारवाँ प्रयोग करते थे। प्रस्तुत शोध पत्र में राजस्थान में नगरीकरण की प्रक्रिया, नगरों के क्रमिक विकास एवं उनके व्यापारिक महत्त्व को उजागर किया गया है। बीज शब्द : राजस्थान, नगरीकरण, राजपूत, व्यापारिक वर्ग।

मध्यकालीन राजस्थान में राजपूत राजवंशों-राठौड़, सिसोदिया, बीका राठौड, हाड़ा आदि द्वारा जोधपुर, बीकानेर, बूँदी, उदयपुर, आमेर एवं सिरोही आदि स्थानों में अपने राजवंशों की राजधानियाँ स्थापित की और नए स्थानों का चयन कर उनको अपनी राजधानी के रूप में स्थापित किया। मुगल सम्राट अकबर के द्वारा राजपूत शासकों के प्रति अपनाई नीति के परिणामस्वरूप आमेर के कच्छावा शासकों, जोधपुर एवं बीकानेर के राठौड़ शासकों और बूँदी के हाड़ा शासकों द्वारा मुगल सम्राट के सेनानायक के रूप में विभिन्न मुगल सूबों एवं प्रदेशों में अपनी सैनिक सेवाएँ प्रदान की गईं। इस कारण 16वीं शताब्दी के मध्य से 17 वीं शताब्दी के अन्त तक राजपूत राजा अपने राज्यों से अनुपस्थित रहे और उनका अधिकांश समय मुगल दरबार में एवं मुगलों की सैनिक सेवा में व्यतीत हुआ, जिसके परिणामस्वरूप राजस्थान के विभिन्न नगरीय केन्द्रों पर मुगलों की प्रशासनिक व्यवस्था एवं नीतियों का गहरा प्रभाव पड़ा।

1707 ई. में औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् मुगल साम्राज्य का तेज़ी से विघटन प्रारम्भ हो गया था। व्यापारियों ने उत्तर-पश्चिमी राजस्थान में होकर उत्तर भारत जाना प्रारम्भ किया जिससे इस क्षेत्र में अनूपगढ़, राजगढ़, पूगल, चूरू, राजलदेसर, सूरतगढ़, रतनगढ़, सुजानगढ़ और लूणकरणसर आदि नगरीय केन्द्रों का विकास हुआ।

मध्यकालीन राजस्थान में राठौड़, हाड़ा, चौहान, कच्छावा, सिसोदिया आदि राजवंशों के शासकों द्वारा नवीन राज्यों एवं राजधानियों की स्थापना से बूँदी, जोधपुर, बीकानेर, कोटा, किशनगढ़, जयपुर, उदयपुर आदि नगरों की स्थापना एवं उदय हुआ था, जबकि बूँदी (1340 ई.) एवं जैसलमेर (1156 ई.) पहले से ही हाड़ा एवं भाटी राजवंशों का शासन चला आ रहा था।2 मध्यकालीन राजस्थान में देशी राजपूत रियासतों एवं सांमतों के ठिकानों की राजनैतिक व्यवस्था व्यवस्थित रूप में संगठित थी। शासकों एवं सामंतों के द्वारा विभिन्न नगरीय केन्द्रों की स्थापना के साथ-साथ वहाँ दुर्गों का निर्माण कर उनको राजभवनों से सुसज्जित करने का प्रयास किया जाता था। इसके अतिरिक्त बाज़ार, टकसाल व चुंगी घर की स्थापना करके उनका व्यावसायिक स्वरूप निश्चित करते थे। शासक, ठाकुर एवं उच्च पदाधिकारी नगरों की व्यापारिक गतिविधियों की अभिवृद्धि के लिए प्रयास करते थे। व्यापारिक एवं दस्तकारों को विभिन्न सुविधाएँ प्रदान कर उन्हें अपने राज्यों में बसाने का प्रयास करते थे। बीकानेर राज्य के चूरू कस्बे के पोद्दार सेठ वहाँ के ठाकुर की नीतियों द्वारा नाराज़ होकर चूरू से निष्क्रमण कर जयपुर के शेखावाटी क्षेत्र के रामगढ़ शेखावाटी नामक कस्बे में आकर बस गए तथा उसको एक व्यापारिक कस्बे के रूप में स्थापित कर दिया।3 जयपुर, जोधपुर, बूँदी, कोटा आदि राज्यों के शासकों ने भारत के महत्त्वपूर्ण केन्द्रों - मुलतान, सिंध, दिल्ली, सूरत, आगरा, लाहौर, चंदेरी आदि के कारीगरों एवं दस्तकारों को अपनी राजधानियों, नगरों एवं अन्य महत्त्वपूर्ण कस्बों में बसाकर औद्योगिक उत्पादन के लिए प्रेरित किया।4

राजधानियों के अलावा प्रशासनिक इकाइयों जैसे सरकार, परगने एवं जकात चौकियों की स्थापना से भी नगरीय केन्द्रों के उदय में मदद मिली। जयपुर राज्य में हिण्डौन, फागी, टोडाभीम, निवाई एवं मलारना आदि परगने प्रमुख कस्बों के रूप में जाने जाते थे।5 जोधपुर

राज्य में के मेड़ता, फलौदी, जैतारण, सिवाणा, सोजत, पोकरण आदि परगने प्रमुख कस्बे थे।6 बीकानेर राज्य के शासकों ने 18 वीं शताब्दी के दौरान विभिन्न कस्बों में जकात चौकियों की स्थापना की, जिनमें राजगढ़, पूगल, अनूपगढ़, चूरू, महाजन बींदासर, राजलदेसर एवं लूणकरणसर प्रमुख मण्डियाँ एवं जगात चौकियाँ थीं।7 जहाँ से व्यापारियों द्वारा व्यापारिक वस्तुओं के ले जाने पर जकात की वसूली की जाती थी।

इस तरह यह प्रशासनिक केन्द्र भी राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं व्यापारिक केन्द्र के रूप में अपनी पहचान बना ली। 17वीं-18वीं शताब्दी के दौरान बीकानेर एवं शेखावाटी क्षेत्र के राजगढ़, राजलदेसर, बींदासर, चूरू, मलसीसर, लक्ष्मणगढ़, फतेहपुर शेखावाटी, मण्डावा, नवलगढ़, डूंडलोद एवं खँडेला आदि कस्बे व्यापारियों के निवास एवं व्यवसायिक गतिविधियों के प्रमुख केन्द्र बने हुए थे जहाँ से उनका सम्पूर्ण राजस्थान एवं भारत के विभिन्न व्यापारिक केन्द्रों से व्यापार, बैंकिंग एवं बीमा व्यवसाय संचालित होता था, वे काफी समृद्ध हो गए थे।8 इन कस्बों में सेठों ने भव्य हवेलियों का निर्माण करवाया और उनको भित्ति चित्रों से सजाकर कलात्मकता प्रदान की, जो वर्तमान में सांस्कृतिक विरासत के रूप में सभी को अभिभूत एवं रोमांचित करती है।

शासकों की ही भाँति जागीरदारों एवं ठिकानेदारों की भी कस्बों के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। उनके द्वारा जिस कस्बे से ठिकाने का शासन संचालन होता था उस कस्बे की ठिकाने के रूप में पहचान बन जाती थी। वहाँ ठिकानेदार द्वारा गढ़ का निर्माण करवाया जाता था। उसके साथ व्यापारियों, सेठ-साहूकारों को बसाया जाने का प्रयास करते थे। किन्तु कभी-कभी सामंतों की अन्यायपूर्ण नीतियों के कारण व्यापारी सामूहिक रूप से उन सामन्तों के ठिकानों से निष्क्रमण भी कर जाते थे। उदाहरण के लिए चूरू के सामंत की नीति के कारण चूरू के पोद्दार सेठों का परिवार सीकर ठिकाने में चला गया था जिनको वापिस लाने में बीकानेर के महाराजा सूरतसिंह ने विशेष प्रयास किये।9 शेखावाटी में झुन्झुनू एवं फतेहपुर में क्यामखानी नवाबों का शासन था। सवाई जयसिंह के कहने पर शार्दूल सिंह शेखावत ने क्यामखानियों को हराकर झुन्झुनूँ पर एवं सीकर के शिवसिंह शेखावत ने फतेहपुर पर अधिकार कर लिया। सवाई जयसिंह ने शेखाववाटी के 51 परगने मुगल सम्राट मुहम्मद शाह से इजारे पर प्राप्त कर उन्हें शेखावतों को इजारे पर दे दिया था। इससे शेखावतों के ठिकानों का उद्य हुआ एवं उनके महत्त्व में वृद्धि हुई जिनमें खंडेला, बिसाऊ, नवलगढ़, मलसीसर, डूंडलोद एवं मण्डावा आदि प्रमुख ठिकाने थे।10

राजस्थान की अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति के कारण यहाँ से कई महत्त्वपूर्ण व्यापारिक मार्ग गुज़रते थे, जिसके फलस्वरूप यहाँ कई नगरीय केन्द्रों का उदय, विकास एवं विस्तार हुआ। मुगलकालीन फारसी तवारीखों एवं यात्रा वृत्तान्तों में प्रसिद्ध व्यापारिक मार्गों का उल्लेख मिलता है। अबुल फजल के अकबरनामा में एक प्रसिद्ध व्यापारिक मार्ग आगरा-अहमदाबाद का उल्लेख मिलता है जो जयपुर राज्य के सांगानेर एवं हिण्डौन कस्बों में होकर गुज़रता था।11 सुजानराय भंडारी के ग्रन्थ "खुलासत-उत-तवारीख" में गुजरात से आगरा जाने वाले मार्ग का वर्णन मिलता है जो सांभर, अजमेर से होकर निकलता था।12

उत्तर-पश्चिमी राजस्थान में स्थित बीकानेर राज्य में व्यापारिक मार्गों के कारण कई व्यापारिक केन्द्रों का विकास हुआ। काबुल कंधार एवं मध्य एशिया के व्यापारियों द्वारा सिंध, मुल्तान होते हुए दिल्ली जाने के लिए जिस व्यापारिक मार्ग का प्रयोग किया जाता था वह बीकानेर राज्य के बीकानेर, चूरू, राजगढ़, राजलदेसर, अनूपगढ़, नोहर, सुजानगढ़ एवं रतनगढ़ आदि कस्बों से होकर गुज़रता था। जिससे इन कस्बों में व्यापारिक गतिवधियों में भी तेजी आई और राज्य की पारगमन व्यापार से होने वाली आय में भी वृद्धि हुई। 13 माउण्ट स्टुअर्ड एलफिन्सटन के अनुसार दिल्ली से काबुल जाने वाला व्यापारिक मार्ग चूरू होकर जाता था। 14 दक्षिणी-पूर्वी राजस्थान के हाड़ौती क्षेत्र के कोटा एवं बूँदी नगर, मालवा एवं दक्कन जाने वाले व्यापारिक मार्ग पर स्थित थे। ग्वालियर से उज्जैन जाने वाला व्यापारिक मार्ग, बीकानेर से दक्कन जाने वाला व्यापारिक मार्ग एवं जयपुर से इंदौर वाले व्यापारिक मार्ग पर कोटा स्थित था। जिससे कोटा एक महत्त्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र के रूप में उभरा। इस प्रकार स्पष्ट है कि सिंध, मुल्तान, दिल्ली, गुजरात, मालवा आदि को जाने वाले व्यापारिक मार्गों ने राजस्थान के विभिन्न नगरीय केन्द्रों की वाणिज्यिक गतिविधियों में अभिवृद्धि में भूमिका निभाई। 15

राजपूत शासक इन नगरीय केन्द्रों को सांस्कृतिक एवं वाणिज्यिक रूप में संगठित करने में सदैव प्रयासरत रहते थे। राजधानी नगर को वैभव रूप प्रदान करने के लिए राजप्रसादों एवं विभिन्न इमारतों का समय-समय पर निर्माण करवाते थे। राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर में उपलब्ध विभिन्न अभिलेखागारीय दस्तावेजों से ज्ञात होता है कि जयपुर, जोधपुर, कोटा, बीकानेर आदि राज्यों के शासकों के द्वारा दिल्ली, सूरत, लाहौर आदि विभिन्न स्थानों से व्यापारियों एवं कुशल कारीगरों को बुलाकर अपने नगरीय केन्द्रों में बसाया गया था। जयपुर राज्य के शासक सवाई जयसिंह ने दिल्ली से सेठ भीखनराम चौधरी को जयपुर नगर में सर्राफा के काम के लिए आमंत्रित किया गया।16 दिल्ली के प्रसिद्ध व्यापारी पुरुषोत्तम दास जौहरी को सवाई जयसिंह ने जयपुर में हवेली बनाने के लिए मुफ्त भूमि प्रदान की थी।17 बीकानेर राज्य के शासकों द्वारा भी व्यापारियों को प्रोत्साहित करके बीकानेर राज्य में नगरीय केन्द्रों के विकास में भूमिका निभाई। बीकानेर के शासक सूरत सिंह के द्वारा विभिन्न परवानों एवं रुक्कों के द्वारा शेखावाटी में चले गए पोद्दार सेठों को पुनः चूरू में बसाने के लिये प्रेरित किया गया था। इसके लिए उन्हें विभिन्न करों में छूट एवं विशेषाधिकार भी प्रदान किये थे।18 राज्य की विभिन्न जकात बहियों से स्पष्ट होता है कि यहाँ के शासक नगरों एवं

कस्बों में दुकानें बनवाकर व्यापारियों को प्रदान करते थे। व्यापारियों के माल की सुरक्षा के लिये राज्य द्वारा सैनिकों को तैनात किया जाता था। मुल्तान की ओर जाने वाले व्यापारिक काफिलों के लिये पूगल चौकी पर सैनिकों को मुकर्रर करने का उल्लेख मिलता है।19 राज्य के व्यापारियों के सम्मान के लिए शासकों द्वारा समय-समय पर उन्हें विशेष उपहार प्रदान किये जाते थे। बीकानेर के शासक सूरतसिंह ने 1827 ई. में चूरू के सेठ मिर्जामल को सम्मान के रूप में सिरपेच, मोतियों की कंठी, मोतियों का चौकड़ा एवं दुशाला उपहार स्वरूप प्रदान किया था।20 जोधपुर के राठौड़ शासकों ने भी अपने राज्य के वाणिज्यिक केन्द्रों के विकास में रुचि दिखाई एवं व्यापार को प्रोत्साहन करने की नीति को अपनाया। उन्होंने देश के विभिन्न भागों से व्यापारियों को जोधपुर राज्य के विभिन्न कस्बों में आकर बसने तथा व्यापार करने के लिये आमंत्रित किया तथा उनको विभिन्न प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की गई, जिनमें सबसे प्रमुख व्यापारिक करों में छूट दी गई थी। रतलाम के व्यापारी बोहरा दाउद खाँ को जोधपुर में व्यापार करने पर 'दोण' एवं राहदारी में एक चौथाई की छूट प्रदान की गई थी।21

ख़ास रुक्का परवाना बही नं. 1 में उल्लेख मिलता है कि जोधपुर नगर में मुल्तान से कई व्यापारी आकर बस गए थे जिसमें खत्री लीलाराम, द्वारकादास, गोपालदास, शाह फतेहचन्द, नगोड़ीदास, गोवर्धनदास, बृजदास आदि प्रमुख थे।22 इसी प्रकार बहावलपुर से आकर मुहणौत जीवणदास का परिवार जोधपुर में व्यापार करने लगा, जिनको जोधपुर शासकों ने दोण एवं राहदारी में छूट प्रदान की।23 आगरा का व्यापारी शाह भोलानाथ भी जोधपुर में व्यापार करता था।24 जोधपुर के शासकों की व्यापारियों एवं कारीगरों के प्रति अपनायी गई उदार नीति से विभिन्न नगरीय केन्द्रों में औद्योगिक विकास में भी मदद मिली। जोधपुर राज्य के नागौर कस्बे में मुल्तान से आकर कुछ लौहार बस गए थे जो तोपों के गोले एवं बंदूकें बनाने में दक्ष थे, जिससे नागौर धातु उद्योग के रूप में प्रसिद्ध हुआ। 25 जोधपुर के शासकों ने बीकानेर, जयपुर आदि राज्यों के व्यापारियों को अपने राज्य के जोधपुर, नागौर, पाली आदि कस्बों में व्यापार करने के लिये प्रोत्साहित किया। बीकानेर के व्यापारी वर्धमान और जैतरूप नागौर में, जयपुर के नानूराम एवं रामगोपाल पाली में एवं बीकानेर के व्यापारी शाह जुगल किशोर एवं लक्ष्मणदास जोधपुर और नाँवा में व्यापार करते थे।26

000

संदर्भ-

1.सुनीता बुधवर, माइन्स, मिन्ट्स एण्ड देयर एडमिनिस्ट्रेशन इन दी सूबा ऑफ अजमेर, प्रोसिडिंग्स इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, 1979, जी.एन. शर्मा, , सोशल लाइफ इन मेडीवल राजस्थान, आगरा, पृ. 55, 2.वी.के. वशिष्ठ, हिस्ट्री एण्ड कल्चर हैरिटेज ऑफ राजस्थान, राजस्थान री विगत, राजस्थान अध्ययन केन्द्र, जयपुर, 2012, पृ. 10-11, 3.गिरिजाशंकर शर्मा, मारवाड़ी व्यापारी, बीकानेर, 1988, पृ. 111, 4.बी.एल. गुप्ता, ट्रैण्ड एण्ड कॉमर्स इन राजस्थान, जयपुर, 1987, पृ. 58; रामप्रसाद व्यास, आधुनिक राजस्थान का बृहद इतिहास खण्ड-। , जयपुर, 2019, पृ. 388-391, 5.वी.एस. भटनागर, सवाई जयसिंह, जयपुर, 1988, पृ. 176-77, 6.मुहणौत नैणसी, मारवाड़ परगना री विगत, द्वितीय भाग, पृ. 86, पृ. 310-11, 7.बही जगात आमदनी नं. 83, वि.सं. 1822 (1765 ई.), कागदो-री-बही नं. 4, वि.सं. 1831 (1774 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, 8.डी.के. टकनेत, इण्डस्ट्रीयल एन्टरप्रेनशिप ऑफ शेखावाटी मारवाड़ी, जयपुर, 1987, पृ. 48-56, 9.कागदो-री-बही नं. 20, वि.सं. 1861 (1804 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, महाराजा सूरत सिंह की ओर से मिर्जामल पोद्दार को लिखा परवाना चैत्र सुदी 1, संवत 1888 (1831 ई.), मरूश्री चूरू, जुलाई-दिसम्बर, 1982, पृ. 28, 10.वी.एस. भटनागर, पूर्वोक्त, पृ. 170-71, 11.डॉ. के.सी. जैन, एशियन्ट सिटीज एण्ड टाउन्स ऑफ राजस्थान, दिल्ली, 1990, पृ. 518, 12.जी.एन. शर्मा, पूर्वोक्त, पृ. 322, 13.जकात ही नं. 81, वि.सं. 1807 (1750 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, 14.गोविन्द अग्रवाल, चूरू मण्डल का शोधपूर्ण इतिहास, चूरू, 1976, पृ. 478, 15.भण्डार नं. 14, बस्ता नं. 5, जकात बही, वि.सं. 1877 (1820 ई.), कोटा रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, 16.परवाना जयपुर मिति चैत्र सुदी 11, वि.सं. 1784 (1727 ई.), जयपुर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, 17.हीरानन्द पुरुषोत्तमदास जौहरी को परवाना जेठ बदी 12, वि.सं. 1811 (1754 ई.), खरीता व परवाना, जयपुर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, 18.कागदो री बही नं. 20, वि.सं. 1861 (1804 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, 19.सावा मण्डी सदर बही नं. 8, वि.सं. 1815-16 (1758-59 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, 20.शोधक, जयपुर वाल्यूम-17, 1988, पृ. 133, 21.ख़ास रूक्का परवाना बही नं. 1, वि.सं. 1824 (1767 ई.), जोधपुर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, 22.ख़ास रूक्का परवाना बही नं. 1, वि.सं. 1825 (1768 ई.), जोधपुर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, 23.ख़ास रूक्का परवाना बही नं. 1, वि.सं. 1853 (1796 ई.), जोधपुर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, 24.ख़ास रूक्का परवाना बी नं. 1, वि.सं. 1828 (1771 ई.), जोधपुर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, 25.सनद परवाना बही नं. 10, वि.सं. 1827 (1770 ई.), जोधपुर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, 26.ख़ास रूक्का परवाना बही नं. 1, वि.सं. 1846 (1789 ई.), जोधपुर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर

(शोध आलेख)

'अपना मोर्चा' उपन्यास में छात्रों की स्थिति

शोध लेखक : पटेलिया हरीशभाई रामजीभाई
शोध निर्देशक : डॉ. वी. वी. चौधरी

पटेलिया हरीशभाई रामजीभाई
शोध-छात्र
आर्ट्स कॉलेज सतलासना
हेम.चंद्राचार्य उत्तर गुजरात
विश्वविद्यालय, पाटण, गुजरात

उपन्यास वह गद्य कृति है जिसमें मानव जीवन के सम्पूर्ण चित्र का कथात्मक आख्यान रहता है। इसी गुण के कारण साहित्य की नई विद्या होने के बाद भी आधुनिक साहित्य की सबसे लोकप्रिय विद्या हो गया है। इस विधा में मनुष्य पूरी समग्रता और पूर्णता के साथ समा सकता है। यह समाज के प्रत्येक महत्त्वपूर्ण और भूले-बिसरे अंगों को पूरी अभिव्यक्ति दे सकता है। इसका आयाम इतना अधिक विस्तृत है कि मनुष्यता से इतर प्रकृति के सभी अवयव इसके विषय बन रहे है। अपने युग सव्य इतिहास और भविष्य की कल्पना से जुड़े भी अनेक उपन्यास हिन्दी में है। स्वतंत्रता के बाद हिन्दी उपन्यास का क्षितिज और भी विस्तृत हुआ। नेहरू युग का 'आकर्षक नेतृत्व' उसकी आभा में बँधा उपन्यासों का संसार एक ओर था। तो दूसरी ओर आभा मण्डल को भेदता लेखकीय दृष्टिकोण भी था जो आरम्भ में प्रतिरोध और कालांतर में 'मोहभंग' का स्वरूप ले लिया। उपन्यास एक विधा के रूप में अपने जन्म से ही समकालीन और भविष्योन्मुख रहा।

काशीनाथ सिंह अपने परिदृश्य और उसे बदलने वाली शक्तियों की पहचान को लेकर सदैव सावधान रहे हैं। उनका पहला उपन्यास अपना मोर्चा (1972) विश्वविद्यालयों में छात्र आन्दोलन पर केन्द्रित है अपने इस उपन्यास में वे छात्रों की अनेक समस्याओं को गम्भीरता पूर्वक उठाते हैं। और छात्र असन्तोष के मूलभूत कारणों की वस्तुपरक खोज करते दिखाई देते हैं। अध्यापकों और नौकरशाही के रवैये को हल्के-फुल्के व्यंग्य के लहजे में व्यक्त करते है जिससे आम तौर पर छात्रों का कुछ भला नहीं होता है। दूसरी ओर अभिभावकों और संरक्षकों की जैसे-तैसे अपनी परेशानी को हटा कर दूसरे के सिर डालने की भी इसमें महत्त्वपूर्ण है। आवारा, लफंगे और कामचोर लड़के इसी उद्देश्य से अपना भाग्य आजमाने को इन विशाल कारखानों में भेजे जाते हैं। जो आज दुर्भाग्य से विश्व विद्यालय के नाम से जाने जाते हैं। आन्दोलन के दौरान पी.ए.सी. के जवान अपनी टिप्पणियों द्वारा स्थिति का जो आकलन और विश्लेषण प्रस्तुत करता है, वह शिक्षा और धरती के रिश्ते को उद्घाटित करने वाली है। जिसकी ओर धरती के रिश्ते को उद्घाटित करने वाली है। जिसकी ओर वस्तुत: स्वाधीनता के बाद इस लम्बे दौर में किसी का ध्यान ही नहीं गया, जबकि उसे समझाने के लिए किसी असाधारण मेघा और बुद्धि की ज़रूरत नहीं है। छात्र - आन्दोलन के केन्द्र में रखकरण लिखा गया यह पहला उपन्यास है।

भारत में छात्र आन्दोलन का संबंध भारत की युवा शक्ति से है। इस शक्ति का भारत में जितना तिरस्कार हुआ है इतना विश्व में अन्यत्र कहीं भी नहीं। इसे कभी भी अपनी भूमिका निभाने का अवसर नहीं मिला। जबकि यह तय है कि बड़े और क्रान्तिकारी परिवर्तन इसके हस्तक्षेप के बिना सम्भव नहीं है। विश्व भर के छात्र आन्दोलनों का अनुभव बताता है कि छात्र शक्ति जन साधारण से सम्बद्ध होकर ही सिद्ध हुई है। यह भी समाज की एक शक्ति है जो अपने मित्र शक्तियों के साथ मज़बूत होगी। आज के वैज्ञानिक युग में वर्ग विभाजन का आधार केवल आर्थिक आधार पर हो सकता है। जिन छात्रों को वर्तमान अर्थ व्यवस्था से लाभ है अर्थात जो छात्र सम्पन्न वर्गों में आते हैं उनका विरोध विकल्प के लिए सोच समझ कर नहीं केवल ख़ुद को लोकप्रिय बनाने के लिए है। जो छात्र इस अर्थ व्यवस्था के कारण असुरक्षित और असहाय है। वे निश्चित तौर पर विकल्प के लिए लड़ रहे हैं।

भारत का छात्र - समुदाय प्राय: अपनी जीविका स्वयं नहीं अर्जित करता और रोज़ी रोटी की चिन्ताओं से प्राय: मुक्त रहता है। अत: उसके द्वारा छेड़े गए आन्दोलन में संघर्ष का तीखापन नहीं आ सकता। ऐसा इसलिए है कि वामपंथी नेता भी न तो ग्रामीण जनता से कोई सम्पर्क कायम करते हैं। न ही देशी जनवादी साहित्य उनकी शिक्षा के लिए उपलब्ध है। शताब्दियों से भाग्यवाद और धार्मिक अंधविश्वासों के दल-दल में फँसे रहने का कारण देश के युवाओं की बौद्धिक पृष्ठभूमि चिन्तन के विषय तथा आन्दोलन की रणनीतियों में पर्याप्त अन्तर है। यही कारण है कि यहाँ के सभी युवा आन्दोलन असफल हो जाते हैं।

अपना मोर्चा पहला उपन्यास है जो युवा पीढ़ी के क्रोध को सच्ची और प्रखर अभिव्यक्ति देता है। इस उपन्यास में काशीनाथ सिंह देश की सारी गलाजत को उसकी जटिलताओं और कारणों के बेबाक ढंग से पाठक के सामने प्रकट कर देते हैं ताकि वह उस पर दृढ़ता से सोचे और उन्हें बदलने के प्रयास में संलग्न हो। इस उपन्यास के माध्यम से काशीनाथ सिंह से अपनी कटु अनुभूतियों को तीखे ढंग से व्यक्त करते हैं। वह शिक्षक समाज को कहते हैं। किताब के कीड़ों ! आख़िर आँखें खोल कर देखो तो सही, देखने की कोशिश तो करो कि यहाँ कैम्पस में, शहर में, देश में क्या हो रहा है? वह बख़्सते तो किसी को नहीं अध्यापक, छात्र - छात्राएँ, मध्यवर्गीय जन-समूह, पुलिस, प्रशासन और नेता सभी पर वह प्रहार करते हैं। "प्रोफेसरों की सभा बाहर कारों, स्कूटरों का जलसा है। अन्दर सूट और टाइयों की महफिल है। एक खूशबू..... लगातार ठहाके। सैकड़ों लड़के जेल में है। सैकड़ों अस्पताल में। रहे - सहे स्टेशन पर और यहाँ ठहाके। मेरे अगल-बगल बातें हो रही हैं..... साकेत कालोनी में कितने प्लाट बिकाऊ है ? इस सूट का कपड़ा कहा लिया था? यह पुलोवर बनवाया था या खरीदा है"1

एक तरफ छात्र आन्दोलनरत हैं वहीं दूसरी तरफ उनके अध्यापक पिकनिक की योजना बना रहे हैं। लड़कों ने उन्हें मौज और तफरीह का मौका दिया है तो उसका भरपूर उपयोग क्यों न किया जाय, अंग्रेजी के विरोध में लड़के गोली खा रहे हैं, अध्यापक महोदय अंग्रेजी भाषा विरोधी आन्दोलन पर लेख लिख कर सौ-डेढ़ सौ कमा लेने के चक्कर में है। उनमें गुफ्तगू चल रही है। "आप होश में तो हैं न मिस्टर आप सरकारी कर्मचारी हैं और सरकार के विरोध में वक्तव्य देने कह बात कर रहे हैं" उपन्यास का नायक "ज्वान" इस मनोवृत्ति पर टिप्पणी जड़ता है "डाक्टर ! माना कि तुम भी आदमी हो और मैं भी आदमी हूँ, तुम इस समय सात सौ रुपये के आदमी हो। अगर तुम्हारी डिग्रियाँ या सात सौ रुपयों निकाल कर तुम्हें बाहर कर दिया जाय तो कौन बीस पड़ेगा? तुम दो कौड़ी के हो जाओगे और मैं? फिर देखो पेशा एक साँचा होता है और मेरे तो इस पेशे या तुम्हारे विश्वविद्यालय में ज़्यादातर लूले-लंगड़े, ऐंचा, ताने, टेढ़े - बागुंच चश्मदीदी गवाहों जैसे ही लोग देखे हैं, जिन्हें देखकर लिहो लिहो करने की तबीयत होती है। सोचो अगर वे अध्यापक न होते तो क्या होते ?"2

मतलब यह कि विश्वविद्यालय - बेईमानी, घूसखोरी, धूर्तता, बनाने के हथकण्डे देने वालो, रौब, फैशन, चार सौ बीसी करना सिखाने के ऐसे विशाल कारखाने हैं, जहाँ भारतीय पिता अपने जहन्नुम और सिरदर्द लड़कों को भेज कर छुट्टी पा लेता है। दाने-दाने के मुहताज पर अनैतिक और भ्रष्ट तरीकों से रातो-रात मालामाल होने के लिए अपनी संतानों को यही भेजकर पैसा पैदा करने की डिग्रियाँ हासिल करवाते हैं। यहाँ आने के बाद ग्रामीण परिवेश के भोले-भाले युवक-युवतियाँ अपने आत्मीय संस्कारों परिवार और राष्ट्र के प्रति अपने दायित्व बोध से कटकर फैशन की दुनिया का शिकार बन जाने में देर नहीं लगती। भूसा, परती, खेत, धौंस और सेंकना के खूँटों की पहचान उनकी आँख से गायब होने लगती है। वह अपने कर्मों और पहचान से मुक्त हो कर कुलीन बनने लगते हैं। 'ज्वान' चौंकता है "क्या तुम भी वही होना चाहते हो जो ये हैं ? न भगवान के लिए ऐसा न करना तुम उन तवे और थालियों से, अपने माँ बाप से, उन खेतों से जो तुम्हारे खाली पेट हैं, उस देहरी से जो तुम्हारे घुटने हैं। हाँ यह सब ठीक है कि यह सब अच्छा है, लेकिन तुम ग़रीब हो। हम ग़रीब हैं, तुम प्यार तो करो लेकिन अपना हाथ अपनी ही जेब में रखो। याद रहे कि तुम वह कारतूस नहीं जो एक बार चल जाने के बाद खाली खोल सा रह जाए। भाई लम्बा रास्ता है और बहुत बार चलना है।"3

ज्वान की नज़र दूसरी ओर मुड़ती है जिस देश को लेकर इतने सारे लोग परेशान हैं उसके बाद में इन लड़कियों की भी कोई राय है कि नहीं। ये कक्षा में बैठकर लगातार क्यों लिखती रहती हैं। जाड़ा क्यों सबसे पहले विश्वविद्यालय के महिला महाविद्यालय में आता है ? और वहाँ भी सबसे पहले लड़कियों की उँगलियों पर उनकी उँगलियों के बीच कार्डिगन या स्वेटर बुनने की सलाइयाँ है। वैनिटी बैग में गोले और लच्छियाँ वे सड़क पर हो या कक्षा में हो या बाज़ार में गुलमोहन के बीच या दुकान में उँगलिया चल रही हैं हलो और एक मुस्कान - उँगलियाँ चल रही है सिरहाने या मेज पर फिल्म फेयर, 'फेमिना धर्मयुग, स्टार एण्ड स्टाइल पत्रिकाओं में कार्दिगन के ढेर सारे नमूने हैं, जबान पर फिल्मी सितारों के चर्चे हैं, बालों में बेला के फूलों का गजरा है सामने कोई 'ऐजी' या 'हाजी' है तब भी उँगलियों उनके या इनके या बाप के वेतन पर चल रही है। इन्हें देखकर ज्वान चिढ़े हुए बाप की तरह मन ही मन पुकारते हैं "हे बबुई, इन काजल - कटार नैनों और टिकोरी मार बैनों वाली आ। आख़िर क्या चाहती है? पढ़ना? फिर घंटे भर घास के तिनके क्यों चुगा रही है? और अव्वल तो यह कि वह पढ़ाई सिर्फ एक घर और वर के लिए? केवल यह जान लेने के लिए कि पन्त एक छायावादी कवि है या मसाला दोसा कैसे बनता है? या अर्थशास्त्र भौतिक सुख का विज्ञान है, आप में क्या फर्क आ जाता है।"4

ज्वान की आँखों का कैमरा अब छात्र नेताओं की ओर मुड़ता है, सामने कुर्ता जाकिट पहिने एक युवा खड़ा है। ज्वान दुलार से उसके बालों में हाथ फेरते हैं "भाई ख़ूब। क्या बढ़िया बोलते हैं। मगर एक बात है मित्र ! मैने तुम्हे लड़कों के बीच तो देखा ही है। शहर के सबसे बड़े आदमी की गाड़ी में बगल में भी देखा है शहर के सबसे महँगे कपड़ों में भी देखा है। यहाँ की सबसे ख़ूबसूरत के साथ सिनेमाहाल में भी देखा है। भैया में तो पागल हो जाऊँगा।"5

शहर के खाते पीते घरों के कांइया लड़कों की धूर्तता भी ज्वान की आँखों से छिपी नहीं है। छात्र सहायता कोश उनके लिए फोकट का माल है। जब मिल रहा है तो वे उसे क्यों छोड़ दें। हर चालाक लड़का ख़ुद अपना बाप होकर बाप की दस्तखत करके उसे औरों से प्रमाणित करा लेता है। लेकिन हिन्दुस्तानी छात्रों का

एक विशाल तबका ऐसा भी है जो संजीदगी से जानना और समझना चाहता है कि एक आदमी सारी जिन्दगी जी तोड़कर मेहनत करता है। फिर भी ग़रीब क्यों रहता है? जब खाने का इतना मौजूद है तो लोग भूखो क्यों मरते हैं? जब इतना ज्ञान इतना है तो लोग जाहिल और मूर्ख क्यों है? जिसे सुख कहते हैं वह क्या चीज़ है? यह कानून संविधान किसने बनाया है। पर जब यह इसका जवाब विश्वविद्यालय शिक्षा से नहीं पाता तो झुँझला उठता है और कहता है कि मेहरबानी करके वह पुकारते हैं माँ उनसे मुँह फेर लेती है, चाचा उन्हें लफंगा समझते हैं, पिता उन पर कान देते और खाली आँखों चरनी की ओर ताकते रहते है और पलकें भी उठाते हैं तो इस तरह कि अब क्या चाहिए ? उनके सामने प्रश्न है कि आख़िर ये लोग किसके और क्यों नाराज़ हैं? सामने पड़ने वाली किसी भी चीज़ - हल, बैल, चरनी, भैंस, गाय, हेंगा, पेड़, पगहा, खूंटा, जाड़ा, बादल, धूप, बेटी, हबू लड़का, हर चीज़ को लगातार क्यों गाली देते रहते हैं। उन्हें दिखाकर ठाँव-कुठाव अपना गुस्सा उतारते रहते हैं। निश्चय ही गुस्से के पीछे भूख है बेइज़्ज़ती है, अपमान है और शोषण है। और इन सबसे उपर इनके विपरीत आवाज़ न उठाने का अनुशासन है और ऐसी मानसिक स्थिति में उनके विश्वविद्यालयों में कहा जाता है। समीक्षा के मानदण्ड पर एक नातिदीर्घ निबन्ध लिखिए। उनसे कहा जाता है किताब पढ़िए। उनका उत्तर होता है। बीस साल से किताब ही तो पढ़ रहे हैं। उन्हें उपदेशित किया जाता है मुसीबतों से लड़ना सीखो। वे जवाब देते हैं इससे अनुशासन भंग होता है। उनसे कहा जाता है अनुशासन में रहो। उनका जवाब होता है बहुत रह चुके अनुशासन में। उनकी हालत ऐसी क्यों है? उनकी हालत ऐसी क्यों है? शायद इसलिए कि देश के लाखों करोड़ों लोगों की हालत ऐसी है।

000

संदर्भ -

1.अपना मोर्चा, काशीनाथ सिंह, पृ. 10, 2.वही, पृ. 11, 3.वही, पृ. 13, 4.वही, पृ. 13-14, 5.वही, पृ. 15

पुस्तक समीक्षा

(कविता संग्रह)

इतना तुम मय होकर

समीक्षक : सुशील पोद्दार

लेखक : स्नेह 'पीयूष'

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल - 9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

कविता का उद्देश्य क्या होता है ? शायद, रचनाकार द्वारा सामान्य जीवन में घटित घटनाओं और हालातों को लयबद्ध शब्दों में बाँधने की कला। बस इतना ही ? नहीं। यहाँ से इन लयबद्ध शब्दों में रचनाकार की बहुरंगी कल्पना का समावेश जो पाठक को कविता में निहित कवि के भावों को समझने में मदद करती है। उसे रोमांचित करती है, बार-बार पढ़ने के लिए और हर बार पढ़ने के बाद पाठक को कवि के भावों की परत-दर-परत झलक दिखती है।

कहा जाता है कि कविता को पढ़ाया नहीं जाता, उसे समझना होता है, वह जो कवि ने लिखा है और साथ-साथ वह भी जो वह लिखते-लिखते रह गया हो। स्नेह 'पीयूष' की लगभग अस्सी कविताओं का संग्रह, "इतना तुम मय होकर" को पढ़ते कुछ ऐसा ही एहसास हुआ। हर कविता में कवयित्री की अनुभूतियों को सच्चे और सादगी मन से पेश करने की कोशिश की गई है। जब वो "इतना तुम मय होकर" में लिखती हैं- तुम मेरे जीवन में नहीं, तुम ही मेरा जीवन हो; एक असीम समर्पण भाव से हमें अभिभूत कर जाती है। "फिर तुम्हारी प्रतीक्षा में लीन" में यह कहना कि- उतर जाओ! तुम चाँद बनकर, मेरे अंधेरे मन के आँगन में; हमें आशा की ज्योतिपूँज की अनुभूति होती है। या फिर, "तुम्हारी याद" के अंतिम छंद में लिखना- वर्षा और विरह का मिलाप, बदली बना बरसाए मुझे, प्रिय, विरह में निहित रोमांचकता की अनुभूति से रूबरू करा जाती है।

स्नेह 'पीयूष' ने "दो शब्द" में लिखा है- "अनुभूति में शब्द नहीं होता, पर हर अनुभूति में कविता होती है, हर कविता में छंद होता है और हर छंद में लय। जीवन की यही छोटी परिभाषा है। इसे जितना चाहो विस्तृत कर लो जितना चाहो संक्षिप्त कर लो। इन्हीं छोटी-छोटी अनुभूतियों ने कब मेरे हाथ में कलम थमा दी मुझे पता ही नहीं चला।" जीवन की यह परिभाषा सार्वभौमिक होती है। डॉ. कुमार विश्वास पुस्तक पर अपनी टिप्पणी में लिखते हैं- "इस पुस्तक में काव्य-शास्त्रीय शैली की सुपरिचित झलक के स्थान पर भावावेगों की एक विशिष्ट मनहर द्युति है और वह द्युति ही इस पुस्तक की आत्मा है। सृजनशीलता मनुष्यों को ईश्वर की ओर से मिली एक ऐसी शक्ति है जो बहुधा बहुत कम लोगों के जीवन में प्रकट हो पाती है। स्नेह सोनकर जी उन विशिष्ट लोगों में से एक हैं जिन्हें न सिर्फ़ यह शक्ति मिली है बल्कि उन्होंने अपने अध्ययन व अनुभूति की गहराई से उसे और संवर्धित भी किया है।" पुस्तक की हर कविता मुखर होकर इस बात का बयान करती है। इस पुस्तक को अवश्य पढ़ा जाना चाहिए।

000

सुशील पोद्दार

(शोध आलेख)

भारतीय साहित्य का एकता भाव

शोध लेखक : डॉ. मनोरमा मिश्रा
सहायक प्राध्यापक (हिन्दी विभाग)
मिहिर भोज पी.जी कॉलेज, दादरी

जब जब सौहार्द्र पर संकट आया, भारतीय साहित्य ने बख़ूबी अपना फ़र्ज़ निभाया। वैदिक साहित्य की ऋचाओं ने क्षेत्रवाद, जातिवाद, वर्गवाद की सीमाओं को चरमराकर तोड़ते हुए सर्वे भवन्तु सुखिनः....., आत्मवत् सर्वभूतेषु....., तथा 'वसुधैवव कुटुम्बकम्' जैसी वाणी से भारतीय साहित्य को दिशा दी। और यह दिशा निश्चय ही राष्ट्रीय एकता की तरफ जाती है। आगे भी महाकाव्यकालीन, सूत्रकालीन, बौद्धकालीन और पूर्वमध्यकालीन साहित्य का एक व्यापक हिस्सा समता, सद्भावना की स्थापना करता दिखता है। कहीं भक्ति की श्रद्धायुक्त भावभूमि पर यह कार्य सम्पन्न हुआ, कहीं दार्शनिक क्षितिज पर, तो कहीं क्रान्तिकारी विचारों के रण में समता और सद्भावना की ध्वजा लहराई। भारतीय साहित्य की यही सामान्य विशेषता उसे राष्ट्रीय एकता के सूत्रा में सूत्रबद्ध करती है।

भारत भूमि पर सत्ता विमर्श कुछ भी रहा हो पर भारतीय साहित्य का विमर्श प्रायः एकतावादी रहा है। भारतीय साहित्य में वे ही कवि जाने माने गए, जो सत्ता की घेराबंदी से बाहर थे या जिन्होंने इस घेराबंदी का बार-बार अतिक्रमण किया। बंगाल के चर्यागीतों के रचयिता, बंग्ला रामायणकार कृतिवास, चण्डीदास, मलाधर वसु (श्री कृष्णविजय) आदि किसी सत्ता प्रतिष्ठान से नहीं जुड़े थे। इसी तरह जहाँ असमिया में असम के तुलसी कहे जाने वाले 'कीर्तनघोष' के रचनाकार शंकरदेव से लेकर राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना के कवि लक्ष्मीकान्त बेजबरुआ तक ने सत्ता की घेराबंदी का अतिक्रमण किया, वहीं पूर्व में गुजराती साहित्य के भक्तिकालीन कवि नरसिंह, मीरा, और आखो जैसों ने कभी भी सत्ता और सम्प्रदाय की चौखट पर दस्तक नहीं दी। उत्तर भारत के संतों ने तो घोषणा ही कर दी कि संतन को कहा सीकरी सों काम।

सूदूर दक्षिण में आगस्त्य की अध्यक्षता में सम्पन्न संगम साहित्य सम्मेलन भी सत्ता का पिछलगुआ नहीं रहा। वहाँ कम्बन जैसे तमिल कवि कुलोप्लुंग तृतीय के दरबारी कार्य अवश्य थे लेकिन उनकी रामायण लोक विमर्श है, न कि सत्ता विमर्श। इधर हिन्दी में भी अमीर खुसरो और विद्यापति से लेकर सूर, कबीर, तुलसी-भारतेंदु और निरालादि प्रगतिवादियों तक का सत्ता की भाषा को छोड़कर जन भाषा की तरफ मुड़ना साहित्य को लोक विमर्श बनाना ही था। हिन्दी की प्रकृति तो भाषा और भाव-दोनों स्तरों पर अभेद वाली रहा है। कट्टरवाद हिन्दी की प्रकृति नहीं है। अमीर खुसरो सत्ता के कवि थे, लेकिन उन्होंने सत्ता की सीमा का हमेशा अतिक्रमण किया। जहाँ सत्ता भाषित स्तर पर भेद उत्पन्न कर रही थी, वहीं अमीर खुसरो अपनी रचना नूर सिपहर में भारतीय भाषाओं की सूची प्रस्तुत कर रहे थे, जिसे उन्होंने सम्मलित रूप से 'हिन्दवी' नाम दिया। यह सत्ता की सोच के विरुद्ध खुसरो की भाषित सहिष्णुता है। वह स्वयं को 'हिन्द का तूती' बतलाता है, सिर्फ दिल्ली और इसके आसपास का नहीं। यह लक्षित किया जा सकता है कि खुसरो के उक्त बयान में हिन्दनामा कितना ज़्यादा है तथा असम्प्रदायिकता का स्तर कितना मुखर है। देखिए- ''मैं इश्क का काफिर हूँ, मुझे मुसलमानों से कोई काम नहीं। मेरी हर रग जनेऊ का धागा है'' यद्यपि विद्यापति ने राज्याश्रय में काव्य लिखा था फिर भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उनके श्रृंगारिक पदों में उदात्तता है, जो राज्याश्रय के वावजूद लोक से उनके घने सम्पर्क की प्रकृति को स्थानिकता से मुक्ति देता है।

विद्यापति के सम्बन्ध में यह कहना उचित होगा कि जिस तरह अमीर खुसरो ने अरबी छोड़कर हिन्दी में कविता लिखाने का अझान व्यक्त किया था, उसी तररह विद्यापति ने भी कहा- 'देसिलवयना सब जन मिठ्ठा।' उत्तर भारत के कवियों ने स्थानीयता की दीवारें तोड़ते हुए सिर्फ हिन्दी क्षेत्र के ही नहीं, आसपास के भी शब्द भण्डार से अपनी हिन्दी को मिश्रित चरित्र दिया। उदाहरण के लिए अमीर खुसरो ने अपनी हिन्दी-उर्दू कविता में ब्रज की छौंक दी। कबीर भौजपुरी पृष्ठभूमि के थे, बनारसी ठसक से भरे थे पर उन्होंने किसी भारतीय भाषा के शब्द से परहेज नहीं किया। तुलसीदास यद्यपि संस्कृत पृष्ठभूमि के थे, पर उन्होंने अपनी कविता में फारसी शब्दों का बड़े आदर से इस्तेमाल किया- साहिब, ग़रीब निवाज, मसीत, गुलाम, मनसबदार, चाकर आदि

डॉ. मनोरमा मिश्रा
सहायक प्राध्यापक (हिन्दी विभाग)
मिहिर भोज पी.जी कॉलेज, दादरी
गौतम बुद्ध नगर, 203207, उत्तरप्रदेश

शब्दों का प्रयोग तुलसी के भाषित सद्भाव का प्रमाण है। वे भाषित विविधता की जनपदीय चौहद्धियाँ हर जगह तोड़ते है। भाषित छुआछूत तो क्या किसी भी तरह की छुआछूत का तुलसी के यहाँ कोई स्थान नहीं है। इस तरह किसी भी तरह के भेद को भारतीय साहित्य में कभी प्रात्साहन नहीं दिया साथ ही तमाम अभेदों को मिटाने के लिए भारतीय साहित्य ने सत्ता और शास्त्र दोनों का विरोध किया- सिर्फ कबीर ही नहीं कहते-पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, बल्कि जायसी भी लिखते हैं- पढ़ै बहुत पर नेह न जाना। यह भारतीय साहित्य की मानुष नेह की धरा थी-मानुष प्रेम भयउ वैकुण्ठी।

लेकिन इस अभेद की स्थापना में मध्यकाल में सबसे बड़ा रोड़ा था उत्तर भारत में हिन्दू-मुस्लिम सम्प्रदायवाद। इसीलिए हिन्दी पट्टी में हिन्दू-मुस्लिम एकता की बात ज़्यादा की गई। संतों और सूफियों ने यह सवाल तल्खी से उठाया- "अरे इन दोउन राह न पाई। हिन्दू कहे मोहि राम पियारा तुरक कटे रहिमाना। आवस में दोउ लरि मुथे मरम न काहू जाना।" मर्म वही प्रेम का था- "मानुष प्रेम भयउ वैकुण्ठी।" भूलना नहीं चाहिए कि कबीर जब हिन्दुओं और मुसलमानों की अज्ञानता की बात करते हैं, तो उनका आशय पंडित-धर्माचार्य और मुल्ला-इमाम से होता है, न कि आम हिन्दू मुसलमान से। कबीर की आवाज़ अवाम की आवाज़ थी। जिसकी तासीर प्रेम, सद्भाव और एकता कांक्षी थी।

सूफी भी संतों से पीछे नहीं थे। सूफियों ने ईश्वर को हृदय की गुफा में देखा मंदिर मस्जिद में नहीं। जायसी ने तो अरवरावट में हिन्दू और मुसलमान को एक ही वृक्ष की दो डार कहा- "बिरिछ एक लागी दुइ डारा।" आज कई जिस तरह हिन्दू कट्टरवाद से लड़ रहे हैं, उस जमाने में कई मुसलमान इस्लामी कट्टरवाद से लड़ रहे थे।

तुलसी पर वर्णाश्रम पोषण के कितने भी आरोप क्यों न लगें, पर सच यह है कि तुलसी ने अपने सम्पूर्ण साहित्य में साम्प्रदायिक वैमनस्य की एक भी उक्ति नहीं कही। तुलसी की असाम्प्रदायिकता का इससे बड़ा प्रमाण और क्या होगा कि एक जगह वे मस्जिद तक में सोने की कल्पना करते हैं, तो एक जगह इस देश को 'हिन्दू भूमि' न कहकर 'भक्ति भारत भूमि' कहते हैं। राजसत्ता को भी तुलसी ने कभी धर्म के आधार पर बाँटकर नहीं देखा। उन्होंने मुस्लिम बादशाह और हिन्दू राजाओं- दोनों की आलोचना की। यदि यवन महा महिपाल के राज्य में 'केवल दझउ कराल' देखा तो पंडितों और राजाओं की आलोचना करते हुए कहा- 'द्विज श्रुति वेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान नियम अनुशासन।'

इतना ही नहीं तमाम तत्कालीन और आज तक जीवित मुद्दों पर तुलसी भेद मिटाते हुए अभेद की स्थापना करते हैं। अगुनहि सगुनहि नहि कछु भेदा और भगतहि ज्ञानहि नहि कछु भेदा इत्यादि भेदो को मिटाते हुए घोषणा करते हैं- "रामहिं केवल प्रेम पियारा। जान लेहु जो जाननिहारा।।"

सूर तो और एक कदम आगे बढ़कर लैंगिक भेद से परे जाकर नारी को भी 'च्वाइस' का अधिकार देते हैं। सूर की गोपियाँ उद्धव से बहस ही नहीं करतीं वे अपनी 'च्वाइस' के लिए लड़ती भी हैं।

इस युग की एक अन्य साहित्यिक सुघटना का उल्लेख करना भी यहाँ अन्यावश्यक है। यह सुघटना थी पंजाब में 'गुरु ग्रन्थ साहिब' संकलन। यह राष्ट्रीय स्तर पर भारत की सांस्कृतिक एकता की एक अपूर्व सुघटना थी। गुरु ग्रन्थ साहिब गुरु अर्जुन देव द्वारा सन् 1604ई. में संकलितद्ध में भारत के विविध क्षेत्रों के संतों की वाणी का संकलन हुआ। इस ग्रन्थ ने क्षेत्रवाद और सम्प्रदायवाद के समस्त बंधन तोड़ दिए। इसमें कबीर, धन्ना, पीपा भी हैं। नामदेव और सूफी रोख फरीद भी हैं। चूँकि जो धर्म और साहित्य व्यापारियों द्वारा पनपाए जाते हैं, उनमें स्पेस अधिक होता हैं इसीलिए जैन धर्म की तरह सिख धर्म और उसके साहित्य में अधिक स्पेस देखने को मिला। एक सूफी संत द्वारा सिखों के पवित्र हरमिंदर साहब की नींव रखना इसका प्रमाण है। इस युग के साहित्य की राष्ट्रीय एकता का एक प्रमाण और देखिए- उत्तर भारत में भक्ति की एक लहर दक्षिण से आई और सूफी साधना की एक लहर उत्तर से दक्षिण गई। यह राष्ट्रीय एकता की सांस्कृतिक अन्तक्रिया का एक उदाहरण है।

इस तरह मध्यकाल के भक्ति आन्दोलन ने उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम-भारत के हर कोने में साम्प्रदायिकता को जबरदस्त चुनौती दी। संतो और सूफियों ने यह चुनौती खुलकर दी तो सूर तुलसी आदि ने साम्प्रदायिकता और अभेद के विरुद्ध मौन स्वीकृति दी।

लेकिन 17वीं सदी के मध्य तक इस सांस्कृतिक राष्ट्रवाद पर रीतिकालीन झुर्रियाँ पड़ने लगी। राध-कृष्ण कविताई और टका कमाई का साधन बन गए। ठाकुर ने तो घोषणा कर दी कि जो कविता टका अर्जन न करा सके 'ऐसी कविताई को बहाय दीजै पानी में। इसी टका अर्जन की चाह में साहित्य सत्ता से नाभि-नालबद्ध हो गया। और सत्ता की चाह थी- सेक्स। देव ने स्पष्ट कर दिया कि वाणी को सार बखान्यो सिंगार, सिंगार को सार किशोर-किशोरी। सत्ता (पुरुषसत्ता और राजसत्ता) की यह भूख ही कहीं स्त्री की विरह दशाओं में प्रक्षेपित हुई, तो कहीं उसकी कामुक दशा चित्रण में अपने उरोज़ प्रदर्शित करने वाली निर्जीव चीज़ बन गई। रीतिकालीन कवियों ने राधाकृष्ण का परम्परागत माडल तो नहीं छोड़ा, पर उसे सत्ता की मानसिकता से जोड़कर भदेस कर दिया।

लेकिन हिन्दी ने यह स्थिति ज़्यादा दिन बर्दाश्त नहीं की। भारतेंदु मण्डल ने पतनशील चौहद्धी को तोड़ दिया और पुन: साहित्य में राष्ट्रवाद की नींव रखी। जो द्विवेदी युगीन सांस्कृतिक अस्मिता, छायावादी स्वच्छन्दता और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद से होती हुई प्रगतिवादी साहित्य में शोषक वर्ग के प्रति विद्रोह और सामाजिक-आर्थिक साम्य की मंज़िल तक पहुँची। सत्ता प्रतिष्ठान और धर्म अधिष्ठान से जन्मा भेदाभेद और भदेस सेक्स पीछे छूट गया।

आधुनिक साहित्य पर गांधी जी के व्यक्तित्व और विचारधारा का भी व्यापक प्रभाव था। गांधी जी स्वाधीनता के लिए सूत की अवधारणा ही नहीं बुन रहे थे वल्कि स्वाधीनता के लिए नारी की पुरुष के बराबर

भूमिका चुन रहे थे। तभी तो साहित्य ने भी घोषणा कर दी कि- यद्यपि भारतीय समाज की संस्थान भेदभाव मूलक रही है, पर भारतीय साहित्य ने जाति, वर्ण, वर्ग और क्षेत्र मूलक भेद भाव को कभी महत्त्व नहीं दिया। यहाँ तक कि रीतिकालीन साहित्य ने भी अपनी तमाम सामाजिक उदासीनता के बावजूद इसे कभी पोषित नहीं किया। आधुनिक साहित्य ने भी इस खूबी को बखूबी निभाया। आधुनिक साहित्य की राष्ट्रवादी अवधारण ने इन परम्परागत बुराइयों- भेदभाव और साम्प्रदायिकता पर जमकर आघात किया। मंगल घट में जहाँ गुप्त जी लिखते हैं कि- 'राम, रहीम, बुद्ध, ईसा का सुलभ एक सा ध्यान यहाँ।' वहीं छायावाद का सांस्कृतिक नवजागरण 'भारति जय विजय करे' का उद्घोषण करता है। इस बीच जहाँ मधुशाला की समस्ती में गुनगुनाते और साम्प्रदायिकता को बच्चन चुनौती देते हैं। वहीं पंत की प्रकृति चेतना प्रकृति की तर्ज पर मनुष्य को स्वाधीनता और उत्तरदायित्व का पाठ पढ़ाती है।

इसके पश्चात् प्रगतिवादियों ने जहाँ बड़े ही ज़ोर शोर से क्रान्ति, स्वाधीनता और समानता का शंखनाद किया वहीं प्रयोगवादियों की भी अपनी सशक्त भूमिका थी। प्रयोगवादियों ने तमाम शिल्पगत् प्रयोग किए हों, पर मध्यवर्गीय मानव की मनोस्थितियों को उभार कर, उसे उसकी कुण्ठाओं से अवगत कराकर मानवता को परोक्ष रूप से प्रगति का रास्ता दिया।

कुल मिलाकर आधुनिक हिन्दी साहित्य का प्रमुख स्वर था- स्वाधीनता की चेतना, समानता की भावना और रूढ़ियों, अंधविश्वासों एवं जड़ धार्मिक मान्यताओं से मुक्ति की कामना। इस स्वर को सम्मिलित रूप से नवजागरण कहा गया, जो हिन्दी ही नहीं समस्त भारतीय भाषाओं के साहित्य में समान रूप से व्याप्त मिलता है। स्वाधीनता के पश्चात् का समसामयिक साहित्य तो एकताघाती साम्प्रदायिकता के विरुद्ध और भी मुखर दिखता हैं कारण यह कि स्वाधीनता के पश्चात् साम्प्रदायिक वैमनस्य भारतीय समाज में बद से बदरंग होता गया। नोवाखोली, पंजाब से लेकर अयोध्या, गोधरा गुजरात की विभत्स साम्प्रदायिक हिंसाएँ इसका प्रमाण हैं इन साम्प्रदायिक हिंसओं की आग पर भारतीय राजनीति ने ख़ूब रोटियाँ सेंकी। राम और रहीम के नाम पर उड़ने वाले राजनैतिक गिद्धों ने गांधी की ख़ूब बोटियाँ नोंची। ऐसी दशा में भारतीय साहित्य ने अपने उत्तरदायित्व को बखूबी निभाया। मुक्तिबोध ने जहाँ 'अंधेरे में' ही सही सत्ता के फासिस्टवादी चरित्र को ख़ूब उजागर किया, वहीं भीष्म साहनी ने 'तमस' के तम में तिमिराच्छन्न कोठरी से सत्ता की साम्प्रदायिक साजिश का पर्दाफाश किया। राही मासूम रजा 'टोपी शुक्ला' और आध गाँव जैसे उपन्यासों में साम्प्रदायिक विष के व्यापारियों को बेपर्दा ही नहीं करते, साम्प्रदायिक विष के वायरस के जीनोटाइप को भी अनावृत करते हैं। प्रो. शंभुनाथ लिखते है कि रजा का आध गाँव साम्प्रदायिकता के ख़िलाफ़ एक ऐसा सृजनात्मक प्रहार है, जो दुनिया में कहीं भी राष्ट्रीयता के हक में जाता है।

साम्प्रदायिकता सिर्फ राजनीति और सत्ता का ही औजार नहीं है वल्कि पूँजीवादी व्यवस्था का भी हथियार है। भैरव प्रसाद गुप्त अपने उपन्यास सती मैया का चौरा में इसी कटु तथ्य को उजागर करते हैं। क्या तुमने कभी हिन्दू मजूर को मुस्लिम मजूर से लड़ते देखा है? 'सतीमैया का चौरा' में उठाये गए ऐसे प्रश्न पूँजीवाद के साम्प्रदायिक चरित्र को उजागर करते हैं। इससे और आगे बढ़कर मुक्तिबोध की रचना चाँद का मुँह टेढ़ा है पूँजीवाद और औद्योगीकरण के बद्चरित्र को पूरी तरह बेपर्दा करती है।

इस तरह आम आदमी के प्रति अपने सामाजिक उत्तरदायित्व को निभाने वाला भारतीय साहित्य का चरित्र आज भी बरकरार है क्योंकि राजनीति की चमड़ी में जातिवाद, वर्गवाद, धर्मवाद और पूँजीवाद से पोषित साम्प्रदायिकता का वायरस आज भी मरा नहीं है। गुजरात और गोधरा के जख्म अब भी हरे हैं, राजनेता आज भी मानवता के कटघरे में खड़े हैं, तब 'जाबिर हुसैन' द्वारा संकलित 26 कवियों-शायरों का सद्य: प्रकाशित हिन्दी संस्करण 'दीबार-ए-शब' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो जाता है, जो भारतीय साहित्य के ज़िम्मेवार चरित्र को उजागर करता है। इस संग्रह में जहाँ 'नौमन शौक' की पंक्तियाँ- 'मैं नहीं चाहता। मेरी चीख को शायरी जानकर। कद्रदानों के मजमे में ताली बजे 'साम्प्रदायिक दंश के दर्द को बयाँ करती हैं, तो वहीं 'जाबिर हुसैन' की पंक्तियाँ 'इंसानियत के दुश्मनों को ख़त्म कर देना चाहती हैं'।

शीन अख्तर की कविता 'एजाज' का मिजाज़ तो पूरी तरह साम्प्रदायिक सौहार्द्र और विश्वास कायम करने का है। वे इस कविता में याद करते हैं कि कैसे एक हिन्दू नारी ने अपने मुस्लिम दोस्त को बचाने में अपनी जान दे दी। और फजल इमाम मल्लिक को तो विश्वास ही नहीं होता कि 'गुजरात में हिन्दुओं ने। मुसलमानों का कत्ल किया।' वे अपने दफ्तर के सब लोगों से हमारा परिचय कराते हुए कहते हैं कि- ''हिन्दुओं ने अगर मुसलमानों का गला काटा हो तो इतने ढेर सारे हिन्दुओं में मैं अकेला मुसलमान बचा कैसे रहता।''

इस तरह हम देखते हैं कि समसामयिक, भारतीय साहित्य तो निजी स्वार्थों के लिए धर्म और सत्ता का इस्तेमाल करने वाले मानवता भक्षियों (सत्ताधरियों, धर्माधिकारियों एवं पूँजीवादियों) को बेधड़क होकर बेनकाब करता है।

कुल मिलाकर भारतीय साहित्य ने हमेशा सौहार्द्र, सद्भाव, समानता एवं एकता का समाज में संचार किया। अत: निर्भीक होकर मानवता के प्रति अपनी ज़िम्मेवारी का निर्वाह करना ही भारतीय साहित्य का प्रमुख चरित्र है।

यद्यपि अरमान नज्मी एक शेर में लिखते हैं- ''ख़त्म करो टूटते रिश्तों का अलमनाक सफर ऐ खुदा भेज कोई राह दिखाने वाला'' (शोलों का हिसार) पर, इन साहित्यकारों नें ख़ुद से ही जो राह दिखाई, वह वैमनस्य, भेदभाव और अंध्विश्वास के तिमिर को चीरती सौहार्द्र, सद्भाव, एकता, समानता और बन्धुत्व की राह है, जो विश्व साहित्य का भारतीय 'शान्ति पथ' है।

000

(शोध आलेख)

शरद सिंह के कथा-साहित्य में स्त्री की राजनीतिक स्थिति

शोध लेखक : ज्योति
शोधार्थी, पीएच.डी (हिन्दी)
महर्शि दयानन्द विश्वविद्यालय,
रोहतक, हरियाणा

ज्योति
सुपुत्री - श्री जोगेन्द्र सिंह
मकान नं.-610, नजदीक पुराना शिव मंदिर, गांव- गोच्छी, तहसील- बेरी, जिला-झज्जर, हरियाणा 124107
मोबाइल- 9355681699
ईमेल- jyoti.ahlawat92@gmail.com

राजनीति शब्द राज और नीति दो शब्दों के मेल से बना है। राज से राज्य और नीति से नियम का अर्थ लगाया जाता है। किसी भी राज्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए और जो नीतियाँ बनाई जाती हैं वे सब राजनीति के अंतर्गत आती हैं। नीति शब्द नम् धातु से बना है जिसका अर्थ ले जाना। नीति शब्द का अर्थ हुआ- वह नियम जो आगे ले जाता है। मनुष्य के पारस्परिक व्यवहार व नियम को ही नीति कहते हैं। राजनीति का अर्थ है, "राज्य से संबंधित वह नियम जो राज्य को उन्नति की ओर ले जाए। राज्य का संबंध किसी न किसी समाज अथवा अनेक समाजों से अवश्य होता है और इसीलिए राजनीति के समाज अथवा समाजों को उन्नति के मार्ग पर ले जाने वाली विद्या का नाम है।"1

राजनीति के लिए अंग्रेजी में पॉलिटिक्स शब्द का प्रयोग किया जाता है। जो ग्रीक शब्द पोलिस से बना है, जिसका अर्थ- राज्य या नगर है। वर्तमान राज्यों के समान प्राचीन यूनान में लघु आकार के नगर या राज्य होते थे। राज को चलाने के लिए राजा जो नीति बनाता है उसे ही राजनीति की संज्ञा दी जाती है। संस्कृत हिन्दी शब्दकोश के अनुसार, "राज शब्द का पहला अर्थ तो चमकना, जगमगाना, शानदार या सुंदर प्रतीत होने से लिया गया है। दूसरा शब्द हुकूमत करना, शासन करन, उज्ज्वल करना, करना अर्थ, तीसरा अर्थ राजा या सरदार या युवराज आदि से लिया है।"2 इसी प्रकार से नीति शब्द संस्कृत की 'नी धातु में क्तिन' प्रत्यय के योग से बना है, जिसका अर्थ है- निर्देशन, दिग्दर्शन प्रबंध आदि। इसका दूसरा अर्थ आचरण, शीलनता, व्यवहार कार्यक्रम आदि से लिया गया है। ये शब्द राजनीति विशारद हैं।"3

इस प्रकार से राजनीति वह पद्धति है जिसके द्वारा राज्य का शासन चलाया जाता है। राजनीति राज्य द्वारा बनाई गई नीति से संबंधित है। राजनीति कूटनीति है, जिसमें गुटों एवं वर्गों का स्पर्धापूर्वक व्यवहार होता है। किसी भी देश की उन्नति एवं विकास उस देश की राजनीति पर निर्भर करता है। देश के राजनेता यदि निष्ठावान, कर्मठ, ईमानदार हैं तो वह देश उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होता रहता है। यदि नेता स्वार्थी और भ्रष्ट हैं तो उस देश की दशा ख़राब हो जाती है। साहित्य में राजनीति के प्रश्न वर्तमान युग में सर्वाधिक देखने को मिलते हैं। राजनीति और साहित्य वर्तमान युग में अन्योन्याश्रित हो गए हैं। साहित्य में राजनीति से अभिप्राय "किसी राजनीतिक व्यक्ति, दल अथवा वाद को अपनाने मात्र से नहीं है। साहित्य में राजनीति विचारधारा के रूप में स्थान बनाती है। विचारधारा का अर्थ प्रचार बाज़ी करना या घोषणा-पत्र बनाना नहीं है

अपितु लेखक उसमें नवीन अर्थ भरते हुए उसे नया रूप और आयाम प्रदान करता है।

वर्तमान समय में राजनीतिक क्षेत्र में स्त्रियों की भागीदारी नहीं के बराबर है। हमारे देश में स्त्रियाँ राजनीति में अपने अस्तित्व को बनाए रखने हेतु सदैव प्रयत्नशील रही हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के अनेक वर्षों के पश्चात् भी भारतीय राजनीति में महिलाओं की भागीदारी बहुत कम बनी हुई है वे अपने लिए राजनीति में 33 प्रतिशत आरक्षण की माँग लंबे समय से कर रही हैं। इसके लिए उन्होंने गली-मुहल्लों से लेकर संसद तक अपनी इस माँग को उठाया है लेकिन पुरुषों की कुत्सित मानसिकता एवं दोहरी सोच व वर्चस्व के कारण ऐसा संभव नहीं हो पाया। यह तथ्य भी उबरकर हमारे सामने आया है कि महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण देने के बिल को सामने रखते ही दुर्व्यवहार की घटनाएँ सामने आती हैं। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में समाज का अध्ययन करते हुए अल्पना पटेल लिखती हैं, "मेरी धारणा है कि स्त्री दलित है, शोषित है, पीड़ित है, मैं उस दिन अपनी धारणा अवश्य परिवर्तन कर लूँगी जिस दिन हमारे प्रजातंत्र में लोक सभा के आधे सदस्य स्त्रियाँ होंगी यानी कानून बनाने में निर्णायक भूमिका में होंगी। कम से कम कानून का नियंता पुरुष नहीं होगा।"4

सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया में महिलाओं के राजनीति दखल बढ़ने के साथ-साथ महिलाओं की पहचान के मानक भी बदले हैं। वर्तमान समय में औरत से पहचान के जो मानक प्रचलन में हैं वह स्वतंत्रता के आरंभिक वर्षों में नहीं थे, यहाँ तक कि बीसवीं सदी के अंतिम दशक में भी उतने समृद्ध नहीं थे जितने कि इस इक्कीसवीं सदी के आरंभिक दशकों में दिखाई दे रहे हैं। फिर भी यह तो याद रखना ही होगा कि स्त्रियों का राजनीतिक सफ़र कहाँ और किन कठिनाईयों के साथ शुरू हुआ है। भारतीय राजनीति में सबसे पहला सफल उदाहरण ऐनी बेसेन्ट का है। वे 1914 से राजनीति में आई। सन् 1917 में प्रथम महिला संघ की स्थापना भी गई। 1920-30 के बीच इस संस्था द्वारा अनेक शाखाएँ खोली गई जिसकी मदद से स्त्रियों के सामाजिक, राजनीतिक जीवन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। 1990 में भारतीय विधानसभाओं में 80 महिलाएँ प्रतिनिधित्व कर रही थीं। उमा भारती, वसुंधरा राजे, शीला दीक्षित, मायावती, ममता बनर्जी, जयललिता आदि के नाम प्रमुख रूप से मुख्यमंत्री के रूप में लिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त सुषमा स्वराज, निर्मला सितारमण, समृति ईरानी आदि वर्तमान समय में महत्त्वपूर्ण पदों पर मंत्री के रूप में कार्यभार सँभाल रही हैं। इंदिरा गांधी, प्रतिभा देवी सिंह पाटिल व द्रोपदी मुर्मु तो क्रमश: देश के प्रधानमंत्री व राष्ट्रपति तक के पद पर विराज चुकी हैं और विराज रही हैं।

कथाकार शरद सिंह की स्त्रियाँ राजनीतिक दृष्टि से अधिक जागरूक नहीं हैं। इनकी कहानी 'बाबा फरीद अब नहीं आते' एक ऐसी स्त्री की है, जो राजनीति में शामिल नहीं होना चाहती, उसे राजनीति के बारे में कुछ ज्ञान नहीं है फिर भी चौधरी और उसका पति हलकू आरक्षित सीट होने के कारण कुसुमा को जबरन चुनाव में खड़ा कर देते हैं। परंतु शर्मीली कुसुमा देश के बड़े-बड़े नेताओं का नाम ठीक से नहीं बोल पाती है। इस पर चौधरी जी ने उसे बुरी तरह झिड़कते हुए कहता है, "तू तो नाक कटवा देगा... काहे बिसाहू हुजेई तुमाई उम्मीदवार है। का जीत हे और का बनहे, ससुरी। गाली सुनकर उसकी आँखों से आँसू बह गये। कुसुमा ने साफ-साफ कह दिया था कि मोसे न हो जे सब तोम कर ले।"5 सच तो यह था कि कुसुमा का पति हल्कू स्वयं चुनाव में खड़ा होना चाहता था। अपने इसी उद्देश्य पूर्ति हेतु वह चौधरी के पास गया था क्योंकि हल्कू यह बात अच्छे से जानता था कि चौधरी का हाथ जिसके सिर पर पड़ जाएगा वह नाव किनारे से लगे बिना नहीं रह पाएगी लेकिन चौधरी से हल्कू को पता चलता है कि इस बार महिला के लिए सीट आरक्षित हैं। हल्कू चौधरी के सामने गिड़गिड़ाते हुए कहता है आप चाहें तो क्या नहीं कर सकते बिसाहू ने हल्कू की सिफारिश करते हुए कहा, "हुजूर हल्कू नहीं तो इसकी घरवाली को ही दिला दीजिए। तर जायगा बेचारा अपना ही आदमी है, हुजूर। पहले भी काफी किया है। इसने हुजूर के लिए।"6

अधिकतर तीस साल की कुसुमबाई को टिकट मिल गई और वह पंचायत की सदस्य बन ही गई। कुसुमा पंचायत सदस्य बनकर ख़ुश थी परंतु ये खुशी जल्दी ही ख़त्म हो गई। क्योंकि कुसुमा को बहुत जल्दी यह बात ज्ञात हो गई थी कि वह सिर्फ नाम की सरपंच बनी है। असली सत्ता तो उसका पति हल्कू और चौधरी के हाथों थीं।

जबलपुर क्षेत्र की कथा पर आधारित 'पिछले पन्ने की औरत' नामक उपन्यास में दुर्भाग्य से समाप्त हुए 1797 से 1817 ई. के काल के भोंसले, प्रशासन की समाप्ति को दर्शाता है। अंग्रेजों के आगमन से साम्राज्य का समापन हुआ था। जबलपुर क्षेत्र आगे चलकर मध्यप्रांत का एक अभिन्न हिस्सा बन गया। इस क्षेत्र की दयनीय दशा का वर्णन करते हुए चार्ल्स ग्रॉंट ने लिखा है, "लोगों से उनके घर और घर न होने की स्थिति में उनकी अस्थायी झुग्गी-झोंपड़ी पर भी कर वसूला जाता था... जुलाहे, तेली, मछुआरे आदि निम्न वर्ग के लोगों को विशेश प्रकार के कर का भार वहन करना पड़ता था।"7 सरकार द्वारा चलाई जाने वाली संस्थाओं द्वारा प्रदत्त योजनाओं से बेड़िया आदिवासी समाज कोसों दूर था। बेड़ियों और सामाजिक कार्यकर्त्ताओं के मध्य सदैव संदेह की स्थिति रहती थी। दोनों एक-दूसरे को दोषी ठहराते हैं। ग्राम पथरिया की कुछ बेड़िया औरतें खुलकर चंपा बहन पर आरोप भी लगाती हैं। इमरत देवी के शब्दों में लगभग सभी बेड़िया औरतों की आंतरिक पीड़ा का निचोड़ है। जिसमें आश्रम के प्रति रोष भी शामिल हैं। "हम ओरने खो तो सबई ठगत रैव हैं, बे आशरम वारे... हमने सोसी रई के बे और हमार लाने कछु करहे, लेकन बे चंपाबाई हमई कोन सुनत है।"8

राजनीतिक परिस्थितियाँ जब समाज की बंदिशों को पार कर परिवार के माध्य में सेंध लगाती है तो जीवन के लिए घातक बन जाती है। 'पंचकौड़ी' उपन्यास में लेखिका ने यही चित्रित किया है कि राजनीति किस प्रकार पारिवारिक संबंधों को प्रभावित करती है।

उपन्यास के पात्र दलपत भैया व ठकुराइन पति-पत्नी हैं। 'दलपत भैया एक विधायक हैं। वे राजनीति में इस तरह आकण्ठ डूबे रहते हैं कि घर-गृहस्थी की तरफ ध्यान ही नहीं रहता है। दलपत के इस व्यवहार से वसुंधरा व्यथित हो जाती है। राजनीति में डूबे रहने के लिए दलपत ठकुराइन को समय नहीं दे पाता। साली की गोद-भराई मे भी दलपत ठकुराइन के साथ नहीं जाता क्योंकि वह चुनाव के दौरान व्यस्त रहता है। इसी कारण वह चेतन को ठकुराइन के साथ जाने के लिए कहता है, जब चेतन ठकुराइन को यह बताता है कि भैया जी को किसी आवश्यक कार्य से बाहर जाना पड़ गया और वे ठकुराइन के साथ नहीं चलेंगे तो ठकुराइन गुस्से में भरकर कहने लगी यह बात तो स्वयं आकर भी तो कह सकते थे। दलपत की अपनी पत्नी से दूरी व दिन-प्रतिदिन की बढ़ती व्यस्त दिनचर्या ने उनके दांपत्य जीवन को प्रभावित करते हुए उनके संबंधों को नीरसता से भर दिया। दलपत जब ठकुराइन को समय नहीं दे पाता है तो ठकुराइन का अकेलापन इस हद तक बढ़ जाता है कि वह चेतन जैसे भैयाजी के एक मामूली से नौकर के साथ अवैध संबंध स्थापित करती है।

चेतन और ठकुराइन का लगाव तब बढ़ा जब चेतन ठकुराइन को उनकी बहन के यहाँ ले गया। मार्ग में चेतन ने ठकुराइन को ऐसी अनेक वस्तुओं का सेवन करवाया जो ठकुराइन ने पहले कभी नहीं खाई थी। चेतन के साथ धीरे-धीरे ठकुराइन का लगाव बढ़ता जा रहा था। "कोठी तमाम नाते-रिश्तेदारों से भरी थी चारों ओर शोर-शराबा और गहमा-गहमी थी। इस हंगामे में भी ठकुराइन की आँखें पता नहीं क्यों चेतन को ढूँढ़ती रही। जब वे सज-धज कर तैयार हुई उस समय...चेतन एक अदद करिंदा था, सेवक था, वह कोठी के उस हिस्से में कैसे आ सकता था।"9 इस प्रकार से दलपत का राजनैतिक जीवन उसके पारिवारिक जीवन को खोखला कर देता है जो खालीपन, अकेलापन, संबंधों में नीरसता थी उसे ठकुराइन चेतन से संबंध बनाकर पूर्ण करने का प्रयास करती है। ठकुराइन को डर भी था कि कहीं ठाकुर को इन सबके बारे में पता लग गया तो क्या होगा। फिर वह मन ही मन विचार करते हुए पंचकौड़ी के सामने अपने जीवन के गोपन को खोलकर रख देती है।

बीसवीं सदी के अंत में ग्रामीण अंचलों में महिला सरपंचों एवं पंचायत सदस्यों की बड़ी संख्या उभर कर सामने आई। ये आँकड़े बड़े सुखद थे, जबकि इस सुख के भीतर मौजूद दु:ख यह था कि इसमें से अधिकतर वे औरतें थी जिन्हें राजनीति अथवा सामाजिक विकास से कोई लेना देना नहीं था। वे तो मात्र इसलिए चुनाव में खड़ी हुई क्योंकि उनके पतियों को चुनाव लड़ने का अवसर नहीं दिया जा रहा था। इस प्रकार वे राजनीति में उतरी हुई औरतें नहीं अपितु पुरुषों की शक्ति संपन्नता की चाहत का विकल्प मात्र थी। उनकी स्वयं की पहचान एक स्वतंत्र अस्तित्व वाली औरत के रूप में नहीं बल्कि फलां की बहू फलां की पत्नी के रूप में थी। उनमें से कई औरतों के नाम के साथ पति के नाम का प्रयोग उपनाम के रूप में किया गया। जिससे उन्हें इसलिए मत देकर विजयी बनाया जाए कि वह औरत एक चर्चित पुरुष की पत्नी है अर्थात उस स्त्री की अपनी कोई पहचान नहीं है। अपनी कोई प्रतिष्ठा नहीं है।

लेखिका बेडिया समाज की स्त्रियों की राजनीति में भागीदारी पर लिखती हैं, "चंदा बेड़नी ने सरपंच का चुनाव लड़ा, वह विजयी हुई। वह नाचना-गाना छोड़कर देह-व्यापार त्यागकर राजनीति में आई थी, किंतु बेड़नियों का भाग्य वह नहीं बदल पाई। पुरुष प्रधान व्यवस्था में उसकी हैसियत एक बेड़नी की ही रही। वह न तो हबला की बेड़नियो के लिए आदर्श प्रस्तुत कर सकी और न पथरिया की बेड़नियों का मार्गप्रशस्त कर पाई। वह राजनीतिक विकास के पन्नों के मुख्य पृष्ठों पर कभी नहीं आ पाई अर्थात् उसे आने नहीं दिया गया। उसका 'स्व' उसका 'स्वमोह' उसका 'अहम' उसका इद, उसका व्यक्तित्व उसकी वासना रचनात्मकता की सीमा तक नहीं पहुँच पाई। वह मनोविकारों की प्रथम पंक्ति से जूझती रही।"10 उसके राई नृत्य को करना भले ही छोड़ दिया हो किंतु उसे प्रोत्साहित करने वाले पुरुषों ने उसे अपने संकेतों पर नाचने के लिए ही साँचे में ढाल लिया था।

विमला और जानकी दोनों ही जनपद सदस्य हैं और दोनों ही बेड़िया समुदाय की औरतें हैं। जब लेखिका इन दोनों से मिली और उन्होंने इनसे इस बारे में पूछा तो वे रटा- रटाया सा जवाब देते हुए कहती हैं, "हम तो इसलिए राजनीति में आई हैं कि अपने समुदाय का भला कर सके।"11 जबकि वो अपने समुदाय का भला कैसे करेगी। इस बात का भी उन्हे ज्ञान नहीं था क्योंकि वे अशिक्षित थी और संविधान का उन्हें कोई ज्ञान नहीं था उन्हे जो कुछ पुरुश सिखा देते हैं वह उसी का अनुसरण करती है। उसी को समझा रटकर, दोहराकर वे अपना काम लिया करती है और करें भी तो क्या करें क्योंकि औपचारिक शिक्षा की सीढ़ी उनके घर बस, कागजों में आई।

इस प्रकार से शरद सिंह ने अपने कथा-साहित्य में भारतीय राजनीति में पुरुष राजनेता अपनी पत्नी को अपनी सफलता का साधन बनाकर इस्तेमाल करते हैं। भारत में अधिकांश स्त्री, राजनेता स्वयं की इच्छा से राजनीति में नहीं आती अपितु अपने पति की राजनीति को चमकाने अर्थात् पति को सत्ता में लाने के लिए आती है। यदि अपनी इच्छा से भी कोई स्त्री संघर्ष कर अपनी राजनीति को चमकाना चाहती है तो उसके मार्ग में पुरुष प्रधान मानसिकता बाधक बनती है।

000

संदर्भ - 1. शिवराम आप्टे, संस्कृत-हिन्दी शब्द कोश, पृ0 851, 2. वही, पृ0, 550, 3. कुंवरपाल सिंह, मार्क्सवादी सौंदर्य और हिन्दी कथा-साहित्य, पृ0, 41, 4. कल्पना पटेल, मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों मे अभिव्यक्त समाज, पृ0, 117, 5. शरद सिंह, बाबा फरीद अब नहीं आते, पृ0, 70, 6. वही, पृ0, 71, 7. शरद सिंह, पिछले पन्ने की औरतें, पृ0, 72, 8 वही, पृ0, 218, 9. डॉ. महीप सिंह, सचेतन कहानी:रचना और विचार, पृ0, 12, 10. अमृतराय, आधुनिक भावबोध की कविताएँ, पृ0, 105, 11. शरद सिंह, पिछले पन्ने की औरतें, पृ0, 260

(शोध आलेख)

मातृत्व संवेदना से ओत-प्रोतः यमदीप

शोध लेखक : बबीता शोधार्थी,
हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

बबीता
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

नीरजा माधव द्वारा रचित उपन्यास 'यमदीप' किन्नर विमर्श के साथ स्त्री के मातृत्व की संवेदनशील अभिव्यक्ति है। यह मातृत्व अपनी कोखजाई बच्चे के प्रति नहीं बल्कि एक पागल स्त्री की कोखजाई बच्ची के प्रति है। उपन्यास के केन्द्र में मानवी का पूरा का पूरा स्त्री विमर्श है। ''अपनी अस्मिता और स्वीकार के लिए एक अंतहीन जिजीविषा लिए। आदर्श भारतीय स्त्रीत्व-गरिमा की राह से एक पग भी लड़खडाए बिना। पितृसत्ता के सह-अस्तित्व को बिना नकारे, अपने अस्तित्व के लिए पूर्णतया चैतन्य। स्त्री के संघर्षों और जुझारूपन को तथा कथित नारी-मुक्ति आंदोलन की आयातित दृष्टि से नहीं, बल्कि अपने बौद्धिक और तार्किक दृष्टिकोण से जाँचती-परखती, पर सहानुभूति के स्थान पर स्वानुभूति से तथ्यों तक पहुँचने के बाद ही कोई निर्णय लेती हुई। 'सोना' हमारी समस्या है। पितृसत्ता की निरंकुश लिप्सा का परिणाम है और जब मानवी नाजबीबी और छैलू की संवदनाओं के निकष पर अपने पूरे समाज को परखती है तो खोट स्पष्ट हो उठता है। परखने का यह सिलसिला उपन्यास के आरंभ से ही पाठक के हृदय में भी शुरू हो जाता हो जाता है।'' 1

प्रस्तुत उपन्यास में नाजबीबी के मातृत्व की संवेदनशील कहानी के साथ सोना के जन्म से लेकर उसके साथ किन्नर नाजबीबी के रहने तक का संघर्ष भी रेखांकित करता है। लेखिका द्वारा ''मानवी का संघर्ष भारतीय संस्कृति का संघर्ष मूल्यों और परंपराओं का संघर्ष है। उसका टूटना स्त्री-जाति का टूटना है और स्त्री की टूटन में संस्कृति और मूल्यों के ढह जाने का खतरा है। स्त्री-पुरुष की परिधि से बाहर निकलकर बाबूजी, छोटे भाई और आनंद में छिपे अपने प्रति स्नेहिल दायित्व-बोध से परिपूर्ण एक पृथक पुरुष-समाज को भी देखती है वह और तब महसूस करती है कि आख़िर नारी मुक्त किससे होना चाहती है? और क्यों? नि:संदेह मुक्त होना है नारी को, पर यह मुक्ति अपने अंदर की संकीर्णता, अशिक्षा और अपने शोषण से है। संपूर्ण पुरुष-समाज शोषण के लिए जिम्मेदार नहीं है। कुछ लोग, कुछ कुत्सित मानसिकता के साथ इस कृत्य से जुड़े है। स्त्री को उन्हे चिन्हित करना है आरे क्रांति का बिगुल बजाना है।''2

इस उपन्यास के पात्र विशेष रूप से महताब गुरू, नाजबीबी, छैलू बिहारी, सोना, मानवी आदि है। नाजबीबी उर्फ नंदरानी उपन्यास की नायिका है। जब नाजबीबी का जन्म हुआ तब से घरवाले परेशान हैं क्योंकि बच्चा किन्नर है। नाजबीबी का बचपन उसके भाई-बहन के साथ माता पिता की छत्रछाया में हँसी-खुशी बीतता है। इसकी माँ उससे बहुत प्यार करती है। वह पढ़ाई में तेज़ थी। नंदरानी के माता-पिता उसे अपने पास रखना चाहते हैं। उसकी माता नंदरानी को पढ़ा-लिखाकर उसे अपने पैरों पर खड़ा करना चाहती थी। लेकिन बचपन समाप्त होते ही

ईश्वर ने उन्हें जिस रूप में संसार में भेजा था वही विकसित होने लगता है। उसका वर्णन लेखिका इन शब्दों में करती है- "परंतु बाकी सब ठीक नहीं था। कक्षा आठ में पहुँचते-पहुँचते उसके अन्य स्त्रियोचित अंगों के उभार और विकास के साथ ही चेहरे पर श्याम वर्ण रोएँ भी उभरने लगे थे। सब कुछ छिपाकर सामान्य जीवन जी सकने की उसकी और माता-पिता की कल्पना चकनाचूर होने लगी थी।"3 यह सब शारीरिक बदलाव देखकर घर के सदस्य नंदरानी को कहते हैं कि "तुम कैसी चलती हो, हम लोगों की तरह चलो-कहीं हिजड़े देख लेंगे तो तुम्हें भी वही समझ बैठेंगे।"4

नंदरानी महसूस करती है कि उसके शरीर का विज्ञान ही नंदिनी दीदी के विवाह में बाधक बनता है। कभी-कभी वह अपने ही हाव-भाव या चाल पर कुढ़ कर रह जाती है और किन्नरों की बस्ती में चले जाने का मन बना लेती है। वह किन्नर बस्ती में महताब गुरु से मिलती है और किन्नर बस्ती में शामिल हो जाती है। नाजबीबी को महताब गुरु कहते है-"देखो, अब यही तुम्हारी दुनिया है। आज से भूल जाओ कि तुम कहाँ पैदा हुई। कौन माँ-बाप हैं। इसी में तुम्हारी भलाई है, उनकी भी। नहीं तो बदनामी और दुख के सिवा कुछ नही मिलेगा। बेसरा माता की शरण में आ गई हो, अगला जन्म सुधारो। अपना नाम तक भूल जाओ आज से।"5 ऐसा कहकर महताब गुरु उनका नामकरण कर देती है।

नाजबीबी का अपने माता-पिता के प्रति जो लगाव था। वह बरकरार रहता है। संयोग से एक बार उनकी माता से बात हो जाती है। तब माँ नाजबीबी से उनकी बस्ती का पता पूछकर पिता जी के साथ उनको मिलने के लिए आती है। जब उनके माता-पिता नाजबीबी से मिलने किन्नर बस्ती में आते हैं तो सभी किन्नर उनको देखकर भावुक हो जाते हैं और वहाँ जाकर नाजबीबी की माँ उन किन्नरों को पूछती है कि क्या तुम्हें तुम्हारे माता-पिता की याद नहीं आती? तब उसी समय मंजू किननर अपनी वेदना व्यक्त करते हुए कहती है-"माँ-बाप भी कोई भूलने वाली चीज़ है? पर मजबूरी में भूलना पड़ता है... ऐसा न भगवान किया होता तो क्यों ये दिन देखते हम?" 6

उपरोक्त बात से लेखिका यह बताना चाहती है कि - माँ तो आख़िर माँ होती है। अपना बच्चा चाहे हिजड़ा, दिव्यांग, अपाहिज क्यों न हो पर माँ अपने बच्चें को अपने से दूर करना नहीं चाहती। वह अपनी संतान को साथ रखना चाहती है, किंतु पति और समाज से उपेक्षा पाकर वह अपने मातृत्व को दबा देती है और कलेजे पर पत्थर रखकर अपने बच्चे को अपने आप से न चाहते हुए भी दूर करने पर मजबूर हो जाती है। तब महताब गुरु उनकी उलझन को सुलझाते हुए कहते हैं कि-"हिजड़े के बाप कहलाना न आप बर्दाश्त कर पाएँगे और न आपके परिवार के लोग। लूली-लँगड़ी होती यह कानी-कोतरी होती तो भी आप इसे अपने साथ रख सकते थे... इसलिए इसे अब इसके हाल पर छोड़ दीजिए। यही उसका भाग्य था यही बँधा था... सोच लीजिए मर गई, सब्र कर लिया।" 7

महताब गुरु के उपरोक्त संवाद किसी भी पत्थर दिल पाठक के अंतस् को झकझोर देता है। नाजबीबी को माँ के प्रति बेहद लगाव था। पिता से फ़ोन पर आवाज़ बदलकर बात करती है। तब यह मालूम होता है कि माँ कैंसर से पीड़ित है। तब वह अपनी माँ से मिलने का फैसला मन-ही मन कर लेती है कि -"भले ही घर में अपमान हो, पर अब मम्मी से मिले बिना उसे चैन नही आएगा। मम्मी की विदा होने वाली आत्मा से वचन लेगी कि अगले जन्म में भी वही उसकी माँ बने... पर इस तरह उससे अलग रहने के लिए नही.... अपने साथ रखे मम्मी उसे। अपने आँचल की छाँह में। बहुत धूप लगती है अलग रहकर..." 8

उपरोक्त संवाद के माध्यम से लेखिका यह बताती है कि नाजबीबी अपनी माँ से दूर रहकर भी अपनी माँ के लिए चिंतित है। अपनी माँ को मिलने के लिए लालायित है। नाजबीबी की अपनी माँ से मिलने की अंतिम इच्छा पूरी नहीं होती वह जब घर पहुँचती है तब माँ का देहांत हो जाता है। तब वह श्मशान घाट पहुँच जाती है और वहाँ जाकर अपने पिता से लिपटकर रोने लगती है। भैया ने उसे दुबारा यहाँ न आने के लिए मना कर दिया। नंदरानी ने कहा कि-"मैं कभी तुम्हारी ज़िंदगी में दखल नहीं दूँगी भैया बस अब पापा ही बचे हैं, उनको सँभालकर रखना।"9

नाजबीबी जितनी अच्छी बेटी थी उससे अधिक एक माँ होने के दायित्व निभाती है। नाजबीबी उस बच्ची का जीवन बरबाद न हो जाए इसलिए वही पागल स्त्री की बच्ची को पालती है। जब उस नन्हीं सी बच्ची को अपनाने के लिए कोई तैयार नहीं होता तो वह स्वयं लालन-पालन करती है। तब उनकी साथी शबनम उन्हें आने वाली मुसीबतों से अवगत कराते हुए कहती है कि-"क्या पागलपंथी है? बवाल मोल ले रही है। कल कोई कहेगा कि हम किसी आदमी जात का बच्चा चुरा लाए है... जबरन हिजड़ा बनाने के लिए तो। पुलिस परेशान करेगी अलग से।"10

किंतु जब ऐसी हालत में सभ्य समाज का एक भी व्यक्ति उस पागल औरत की मदद करने के लिए आगे नही आता, तब नाजबीबी कहती है कि-"अब कोई पूछनहार नहीं इसका तो क्या हम भी छोड़ जाएँगे? अरे हम हिजड़े हैं, हिजड़े... इंसान हैं क्या जो मुँह फेर लें। जा जल्दी कर।"11 नाजबीबी ममता के सुख से वंचित होकर भी एक पागल औरत की बच्ची को पाल-पोसकर बड़ा कर देती हैं। इस तरह उस बच्ची को साथ रखना कानूनन जुर्म है। पुलिस उनका जीना हराम कर देती है-"स्साला, झूठ बोलता है? तू ख़ुद तो हिजड़ा है और इसे (सोना) अपनी भतीजी बना रहा है? एक ज़ोरदार बूट की ठोकर छैलू की नंगी पीठ पर पड़ी थी और वह तड़प उठा था।"12

परंतु इतना सब जानते हुए भी नाजबीबी ने बच्ची को बिना किसी डर से पालन-पोषण करके बड़ा करने का निर्णय किया और साथ-ही-साथ महताब गुरु को विश्वास दिलाती है कि जब बच्ची समझदार हो जाएगी जब वह उसे अपनी बस्ती से दूर कर देगी। बच्ची का नाम सोना रखती है। और उसकी देखभाल एवं ख्याल रखती है उसके लिए रोज़ सबेरे पांडेयपुर वाले खटाल से दुहवाकर एक पाव दूध लेने जाती और बच्ची के लिए सब नया

सामान खरीद लाई। वह बच्ची को बड़े प्रेम पूर्वक मातृत्व स्नेह करती और पूरी तरह ध्यान रखती-" इसकी ठोढ़ी से खून निकल रहा है, छैलू। तू एक काम कर। हम जाएँगे तो सब शंका करेंगे। तू पाजामा पहने ही है कुरता पहन ले। पैसे लेकर जा। डॉक्टर से सारी बाते पूछकर गृहस्थ लोगों की तरह सारा सामान खरीद ला।"13

नाजबीबी के इस तरह मातृत्व भावना को देखते हुए सकीना हँसते हुए व्यंग्य करती है-"आय हाय, इसे देखो। ये तो दो ही घंटे में हिंजड़ा से औरत बन गई टेपकी की माई। जैसे अपने कोख से बियाई है इसे।"14

इस संवाद से यह स्पष्ट हो जाता है कि नाजबीबी मातृत्व सुख से वंचित रहने पर भी सोना के लिए मातृत्व रस न्यौछावर करती रही। सोना की हर छोटी बड़ी खुशी और उसके पसंद नापसंद का पूरा ध्यान रखती जिस प्रकार एक माँ सदा अपने बच्चे की परवाह करती है ठीक उसी प्रकार। वह भी कभी-कभी चमेली के व्यंग्य ओर धंधे में मंदी की वजह से क्रोधित होती और क्रोध में आकर सोना को नदी में फेंक देने की बात करती है। इस बात पर महताब गुरु उन्हें समझाते हुए कहते है-"हाय, हाय बेसरा माता तुम लोगों का दिमाग़ ठीक रखे अरे इसी जिस्म के बिना तो अल्ला ने हमें यहाँ भेजा तो इतना दोजख झेल रहे हैं। यही होता तो आज हम-तुम यह धंधा करते? किसी की निहारन होते निहारन।"15

नाजबीबी को ग़लती का अहसास हो जाता है वह सोना को अब अपने कलेजे का टुकड़ा बना चुकी थी। उसको अच्छी शिक्षा दिलाना चाहती है परंतु पढ़ाई का खर्च नहीं उठा पाती तब रामसरन को गिरिया बनाती है। बहुत मुश्किलों के बाद सोना का स्कूल में एडमिशन महताब गुरु के दिए पैसों से हो पाता है-"दो दिन का खेल है क्या पढ़ाई, जो आज नहीं, दो दिन बाद खेलेंगे? सोना पढ़ेगी और इसी साल पढ़ेगी। बेसरा माता के लिए जो हिस्सा रखा है, उसमें से लाभ मैं तुम्हें दूँगी।"16

महताब गुरु पूरी मदद करती है सोना की शिक्षा के लिए। वह भी सोना से प्रेम करती करती है। सोना के स्कूल जाने पर नाजबीबी उसके लिए किताबें, बैग, टिफीन सब मँगवा चुकी थी। सुबह उठकर उसके लिए माँ भी इसी तरह पराठा सेंका करती थी तभी आँखों से आँसू बह जाते है वह सोचती है-"नियति ने मुझे कहाँ से कहाँ ला पटका! कितना छिपाकर रखती थी उसे मम्मी लोगों की निगाह से। पहले तो स्कूल भेजने को ही तैयार नहीं थी फिर बालिका विद्यालय में कक्षा छह में नाम लिखवा दिया था। हिजड़ों के डर से मम्मी को उसके जन्म के बाद नानी के यहाँ भेज दिया दादी ने।" 17

नाजबीबी सोना के बहाने ही सही अपने अतीत में क्षण भर के लिए विलुप्त हो गई। नाजबीबी सोना के लिए सब कुछ करना चाहती थी जो कुछ उनकी माँ उनके लिए नहीं कर सकी। सोना से ममता की डोर जुड़ चुकी थी जिसके कारण वह सोना के बिना जीने की कल्पना से भी डर जाती थी। जब सोना को पुलिस ढूँढ़ते हुए बस्ती में आकर पूछताछ करती है तब नाजबीबी सोना को विदा करने का कुछ समय माँगती है। "जी, माई-बाप! वो आपकी मेहरबानी। इतनी सी छूट दे दीजिए साहब! फूल सी बच्ची का दिल टूट जाएगा। हम समझा-बुझाकर उसे पहुँचा आएँगे और आपको ख़बर भी कर देगें।"18

नाजबीबी एक माँ की तरह सोना के नकखरे गुस्से की परवाह करती है तभी उसको नारी उद्धारगृह भेजने पर चिंतित होती है कहती है-"चमेली कौन पूछेगा उसे? क्या खाया, क्या पिया? इतने नखरे करती है खाने में यहाँ। वहाँ कौन सहेगा इसकी?" 19

इसी प्रकार जब वह सोना को नारी उद्धारगृह भेजने के लिए तैयार हो जाती है तब उसके मन की दुविधा कुछ इस प्रकार होती है-"नाजबीबी का कंठ अवरुद्ध हो गया था। ऐसी पीड़ा उसे तब भी नहीं हुई थी जब उसने अपने मम्मी-पापा का घर छोड़ा था। तब शायद ऐसी पीड़ा मम्मी को हुई होगी जिसे नाजबीबी आज महसूस कर पा रही थी सोना को छोड़ने के समय।"20 इस सब से स्पष्ट किन्नर भी मातृत्व संवेदना से वंचित होने पर ममता का अनुभव करती है और अपनी माँ की ममता से वंचित नाजबीबी सोना की पूर्ण रूपेण माँ बनी जो कि एक किन्नर के लिए असम्भव है।

निष्कर्ष- प्रस्तुत उपन्यास में किन्नरों में भी मातृत्व संवेदनाओं का होना यही दर्शाता है कि वह भी एक आम इंसान कि तरह हैं उनको भी भूख, प्यास, ठंडा, गर्म लगने के साथ सभी मानवोचित संवेदना से परिपूर्ण है। समाज द्वारा उनको अलग-थलग कर दिया गया है परंतु वह भी इसी समाज का हिस्सा है। प्रस्तुत उपन्यास एक किन्नर में इंसानी बच्चे को लेकर मातृत्व की भावना का जागृत होना और मनुष्य के भीतर छिपी असहिष्णुता का चित्रण करता है। किन्नर अपने परिवार से दूर जीवन यापन करने को मजबूर है और दूसरी तरफ वह समाज है जो मानवीय गुणों से कोसों दूर किन्नर को समाज का अंग ही स्वीकार नहीं कर पा रहा। अत: लेखिका द्वारा किन्नरों के दुख, पीड़ा, तिरस्कार, उपेक्षा तथा उनका शोषण आदि चित्रित करने वाला यह उपन्यास किन्नरों के प्रति समाज का दृष्टिकोण प्रदर्शित करता है।

000

संदर्भ - 1.यमदीप, नीरजा माधव, पृष्ठ-7, भूमिका, 2.यमदीप, नीरजा माधव, पृष्ठ-8, भूमिका, 3.यमदीप, नीरजा माधव, पृष्ठ-13, 4.यमदीप, नीरजा माधव, पृष्ठ-248, 5. यमदीप, नीरजा माधव, पृष्ठ-81, 6. यमदीप, नीरजा माधव, पृष्ठ-92, 7. यमदीप, नीरजा माधव, पृष्ठ-93, 8. यमदीप, नीरजा माधव, पृष्ठ-94, 9. यमदीप, नीरजा माधव, पृष्ठ-84, 10.यमदीप, नीरजा माधव, पृष्ठ-114, 11.यमदीप, नीरजा माधव, पृष्ठ-13, 12.यमदीप, नीरजा माधव, पृष्ठ-12, 13.यमदीप, नीरजा माधव, पृष्ठ-240, 14.यमदीप, नीरजा माधव, पृष्ठ-19, 15.यमदीप, नीरजा माधव, पृष्ठ-27, 16.यमदीप, नीरजा माधव, पृष्ठ-47, 17.यमदीप, नीरजा माधव, पृष्ठ-70, 18.यमदीप, नीरजा माधव, पृष्ठ-244, 19.यमदीप, नीरजा माधव, पृष्ठ-246, 20.यमदीप, नीरजा माधव, पृष्ठ-247

(शोध आलेख)

ज़िंदगीनामा उपन्यास में कृष्णा सोबती की लेखन शैली का विश्लेषण

शोध लेखक : मनीष कुमार
शोधार्थी हिन्दी विभाग
एन.ए.एस. (पीजी) कॉलिज, मेरठ
(उ०प्र०)

मनीष कुमार
सुपुत्र श्री दले राम सिंह
ग्राम जिसौरी, पोस्ट मुंडाली
जिला मेरठ 250001 उप्र
मोबाइल- 9760794497
ईमेल- maneesh.kumar.3996@gmail.com

हिन्दी साहित्य में महिला लेखिकाओं का योगदान बहुत महत्त्वपूर्ण रहा है। महिलाओं ने अपने लेखन में महिलाओं के दर्द, बदलते रिश्तों, पारिवारिक मूल्य और सम्मान में बदलाव, पर्यावरण के प्रति जागरूकता, व्यक्तिगत चेतना, हिंसा के ख़िलाफ़ आवाज़, जीवन के हर क्षेत्र में पुरुष सदस्यों के रूप में उनकी भूमिका जैसे पहलुओं को नए दृष्टिकोण से देखा समझा और एक विशेष स्थान दिया गया है

आज़ादी के बाद से महिला उपन्यासकारों की संख्या बढ़ती जा रही है। आज की महिला लेखिकाएँ सामाजिक-राजनीतिक वास्तविकताओं, भौतिकवादी दृष्टिकोण और जीवन की वास्तविक त्रासदी वर्ग और लिंग भेदभाव, पुरुषों द्वारा महिलाओं का शोषण, मानवीय मूल्यों की कमी को उजागर करने में सफल हुई हैं। इन लेखिकाओं का उत्तरदायित्व केवल इन मामले को चित्रित करने तक ही सीमित नहीं, बल्कि समाज में महिलाओं की स्थिति को ऊपर उठाने में भी सफल हुई है।

जिन महिलाओं को समाज में "बेचारी", "असहाय" कहा जाता था, वे अपने कार्यों में सशक्त व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत होती हैं। महिला उपन्यासकारों की ज़िम्मेदारियाँ केवल घर तक ही सीमित नहीं हैं। वे समाज और देश के प्रति भी उतनी ही उत्तरदायी हैं।

मन्नू भंडारी का "महाभोज", कृष्णा सोबती का "ज़िंदगीनामा", प्रभा खेतान का "छिन्नमस्ता", नासिरा शर्मा का "ज़िंदा मुहावरे", चित्रा मृदुगल का "आवाँ", मैत्रेयी पुष्पा का "अल्मा कबूतरी" उपन्यास इसके सर्वोत्तम उदाहरण हैं। महिला लेखिकाओं के समसामयिक उपन्यास समाज की जटिल प्रकृति के प्रति उनकी संवेदनशीलता को सिद्ध करते हैं। इन लेखिकाओं ने सामाजिक आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक बदलावों को देखा हैं।

भारतीय साहित्य को नई राह देने वाली स्वातंर्त्योत्तर हिन्दी साहित्यिक विभूतियों में कृष्णा सोबती अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। अपनी अभिव्यक्ति के निर्भीक अंदाज़ के कारण वह आज की महिला लेखिकाओं के बीच सम्मान हासिल करती हैं। अपने लेखन में वह विशेष रूप से महिलाओं के शरीर और मन से जुड़े ज्वलंत मुद्दों और तथ्यों पर प्रकाश डालती हैं। उनकी कहानियों में समसामयिक जीवन की हकीकत, भावनात्मक लगाव और भाषा का कुशल प्रयोग देखा जा सकता है। उन्होंने अपने समझदार विचारों और लेखन के कलात्मक तरीके से ख़ुद को एक अभिनव व्यक्तित्व के रूप में स्थापित किया। उनका लेखन उनके अपने विचारों और अनुभवों की अभिव्यक्ति है। कृष्णा सोबती ने हिन्दी की कथा भाषा को भारतीय बोलियों के प्रयोग, व अपनी विलक्षण प्रतिभा से ताज़गी, व स्फूर्ति प्रदान की है। कृष्णा सोबती ने, देश विभाजन, धर्म-जाति और ख़ासकर स्त्री के अधिकारों के मुद्दों पर अपनी लेखनी चलाई है। उन्होंने समय और समाज को केन्द्र में रखकर अपनी रचनाओं में, एक युग को जिया है। कृष्णा सोबती स्त्री मन की गाँठ खोलने वाली कथाकार के रूप में जानी जाती हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में स्त्री की अस्मिता और मुक्ति के सवाल के साथ-साथ स्त्री चरित्रों में निर्भिकता और खुलेपन को चित्रित किया है। कृष्णा सोबती की यह विशेषता रही है कि उन्होंने अपने किसी भी उपन्यास या कहानी में किसी भी चरित्र का दुहराव नहीं होने दिया।

ज़िंदगीनामा अपनी विषय-वस्तु और कला में कृष्णा सोबती की अन्य कृतियों से भिन्न है। यह किसी व्यक्ति और के बारे में नहीं है1979 में प्रकाशित कृष्णा सोबती की 'ज़िंदगीनामा' कई दृष्टियों से बहुत महत्त्वपूर्ण है-विभाजन पूर्व पंजाब के जीवन का सुंदर सृजन यहाँ किया गया है। यह ब्रिटिश सरकार के शोषणकारी नियमों और ग्रामीण जनता की क्रांतिकारी मानसिकता को प्रस्तुत करता है। "ज़िंदगीनामा" को साहित्य अकादमी से सम्मानित किया गया है। उपन्यास में झेलम और चिनाब नदी के बीच स्थित में रहने वाले लोगों के जीवन का चित्रण करता है। उन्होंने अपने काम में भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन से जुड़ी ऐतिहासिक घटनाओं और आँकड़ों का ज़िक्र किया है। उपन्यास में आंचलिकता, जातिगत भेदभाव, आम जीवन, प्रकृति, स्थानीय गीत, लोकगीत, लोककथाएँ, महिलाओं का जीवन, रीति-रिवाज, त्यौहार, पहनावा, खान-पान आदि

विषयों पर सुन्दर विश्लेषण किया गया।

ज़िंदगीनामा में आंचलिकता :

आंचलिकता हिन्दी साहित्य में आज़ादी के बाद की उपलब्धि है। अंचल से तात्पर्य एक संप्रभु भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक क्षेत्र से है जिसकी अपनी भाषा होती है। आंचलिक उपन्यासों में उस अंचल विशेष के जीवन का चित्रण किया जाता है। लेखिका उस समय के झेलम और चिनाब नदी के बीच स्थित डेरा जटटा गाँव (अविभाजित भारत के जो अब पाकिस्तान में है।) के लोगों के जीवन को चित्रित करती हैं। कहानी दो नदियों के बीच के इलाके की है, जो उनके पूरे जीवन में गहराई से बसी हुई है।

नायक की उपस्थिति : नायक की अनुपस्थिति आंचलिक उपन्यासों का अनिवार्य तथ्य है। ज़िंदगीनामा में कोई नायक नहीं है। अविभाजित पंजाब का गाँव ही इसका मुख्य नायक है। यह किसी एक के जीवन की घटनाओं का वर्णन नहीं है बल्कि यह पंजाब में रहने वाले ग्रामीण लोगों का सामूहिक वर्णन है। जिनका जीवन संघर्षों के साथ-साथ आनंद से भी भरा था। पंजाबी लोग बहादुर और मेहनती हैं इनमें से अधिकतर किसान हैं। लेकिन उनका जीवन युद्ध और कृषि क्षेत्र तक ही सीमित है। यहाँ ग्रामीण परिदृश्य, धार्मिक अवसर, त्यौहार, अंधविश्वास और विभिन्न प्रकार के मनोरंजन, उनकी हँसी, आँसू, प्रेम आदि का चित्रण किया गया है।

ज़िंदगीनामा - जिसमें न कोई नायक। न कोई खलनायक। सिर्फ लोग और लोग और लोग। ज़िंदा दिल, जाँबाज लोग जो हिंदुस्तान की ड्योढ़ी पंचनद पर जमे, सदियों गाजी मरदों के लश्करों से भिड़ते रहे। फिर भी फसलें उगाते रहे। जी लेने की सोंधी ललक पर ज़िंदगानियाँ लुटाते रहे।1

युगीन परिस्थितियाँ : साहित्य समाज का दर्पण है। किसी भी समय के समाज का चित्र उस काल विशेष के साहित्य में प्रतिबिंबित होता है। 1905 से 1915 तक ग्रामीण पंजाब की सामाजिक-राजनीतिक, आर्थिक हकीकत ज़िंदगीनामा में साफ नज़र आती है। अंग्रेजों द्वारा ग़रीब किसानों का शोषण और किसानों का उनके ख़िलाफ़ विद्रोह, सभी का वर्णन किया गया हैं। ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा किसानों को सँभालने की साज़िश ने साम्प्रदायिकता को एक नई चिंगारी दी, जो आम जनमानस फैल गई। जिसमें हिंदू और मुस्लिमों के बीच की वैमनस्य की न भर सकने वाली खाई पैदा हो गई।

आम जनजीवन : ज़िंदगीनामा में लेखिका ने डेरा जटटा वाला गाँव के जीवन का जीवंत चित्रण किया है। चिनाब नदी के किनारे स्थित गाँव की प्रकृति, रीति-रिवाज, गीत, नृत्य, भाषा, कहावतें और वाक्यांश उपन्यास की सजीवता को बढ़ाने में मदद करते हैं।

प्रकृति : लेखिका ने पंजाब की डेरा जट्टा वाला गाँव की प्रकृति का बड़ा सुंदर वर्णन किया है दिन, रात, सुबह या शाम किसी भी समय के वर्णन में लेखिका पीछे नहीं रही है। आसमान में पक्षियों का उड़ना खेत खलिहान का हरा भरा होना, नदियों में जल प्रवाहन प्रकृति चित्रण की कोई भी स्थिति से लेखिका की नज़र अछूती नहीं रही है "गलबहियों सी उमड़ती, मचलती दूधभरी छतियों सी गेहूँ की सुनहली फसलें उगाता रहा"2

प्रकृति की कोमलता के साथ इसका क्रूर स्वभाव का वर्णन भी किया गया है।

"खूनी आँधी के गुबार ऐसे जबर चढ़े कि देखते-देखते गाँव में तरथल्ली मच गई। ऊँची लंबी टालियाँ, बोढ़, तूत, पीपल, लसूड़े ऐसे कड़-कड़ झूलने लगे ज्यौ वृक्ष आसमानी झूले पर चढ़ बैठे हो।"3

आजीविका : गुजरावाला के लोग मुख्य रूप से किसान हैं। शाहजी गाँव के ज़मींदार हैं जिनसे किसान अपना काम करने के लिए क़र्ज़ लेते हैं। मछुआरे, कुम्हार, सुनार आदि अपने पारंपरिक कार्य कर रहे हैं। पुलिस और सेना में कार्यरत लोग भी वहाँ मौजूद हैं. इन सबके अलावा गाँव में हांगकांग में काम करने वाले लोग भी देखे जा सकते हैं।

स्थानीय भाषा : आंचलिक उपन्यासों में अधिकतर उस अंचल की स्थानीय भाषा का प्रयोग किया जाता है। डेरा जटटा वाला की भाषा में हिन्दी के साथ काफी समानताएँ हैं यह भाषा पंजाबी उर्दू और हिन्दी की मिली जुली भाषा है। इसमे पंजाबी शब्दावली, कहावतों, वाक्यांशों और मुहावरों का ख़ूबसूरती से उपयोग किया गया है।

"हाथ जोड़ दे चन्निए ! ख्वाजा खिजर जिंदगानी के पीर है। आप ही दरियाओं में भंवर डालते हैं और आप ही बेड़ियों को पार उतरते हैं"4

वाक्यांश और मुहावरे : ये ग्रामीण लोगों की अभिव्यक्ति का आसान तरीका हैं। वे इनका उपयोग पात्र, वातावरण और परिस्थिति के अनुसार करते हैं।

"कम्मो ने आँखें मटकाई : / रानी को राव प्यारा / काव्वी को काँव प्यारा।"5

दीपक जलाते हुए शाहनी कहती है - "दीवा जले / दुश्मन टले / रिजक का छींटा / अंदर पड़े / दीपक तेल / बिछड़े मेल"6

प्रतीक योजना : लेखिका ने चित्रों और प्रतीकों के माध्यम से दृश्यों के अर्थ बहुत स्पष्ट और सजीव तरीके से चित्रित किया है उपन्यास की शुरुआत प्रकृति की ऐसी छवि से होती है। "शरद पुण्या की रात। पिंड के कच्चे कोठे चाम चाम चमकने लगे। उपलों की कच्ची गंध हर कोठे हर चौके को महकाने लहकाने लगी!"7

ग्रामीण जीवन में चौपाल का बड़ा महत्त्व होता है चौपाल वह स्थान होता है जहाँ गाँव के वरिष्ठ नागरिक आपस में अपनी अनुभव साझा करते हैं और नई युवा पीढ़ी उनसे भावी जीवन के लिए ज्ञान ग्रहण करती हैं लेखिका चौपाल पर चलने वाले हुक्के का लेखन के माध्यम से संजीव दृश्य प्रस्तुत करती है।

"तंबाकू की मुशकें और हुक्कों की गुड़-गुड़।

हर कश के साथ महक अंदर और धुआँ बाहर। या इलाही, क्या-क्या शै बनाई है आदम के बेटों के लिए !"8

लोकगीत : लोकगीत आम लोगों की भावनाओं और विचारों को प्रस्तुत करते हैं। विभिन्न अवसरों पर लोकगीत अपनी स्थानीय भाषा में गाए जाते हैं। लेखिका ने अपनी कृति में विभिन्न लोकगीतों के माध्यम से पाठक को पंजाब की ज़मीन से जुड़ने का अवसर प्रदान किया है बाबो के माध्यम से लेखिका इस

पंजाबी गाँव में गाए जाने वाले लोकगीत के एक प्रकार 'हीर' को ऐसे लिखती है - ''डोली चढ़दया मारियाँ हीर चीकाँ / मैनू लै चल बाबला ले चलो वे / मैनू रख लै बाबला हीर आखे / डोली छत्त कहार नी लै चल वे। / साडा बोलना-चलना माफ करना / पंच रोज़ तेरे घर रहे चले वे।''9

''बाबो ने सुहाग उठा लिया / बीबी चन्नन् दे ओले-ओले क्यों खड़ी / जी मैं खड़ी साँ बाबुल जी दे पास / बाबुल वर ढूँढ़ियो !''10

शाहनी ने बुल्ले शाह का बारहमासा छू लिया ''फागुन फूले खेत ज्यों बन फूल शृंगार कब आवे घर यार।'' 11

लोककथा : लेखिका ने ज़िंदगीनामा की शुरुआत में ही लाला वड्डे द्वारा एक कहानी सुनावा कर लोक कथा की शुरुआत की है। 'बच्चों ने रोला डाल दिया- ''लालाजी, कहानी। लालाजी, आख्यान।''

''चंगा। सुनो मेरे बच्चों, जिसे हाजत हो वह हो आए, जिसे प्यास हो पी आए-बीच में से उठने की मनाही है।''12

पुराणों की कहानियाँ लोककथाओं के रूप में संग्रहित हैं। पुरुख प्रजापति से शुरू हुई कहानियाँ सूर्य, आकाश, अग्नि, समुद्र पाताल तक का विवरण देती हुई आगे बढ़ती हैं।

त्यौहार और मेले : त्यौहार ग्रामीण जीवन में एक मजबूत भूमिका निभाते हैं। ज़िंदगीनामा के अविभाजित पंजाब में लोहड़ी, ईद, दशहरा और बैसाखी के त्योहार मनाए जाते हैं। लोहड़ी पंजाब प्रान्त के मुख्य त्यौहारों में से एक हैं जिन्हें पंजाबी बड़े ज़ोरों-शोरों से मनाते हैं। लोहड़ी की धूम कई दिनों पहले से ही शुरू हो जाती है। लेखिका त्योहारों की शुरुआत लोहड़ी से ही करती है।

''त्रिकालाँ उतरते ही गाँव में लोहड़ी की गहमा-गहमी मच गई। भरियों के ढेर जंजघर में इकट्ठे होने लगे।

खुले आँगन में उपलों के ऊँचे ढेर पर लड़कियों के अंबार सजने लगे। पहले मुंड, फिर कीकर बेरी के गट्ठर। ऊपर कपास की सूखी मनछिट्टी। खुशियों वाले घरों से चंगेरें आने लगी। मक्का के फूल। गुड़ की भेलियाँ। रेवड़ियाँ। चावल-तिल की त्रिचौली। कच्ची लस्सी के गडुवें और मूलियों-भरी पच्छिम।''13

लोहड़ी सर्दियों के अंत का प्रतीक है। और बैशाखी से फसल की कटाई शुरू हो जाती है।

रीति-रिवाज : ग्रामीण जीवन में रीति-रिवाज एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में स्थानांतरित होते हैं। लेखिका ने कई स्थान पर अलग-अलग दृश्य के माध्यम से ग्रामीण रीति रिवाज को चित्रित करने की सफल कोशिश की है। जैसे शाहों के यहाँ हर वर्ष ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है। बुरी नज़र से बचने के लिए काला टीका लगाया जाता है। जच्चा के पास लोहा रखा जाता है। बच्चे के मदरसे जाते समय सात घरों से भिक्षा माँगने की परंपरा चित्रित कर ग्रामीण जीवन की सभी रीति रिवाज पर प्रकाश डाला गया है।

महिलाओं का जीवन : परिवार समाज की सबसे छोटी इकाई है। पंजाब की ग्रामीण परिवेश की महिलाओं की अपनी महत्ता, समस्याएँ और पीड़ाएँ हैं। डेरा जट्टा वाला में मेहनती महिलाएँ हैं जो दूर स्थित कुएँ से पानी लाती हैं। चरखा चलाती हैं। भोजन बनाती है। और खेत में पुरुष सदस्यों की मदद करती हैं। लेखिका ने विभिन्न त्योहारों पर उनकी होने वाली सभी सहभागिता को भी निश्चित किया है।

रहन-सहन व पहनावा : लेखिका ने विभिन्न दृश्यों के माध्यम से ग्रामीण परिवेश के रहन-सहन और पहनावे के सजीव चित्र प्रस्तुत किए हैं जैसे चूल्हे और चौक की लिपाई, पंजाब के लोगों ख़ासकर महिलाओं को ख़ूबसूरत कपड़े पहनने का बहुत शौक होता है। त्योहारों में वे नई-नई पोशाकें पहनते थे।

''कोई नवेली पहन आई सलमे-जड़ा मखमल का लाल जोड़ा। किसी ने पहना हरे रंग की काबुली दरियाई का। किसी ने बाँकड़ी के जालवाली गुलाबी ओढ़नी। किसी ने मुंगिया खद्दर पर टँका सुनहरी गोखरू। कोई सास की प्यारी ओढ़ आई फुलकारी चीरमे फूल की। कोई बबोए और कौड़ीवाली''14

लेखिका ने जवान महिलाओं के साथ-साथ वृद्ध महिलाओं की पहनावे को भी चित्रित किया है।

''बड़ी-बुढ़ेरियाँ चिट्ठे दुपट्टो में पक्की खेतियों सी अपने-अपने टब्बर कबीलो के संग ऐसे दिखें जैसे कोई भू-दात्रियाँ हो''15

महिलाओं की तरह पुरुषों का भी अपना पहनावा होता है। पंजाबी व्यक्ति अपने धर्म और जाति के अनुसार विभिन्न प्रकार की पगड़ी पहनते हैं।

कृष्णा सोबती अपनी अविश्वसनीय प्रतिभा के कारण हिन्दी कथा साहित्य में बहुत प्रसिद्ध हैं। उनकी अधिकांश रचनाएँ व्यक्तिपरक हैं। लेकिन ज़िंदगीनामा में समाज को मूल में रखा गया है। विभाजन से पहले पंजाब का ग्रामीण जीवन उपन्यास का मुख्य विषय है। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में पंजाब की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण है। देश के लिए अपनी जान कुर्बान करने वाले ज़्यादातर लोग पंजाब से हैं। वह ऐतिहासिक काल में लड़े गए क्रांतिकारी संघर्ष को पंजाब के ग्रामीण जीवन से जोड़ने का प्रयास करती हैं। मानवतावाद को अपने चरित्र में रखते हुए, यह उपन्यास विभाजन से पहले पाकिस्तानी लोगों के हिंदू, मुस्लिम और सिखों के जीवन और अपनी मातृभूमि और अपने लोगों से अलग होने के उनके दर्द का एक दस्तावेज है। झेलम और चिनाब नदी के बीच स्थित गुजरावाला गाँव इस लंबे उपन्यास की भूमि है और यहाँ उनके आम जीवन को मनोरंजक तरीके से चित्रित किया गया है। अत: कहा जा सकता है कि कृष्णा सोबती की लेखन शैली उपन्यास के साथ न्याय करती है।

000

संदर्भ- 1. कृष्णा सोबती- जिंदगीनामा राजकमल प्रकाशन 2018 पृ.सं. आवरण पृष्ठ, 2. वही, पृष्ठ संख्या 9 से 11, 3. वही, पृष्ठ संख्या 259, 4. वही, पृष्ठ संख्या 18, 5. वही, पृष्ठ संख्या 270, 6. वही, पृष्ठ संख्या 30, 7. वही, पृष्ठ संख्या 17, 8. वही, पृष्ठ संख्या 101, 9. वही, पृष्ठ संख्या 34, 10.वही, पृष्ठ संख्या 35, 11.वही, पृष्ठ संख्या 75, 12.वही, पृष्ठ संख्या 19, 13.वही, पृष्ठ संख्या 38, 14.वही, पृष्ठ संख्या 39, 15.वही, पृष्ठ संख्या 39

(शोध आलेख)

धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थिति के परिप्रेक्ष्य में उपन्यासों में किन्नर विमर्श

शोध लेखक : प्रखर
शोधार्थी
हे. न. ब. ग. केन्द्रीय विश्वविद्यालय

शोध सार :-

धर्म, संस्कृति, रीति-रिवाज, परम्पराएँ प्रतत्येक समाज का अभिन्न अंग है। हम इससे रहित समाज की कल्पना नहीं कर सकते हैं। प्रत्येक समाज की अपनी-अपनी धार्मिक आस्था व संस्कृति-सभ्यता जीवन शैली होती है। एक किन्नर बच्चा जब किसी परिवार में जन्म लेता है और जब तक उस घर-परिवार में रहता है तब तक माता-पिता, परिवार के द्वारा दिये गए संस्कारों, जीवन शैली को अपनाए रहता है। यही उसकी आदत भी बन जाती है परंतु जब उसे घर से आजीवन निर्वासित कर दिया जाता है तब उसके सामने किन्नरों की मण्डली या डेरे की संस्कृति व परम्पराओं को अपनाने की चुनौती होती है। एक संस्कृति को छोड़कर दूसरी संस्कृति को अपनाना बेहद चुनौतीपूर्ण व दु:खद होता है। किन्नरों को अपने डेरे व उसकी संस्कृति होती है। जिसमें किन्नरों को चुनरी रस्म के द्वारा शामिल किया जाता है और उन्हें सदस्य बनाकर बाधाई माँगना तथा नाचना गाना सिखाया जाता है। किन्नरों का उल्लेख कई धार्मिक ग्रंथों में मिलता है। इनकी पूजा पद्धति, विवाह परम्पराएँ सबसे अलग होती है। जिसका यथार्थ चित्रण इक्कीसवीं सदी के अनेक रचनाकारों ने अपने उपन्यासों में किया है।

बीज-शब्द- संस्कार, परिवार, मान्यता, परम्पराएँ, निर्वासन, विडम्बना, विवाह आदि।

शोध पत्र

किन्नर समुदाय भी इसी समाज का हिस्सा है जिसके हम सभी हैं। किन्नर भी इसी समाज में जन्म लेते हैं। इसी समाज में इनके माता-पिता और परिवार के अन्य सदस्य होते हैं। यह समाज की विडम्बना है कि इन्हें मनुष्य की श्रेणी में समाज द्वारा नहीं रखा जाता है। जिस परिवार में एक किन्नर बच्चे का जन्म होता है वह किन्नर बच्चा अपने परिवार से प्राप्त संस्कारों से प्रभावित होता है वह परिवार में मनाये जाने वाले पर्व-त्यौहार पूजा-पाठ, उत्सव में भाग लिया होता है। परंतु वह नहीं जानता उस परिवार में वह कुछ दिनों का मेहमान है। किशोरावस्था के पूर्व ही आए शारीरिक लक्षण के कारण उसे घर से निकाल दिया जाता है या परिवार में ऐसा वातावरण तैयार किया जाता है जिससे वह ख़ुद ही घर छोड़कर चला जाता है। उसका किन्नर मण्डली या डेरे के सिवा कोई सहारा नहीं होता है। कभी-कभी किन्नर मण्डली के लोग ख़ुद परिवार से किन्नर बच्चे को

प्रखर
शोधार्थी
हे. न. ब. ग. केन्द्रीय विश्वविद्यालय
श्रीनगर उत्तराखण्ड
मोबाइल- 7007501129
ईमेल- prakharanurag9999@gmail.com

जबरदस्ती ले लेते हैं। किन्नरों की मण्डली में जाने के बाद भी परिवार प्रदत्त संस्कार उसके साथ रहते हैं जिससे वह चाह कर भी अलग नहीं हो पाते। मण्डली या डेरे के किन्नर मुर्दे वाली देवी की पूजा करते हैं परन्तु कोई नया किन्नर आसानी से अपनी पुरानी संस्कृति को छोड़ कर नई संस्कृति नहीं अपना पाता है। ऐसी ही परिस्थिति पोस्टबॉक्स नं0 203 नालासोपारा के पात्र विनोद की है। जो गुजराती परिवार में बड़ा हुआ व दिल्ली के किन्नरों की मण्डली में भेज दिया जाता है वह जब सुबह नहा धो कर श्री कृष्ण की पूजा करने बैठता है तो उसके साथ के किन्नर उपहास उड़ाते थे। "रोज़ नहाने के बाद मैं ध्यान मुद्रा में बैठ जाता हूँ पर विचित्र है बा, ध्यान में तू आ जाती है- तेरे कृष्ण नहीं। तेरे कृष्ण को कहीं इस जगह से तो परहेज़ नहीं या आधे-अधूरे मुझसे? रोज़ नहाने की आदत पर मेरे संगी साथी उपहास उड़ाते है। ताली बजाकर तल्ख टिप्पणियाँ करते हैं। किन्नर दूसरों की पूजा अर्चना नहीं करते हैं। अपनी बिरादरी के कायदे-कानून भूलकर मरी तू संत-महात्माओं जैसा व्यवहार क्यों कर रही है।"1

किन्नरों के ख़ुद के अपने कई धार्मिक स्थान है जहाँ सिर्फ किन्नर ही जाते हैं जिनमें प्रमुख मंदिर है अहमदाबाद का बेसरा माता मंदिर, जिसके बारे में 'यमदीप' की पात्र नाजबीबी बताते हुए कहती है "हम लोगों की एक बेसरा माता है यानी हिजड़ों की देवी। उनका मंदिर अहमदाबाद में है। वहीं गुजरात में तो वर्ष में एक बार वहाँ हम सब लोग जुटते हैं। भंडारा करते हैं, नाचते गाते हैं। यानी एक साथ दो चार दिन रहते हैं "इतना बड़ा भंडारा? खर्च कहाँ से आता है।" "हर ज़िले में हम लोगों के एक गुरु होते हैं। हम लोग जो रोज़ की कमाई करते हैं उसका एक बड़ा हिस्सा बेसरा माता के नाम पर गुरु के पास जमा करते हैं।"2

तीसरी ताली की उपन्यास की पात्र किन्नर गुरु डिम्पल काली भक्त थी वह अपने डेरे के आँगन में काली माता का मंदिर बनवाई थी तथा भव्य काली माता की मूर्ति तथा साथ नौ देवियों की भी स्थापना करवाई थी। "आँगन के बीचों-बीच काली का मंदिर था मंदिर के बगल में एक चम्पा का दरख्त जो काफी पुराना था और इसलिए काफी घना था"3 इससे मालूम चलता है कि किन्नरों के समाज में पूजा-पाठ की स्वतंत्रता होती है। सिर्फ मुर्गे वाली देवी की पूजा नहीं होती है बल्कि अन्य पूजा पद्धति अपनाई जाती है। किन्नरों की एक देवी बहुचरा भी है जो मुर्गे की सवारी करती है। अगर हम हिंदू धर्म में देखें तो इनकी चर्चा कई ग्रंथों में मिलती है। ऐसी मान्यता है कि ये जिसे आशीर्वाद देते हैं उसकी मनोकामनाएँ पूरी हो जाती है यह परम्परा भी प्रभु श्री राम से जुड़ी है। जब श्री राम बनवास जा रहे थे, तो सभी नगरवासी उन्हें छोड़ने वन तक आए तब उन्होंने सभी नर-नारी को वापस जाने को कहा। सभी नर-नारी लौट आए परंतु किन्नर वहीं रुके रहे और जब प्रभु श्रीराम वापस आए तो इनके रुकने का कारण पूछा और प्रसन्न होकर इन्हें आशीष दिया कि जिसे आशीष दोगे वह फलदायी होगा।

कई धर्मग्रन्थों, महाकाव्यों में किन्नरों से सम्बन्धित उल्लेख है। शतपथ ब्राह्मण (7..5.2.32) में अश्वमुखी मानव शरीर वाले किन्नर का उल्लेख है तो बौद्ध साहित्य में भी किन्नरों की कल्पना मानव मुखी पक्षी के रूप में की गई है। कालिदास कृत कुमारसंभव (प्रथम सर्ग 11, 14) में भी किन्नरों का उल्लेख है। तमिलनाडु के किन्नर स्वयं को थिरू नाग्गाई (ईश्वर पुत्री) मानते हैं और अरूवानी कहलाना पसंद करते हैं।4

किन्नरों के डेरे में कई रीति रिवाज चले आ रहे हैं उनमें से प्रमुख रूप हैं 'चुनरी पहनाने की' जिसे नए किन्नर के डेरे में प्रवेश करने पर मनाया जाता है जिसमें नए शामिल किन्नर को चुनरी पहनाया जाता है जिसके बाद उसको छिबरी (लिंग विच्छेदन) भी किया जाता है। इस उत्सव में बहुत से किन्नर भाग लेते हैं नाच-गाना व भोज दिया जाता है। ऐसा माना जाता है कि चुनरी रस्म के बिना कोई किन्नर किसी डेरे का सदस्य नहीं बन सकता है और न ही बधाई देने नाचने-गाने का धन्धा कर सकता है। वे हमेशा नए किन्नर की तलाश में भी रहते हैं जिससे उनकी एकता व संगठन कमज़ोर न पड़ने पाये।

पोस्ट बॉक्स नं. 203 नालासोपारा में विनोद अपनी माँ को लिखे पत्र में कहता है- "ढूँढ़ते फिरते हैं, जननांग विकलांगों को इसीलिये कहीं से कोई टोह मिल जाए। गुरु परम्परा से दीक्षित कर बनाये रखना चाहते हैं उस एकता को जो उन्हें आपस में जोड़े रहे।"5 यही विनोद जो अपने घर में नवरात्रि में व्रत रहा करता था, डाँडिया खेला करता था अब किन्नरों के डेरे में आने पर चाहते हुये भी कुछ नहीं कर पाता है। वह लिखता है कि "उपवास रखने की भी सोची थी। नहीं रखा तो यही सोचकर। पूजा करनी होगी तो नैवेद्य के लिये सींग पाक, साबूदाने की खिचड़ी, नारियल पाक व लापसी बनानी होगी। आता कहाँ है मुझे बनाना।"6

तमिलनाडु के विल्लुपुरम जिले के गाँव कुवागम के कुठनदवार मंदिर में किन्नरों के विवाह व विधवा बनने की प्रथा है। मान्यता है कि यहाँ अर्जुन पुत्र अरवाण कृष्ण के मोहनी रूप से विवाह किये थे और बाद में महाभारत के युद्ध के पूर्व ख़ुद की बलि दिये थे। "मान्यता है कि मोहिनी के अवतार में कृष्ण स्त्री रूप में पुरुष थे। तब से यह मान्यता है कि हिजड़े कृष्ण के ही वंशज है। हर वर्ष बसंत के बाद चित्रा पूर्णिता के दिन अरवाण की याद में यहाँ मेला लगता है। यहाँ के कूठनदवार मंदिर में अरवाण के सिर के हिस्से की मूर्ति है। मान्यता है कि यह सिर महाभारत काल से यहाँ रखा हुआ है। इसीलिये कृष्ण रूपी मोहिनी के रूप में जन्म लेने वाला हर प्राणी उनसे विवाह कर उनकी मृत्यु के बाद विधवा बन जाता है।"7 धार्मिक रीतिरिवाज, परम्परागत, उत्सव से किन्नर भी अलग नहीं है। किन्नरों के रीति उत्सव आम जनमानस से अलग होते हैं। इनकी भी कुछ परम्पराएँ होती है जिनके माध्यम से ये भी अपना जीवन जीते हैं। धर्म, संस्कृति, उत्सव व खुशी के पल तथा रीति-रिवाज मानव समाज के अभिन्न अंग है। इनसे अलग समाज की कल्पना नहीं की जा सकती है। किन्नरों के समाज में एक परम्परा है कि जब कोई अकुआ (लिंग सहित) किन्नर

मण्डली में प्रवेश करता है तो उसका लिंग विच्छेदन करके पूर्ण किन्नर बना दिया जाता है इसके बाद ही वह बधाई माँगने का अधिकार प्राप्त करता है "हिजड़ों में मान्यता है कि इस रक्त के बहने के साथ ही पुरुष का पुरुषत्व बह जाता है और उसमें नारीत्व के गुण प्रवेश कर जाते हैं। इसके बाद लकड़ी के एक गुटके के जरिये घाव को बंद कर दिया जाता है, ताकि पेशाब का रास्ता खुला रहे।"8

किन्नरों के जन्म के बाद घर में मुण्डन, यज्ञोपवीत या बाद में विवाह जैसे कोई संस्कार नहीं होते हैं। किन्नर किसी समलैंगिक पुरुष को अपना पति मान लेते हैं जिसको 'गिरिया' कहा जाता है। वे वास्तव में ये गिरिया अपने आर्थिक ज़रूरतों को पूरा करने के लिये बनाते हैं। मृत्यु अंतिम सत्य है। इस धरती पर जिसने जन्म लिया है उसकी मृत्यु होती है। आम जनमानस में किसी की मृत्यु होने पर धर्म के अनुसार अंतिम संस्कार किया जाता है परंतु किन्नरों के अंतिम संस्कार मध्य रात्रि में होते हैं। यही परम्परा इनमें चली आ रही है। मध्य रात्रि में शव यात्रा निकाली जाती है और शव को चप्पलों से पीटते हुये कब्रिस्तान तक ले जाते हैं ऐसी मान्यता है कि अगले जन्म में वह किन्नर न बने इसलिये ऐसा किया जाता है। जूते चप्पल से पीटते हुये शव यात्रा उस मृत शरीर के साथ त्रासदी है। "अपने रिवाज के मुताबिक बाकी हिजड़े चुपचाप उसे दफनाने ले जा रहे थे। वे नहीं चाहते थे कि किसी को पता चले कि यह शव यात्रा है इसलिये शव को स्केट्स के सहारे चलाकर ले जा रहे थे सर्दियों की रात थी कुत्ते तक दुबक कर सो रहे थे। अत: उनकी कब्रग्राह तक की यात्रा ठीक रही। कफन को गड्ढे में रखने के बाद उन्होंने लाश को कब्र में उतारा मगर सीधे नहीं लेटाया बल्कि लेटाया पेट के बल। लाश को उल्टा रखकर उन सभी ने अपनी-अपनी कमर में बंधे जूते-चप्पल निकाल लिये और लाश को पीटना शुरू कर दिया। इस कथन के साथ कि अगले जन्म में हिजड़ा न बनना। अब उनमें से एक ने आगे बढ़कर मृत हिजड़ा गुरु के नाखून और बाल काटकर एक हरे कपड़े में लपेट लिये, इस मंशा के साथ कि लाश चाहे कब्रिस्तान में दफ़न हो मगर समाधि घर में बनाएँगे। आदर-सम्मान के साथ।"9

ये समाज की विडम्बना है कि उसी का एक अंश दर-दर भटकता हुआ अंत समय में जूता-चप्पल से पिटता हुआ अपनी अंतिम यात्रा पर निकलता है। आम किन्नर की समाधि नहीं बनती परंतु प्रसिद्ध गुरु माई किन्नर की समाधि किन्नर लोग याद में बनाते हैं। एक किन्नर घर से आजीवन निर्वासित होने के बाद अपनी संस्कृति व रहन-सहन, धार्मिक आस्था से भी निर्वासित कर दिया जाता है उसे नई संस्कृति, रहन-सहन, रीति रिवाज मजबूरी में अपनाना पड़ता है। ज़िंदा रहते उसे कभी सुकून नहीं मिलता, ये प्रत्येक दिन एक लड़ाई ख़ुद से लड़ते हैं और मरने के बाद भी सुकून नहीं मिलता है। जब तक माता-पिता अपने किन्नर बच्चे को एक अच्छी ज़िंदगी देने के लिये आगे नहीं आएँगे तब तक प्रत्येक किन्नर ऐसे ही मृत्यु को प्राप्त होगा। परिवार समाज को आगे आकर प्रत्येक किन्नर बच्चे को अपनाना होगा, सम्मान देना होगा। हम यह कह सकते हैं कि किन्नरों को अपने डेरे या मण्डली में धार्मिक एवं सांस्कृतिक आजादी होती है परंतु यह भी सच है कि थोपी गई संस्कृति में वह घुट-घुट कर जिन्दगी व्यतीत करते हैं।

000

संदर्भ - 1.मुद्गल, चित्रा, पोस्ट बॉक्स नं0 203 नालासोपारा, सामयिक प्रकाशन 2016, पृ. 9, 2.नीरंजन, माधव, यमदीप, सामयिक प्रकाशन, 2002, पृ. 164, 3.प्रदीप, सौरभ, तीसरी ताली, वाणी प्रकाशन, 2011, पृ. 14, 4.भीष्म, महेन्द्र, मैं पायल, अमन प्रकाशन, 2016, पृ. 126, 5.मुद्गल, चित्रा, पोस्ट बॉक्स नं0 203 नालासोपारा, सामयिक प्रकाशन 2016, पृ. 51, 6.मुद्गल, चित्रा, पोस्ट बॉक्स नं0 203 नालासोपारा, सामयिक प्रकाशन 2016, पृ. 29, 7.सौरभ, प्रदीप, तीसरी ताली, वाणी प्रकाशन 2011, पृ. 189-190, 8.सौरभ, प्रदीप, तीसरी ताली, वाणी प्रकाशन 2011, पृ. 62, 9.भुराड़िया, निर्मला, गुलाम मण्डी, सामयिक प्रकाशन 2014, पृ. 66

नई पुस्तक

(उपन्यास)

सरहद

लेखक : कुसुम भट्ट

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

8 कहानी संग्रह-जेम्स वाट की केतली, खिलता है बुरांश, लौट आओ शिशिर, नदी की उंगलियों के निशान, पिघल रही है बर्फ, बेटे की माँ, हिटलर की प्रेम कथा, प्रेम संबधों की कहानियां, के प्रकाशन के बाद हिन्दी की वरिष्ठ कहानीकार कुसुम भट्ट का उपन्यास सरहद हाल ही में शिवना प्रकाशन से प्रकाशित होकर आया है। इस उपन्यास में कुसुम भट्ट ने स्त्री के संघर्ष की कहानी कही है। उपन्यास की भाषा शैली इस तरह के उदाहरणों से भरी हुई है- 'उसकी मन आत्मा देह पर फफोले पड़ जाते? उसकी पीड़ा को समझ पाए वे धनुर्धर? नहीं न? कुंती भी नहीं समझी! समझी होती तो आज इस अवांछित आग को ढोने के लिये मुझे भी विवश न किया जाता? मेरे भीतर जलजला उठ रहा है। आँखें धुँआ-धुँआ हो रही है। आँखों का पानी पोंछने के लिये उँगलियाँ बढ़ाती हूँ पर पोरों पर पानी नहीं। सिर्फ सफेद कण! क्या है यह? नमक है शायद, नमक ही बचा है अब! यही रहा अनगिन आँखों की किर किरी! किस मिट्टी की बनी है वे? उनमें भी नमक था?'

000

(शोध आलेख)

औपनिशदीय संस्कृति तथा स्वामी विवेकानंद का विश्वधर्म

शोध लेखक : बिन्दु डनसेना (हिन्दी)
शासकीय दिग्विजय महाविद्यालय
राजनांदगाँव (छ.ग.)
शोध निर्देशक : डॉ. हरनाम सिंह
अलरेजा सहायक प्राध्यापक
(दर्शनशास्त्र) शासकीय दिग्विजय
महाविद्यालय राजनांदगाँव (छ.ग.)

बिन्दु डनसेना
शोधार्थी - हिन्दी
शासकीय दिग्विजय महाविद्यालय
राजनांदगाँव छ.ग.

शोध संक्षेपिका -तत्व मीमांसा, विवेचनाएँ, भारतीय दर्शन और समकालीन भारतीय दार्शनिकों में दिखलाई पड़ती हैं यदि उनके स्रोत की तलाश की जाए तो निसंदेह वह हमें उपनिषदों में प्राप्त होती है। उपनिषद् भारतीय संस्कृति और दर्शन के आधारभूत और प्रामाणिक ग्रंथ है। स्वामी विवेकानंद ने उपनिषदों की संस्कृति का व्यावहारिक रूप अपने गुरु रामकृष्ण परमहंस के जीवन में देखा था। उन्होंने उपनिषदों से चली आ रही इसी सांस्कृतिक परंपरा और रामकृष्ण परमहंस की शिक्षा पर आधारित विश्व धर्म के सिद्धांत का सृजन किया। विश्वधर्म का सिद्धांत इसलिए सार्वभौमिक तथा प्रासंगिक है क्योंकि यह अलग-अलग धार्मिक विचारों, मतों तथा वादों का समन्वय करता है। प्रस्तुत शोध पत्र में स्वामी विवेकानंद के इसी विश्वधर्म के सिद्धांत का विवेचन करते हुए, इसकी वैचारिक अवधारणा के मूल भाव को, उपनिषदों से संबद्ध किया गया है।

प्राचीन काल से प्रवाहित, संचालित भारतीय सांस्कृतिक मूल्य, भारतीय सामाजिक अवधारणाएँ, भारतीय दर्शन, तथा धर्म, भारतीय व्यक्तिगत जीवन शैली में इस कदर अर्न्तयुक्त है कि इन्हें इस आधुनिक युग में भी परम्परा से विच्छिन्न करना असंभव है। भारतीय दार्शनिक तत्व मीमांसा की प्राय: सभी शाखाएँ सत्य क्या है, की तलाश, आध्यात्मिक साधनों की विवेचनाओं द्वारा करती है और भारतीय समाज में भौतिक या लौकिक जगत से परे एक अलौकिक या पारलौकिक जगत की सत्यता में अटूट विश्वास है। इसे ही स्वामी विवेकानंद ने समझा और यह कहा कि - "मैंने पाश्चात्य देशों में भ्रमण किया है और मैं भिन्न भिन्न जातियों से मिला जुला हूँ और मुझे यह लगा कि प्रत्येक राष्ट्र और प्रत्येक जाति का एक ना एक विशिष्ट आदर्श अवश्य होता है राष्ट्र के समस्त जीवन में संचार करने वाला एक महत्त्वपूर्ण आदर्श, कह सकते हैं कि वह आदर्श राष्ट्रीय जीवन की रीढ़ होती है। परन्तु भारत का मेरूदण्ड राजनीति नहीं है, सैन्यशक्ति भी नहीं है और न यांत्रिक शक्ति ही है, वरन है धर्म केवल धर्म ही हमारा सर्वस्व है और उसी को हमें रखना भी है।" 1

यह सत्य भी है कि किसी भी देश का बेहतर विकास, सुधार या परिवर्तन उस देश के चिंतन, मूल्यों, रहन-सहन, जलवायु, भूगोल आदि को आधार बनाकर ही संभव हो सकता है। आयातित विचारधाराएँ आकर्षक तो होती हैं, किन्तु उनका लुभावनी रूप समस्याओं का ठोस समाधान नहीं कर पाता है। फिर भारत तो इतना प्राचीन देश है कि इसके ज़मीन की कोख से उनके विचारधाराओं, पंथो, संप्रदाओं का निरंतर जन्म होते रहता है। धर्म यहाँ के लोगों में रक्त के साथ बहता है। विवेकानंद कहते हैं कि -"हिन्दू एक विचित्र व्यक्ति होता है। वह हर काम धार्मिक -ढंग से करता है वह धार्मिक -ढंग से खाता है, धार्मिक -ढंग से सोता है, प्रात:काल धार्मिक -ढंग से जागता है, धार्मिक -ढंग से सत्कर्म करता है और धार्मिक -ढंग से बुराई भी करता है।" 2

भारतीय जीवन शैली से धर्म को पृथक नहीं किया जा सकता है। इसलिए स्वामी विवेकानंद ने भारत की जिन समस्याओं को, परिव्राजक बनकर, भ्रमण करते हुए देखा, समझा था उन्हीं के

निदान को अपने धार्मिक और दार्शनिक चिंतन का आधार बनाया।

स्वामी विवेकानंद के धार्मिक दार्शनिक मत को व्यावहारिक वेदांत कहा जाता है। इस व्यावहारिक वेदांत में उनके विश्वधर्म का प्रत्यय भी समाहित है। हम कह सकते हैं कि विवेकानंद की दार्शनिक मान्यता औपनिशदीय तत्वमीमांसा की व्यावहारिक व्याख्या है।

उन्होने स्वयं कहा है कि - "मुझे ईश्वर की कृपा से इस प्रकार के एक महापुरुष के पैरों तले बैठकर शिक्षा ग्रहण करने का महासौभाग्य मिला था, जिसका सम्पूर्ण जीवन ही उपनिषदों के महा समन्वय का स्वरूप था। उन्हें देखने पर मालूम होता था, मानो उपनिषदों के भाव वास्तव में मानवरूप धारण करके प्रकट हुए हो।"3 हालाँकि उनका यह कथन, अपने गुरु रामकृष्ण के प्रति असीम आदर हेतु प्रयुक्त हुआ है लेकिन उन्होंने श्री रामकृष्ण परमहंस के जीवन से ही शिक्षा प्राप्त कर, अपने विचारगत कर्मशैली की नींव तैयार की थी। उपनिषदों की तत्वमीमांसा की अविरोधवाद समन्वय विशेशता, अद्वैतवाद, द्वैतवाद, विशिष्टा द्वैतवाद आदि सभी मतो का सामंजस्य करती है।

इसीलिए, भारतीय दर्शन की प्राय: सभी शाखाएँ उपनिशदों को ही अपना दार्शनिक आधार बनाती है। स्वामी विवेकानंद को, अपने विचारों को स्थापित करने के लिए दो सशक्त आधार थे। सैद्धांतिक औपनिषदीय चिंतन परम्परा तथा व्यावहारिक, उपनिषदों के मर्म को प्रकटीकृत करता अपने गुरु रामकृष्ण परमहंस का जीवन अत: उन्होंने भी एक अविरोधवाद, समन्वयवादी सार्वभौमिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया, जो भारतीय संस्कृति की मूल पहचान है।

भारत के दार्शनिक, धार्मिक ढाँचे को समझने में अनेक विचारकों को कठनाई होती है। चिंतकों को लगता है कि प्राचीन ग्रंथों और विचारकों द्वारा की गई व्याख्याएँ इसलिए अतार्किक है क्योंकि ये परस्पर विरोधी हैं। इनमें सगुण, निर्गुण, द्वैत, अद्वैत को एक साथ स्वीकार किया गया है। स्वामी विवेकानंद की आलोचना का भी यही आधार है कि उनके चिंतन में सगुण और निर्गुण का तालमेल है। वे मूर्तिमान ईश्वर और निर्गुण ब्रह्म दोनों स्वीकार करते है। लेकिन स्वामी विवेकानंद को यह ज्ञात था और उन्होंने अपने दर्शन या विचारों को किसी एक खाँचे में बाँधने की कोशिश नहीं की। वे कहते थे -"द्वैतवादियों और अद्वैतवादियों को परस्पर विवाद करने की कोई आवश्यकता नही है। समस्त श्रुतिवाक्य अत्यन्त मनोरम है, अत्यंत अद्‌भुत है और वे परस्पर विरोधी नहीं है, उनमें अपूर्व सामंजस्य विद्यमान है, एक तत्व मानों दूसरे का सोपान स्वरूप है।" 4

वास्तव में यह जो भेद या भिन्नता दिखलाई दे रही है विवेकानंद के अनुसार उस परमसत् का भेद नहीं है, यह हमारा दृष्टिभेद है। वे इस दृष्टिभेद और विविधता की व्याख्या हेतु यह दृष्टांत देते हैं - "हम जलपात्र लेकर जलाशय में जल भरने आए। कोई कटोरी लाया, कोई घड़ा लाया, कोई बाल्टी लाया इत्यादि, अब जब हमनें जल भर लिया, तो क्या देखते हैं कि प्रत्येक पात्र के जल ने स्वभावत: अपने अपने पात्र का आकार धारण किया है। परन्तु प्रत्येक पात्र में वही एक जल है जो सबके पास है।"5

इसी प्रकार प्रत्येक मत की सत् को व्याख्यायित करने की एक विशिष्ट दृष्टि है और इसी दृष्टि से, वह सत् को, द्वैत या अद्वैत आदि दृष्टिकोण से प्रस्तुत करता है, वस्तुत: सत तो एक ही है। विवेकानंद ने यह समझया था उपनिषदों में सत् या तत्व की बहुविध व्याख्या है। इसी प्रकार भारतीय समाज में देवताओं के बहुविध आस्था जन्य रूप भी है। यदि पारमार्थिक दृष्टिकोण को मूल मानकर व्यावहारिक जगत की विवर्त या मिथ्या व्याख्या की जाए तो जगत की समस्याओं को भी अवास्तविक मानना पड़ेगा। यह दृष्टिकोण भारत देश की कमजोरियों, निर्धनता का हल नही हो सकता है अत: उन्होने धर्म विवेचना में जगत् का, सत्य रखते हुए, इसकी विविधता को स्वीकार करते हुए, इसमें निहित सार्वभौमिक मूल तत्व सत् को अपने दार्शनिक विचारधारा में स्थापित किया।

स्वामी विवेकानंद की दर्शन पद्धति को जानने की कोशिश करे तो सर्वप्रथम वे यह स्पष्टत: स्वीकार करते हैं कि अध्यात्मिक नियम शाश्वत है, "जिस प्रकार गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत मनुष्यों के पता लगाने से पूर्व ही अपना काम करता चला आया था और आज यदि मनुष्य जाति उसे भूल भी जाए तो भी वह नियम अपना काम करता ही रहेगा, ठीक वही बात आध्यात्मिक जगत का शासन करने वाले नियमों के संबंध में भी है।"6 और इन आध्यात्मिक नियमों के पुष्टिकरण हेतु स्वामी विवेकानंद एक पद्धति बतलाते हैं। उनके अनुसार - "सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्ति के दो मूल सूत्र है एक सूत्र तो यह है कि विशेष को सामन्य से और सामान्य को सर्वव्यापी तत्व की पृष्ठभूमि में जानना। दूसरा सूत्र यह है कि यदि किसी वस्तु की व्याख्या करनी हो तो जहाँ तक हो सकें, उस वस्तु के स्वरूप से उसकी व्याख्या करना।"7

सामान्य सर्वव्यापी तत्व क्या है? तथा मूल स्वरूप तक पहुँचने का मार्ग या साधन क्या है? यदि विवेकानंद साहित्य में निहित स्वामी विवेकानंद के विचारों में इन प्रश्नों की खोज की जाए तो वे इसे इस प्रकार बतलाते हैं कि प्रत्येक धर्म, सम्प्रदाय, पंथ, दर्शन विचारधारा में मूलत: तीन भाग या तीन चरण होते हैं जिसे वे आनुष्ठानिक भाग, पौराणिक भाग तथा दार्शनिक भाग कहते है। धर्म के आनुष्ठानिक भाग में उसके अनुयायियों हेतु एक साधना पद्धति होती है जो ज्ञान, भक्ति या कर्मादि पर या किन्हीं भिन्न भिन्न कर्मकाण्डों पर आधारित हो सकती है। भारत में यह आनुष्ठानिक साधन पद्धति की स्वतंत्रता होने के कारण, प्राचीन काल से असंख्य पद्धतियाँ और धार्मिक क्रियाएँ देखी जा सकती है। धर्म के दूसरे पौराणिक भाग में उस धर्म की नींव को मजबूत करने वाले विचारक, साधक और उनकी उस धर्म संबंधी विस्तृत विवेचनाएँ होती है, किसी भी पंथ या धर्म की परम्परा के प्रवर्तक, नायक, उसके पौराणिक भाग के अंतर्गत आ जाते है। जो अपने धार्मिक विचारधारा को एक आस्थावान और तार्किक रूप प्रदान करते हैं। यदि किसी धर्म के इन

दोनो रूपों के अलावा उसके मूल रूप को देखा जाए तो स्वामी विवेकानंद उसे, उस धर्म का दार्शनिक भाग कहते हैं। यही उस धर्म की मूल शाश्वत मान्यता होती है। यह सभी धर्मों में सर्वोच्च तत्व होती है और यही वह सार्वभौमिक और एक समान अवधारणा है जिससे प्रारम्भिक विविधताओं, वैशम्य से उठकर समन्वय स्थापित किया जा सकता है। इस स्वामी विवेकानंद ने अपने शब्दों में बतलाया है कि - ''हम देखते हैं प्रत्येक धर्म में तीन भाग हैं, मैं अवश्य ही प्रसिद्ध और प्रचलित धर्मों की बात कहता हूँ। पहला है दार्शनिक भाव, इसमें उस धर्म का सारा विषय अर्थात् मूल तत्व, उद्देश्य, उसकी प्राप्ति के साधन निहित होते हैं। दूसरा है पौराणिक भाग यह स्थूल उदाहरणों के द्वारा दार्शनिक भाग को स्पष्ट करता है। इसमें मनुष्यों और अलौकिक पुरुषों के जीवन के उपाख्यान आदि होते हैं। इसमें दार्शनिक तत्व, मनुष्यों या अतिप्राकृतिक पुरुषों के थोड़े बहुत काल्पनिक जीवन के उदाहरण द्वारा समझाए जाते है। तीसरा है आनुष्ठानिक भाग यह धर्म का स्थूल भाग है। इसमें पूजा पद्धति, आचार, अनुश्ठान, विविध शरीरिक अंग विन्यास पुष्प, धूप, धूनी, पृभृति, नाना प्रकार की इन्द्रियग्राहन वस्तुएँ है। इन सबको मिलाकर आनुष्ठानिक धर्म का संगठन होता है।''8

इस प्रकार देखा जाए तो हर पंथ, धर्म में प्रारम्भिक वैशम्य सहज है किन्तु अंत में साध्यरूप में, सभी समान हो जाते हैं। इसी विविधता, वैशम्य और सामान्य एकत्व को स्पष्ट करते हुए स्वामी विवेकानंद बतलाते हैं कि ''इसके पहले में एक बात तुमसे पूछता हूँ पृथ्वी के धर्म क्या परस्पर विरोधी हैं? मेरा आशय उन ब्रह्मचारों से नहीं है, जिसमें महान विचार आवेष्ठित हैं मेरा आशय विभिन्न धर्मों में व्यवहृत, मंदिर, भाषा क्रियाकाण्ड, शास्त्र प्रभूति की विविधता से नहीं है, मैं प्रत्येक धर्म के भीतर की आत्मा की बात कहता हूँ।'' 9

विश्व धर्म के प्रत्यय का भाव यही एक सर्वव्यापी सार्वभौमिक दार्शनिक भाग है, न कि वैशम्यमयी अनुष्ठानिक या पौराणिक भाग। विश्व धर्म का अर्थ कतई यह नहीं है, कि सारे विश्व का कोई एक ही धर्म हो वरन् स्वामी विवेकानंद का तो यह मानना है कि संसार में जितने मानव हैं उतने ही धर्म होने चाहिए। सभी को अपने स्वभावानुकुल अपने धर्म का अविष्कार स्वयं करना चाहिए। वे कहते है कि - ''मैं प्रार्थना करता हूँ उनकी संख्या वृद्धि होते होते संसार में जितने मनुष्य है, उतने ही सम्प्रदाय हो जाएँ, जिसमें धर्म राज्य में प्रत्येक मनुष्य अपने पथ से अपनी व्यक्तिगत चिंतन प्रणाली के अनुसार चल सके।'' 10

विवेकानंद के अनुसार धर्म का यह सार्वभौमिक मूलस्वरूप तो मानव के अंदर रहता है इसलिए ''धर्म का अर्थ है उस ब्रह्मत्व की अभिव्यक्ति''11 यह आंतरिक रूप से अनिवार्यत: प्रकटीकृत होता है, बस इसके प्रकटन का साधन भिन्न-भिन्न होता है। कोई भी मनुष्य इससे बच नहीं सकता अत: उस धर्म से जो सबके अंदर एक ही प्रकार का विद्यमान है कोई भी बच नहीं सकता है।'' मेरी यह आस्था है कि धार्मिक विचार मनुष्य की रचना मे ही सन्निहित है और यह बात यहाँ तक सत्य है कि मनुष्य धर्म का त्याग तब तक नहीं कर सकता जब तक उसका शरीर है, मन है, मस्तिष्क है, जीवन है।''12

एक ऐसे दार्शनिक विचार को स्थापित करना चाहते हैं, जिसमें अविरोध है, जिसमें प्रारंभिक रूप में विषमता अवश्य दिखती हो किन्तु अंत में सभी में एकत्व स्वरूप की अनुभूति हो जाती हो।

भगिनी निवेदिता ने एक बार इसी विचार को जब स्वामी विवेकानंद के समक्ष एक दृष्टांत द्वारा प्रस्तुत करते हुए उनसे कहा कि ''मुझे सहसा ऐसा बोध हुआ कि विभिन्न धर्म मानों विभिन्न भाषाएँ मात्र है और हमें हर व्यक्ति से उसी की भाषा में बोलना चाहिए। उनका चेहरा आनंद से खिल उठा और वें कहने लगे हाँ रामकृष्ण परमहंस ही मात्र ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने इसकी शिक्षा दी। वे ही एकमात्र ऐसे व्यक्ति थें जिनमें यह कहने का साहस था कि हमें सभी लोगों से उनकी अपनी भाषा में ही बोलना चाहिए।'' 13

इस प्रकार उपनिषदों के पवित्र सूत्रों से चलता हुआ, रामकृष्ण में प्रकट हुआ भारत का यह सांस्कृतिक वैशिष्ठ, विवेकानंद के विचारों द्वारा पूरे विश्व में स्थापित होता है और वैशम्य को, भिन्नता को, विविधता को जीवन का चिन्ह मानकर स्वीकार करता है तथा साथ ही साथ सभी के अंदर एक सत्य की खोजकर मानव को साथ मिलकर रहने की तार्किक शिक्षा देता है। वे कहते हैं - ''मैं शमशान जैसी भूमि में नहीं रहना चाहता, मैं मनुष्यों के संसार में मनुष्य होना चाहता हूँ। विविधता जीवन का चिन्ह है। भिन्नता विचार का प्रथम चिन्ह है। मैं प्रार्थना करता हूँ पंथ बढ़े और अंत में इतने पंथ हो जाएँ जितने मानव प्राणी हैं।'' 14

यही स्वामी विवेकानंद का धर्म संबंधी वैश्विक विचार तथा व्यावहारिक वेदांत का स्वरूप है।

000

संदर्भ -

1 विवेकानंद साहित्य, पंचम खण्ड पृष्ठ - 35, अद्वैत आश्रम, कोलकाता - 2014, 2 विवेकानंद साहित्य, प्रथम खण्ड पृष्ठ 270, अद्वैत आश्रम कोलकाता- 2014, 3 विवेकानंद साहित्य, पंचम खण्ड पृष्ठ 147, अद्वैत आश्रम कोलकाता- 2014, 4 वही, पृष्ठ - 129, 5 विवेकानंद साहित्य, तृतीय खण्ड पृष्ठ 147, अद्वैत आश्रम कोलकाता 2012, 6 विवेकानंद साहित्य, प्रथम खण्ड पृष्ठ - 8, अद्वैत आश्रम कोलकाता 2014, 7 विवेकानंद साहित्य, अष्टम खण्ड पृष्ठ - 38, अद्वैत आश्रम कोलकाता, 8 विवेकानंद साहित्य, तृतीय खण्ड पृष्ठ - 141, अद्वैत आश्रम कोलकाता 2012, 9 वही पृष्ठ - 129, 10 विवेकानंद साहित्य, तृतीय खण्ड - पृष्ठ - 128, अद्वैत आश्रम कोलकाता 2012, 11 विवेकानंद साहित्य, द्वितीय खण्ड पृष्ठ - 328, अद्वैत आश्रम कोलकाता, 12 वही, पृष्ठ -264, 13 निवेदिता भगिनी, स्वामी विवेकानंद जैसा उन्हे देखा अनुवादक - स्वामी विदेहात्मानंद पृष्ठ - 102, रामकृश्ण मठ, नागपुर - 2018, 14 रोला रोमां - विवेकानंद की जीवनी, अनुवादक डॉ. रघुराज गुप्त पृष्ठ - 203, , अद्वैत आश्रम, कोलकाता - 2017

(शोध आलेख)

अर्चना पैन्यूली कृत 'कितनी माँएँ हैं मेरी' कहानी संग्रह में निरूपित माँ के विविध रूप

शोध लेखक : पूजा, शोधार्थी, हिन्दी विभाग महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

शोध निर्देशक : डॉ. प्रो. कृष्णा जून, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

पूजा
शोधार्थी, हिन्दी विभाग महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा
मोबाइल- 7015414395
ईमेल- poojadeswal796@gmail.com

'माँ' इस सृष्टि की अद्भुत एवं अद्वितीय कृति है। प्रकृति ने इस सृष्टि पर जीवन की अदम्य जिजीविशा का संपूर्ण उत्तरदायित्व जिसे सौंपा है वह है - माँ। 'माँ' शब्द स्वयं में सृष्टि की विराटता को समेटे हुए है। आज तक इसकी न कोई परिभाषा बन पाई है और न ही कोई माँ को व्याख्यायित कर पाया है लेकिन 'माँ' शब्द में लैटिन उपसर्ग 'मातृ' तथा प्रत्यय 'त्व' जोड़ने से बना 'मातृत्व' शब्द संपूर्ण कथानक का आकार ले लेता है। 'मातृत्व' एक शाश्वत प्रक्रिया है, जिसे केवल माँ बनकर ही अनुभव किया जा सकता है। माँ जगन्नियंता को धारण करने वाली सृजन शक्ति है तथा मातृत्व उसका धर्म एवं स्वाभाविक गुण है। अपनी संतान पर वात्सल्य बरसने वाला प्रेम अहैतुक पीयूष-वर्षी मेघ है, जिसकी केवल पूजा ही हो सकती है। शायद यही कारण है कि नारी को 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते...' कहा गया है। भारतीय संस्कृति में जननी एवं जन्मभूमि दोनों को ही माँ का स्थान दिया गया है क्योंकि इन दोनों के बिना देह-रचना संभव नहीं है। श्री राम ने जननी और जन्मभूमि का स्थान स्वर्ग से भी ऊपर बताया और कहा - 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।' माँ सुखद अनुभूति होने के साथ वह शीतल आवरण है जो मनुष्य की दु:ख, तकलीफ की तपिश को ढँक देती है। जीवन में इनका होना ही जीवन की प्रत्येक जटिलता से जूझने में समर्थ बनाता है। अनंत शक्तियों की धारिणी माँ को ईश्वरीय शक्ति का प्रतिरूप मानकर ईश्वर के सदृश माना गया है। एक माँ में ममता, प्यार, पवित्रता, त्याग, ज्ञान, कर्त्तव्य, समर्पण इत्यादि सब है जिसे शब्दों में बयाँ नहीं किया जा सकता। किसी ने सत्य ही कहा है कि ईश्वर सब जगह साक्षात् रूप में नहीं रह सकता, इसलिए उसने माँ की रचना की। वैसे तो प्रत्येक दिन माँ का ही होता है लेकिन फिर भी एक दिन उन्हें पूर्णरूपेण समर्पित है। प्रतिवर्ष मई के दूसरे रविवार को मातृत्व दिवस मनाया जाता है। इसकी शुरुआत सन् 1914 में हुई थी, जिसका इतिहास काफी पुराना रहा है।

माँ, सौतेली माँ, बिनब्याही माँ तथा धाय माँ की परंपरागत परिधि से निकलकर वर्तमान समय में माँ के विविध संभावित रूप यथा: फोस्टर मदर, अडॉप्टेड मदर, सरोगेट मदर, सिंगल मदर, गे मदर... आकार ले चुके हैं जिनका विवेचन लेखिका अर्चना पैन्यूली ने 'कितनी माँएँ हैं मेरी' कहानी संग्रह में किया है। उत्तर प्रदेश, कानपुर में जन्मीं साहित्य जगत् में सुप्रसिद्ध हस्ताक्षर अर्चना पैन्यूली का लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा देहरादून में हुई। 1988 से 1997 तक मुंबई के माध्यमिक स्कूलों में अध्यापन एवं लेखन किया। सितंबर 1997 में डेनमार्क प्रवास किया। वर्तमान समय में ये डेनमार्क में एन.जी.जी.इंटरनेशनल स्कूल में पूर्ण निष्ठा से विज्ञान विषय में अध्यापनरत् हैं और हिन्दी सेवा कर रही हैं। उनके पाँच उपन्यास- परिवर्तन, वेयर डू आई बिलांग, पॉल की तीर्थयात्रा, कैराली मसाज पार्लर, दो कहानी संग्रह- हाइवे म्47, कितनी माँएँ हैं

मेरी, दो काव्य, छः अंग्रेजी पुस्तकें तथा दो अनूदित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इन्हें साहित्य जगत् में हिन्दी सुश्रुशा एवं साहित्यिक अवदान के लिए अनेक पुरस्कारों एवं सम्मानों के साथ सम्मानित एवं पुरस्कृत किया जा चुका है। दुनिया की सभी माँओं को समर्पित तथा आत्मा को व्याख्यायित करने वाली लेखिका ने माँ को मात्र गर्भधारण करने की सीमित परिसीमा से उठाकर उसके विशाल तथा महत्तम स्वरूप को अवलोकित कर 'कितनी माँएँ हैं मेरी' कहानी संग्रह की रचना कर माँ के बहुआयामी रूप को आलोकित किया है।

'बेघर' कहानी मन्नू भंडारी कृत 'आपका बंटी' उपन्यास में बंटी की याद दिलाती है। माता-पिता के स्नेह से वंचित राहुल दादी माँ और नानी माँ का आश्रय पाता है। राहुल के मम्मी, पापा के संबंधों में सामंजस्य न होने से इनके मधुर संबंध तितर-बितर हो जाते हैं और नवीन जीवन की कल्पना कर राहुल की माँ कुसुम डेनमार्क देश में रहकर बार-बार पति बदलती है। राहुल के पिता सुभाष भी पुनर्विवाह कर लेते हैं और अपना नूतन जीवनारंभ करते हैं। लेकिन राहुल न अपनी सौतेली माँ को अपना पाता है और न ही अपने नए पिताओं को। वात्सल्य, प्रेम, ममता, विश्वास, स्थिरता से वंचित राहुल बेघर होकर रह जाता है। वह अपनी नानी माँ से कहता है, "हाँ नानीजी, मैं बेघर हो गया हूँ। मैं मम्मी के साथ नहीं रह सकता और न पापा के संग। क्या आप मुझे अपने संग रख सकती हो? मैं यहीं आपके पास हमेशा के लिए रहना चाहता हूँ।"1 राहुल की दादी माँ का भी फ़ोन आता है और कहती है कि इसके माँ-बाप इसे नहीं पाल सके, हमें ही कुछ करना पड़ेगा। इस प्रकार राहुल अपनी दादी माँ और नानी माँ में मातृत्व की झलक पाता है।

'एक छोटी सी चाह' शीर्षक कहानी में फोस्टर मदर का चित्रांकन है। कहानी में इवा की कोई संतान न होने से वह अनाथालय से स्वाति नामक लड़की को एडोप्ट करती है और अपने मातृत्व की संपूर्ण छटा स्वाति पर उकेर देती है। इवा सदैव गुनगुनाती रहती, "मैं तुम्हें निरंतर प्यार करूँगी, तुम्हें हमेशा प्यार करूँगी। जब तक मैं जीवित रहूँगी, मेरी बच्ची तुम ही रहोगी...।"2 इवा स्वाति का अच्छे-से लालन-पालन कर उसे शिक्षित करती है। वह स्वाति के लिए आकाशमंडल है, और स्वाति ममतामय आगोश में झिलमिलाता तारा।

'आई एम प्राउड ऑफ यू माँ' शीर्षक कहानी में सरोगेट मदर का चित्रांकन है। कहानी में रमा और पराग की कोई संतान न होने से पराग की भाभी, मानसी सरोगेट मदर बनती है, और आरव को जन्म देती है। सत्रह वर्ष पश्चात् मानसी कैंसर से ग्रस्त होने पर आरव की माँ रमा अपना ऑर्गन डॉनेट करती है जिस पर आरव को अपनी माँ पर गर्व महसूस होता है और कहता है, आई एम प्राउड ऑफ यू माँ...। अतः विवेच्य कहानी सरोगेट मदर के प्रति कृतज्ञता भाव प्रकट करती है।

'फैनी' और 'कबूतरी थारो कबूतर गूटर-गूटर गू बोल्यो रे...' कहानियों में लेखिका ने बेज़ुबान पशुओं के मातृत्व को उकेरने में सिद्धहस्तता हासिल की है। मनुष्यों की तरह पशुओं को भी अपने बच्चों से अगाध लगाव होता है। 'फैनी' शीर्षक कहानी में फैनी नामक कुतिया प्रत्येक वर्ष हीट साइकिल प्रक्रिया से गुज़रती और प्रसव वेदना को सहन कर अनेक पिल्लों को जन्म देती। "प्रजनन प्राणीजगत् का आधार है। फैनी को बच्चे जनते देख मुझे यह आभास हुआ कि सृष्टि किस तरह आकार लेती है। कैसे हर जीव अपनी प्रजाति को इस पृथ्वी पर कायम रखने का प्रयास करता है।"3 एक साथ कई पिल्लों को घर में रखना मालकिन के लिए असंभव था। वह अपने चिर-परिचित जन को फैनी से छिपाकर पिल्लों को देती थी। ऐसे में जब फैनी को अपने पिल्ले दिखाई नहीं देते तब वह परिवार के सभी सदस्यों के प्रति रूखापन रख, खाना-पीना छोड़ उदास रहती थी।

'कबूतरी थारो कबूतर गूटर-गूटर गू बोल्यो रे...' शीर्षक कहानी में गर्भवती पीहू कबूतरी से यह सीख लेती है कि पशु-पक्षियों की तरह वह भी अपनी संतान को सर्वोत्तम देगी और उनसे किसी प्रकार की कोई अपेक्षा नहीं करेगी।

'कुंती का कर्ण' शीर्षक कहानी में कुँवारी माँ अर्थात् अनब्याही माँ एवं फोस्टर मदर का चित्रांकन है। यूनिवर्सिटी में बी.एससी. के दौरान एक कुंवारी लड़की अपने बॉयफ्रेंड से गर्भवती हो जाती है। समाज के लांछनों से बचने के लिए वह अपनी संतान एक निःसंतान दंपत्ति को यह कहकर सौंप देती है कि इसे ख़ूब पढ़ाना-लिखाना। ममता और मनोज उसे आश्वासन दिलाते हुए कहते हैं, हम तुम्हें वचन देते हैं कि हम इस शिशु को दुनिया के नामी स्कूल, कॉलेजों में शिक्षा के लिए भेजेंगे...।"4 और तुम अपने मन में किसी प्रकार का गुनाह न पालना। वे कहते हैं कि कुंवारी माताओं के गर्भ से सदा महापुरुषों ने जन्म लिया है। ममता शिशु का नामकरण मृगांक करती हैं। अब वही उसका संसार है। बड़ा होकर मृगांक महाभारत के कर्ण की भाँति ज्ञानी, दानी, पराक्रमी और शूरवीर बनता है। जिससे ममता को गर्व की अनुभूति होती है।

'ऐ माँ' शीर्षक कहानी में अपने ही घर में उपेक्षित माँ की दारुण व्यथा का चित्रांकन है। सास-बहू के मध्य टकराव होने से माँ के दरकते सम्मान को देखकर मायके आई बेटी अत्यंत आहत होती है। वह घर के परिवेश में अपनी माँ को अकेला व असहज महसूस करती है। पाँच बेटे होने के बावजूद एक बेटी ही अपनी माँ का संबल बनती है। जो समाज बेटों से यह अपेक्षा रखता है कि बुढ़ापे में उनकी लाठी का सहारा बेटियाँ नहीं अपितु बेटे बनेंगें क्योंकि बेटियाँ तो पराये घर की होती हैं। यह समाज की संकीर्ण मानसिकता को दर्शाता है। आज बेटे नहीं अपितु बेटियाँ अपने माँ-बाप का संबल बन रही हैं। तमाम कड़वाहट तथा बनते-बिगड़ते रिश्तों के मध्य जो अस्तित्वमान रहता है वह है माँ की ममता। माँ के बीमार होने पर सास-बहुओं में जो कलुष था वह धूल जाता है और माँ स्वर्ग सिधार जाती है।

'सिंगल मदर से सुपर मदर' शीर्षक कहानी में एक अनब्याही समलैंगिक माँ का चित्रांकन है। कहानी में 'गे' मदर स्पर्म बैंक से स्पर्म लेकर रॉयन को जन्म देती है। रायन बड़ा

होने पर अपने पिता के विशय में पूछता है तब उनकी माँ अपनी समलैंगिकता के बारे में बताती है कि मैं अनब्याही माँ हूँ और गे हूँ। "बेटा प्राणिजगत् में हम सभी जानवर है। पति-पत्नी, घर व माता-पिता- ये संरचनाएँ बनावटी हैं। कुदरत ने ऐसा कुछ नहीं बनाया। बच्चे पैदा करने के लिए नारी को पुरुष से सिर्फ स्पर्म चाहिए, वह कहीं से ले सकती है, और मैंने वही किया।"5 रॉयन परिस्थितियों से समझौता कर अपनी माँ पर गर्व महसूस कर सर्वोपरी मानने लगता है और अपनी समलैंगिक माँ से प्रेरित होकर अपनी पत्नी टीना के सहयोग से एक पुस्तक लिखता है- 'क्यों होते हैं लोग गे?' और अपनी इस पुस्तक का लोकार्पण भी वह अपनी माँ से ही कराता है और कहता है माँ का आँचल सलामत है तो फिर जन्नत क्या है?

'कितनी माँएँ हैं मेरी' शीर्षक कहानी में एकाधिक माँओं का चित्रण है। हिंदुस्तानी पिता तथा पाकिस्तानी माँ से जन्में नीलाभ को अपनी बहन नीलोफर से जब यह पता चलता है कि उसकी जननी उसे पुकार रही है तब वह आश्चर्यचकित होकर रह जाता है। उसे अपने माँ- पिता के बारे में संपूर्ण जानकारी नहीं थी। वह दादा-दादी व अन्य परिवारजनों के सानिंध्य में पला-बढ़ा था। अपनी सौतेली माँ व भाई-बहनों से भी इन्हें स्नेह मिला लेकिन इनकी माँ हमेशा अनजान व रहस्यमय बनी रही। उसका अपने बेटे से संपर्क स्थापित नहीं हो पाया। ऐसे में देश और काल के कई अंतराल माँ शब्द की उष्मा और अस्तित्व को निगल चुके होते हैं। चूँकि मातृत्व तभी फलीभूत होता है जब संतान का सानिध्य भी हो। मात्र जन्म देने भर से मातृत्व सिद्ध नहीं होता। निश्चित ही जीवन के जिस मोड़ पर नीलाभ को अपनी माँ की दस्तक सुनाई देती है वह आह्लादित नहीं कर सकता था। अलबता वह किंकर्तव्यविमूढ़ अवश्य होता है। यहाँ इनकी सहधर्मिणी इवोना के चरित्र का उत्कर्ष उभरकर आता है, वह न केवल अपने पति को मरणासन्न माँ से मिलने हेतु प्रेरित करती है अपितु स्वयं भी पाकिस्तान जाने का पूर्ण प्रबंध करती है तथा अपनी सूझबूझ व अंतर्दृष्टि से नीलाभ को पश्चाताप की अग्नि में जलने से बचा लेती है। "कई बार मैं सोचता हूँ, कितनी माँएँ हैं मेरी! छोटा था तो दादी माँ को ही अपनी माँ समझता था। बड़ा हुआ तो सौतेली माँ जीवन में आई और अब अपनी माँ-पचास साल की उम्र में मिली क्यों मिली, वह मुझे क्षण भर के लिए...?"6

'तुम्हारी धरती माँ' शीर्षक कहानी में धरती माँ का चित्रांकन है। विवेच्य कहानी के माध्यम से लेखिका ने उद्घाटित किया है कि मनुष्य को प्राकृतिक संसाधनों का दोहन न कर उनका संरक्षण करना चाहिए। चूँकि प्रकृति सभी की पूँजी है। धरती माँ को अपनी सभी संतानों से समान स्नेह है फिर चाहे वह जीव-जंतु हो या मनुष्य जाति। लेकिन वह मनुष्य जाति पर सर्वाधिक गर्व महसूस करती है। "मुझे भी अपनी मनुष्यरूपी प्रजाति पर अभिमान है। मनुज मेरा सबसे छोटा बालक है, मेरा लाल है, मेरी शान है। उसकी हर हाल में सलामती चाहती हूँ। मुझे उसकी उन्नति से बेहद खुशी होती है।"7 धरती माँ जानती है कि उसकी संतानें अनेक संघर्षों से जूझ रही हैं। वह अपनी संतानों को सचेत करती हुई कहती है, "हे मनुष्य, तू सबसे महान है, तेरे हाथों में बहुत कुछ है। तेरी मुट्ठियों में बंद तूफ़ान है। तुम्हें इस प्रकृति को सँभालना है। अपनी धरती माँ की रक्षा करनी है।"8 वह अपनी संतानों को आशीर्वचन देती है कि मस्त, प्रसन्नचित्त होकर अपना जीवन जीयो। वह सर्वे भवन्तु सुखिन: की कामना कर सब कुछ मनुश्य पर ही न्यौछावर कर देती है।

'आख़िर मैं सासू माँ हूँ' शीर्षक कहानी में उद्घाटित किया गया है कि सास-बहू का रिश्ता माँ-बेटी जैसा कोमल होता है। इसे भलीभाँति निभाना चाहिए। सास-बहू के स्नेहिल रिश्ते से ही परिवार की नींव मजबूत बनती है। कहानी में सास अपनी बहू निधि को मेरी बिटिया...मेरी बिटिया... कहकर यह एहसास दिला देती है कि वह सास नहीं अपितु उसकी माँ है। तत्पश्चात् बहू अपनी सास से एक माँ जैसी अपेक्षा रखने लगी और जब सास बहू की अपेक्षाओं पर खरी नहीं उतरती तब बहू अपनी सासू माँ से खफा होने लगती है। "ये रिश्ते अलग-अलग हैं, जो अलग-अलग तरह से निभाने चाहिए, मगर प्रेम-स्नेह, आत्मीयता व सामंजस्य से ही रिश्ते टिकाऊ रहते हैं, टोका-टाकी, तानों, आक्षेप व लांछनों से नहीं।"9 निधि को जब अपनी प्रेगनेंसी का पता चलता है तो वह मातृत्व के इस एहसास से विचलित होने की बजाए प्रफुल्लित हो उठती है और सर्वप्रथम अपनी सासू माँ को ही सूचित करती है और मन ही मन गुनगुनाने लगती है - "मेरी प्यारी, निराली, बिगड़ी हुई सासू माँ... / जिस दिन मैंने तुम्हारे बेटे से शादी की, / एक अन्य माँ मुझको मिली। ... / तुम मेरे लिए सिर्फ एक माँ ही नहीं, / माँ से भी कहीं बढ़कर हो।"10

सासू माँ भी सुखद आश्चर्य से भर जाती है और कहती है कि बताओ बेबी सिटिंग के लिए कब आना है। इनके प्रत्युत्तर में निधि कहती है- आपकी मौजूदगी ही हमारे लिए सब कुछ है।

इस प्रकार उपरोक्त कहानियों के विवरण से स्पष्ट होता है कि माँ का अभिप्राय: केवल गर्भधारण करना, जन्म देना तथा स्तनपान कराना न होकर बच्चे का सुचारु ढंग से लालन-पालन कर सर्वांगीण विकास करने में और उनके जीवन को सही दिशा देना है। मात्र जन्म देना ही मातृत्व की एकमात्र शर्त नहीं है वरन् वह जैविक संबंधों से भी परे ऊपर का सत्य है। परिस्थितियों की उठा पठक के मध्य उलझे घटनाक्रम में माँ किस प्रकार अस्तित्वमान रहती है यही बात संग्रह की सभी कहानियों का प्राण तत्व है। ज्ञान-विज्ञान से परिपूर्ण लेखिका भाषा की सहजता एवं सरलता पर बल देती हैं जो अध्येता के हृदय को स्पर्श करती है।

000

संदर्भ- अर्चना पैन्यूली, कितनी माँएँ हैं मेरी, पृ., 35, अर्चना पैन्यूली, कितनी माँएँ हैं मेरी, पृ., 35, अर्चना पैन्यूली, कितनी माँएँ हैं मेरी, पृ., 51, वही, पृ., 72, वही, पृ., 87, अर्चना पैन्यूली, कितनी माँएँ हैं मेरी, पृ., 109, अर्चना पैन्यूली, कितनी माँएँ हैं मेरी, पृ., 128, वही, पृ., 138, वही, पृ0, 141, वही,पृ., 177, अर्चना पैन्यूली, कितनी माँएँ हैं मेरी, पृ., 178

(शोध आलेख)

भाषा का महत्त्व

शोध लेखक : डॉ. सुनीता कुमारी
सहायक प्राध्यापक
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
राँची विश्वविद्यालय, राँची

सामाजिक प्राणी होने के नाते मनुष्य को आपस में सदा-सर्वदा ही विचार-विनिमय करना पड़ता है। कभी शब्दों या वाक्यों के द्वारा तो कभी संकेतों के द्वारा। तात्पर्य यह है कि अपने व्यापकतम रूप में भाषा वह साधन है जिसके माध्यम से हम सोचते हैं तथा अपने विचारों को व्यक्त करते हैं, स्पष्ट रूप से कहें तो गंध-इन्द्रिय, स्वाद-इन्द्रिय, स्पर्श-इन्द्रिय, दृग-इन्द्रिय तथा कर्ण-इन्द्रिय इन पाँचों ज्ञान इन्द्रियों में किसी के भी माध्यम से अपनी बात कही जा सकती है। भाषा शब्द संस्कृत की 'भाष' धातु से बना है जिसका अर्थ है- 'बोलना या कहना' अर्थात् भाषा वह है जिसे बोला जाय। अनेक विद्वानों ने भाषा को अपने अनुसार पारिभाषित किया है, स्वीट के अनुसार भाषा की परिभाषा- ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा विचारों को प्रकट करना ही भाषा है। भाषा की जब हम बात करते हैं स्वभाविक रूप से मन में एक प्रश्न उठता है कि क्या केवल मनुष्य के पास ही भाषा हैं, संसार के अन्य प्राणियों के पास नहीं? तो यहाँ हम कह सकते हैं कि- "विचार प्रदान करनेवाली भाषा केवल और केवल मनुष्य के पास ही है, भाषा के आधार पर ही मनुष्य संसार का श्रेष्ठ प्राणी बन सका है, भाषा का विस्तार एवं विकास मनुष्य का अपना विकास है।"

इस तरह हम देखते हैं कि भाषा विचार-विनिमय का सर्वोत्तम साधन है, व्यवहार का एक जरिया है और अभिव्यक्ति का संवाहक भी है। आख़िर वे कौन-कौन से बिन्दु हैं जिनके आधार पर हम मनुष्य के व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में भाषा का क्या महत्त्व है उसे समझ पाएँ तो कह सकते हैं कि- 1.भाषा सामाजिक जीवन में प्रगति का माध्यम है- भाषा ही है जो समाज के सारे मनुष्यों को एक सूत्र ही है जो एक सूत्र में बाँधती है, किसी भी समाज की भाषा जितनी विकसित होगी समाज का उतना ही विकास हागा, हम कह सकते हैं कि भाषा सामाजिक जीवन में प्रगति का आधार है। दूसरा महत्त्वपूर्ण बिन्दु है- 2.राष्ट्रीय एकता का आधार - भाषा राष्ट्रीय एकता का मूल आधार है, भाषा विभिन्न राष्ट्रों के बीच विचार-विनिमय व्यापार एवं संस्कृति के आदान-प्रदान का साधन बनती है अगर भाषा न हो तो विभिन्न राष्ट्रों के विद्वानों के विचार एक राष्ट्र तक ही सिमट कर रह जाते। 3.ज्ञान प्राप्ति का मुख्य साधन - भाषा के माध्यम से ही एक पीढ़ी अपने संचित ज्ञान को विरासत के रूप में ही दूसरी पीढ़ी को सौंपती है जिससे कि मानव-समाज प्राचीन एवं नवीन इतिहास को समझ पाने में समर्थ होता है। 4.व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक - भाषा व्यक्ति के विकास का महत्त्वपूर्ण साधन है मनुष्य अपने भावों की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से ही करता है। अभिव्यक्ति के कारण ही मनुष्य के अंदर छिपी हुई प्रतिभा के दर्शन होते हैं। एक से अनेक भाषाओं को बोल पाना एक विकसित व्यक्तित्व के लक्षण कहे जा सकते हैं। 5.साहित्य कला, सभ्यता एवं संस्कृति का विकास - भाषा के बिना साहित्य के सर्जना की कल्पना नहीं की जा सकती। भाषा के द्वारा ही हम नवीन आविष्कारों के आधार पर नई सृष्टि का निर्माण करते हुए अपनी भाषा को भी उन्नत बनाते हैं। 6.चिंतन, मनन का स्त्रोत या माध्यम - भाषा के माध्यम से ही मनुष्य विचारों की अनन्त ऊँचाइयों को छू पाता है। चिंतन, मनन के फलस्वरूप ही विश्व शांति एवं राष्ट्रीय एकता का प्रयास निरंतर चलता रहता है।

अंतत: हम कह सकते हैं कि भाषा मनुष्य के जीवन का वह मूलाधार है जिसके बिना मनुष्य मात्र की कल्पना नहीं की जा सकती, अन्त में डॉ. जगदीश व्योम की ये पंक्तियाँ बड़ी सटीक बैठती हैं- मेरी भाषा में तोते भी राम-राम जब कहते हैं, मेरे रोम-रोम में मानों सुधा स्त्रोत तब बहते हैं सब कुछ छूट जाए मैं अपनी भाषा कभी न छोड़ूँगा, वह मेरी माता है उससे नाता कैसे तोड़ूँगा।

000

संदर्भ - 1.भाषा विज्ञान- डॉ. भोलानाथ तिवारी- किताब महल प्रथम संस्करण, 1951, 2.भाषा विज्ञान और हिन्दी भाषा- डॉ. नरेश मिश्र - संजय प्रकाशन दिल्ली, सन् 2016, 3.सामान्य भाषा विज्ञान - डॉ. बाबू राम सक्सेना - हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद, सन् 1883, 4.हिन्दी: उद्भव विकास और रूप - डॉ. हरदेव बाहरी - किताब महल इलाहाबाद, सन् 1980, 5.ऐतिहासिक भाषा विज्ञान और हिन्दी भाषा- डॉ. रामविलास शर्मा - राजकमल प्रकाशन वर्ष 2017

डॉ. सुनीता कुमारी
सहायक प्राध्यापक
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
राँची विश्वविद्यालय, राँची
मोबाइल- 9470368260

(शोध आलेख)

लोकगीत स्त्री भावना का दर्पण : हर्ष और वेदना के स्वर

शोध लेखक : डॉ. कविश्री जायसवाल
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी
एन. ए. एस. कॉलेज, मेरठ
मोबाइल- 9412365513

डॉ. कविश्री जायसवाल
एम-52 मीनाक्षीपुरम
मवाना रोड, मेरठ 250001
उत्तर प्रदेश
मोबाइल- 9412365513
ईमेल- kavishrijaiswal01@gmail.com

शोधसार-''लोकगीत जनजीवन की सहज चेतना है लोकगीतों का विस्तार कहाँ तक है इसे कोई नहीं बता सकता, किन्तु इनमें सदियों से चले आ रहे धार्मिक विश्वास एवं परम्पराएँ हैं जिनमें स्त्री मन की भावना निहित है। ये हृदय की गहराइयों से जन्मे हैं। श्रुति परम्परा से अपने विकास का मार्ग बनाते हैं अत: इनमें तर्क कम भावना अधिक होती है।''

बीज शब्द- मानवीय भावना, इच्छा, हर्ष, वेदना, अभिव्यक्ति, हृदयस्पर्शी, अनुभूति, पुरातनकाल, परम्परा, संस्कृति

मूल आलेख-

''लोक साहित्य के बिना हम किसी देश की सभ्यता, संस्कृति, धर्म नीति, रीति-रिवाज, कला साहित्य, सामाजिक अभ्युदय और आंकाक्षाओं का सूक्ष्म अवलोकन नहीं कर सकते।''(1)

लोक साहित्य वह दर्पण है जिसमें समाज का आन्तरिक रूप प्रतिबिम्बित होता रहता है। इसमें 'सहजता एवं यथार्थता की उमंग' भरी रहती है।

जो साहित्य लोक-जीवन का दर्पण बनकर जन-जीवन के हृदय के उद्‌गारों को दर्शाता है उसे लोक साहित्य कहते हैं।''लोक-साहित्य जन-जन का प्रतिबिम्ब है, दर्पण है और इसका प्रमाण है। 'लोक' मानव-समाज का वह वर्ग है जो जीवन में सहजता, सरलता तथा सुलभता में विश्वास करता है। लोक की अभिव्यक्ति के तत्व परम्परा के प्रवाह को जीवित रखते हैं। जन-जन के जीवन में निहित गुण, भाषा, लिपि, कला, शिल्प, सभ्यता, नैतिकता और साधना ही नवकर्णो से संस्कृति का शृंगार करते हैं। वही सब संचित होकर लोक-साहित्य का स्वरूप बन जाता है। संपूर्ण लोक की सौन्दर्यानुभूति जन-जीवन में प्रेरणा भरती है, सुरभित करती है और आनंद जगाती है।''(2)

लोक साहित्य में लोक गीतों का स्थान सबसे ऊँचा है। मानव सदा से रागप्रिय रहा है, क्योंकि उसके मनोभाव छंदमय होते हैं। उसकी इस स्वाभाविक अनुरक्ति के ही कारण उसके मनोभावों ने भाषा के माध्यम से गीतों का रूप ले लिया। यही कारण है कि अधिकांश लोक साहित्य गीतमय है।

डॉ. कुंज बिहारी दास ने भी लोकगीतों की परिभाषा को बतलाते हुए 'लोक' शब्द की सुन्दर व्याख्या की है-

''लोकगीत उन लोगों के जीवन की अनायास प्रवाहात्मक अभिव्यक्ति है जो सुसंस्कृत तथा सुसभ्य प्रभावों से बाहर कम या अधिक रूप में आदिम अवस्था में निवास करते हैं।''(3)

लोक गीतों का जन्म कब हुआ, यह ठीक-ठीक बताना कठिन है परन्तु मैं यह अवश्य मानूँगी कि लोक गीतों की अविरल सरिता पुरातन काल से प्रवाहित होती आ रही है। लोक गीत लोक कंठो में बसे हुए हैं, वे अनमोल तथा हृदय स्पर्शी भावनाएँ हैं जो हज़ारों सालों से लोक जीवन की अभिव्यक्ति तथा उसके हर्ष और वेदना को उजागर करने का साधन बनी हुई हैं। भावाभिव्यक्ति सदा से स्त्रियों के स्वभाव में रही है। प्राचीनकाल से ही वे अपने हृदय की अनुभूतियों को किसी न किसी रूप में व्यक्त करने की चेष्टा करती आई हैं। अत: हमारी दादी-नानी के कंठ से जो भाव प्रकट हुए, वही आगे चलकर गीत बन गए। जिन्हे हमने छोटा सा नाम 'लोकगीत' दिया। लोकगीतों की परम्परा सदा से मौखिक रही है। यह श्रुत परम्परा द्वारा ही एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को प्राप्त होते हैं।

लोकगीतों में एक अद्‌भुत मिठास तथा हृदयस्पर्शी सरलता छुपी रही है। लोकगीतों में जिन भावों की अभिव्यक्ति होती है वे किसी एक की न होकर सामूहिक होती हैं। भावों की मार्मिक तथा मधुर अभिव्यक्ति अपने सहज शिल्प के कारण मन पर सीधी चोट करती है। किसी एक स्त्री के गाने में भी लोकगीत की पीछे समूह गाता सुनाई देता है। लोकगीत की भावनाओं में कोई भेद नहीं होता। कोई गाँव की रहने वाली स्त्री हो या शहरी जन जीवन की पढ़ी लिखी स्त्री हो या अनपढ़, अमीर हो या ग़रीब सभी की आँखे वेदना में आँसू बहाती हैं तथा हर्ष में आनन्दित होती है।

सन्तान के जन्म पर सब को एक ही जैसा आनन्द प्राप्त होता है।

लोकगीत इसी हर्ष और वेदना का उद्‌गार होते हैं। लोकगीतों की परम्परा तथा उसके लोक-सामूहिक रूप को समझाते हुए डॉ. सत्येन्द्र जो कहते हैं-

''लोकगीतों के शब्दों में लोक मानसपरक अथवा आदिम प्रवृत्ति के जैसा एक प्रभाव होता है जिसकी व्याख्या नहीं की जा सकती, केवल जिसे अनुभव किया जा सकता है। उसमें आदिम मानवीय भावना के उत्तराधिकरण का एक रहस्य रहता है, उसमें जैसे एक टोना रहा है। लोकगीत जैसे एक 'देवी वाक्य' है जिसका न कोई निर्माता है न स्वर-संधाता। वह जैसे मानव समुदाय में सहज ही स्वयं उद्धारित हो उठा है और बिना प्रयास के सहज ही कंठ से कंठ पर उतरती हुई अपनी परम्परा स्थापित करता रहा है।''(4)

लोकगीतों की परम्परा सदा से मौखिक रही है ये मैं पहले भी कह चुकी हूँ। अत: इन गीतों की गतिविधि लिखित गीतों से भिन्न है। लिखित गीतों में उनके रचयिता का पता रहता है उनमें कवि के व्यक्तिगत भावों कीझलक मिलती है। श्री गोविन्द चातक जी कहते हैं-

''लोकगीत लोकजीवन के बीच से उपजते हैं। वे बनाये नहीं जाते वरन् सावन के उमड़ते-घुमड़ते बादलों की तरह बरसते हैं। हमें मालूम नही होता कि उन्हें किसने, कब रच डाला, फिर भी वे परम ब्रह्म की भाँति अनादि, अनंत और सर्वव्यापी होते हैं।''(5)

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसके स्वप्न और सभी इच्छाएँ समाज से प्रभावित होती है और इतिहास गवाह है कि हमारे समाज में स्त्री और पुरुष में भेदभाव सदैव ही रहा है। जहाँ पुरुष अपने सपनों पर ऊँची-ऊँची इमारतों और अपने नवीन रास्ता को बनाता रहा, वहीं स्त्रियों के सपने और उनकी इच्छाएँ उनकी वेदनाएँ उनके लोकगीतों में दर्ज होती रही।

''स्त्री जीवन से संबन्धित भावनाएँ तथा पितृसत्तात्मक व्यवस्था में जकड़ी हुई स्त्री का रुदन कई-कई रूपों और तेवरों में लोकगीतों के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है। लोकगीतों में स्त्री की अपनी भावनाएँ परम्पराओं के प्रति क्षोभ, पितृसत्तात्मक जकड़न की बेचैनी, अपने निजी जीवन के सुख-दुख, आशा, इच्छाएँ, वेदना, मिलन की जीवंत अभिव्यक्तियाँ दिखाई देती हैं।''(6)

जब लिपि का आविष्कार भी नहीं हुआ था तब भी स्त्रियों के द्वारा लोकगीत गाये जाते थे जो पीढ़ी दर पीढ़ी बेटी माँ से या बहू सास से सुनकर याद कर लेती थी। लोकगीत पुरुष की अपेक्षा स्त्रियों के जीवन के अधिक करीब होते हैं। स्त्रियाँ हमेशा से ही अपने मनोभावों को व्यक्त करने के लिए गीतों का सहारा लेती हैं मैनें अक्सर अपने घरों में अपनी माँ, बुआ, दादी, चाची, नानी, मामी आदि को जीवन के हर सुख-दुख में गुनगुनाते सुना। सीधे हृदय को स्पर्श करते हुए भावों को व्यक्त कर पाना गीतों में ही सम्भव है। गर्भाधान से लेकर बालक के प्रथम रुदन, विवाह से लेकर जीवन के अंतिम पड़ाव तक के भावचित्र उनमें होते हैं। प्रस्तुत लोकगीत में एक गर्भवती स्त्री अपनी गर्भावस्था का सुन्दर चित्र खींचती नज़र आती है। वह अपनी सास, ननद और पति से अपना दर्द लोकगीत के सहारे बाँटती है। - ''चार महीना जब बीते तै सासू से मिनती करे हो / सासू हमसे रसोइया नहीं होत हमका दुखदारिनी हो, / पाँच महीना जब बीते तै ससुर से मिनती करे हो / बाबा हमसे ना घरवा लिपात, गोतनी से करावहू हो / छटा महीना जब बीते तै ननदी से मिनती करे हो / ननदी हमसे ने तेलवा जंवाव गीतनी जे जंतावहू हो / सात महीने जब बीते तै स्वामी से मिनती को हों / स्वामी हमको न सेजिया सोहाला तै भुइया जाई सोवब हो / आठ महीना जब बीते तै स्वामी से मिनती करे हो / स्वामी हमसे न गरमी सहाला तै बेनिया डोलावहू हो।''(7)

लोकगीतों में कन्या का जन्म लेना बहुत कम देखने को मिलता है। कन्या का जन्म हमारे लोक जीवन के लिए अच्छा नहीं माना जाता। एक लोकगीत में कोई माता कहती है कि यदि मैं जानती कि मुझे पुत्री पैदा होगी तो मैं मिर्च पी जाती। जिसकी तेज़ कड़वाहट और जलन से ये लड़की मेरी कोख में ही मर जाती और मैं इस दुखद प्रसव वेदना से मुक्त हो जाती। - ''जाहु हम जानिती कि धियवा कोखी रे जननि हे, / पिइती मैं मिरिच झराई रे, / मारिच के झाके धियवा मरि रे जाइति, / छुटि जाइते गरूवा सन्ताप रे।''(8)

दूसरी तरफ पुत्र के जन्म होने पर घर में हँसी खुशी वातावरण बन जाता है। भतीजे के जन्म का समाचार पाते ही ननद भी अच्छे-अच्छे उपहार लेकर स्वयं आ जाती है। - ''मौरी भौजी के लाला भये / नंदलाला भये मैनें ख़बर जो पाई आधी रात।''

और स्वयं जच्चा भी अपने पुत्र को देखकर गर्व और हर्ष से कह उठती है। - ''मैं तो बाटूगीं, थाली गिलास, ओजी भरतार, / मैं कुआँ पूजूँ बाजे से / चाहे सास बिके चाहे ससुर बिके / चाहे बिक जाए पूरा परिवार, मैं कुआँ पूजूँ बाजे से।''

कुआँ पूजन सिर्फ पुत्र जन्म पर ही होता है। इसी खुशी में वह सब कुछ भूल जाती है। किसी-किसी सोहर में मायके का मान भी नज़र आता है। हमारे लोक जीवन में आज भी कन्या पक्ष को वर पक्ष से कमतर ही आँका जाता है। अक्सर सास ननद बहू के मायके वालों की बुराई करती है जिसे बहू सुन कर चुपचाप सहन करती है किन्तु लोकगीतों के माध्यम से वो अपने मन की कड़वाहट को उजागर भी कर देती है। वह कहती है- ''छोटके से अंगना में मैं तो सासु, ननदी को बुलाऊँगी / सासु नहीं आई तो अपनी अम्मा को बुलाऊँगी / ननदी नहीं आई तो अपनी बहिनी को बुलाऊँगी / अम्मा से बढ़कर कोऊ न होगा / बहिन से बढ़कर कोऊ न होगा।''

एक और गीत में वह कहती है- हाय राम ऐसी कसैइया मोरी सास रे / अपना खावे हलवा पूरी / हमका कहे दोना चाट ले / हाय राम ऐसी कसैइया मोरी सास रे।

एक और लोकगीत सोहर में ननद और भावज का आपस में स्नेह और ईर्ष्या दोना का रूप है- ''आई है ननदी, ड्यौढ़ी चढ़ि बैठी, / कंगना मोरा माँगै धीरे-धीरे। / न तोरे ननदी रे भईया गढ़ावा न बाबा / पहिराबा धीर-धीरे / समवा में बैठे हैं भईया तोहारे / बहिनि फिरियादे धीरे-धीरे। / हमरे भये लला, ननदी घर लुटन घर आई / चार टका के लाई

झंबुलिया / हमारे लला दुई पैसा के ताखी / हमरे हाथन के कंगना माँगे / हमारे सइयाँ के हाथ के अंगूठी / हमरे गले के तिलरी माँगें / हमारे सइयाँ के गले के मोहन माला / जो मैं जनतिउ घर बन लुटि है / हमारे लला नैहर जाय उपजातिउँ / जो तुम भउजी नैहर जइहो / हुवऊँ ते लेहौं बुलाए।''(9)

इसी प्रकार से लोकगीतों ननद-भावज का हँसी-मज़ाक भी देखने को मिलता है एक गीत में ननद भाभी को चिढ़ाती है कि इतना सुन्दर बालक जन्म कैसे हुआ रे, तो भाभी भी ननद को पलट कर जवाब देती है कि ननदोई जी पर नज़र पड़ गई, इसी कारण इतना सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। - ''हंसि-हंसि पूछहि ननदी भउजी चलिक / चित लायऊ होरिल बड़ सुन्दर / खिरकिन खिरकिन नहाउयं झरोखन दीठि गई है / ननदी परिगै ननदोइया जी पै / दीठि होरिल बड़ सुन्दर।''(10)

समाज ने हमेशा लड़की को पराया धन कहा और व्यवहार में भी ऐसा ही देखा गया। विवाह के बाद जैसे लड़की का नाता घर से टूट ही जाता है। इस लोकगीत में वही दुख साफ झलक रहा है। - काहे को बियाहे विदेस ओ बाबुल मोरे / भइया को दियो ऊँची अटिरिया / हमको दियो भेजे परदेस।

मैं तो लाकगीतों की समृद्धि में सबसे अधिक स्त्री के योगदान को ही मानती हूँ। मैनें ख़ुद स्वयं अपने घरों की स्त्रियों को अक्सर गाते गुनगुनाते देखा। उनके गीतों के बोल से ही उनके मन के हर्ष-उल्लास, पीड़ा-वेदना को समझा जा सकता है। मुझे याद है मेरे विवाह के समय मेरी माँ अक्सर एक गीत गाया करती थी और वो गीत केवल गीत न होकर उनके मातृत्व मन की अंतर पीड़ा होती थी तब वे मुझे गाते हुए कम रोते हुए अधिक लगती थी- ''बेटी धीरही-धीरही पाँव धरि ही / तू का दूरही गावन जइवा हो / बेटी धरती से माँगहि असीरवाद / तै दूर ही गवन जाइबो हो।''(11)

एक और गीत मुझे स्मरण आ रहा है जो वो अक्सर काम करते हुए गाती थी। शायद अपने काम की बोझिल थकान मिटाने के लिए वो गाती थी। - सेर भर गेहुआ रे, बास के चंगेरिया / अरी पीसन चली जंतसरिया हो रामा। / जाँत न चले राम किलवा ने डोले, / अरे जुअवा घरे सखी रोवई हो रामा।

तब मैं भी उनसे छुपकर उनके दर्द भरे गीतों को सुनती और पलकों से टपकने को तैयार आँसूओं को पोछकर कही दूर हट जाती। परिवार में विरहणी का और विशेष प्रकार से एक गृहिणी की मर्यादाओं से घिरा जीवन है। एक ओर पति की अनुपस्थिति में गृहस्थी के कार्यों की विवशता थी, तो दूसरा अपना सूनापन। मेरे पिताजी विश्वयात्री डॉ. कामता कमलेश अक्सर प्रवास यात्रा पर रहते थे। जब वे दो वर्ष के लिए 'सूरिनाम' में विजिटिंग प्रोफेसर बन कर गए। तब हम सब कि ज़िम्मेदारी अकेली मेरी माँ के कंधों पर आ गई। हम सब की परवरिश करते हुए वे अकेले में अपनी वेदना के भार को हल्का करने के लिए गाती रहती थी- हमरा बंगलवा चुअन लागे / तुह पिया छायेउ परदेस / ससुर छवावै आपन बंगला / देवरा छवावै आपन चौपार / हमरा बंगलवा चुअन लागे / बिन पियु को सुधि लेई। / वे एक बारह मासा भी गाती थी। / नहिं आए हो हमारे स्याम / जेठो न आए, असाढ़ो न आए / तर कई भुभरि ऊपर कई धाम / सावन न आए, भादो न आए / बहि चलि नदिया उमड़ि चले नार / क्वारौ न आए कार्तिक नहिं आए, / उई गई जुन्हिया, छिटिक रहे तारे / अगहन न आए, पूस नहिं आए / तर कांयै गोड़वा, ऊपर कांये सेज / माह न आए फागुन नहिं आए / उड़त गुलाल खैलो सखि फाग / चैतो न आए, बैसाखो न आए। / फरि गए अमवा, फूलि रहे टेसू।

अनपढ़ होने के कारण माँ स्वयं पिता को पत्र नहीं लिख पाती थी। इसलिए जब वो हमसे पत्र लिखवाती थीं तब भी उनके वेदना के स्वर आँसू बनकर गीतों के माध्यम से छलक पड़ते थे। काहे क करऊँ कगदवा काहे मसिआनी करू हो राम / केहि बोली क बोलऊँ कयथवा / चिठिया लिखि भेजऊँ हो राम / अंचरे क करऊँ कगदवा, / काजर मासिआनि करऊँ हो राम।

और इस प्रकार हम पाते हैं कि लोकगीत ने जीवन के उत्सव, विवाद, भक्ति भावना, हास्य-व्यंग, प्रेम-प्रकृति, आक्रोश आदि से जुड़े भावों को अभिव्यक्ति दी है। इसमें नारी के जीवन की, उसके भाव-प्रभावों को सूक्ष्म व मनौवैज्ञानिक अभिव्यंजना हुई है। स्त्री ने अपने कोमल कण्ठ द्वारा जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तु किया है। लोकगीतों में स्त्री के दो स्वरूप हैं, एक ओर सती साध्वी नारी, आज्ञाकारी पत्नी, सुघड़ सलोनी और चतुर गृहणी, योग्य प्रियतमा, आज्ञाकार बेटी माता तुल्य सास, बहिन तुल्य ननद को मानती है तो दूसरी ओर इन्हीं गीतों में कर्कशा नारी का वह रूप भी है जहाँ वह अत्याचारी सास, कुढ़ने वाली नन्द भी है। लोकगीतों की इन स्त्रियों का त्याग और स्वाभिमान बहुत ऊँचा है। उसने जीवन की आयु की प्रत्येक सीढ़ी पर बहुत समझदारी से चरण बढ़ाए हैं। बालिका, युवती, प्रौढ़ा, वृद्धा सम्पूर्ण अवस्थाएँ अपने में सीमित और पूर्ण है। हजारी प्रसाद जी के शब्दों में ''लोकगीत की एक-एक बहू के चित्रण पर रीतिकाल की सौ-सौ मुग्धाएँ खडिताएँ और धीराएँ न्यौछावर की जा सकती हैं, क्योंकि वे निरलंकार होने पर भी प्राणमयी हैं और दूसरी अंलकारों से लदी भी निष्प्राण है। ये अपने जीवन में किसी शास्त्र विशेष की मुखापेक्षी नहीं है। ये अपने आप में पूर्ण है।''(12)

000

सन्दर्भ - (1) डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका, पृ0सं0-46. (2) डॉ. हर्षनन्दिनी भाटिया, 'प्राक्कथन' लोकभाषा, पृ0सं0-07. (3) डॉ. कुंज बिहारी दास, जनपद वर्ष एकअंक-एक। (4) डॉ. सत्येन्द्र, लोक साहित्य विज्ञान, पृसं-326-27. (5) श्री गोविन्द चातक, गढ़वाली लोक गीत, पृसं-40. (6) चन्द्रकला भंडारी, लोकगीतों में स्त्री प्रवाह, दिसम्बर 2017-फरवरी 2018 पृ0सं0-37. (7) सुचीता रामदीन, संस्कार मंजरी, पृसं-11. (8) डॉ. चम्पा सिंह, लोक साहित्य की प्रासंगिकता, पृसं-42. (9) सरोज़नी रोहतगी, अवधी का लोक साहित्य, पृसं-160-161. (10) सरोज़नी रोहतगी, अवधी का लोक साहित्य, पृसं-266. (11) अपनी माँ के द्वारा सुना हुआ गीत। (12) डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृसं-130.

शोध आलेख

(शोध आलेख)

पंकज सुबीर के कथा साहित्य में सामाजिक चेतना

शोध लेखक : दीपक गिरकर

शोध सार : पंकज सुबीर आज के समय के सशक्त कथाकार हैं। पंकज सुबीर एक ऐसे कथाकार हैं जिन्होंने बहुत कम समय में प्रभावशाली कहानियाँ और उपन्यास लिखे हैं। पंकज सुबीर सामाजिक मुद्दों को अपनी लेखनी का विषय बनाकर समाज को सजग करने वाले कथाकार हैं। कथाकार पंकज सुबीर अपने लेखन में अक्सर सामाजिक विषयों को उठाते रहे हैं। इनका लेखन इस सदी के नई सामाजिक समस्याओं एवं मुद्दों का यथार्थ लेखन है। पंकज सुबीर की कहानियों में आम जनजीवन से जुड़े सर्वहारा पात्रों की उपस्थिति हैं और साथ ही ग्रामीण व क़स्बाई जनजीवन के चित्र दृश्यमान हैं। ग्रामीण व कस्बाई परिवेश का चित्रण पंकज सुबीर ने सामाजिक एवं पारिवारिक विषमताओं के साथ अपनी कथाओं के माध्यम से मुखरित किया है। वे अपने कथा साहित्य में मानवीय मूल्यों को केंद्र में रखकर सृजन करते हैं। इनके कथा साहित्य में भारतीय संस्कृति की सौंधी महक है। इनके के उपन्यासों और कहानियों में जीवन तथा समाज का यथार्थ रूप देखने को मिलता है।

बीज शब्द : समाज, सामाजिक यथार्थ, किसान आत्महत्या, अंधविश्वास, भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिकता, असहिष्णुता, लव जिहाद, पलायन, पारिवारिक विघटन, दलित चेतना, स्त्री जीवन, स्वच्छन्द यौन संबंध, समलैंगिक यौन संबंध, बाज़ारवाद, मुआवजा, रिश्ते, देहदान।

मूल आलेख : पंकज सुबीर हमारे समय के चर्चित कथाकार हैं। पंकज सुबीर का कथा साहित्य आज के समाज का जीवंत दस्तावेज़ है। पंकज सुबीर मानवीय संवेदना के पक्ष में खड़े नज़र आने वाले कथाकार हैं। इनके साहित्य का समाज काल्पनिक नहीं, बल्कि वास्तविक है। इनके उपन्यास और कहानी संग्रह की कहानियाँ समाज के विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं। पंकज सुबीर अपनी कहानियों और उपन्यासों में नए-नए प्रयोग करते हैं। उन्होंने अपनी पहचान एक सेक्युलर कथाकार के रूप में बनाई है। ये अपने जीवनानुभवों को कथा में पिरो कर, पूरी ईमानदारी और निष्ठा के साथ प्रस्तुत करते हैं। इनकी कथा साहित्य में मानवीय दृष्टि समग्रतापूर्वक व्यक्त होती है। ये अपनी कहानियों में आम व्यक्ति के जीवन की सच्चाई को अंकित करने में सफल रहे हैं। सामाजिक जीवन के प्रत्येक पहलू पर उन्होंने गहनता से विचार किया है। इनके उपन्यास और कहानियाँ समाज में जागरूकता फैलाने का कार्य करते हैं। पंकज सुबीर अपने कथा साहित्य में समाज के उभरते संघर्षों को संवेदना के धागों में पिरो कर अभिव्यक्त करते हैं।

1.पंकज सुबीर ने फैज़ अहमद फ़ैज़ के शेर "ये दाग़-दाग़ उजाला ये शबगुज़ीदा सहर वो इंतज़ार था जिसका ये वो सहर तो नहीं" का दर्द महसूस किया और उसी हालात को आइना दिखाते हुए उपन्यास "ये वो सहर तो नहीं" लिख डाला। जिन शहीदों ने देश को स्वतंत्रता दिलाई, उन्होंने देश के नागरिकों के लिए बहुत सुनहरे और रंगीन सपने देखे होंगे लेकिन आज़ादी के इतने वर्ष बीत जाने के बाद भी देश के नागरिकों की परिस्थिति में कोई अंतर नहीं आया। उपन्यास "ये वो सहर तो नहीं" की कथा दो स्तरों पर साथ-साथ चलती है। एक 1857 में और एक 2007 में। 1857 में जिस तरह के पात्र थे ठीक उसी तरह के पात्र 2007 में भी देखने को मिल रहे हैं। 15 अगस्त 1947 को देश को अंग्रेजों से आज़ादी तो मिल गई लेकिन व्यवस्था में कोई बदलाव नहीं आया।

2."अकाल में उत्सव" उपन्यास में सामाजिक व्यवस्थाओं की परतें खोलने की मार्मिक कथा है जिसमें किसानों की बेबसी का यथार्थ चित्रण है। किसानों की आत्महत्या पर केंद्रित यह उपन्यास देश के किसानों की वास्तविक और भयावह स्थिति का चित्र प्रस्तुत करता है। "अकाल में उत्सव" उपन्यास में कथाकार ने एक तरफ ग़रीब किसान और दूसरी तरफ शहरी लोगों की मानसिक दशा और उनके अंदर चल रहे द्वंद्वों को बड़ी बारीकी से अभिव्यक्त किया है। उपन्यास में सीमांत और छोटे किसानों की ज़िंदगी पर भरपूर रोशनी डाली गई है। कथाकार ने किसानों की मजबूरियाँ, किसानों की दुर्दशा पर, किसान और साहूकार के बीच लेनदेन, मौसम का उतार-चढ़ाव, मौसम की आँख मिचौली, ग्रामीण सामाजिक रस्में, फसलों का गणित,

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016
मोबाइल- 9425067036
ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com

फसलों का समर्थन मूल्य, बीज, खाद, कीटनाशक दवाई, मंडी शुल्क, डीजल, बिजली बिल पर विस्तृत रूप से इस उपन्यास के माध्यम से प्रकाश डाला है। देश का ग़रीब किसान अकाल में जीवन जीने को मजबूर है तो दूसरी ओर शहरी लोग हैं जो प्रगति के राह पर हैं और उत्सव मना रहे हैं। उपन्यास ग्रामीण परिवेश और शहरी जीवन की झाँकी को एक साथ पेश करते हुए आगे बढ़ता है। इस उपन्यास में दो कहानियाँ एक दूसरे के समानांतर चलती है। एक कहानी है सूखापानी गाँव के किसान रामप्रसाद की जो एक छोटा किसान है और दूसरी कहानी है उसी क्षेत्र के कलेक्टर श्रीराम परिहार की जो टूरिज़्म डिपार्टमेंट के फण्ड को उत्सव के आयोजन में खर्च करते हैं। ज़िला कलेक्टर जश्न और उत्सव में इस कदर उलझे हुए हैं कि वे लगभग भूल चुके हैं कि एक ज़िले के कलेक्टर की और भी ज़िम्मेदारियाँ होती हैं। यह उपन्यास राजनैतिक व्यवस्था को भी कटघरे में लाकर खड़ा करता है। देश में पूरा का पूरा सरकारी तंत्र बिचौलियों और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हाथों बिक चुका है। धर्म के ठेकेदार, सत्ताधीश - सरकार के मंत्री और सरकारी अधिकारी, सूदखोर सभी किसानों का अपने हिस्से का खून चूस लेते हैं। साहूकार के क़र्ज़े, बैंक के क़र्ज़े, सोसायटी के क़र्ज़े की राशि का ब्याज सहित भुगतान के समय किसान की मनोदशा, उसके संताप का यथार्थ चित्रण इस उपन्यास में पंकज सुबीर ने किया है। इस उपन्यास में किसानों के शोषण की समस्या मौजूद है।

3. अभी तक सांप्रदायिक दंगों पर जितने भी उपन्यास लिखे गए हैं उनमें यह उपन्यास "जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था" उन सब से अलग खड़ा दिखाई देता है क्योंकि लेखक ने धर्म के मर्म की पड़ताल ऐतिहासिक तथ्यों के साथ की है और साथ ही सांप्रदायिक दंगों के असली कारणों का पर्दापाश करते हुए सांप्रदायिक सदभाव का सकारात्मक सन्देश दिया है। कथाकार पंकज सुबीर सांप्रदायिकता नामक बीमारी की गहराई तक गए हैं और इस विषय पर गहन चिंतन भी किया है। इस उपन्यास की कथा एक रात की है, जिसमें एक क़स्बे की बाहर की बस्ती में दो सम्प्रदायों के लोगों के बीच दंगा भड़क उठता है। उस बस्ती में जहाँ दंगा भड़कता है वहाँ कोचिंग शिक्षक रामेश्वर के पुत्रवत शिष्य शाहनवाज़ का परिवार रहता है। उस रात को शाहनवाज़ की पत्नी को प्रसव पीड़ा होती है। रामेश्वर सारी रात जागकर किस प्रकार अपने शिष्यों और प्रशासनिक अधिकारियों की मदद से शाहनवाज़ की पत्नी को उसके परिवार सहित उस बस्ती से सुरक्षित बाहर निकलवाकर अस्पताल में पहुँचवाता है और दूसरी ओर अपनी कॉलोनी में रहने वाले मुस्लिम परिवार के जान-माल की अपने शिष्यों की सहायता से रक्षा करता है, यह तो आप उपन्यास पढ़कर ही समझ पाएँगे। एक साध्वी कंप्यूटर सीखना चाहती है लेकिन वह न तो कक्षा में आना चाहती है और न ही अपने निवास पर एक कंप्यूटर शिक्षक शाहनवाज़ से सीखना चाहती है क्योंकि शाहनवाज़ एक मुस्लिम है। इस कृति के माध्यम से लेखक जीवन की विसंगतियों और जीवन के कच्चे-चिठ्ठों और धर्म के तथाकथित ठेकेदारों को उद्घाटित करने में सफल हुए हैं। धर्म के मामले में युवा पीढ़ी उचित मार्गदर्शन नहीं मिलने की वज़ह से विचलित है। ज़िला कलेक्टर वरुण कुमार और एडिशनल एसपी भारत यादव इस उपन्यास के ऐसे किरदार हैं, जो सरकार और प्रशासन के प्रति विश्वास पैदा करते हैं। दंगे के दौरान ये दोनों पात्र सिर्फ इंसानियत वाला धर्म निभाते हैं और दंगा पीड़ितों को बचाते हैं। युवा पीढ़ी के दो पात्रों विकास और खुर्शीद को सही मार्गदर्शन मिलता है और ये दोनों समाज के लिए बेहतर कार्य करते हैं।

आलोच्य कृति महज एक उपन्यास नहीं है बल्कि एक विचारधारा है। उपन्यास का शीर्षक अत्यंत सार्थक है। पुस्तक में यहाँ वहाँ बिखरे सूत्र वाक्य उपन्यास के विचार सौंदर्य को पुष्ट करते हैं।

किस धर्म की धर्म पुस्तक में हिंसा नहीं है? कौन सी ऐसी धार्मिक किताब है, जो हिंसा से भरी हुई नहीं है। बाइबिल, कुरआन, महाभारत, रामायण...? सारे धर्म अपने मूल में बात करते हैं अहिंसा की, लेकिन सारे धर्मों की किताबों में जो कहानियाँ होती हैं, वो हिंसा की कहानियाँ होती हैं, यह सबसे बड़ा विरोधाभास है। धर्म का पूरा कारोबार ही हिंसा पर टिका हुआ है, उसे स्थापित होने और स्थापित रहने, दोनों के लिए ही हिंसा की आवश्यकता पड़ती है। उसे हिंसा प्रारंभ करवाने के लिए बस एक ही वाक्य कहना होता है - "धर्म खतरे में है" बाकी काम अपने आप हो जाता है। (पृष्ठ 219)

जिस प्रकार फिल्म "लगे रहो मुन्नाभाई" में फिल्म का मुख्य पात्र महात्मा गांधी से संवाद करता है, उसी तरह से इस पुस्तक में उपन्यास के मुख्य पात्र रामेश्वर के मोबाइल फ़ोन के इंटरसेप्ट हो जाने से रामेश्वर का नाथूराम गोडसे, जिन्ना और महात्मा गाँधी के साथ जो संवाद होता हैं उससे पाठकों को इतिहास की भ्रांतियों और देश विभाजन के सारे सवालों के उत्तर मिल जाते हैं। कथाकार ने जिन्ना की महत्त्वाकांक्षा, धर्मनिरपेक्षता को, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों के मनोविज्ञान, उनके मानसिक सोच-विचार, कांग्रेस के इतिहास को और अंग्रेजों की विघटनकारी व फूट डालो नीतियों को इस पुस्तक के माध्यम से भली-भाँति निरूपित किया है। पंकज सुबीर पाठकों का ध्यान धार्मिक दंगों के कारणों की तह में ले जाने में कामयाब होते हैं। यह कृति धर्म, सांप्रदायिकता, धार्मिक विसंगतियों पर पर बहुत ही स्वाभाविक रूप से सवाल खड़े करती है और इन विषयों पर एक व्यापक बहस को आमंत्रित करती है।

वरिष्ठ साहित्यकार श्री नन्द भारद्वाज ने विमर्श - जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था (आलोचना) क़िताब पर अपने सारगर्भित बीज आलेख में लिखा है कि "ऐतिहासिक तथ्यों की रौशनी में भारत में साम्प्रदायिकता की जड़ों को खंगालने का यह प्रयास वाकई नया और दिलचस्प है। पंकज सुबीर ने देश के दो बड़े मज़हबी समुदायों के बीच साम्प्रदायिक सौहार्द्र कायम करने के वृहत्तर उद्देश्य के लिए इस उपन्यास की कथा को अपने ढंग से आकार दिया है और समय-

समाज के एक बड़े सच को पूरी शिद्दत से उभार कर प्रस्तुत किया है।" डॉ. नीलोत्पल रमेश लिखते हैं "जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था" में पंकज सुबीर ने वर्तमान भारत में दंगों की मूल वजह की पड़ताल के साथ-साथ भारत-पाकिस्तान विभाजन की त्रासदियों का वर्णन भी किया है। माधव नागदा ने लिखा है कि यह उपन्यास हमारे चारों ओर पसरते जा रहे अंधकार को चीरकर एक प्रकाश-पुंज की तरह सामने आता है। गीताश्री ने अपनी सारगर्भित समीक्षा में लिखा हैं – उपन्यास का फ़लक विराट है। फ़ैज़ को कहाँ पता था कि सौ साल बाद हालात ऐसे होंगे? पंकज सुबीर जब लिख रहे थे, तब शाहीन बाग़ के बारे में कहाँ पता था। लेखक आने वाले समय को भाँप लेता है। उसकी आहट, ख़तरे सूँघ लेता है। जैसे नाविक या मछुआरे समंदर के मिज़ाज को सूँघ लेते हैं। डॉ. सीमा शर्मा लिखती है पंकज सुबीर ने विश्व इतिहास से न जाने कितने उदाहरण देकर यही समझाने का प्रयास किया है कि "असली सुख बचाने में है, मारने में नहीं"। डॉ. प्रज्ञा रोहिणी इस उपन्यास के बारे में लिखती है कि इस उपन्यास में दंगों के मनोविज्ञान को समझाने की कोशिश की गई है। किस तरह कभी किसी अपराध, कभी बीमा के लाभ या कभी ज़मीन के कारण व्यक्तिगत बैर को दंगे की शक्ल दी जाती है। इस उपन्यास से पंकज सुबीर का साम्प्रदायिकता विरोधी दृष्टिकोण परिलक्षित होता है।

4. "ईस्ट इंडिया कंपनी" कहानी संग्रह की कहानियाँ समाज में व्याप्त समस्याओं, विषमताओं, विसंगतियों, विद्रूपताओं, विडम्बनाओं को अभिव्यक्त करती हैं। कथाकार ने "ईस्ट इंडिया कंपनी" कहानी में मानवीय कमज़ोरी को ईस्ट इंडिया कंपनी के माध्यम से सहज रूप से उजागर किया है। जाति, सम्प्रदाय के नाम पर किसी को रोज़गार नहीं देना और समाज में उसे भूखा मरने के लिए छोड़ देना, इस तरह की विसंगति को पंकज सुबीर ने चित्रित किया है इस संग्रह की कहानी "कुफ़्र" में। "घेराव" जातीय चेतना को जागृत करती, मूल समस्याओं से समाज का ध्यान हटाकर पुलिस, प्रसाशन, राजनीति, पत्रकारिता पर प्रश्न चिन्ह लगाती साम्प्रदायिक तनाव को प्रेरित करती, व्यवस्था का चेहरा सभी के सामने लाती लाजवाब कहानी है। यौन संबंध और समलैंगिक संबंध आज के समय में समाज की मुख्य समस्या है। पंकज सुबीर ने इस मुख्य समस्या पर ही अपनी कलम चलाई है। "अँधेरे का गणित" आधुनिकता के नाम पर स्वच्छन्द यौन संबंध और समलैंगिक संबंधों पर आधारित एक संवेदनशील कहानी है। कुत्सित यौन विकृतियों का निरूपण इस संग्रह की "घुग्घु" कहानी दैहिक स्त्री स्वतंत्रता को रेखांकित करती है। इससे विवाह संबंधों का बिखराव हो सकता है। दाम्पत्य जीवन की समस्याएँ बढ़ सकती हैं। "रामभरोस हाली का मरना" कहानी में लेखक ने साम्प्रदायिक दंगे होने के असली कारणों का पर्दाफ़ाश किया है। "हीरामन" कहानी में ग्रामीण जीवन के सहज, सरल, आत्मीय जीवन को आधुनिक जीवन की समस्याओं के साथ रूपायित किया है। "तस्वीर में अवाँछित" कहानी में ऐसे व्यक्ति को चित्रित किया गया है जिसके पास अपने परिवार के लिए समय नहीं है और वह अपने व्यवसाय में ही डूबा रहता है।

5. "कसाब.गांधी@यरवदा.इन" कहानी संग्रह की कहानियों में समाज में संवेदनहीनता और समाज में व्याप्त बुराइयों को दर्शाती कहानियाँ हैं। "कसाब.गांधी@यरवदा.इन" कहानी में आतंकवाद की जड़ों की गहराई से तलाश की जाती है। यरवदा जेल में कसाब और गांधी के बीच एक लंबी बातचीत के माध्यम से कथाकार ने आतंकवाद और उसके बरअक़्स कई सारी समस्याओं के जड़ में जाने का प्रयास किया है। इस बातचीत में हमारे देश की कई सारी सामाजिक और भौगोलिक समस्याओं को कुरेदने का प्रयास किया गया। "कितने घायल हैं कितने बिस्मिल हैं", "मुख्यमंत्री नाराज़ थे" कहानी समाज में संवेदनहीनता की पराकाष्ठा को दर्शाने के साथ घटते जीवन मूल्यों और समाज में व्याप्त मानसिक भ्रष्टाचार को दर्शाती है। "मुख्यमंत्री नाराज थे" कहानी राजसत्ता और अफ़सरशाही के बीच के संबंधों को गहराई से देखती है। "पुत्रियाँ बचाओ योजना" राजनीति में फैले भ्रष्टाचार को उजागर करती है। "लव जिहाद उर्फ़ उदास आँखों वाला लड़का" कहानी दो अलग-अलग धर्मों के लड़के लड़की के बीच पनपे प्रेम और साम्प्रदायिकता की आग में झुलसती मानवता को बयाँ करती है। "चिरई-चुरमुन और चीनू दीदी" कहानी किशोरवय के बच्चों को सेक्स के बारे में परिवार और समाज में उचित मार्गदर्शन नहीं मिलने पर वे ग़लत संगत में पड़कर भटक जाते हैं। परिवार और समाज में सेक्स को वर्जित विषय मानकर इस विषय पर बात नहीं की जाती है जिससे युवा होते बच्चे अपने साथियों से प्राप्त अधकचरे ज्ञान और रंगीन पत्रिकाओं को देखकर सही मार्ग से भटक जाते हैं। "आषाढ़ का फिर वही एक दिन" कहानी में पंकज सुबीर ने समाज और व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार को भार्गव बाबू के माध्यम से उजागर किया है। "हर एक फ्रेंड कमीना होता है" मानवीय चेतना को जागृत करती कहानी है जिसमें अंधविश्वास पर चोट की गई है। "नक्कारखाने में पुरुष विमर्श" कहानी में पुरुषों की व्यथा का चित्रण है। समाज में स्त्रियों का ही पलड़ा भारी रहता है, लेकिन कथाकार पंकज सुबीर ने इस कहानी के माध्यम से पुरुष विमर्श का एक सशक्त चित्र प्रस्तुत किया है। ये कहानियाँ समाज के मौजूदा हालात की जीती-जागती तस्वीरें पेश करती हैं। लेखक ने इन कहानियों के जरिए कई ज्वालंत मुद्दे उठाए हैं। ये कहानियाँ कहानीकार की सामाजिक सरोकारों के प्रति प्रतिबद्धता को दर्शाती है।

6."महुआ घटवारिन और अन्य कहानियाँ" :- इस संग्रह की कहानियों का फलक व्यापक है। नए अर्थतन्त्र ने गाँव-कस्बों के रोज़ी रोटी के साथ सामाजिक सम्बन्धों को प्रभावित किया है। मुक्त बाज़ार व्यवस्था और ग्लैमर दुनिया की वजह से इन कहानियों में बेचैनी, अंतर्द्वंद्व, उत्साह, पीड़ा, भय आदि के भावों का चित्रण दिखता है। इन कहानियों में आज के समय की विद्रूपताएँ सामने आई हैं। किसानों की आत्महत्याओं से

लेकर अनेक सामाजिक सच इन कहानियों में उभर कर सामने आए हैं। कहानी "महुआ घटवारिन" की दृष्टि से पंकज सुबीर ने नए प्रतिमान गढ़े हैं। वे कहानियों को एक नए स्वरूप और नए शिल्प में प्रस्तुत करते हैं। "सदी का महानायक उर्फ़ कॉल कूल तेल का सैल्समेन", "मिस्टर इंडिया" बाज़ार व्यवस्था और ग्लैमर की दुनिया पर आधारित है। "चौथी, पाँचवीं तथा छठी क़सम" कहानी वर्तमान पीढ़ी के युवावर्ग के संघर्षों, अन्तर्विरोधों, संवेदनाओं, सामाजिक-आर्थिक स्थितियों को उजागर करती है। इंसान को रोटी, कपड़ा और मकान के अलावा भी इंसान में एक भूख होती है जिसे आदिम भूख कहते है। "चौथमल मास्साब और पूस की रात"कहानी इसी आदिम भूख को लेकर लिखी गई है। "महुआ घटवारिन" एक प्रेम कहानी है जो सहज, निश्छल प्रेम का सन्देश देती है। "लाश की तरह ठंडा और मौत की तरह शांत" कहानी किसानों की आत्महत्याओं को लेकर लिखी गई है। "तुम लोग" दो मित्रों की कहानी है। एक मित्र हिन्दू ब्राह्मण है और दूसरा मित्र मुसलमान है। दोनों हमेशा प्रेमपूर्वक झगड़ते रहते हैं। दोनों की दोस्ती पक्की है। यह साम्प्रदायिक एकता की प्रतिनिधि कहानी है। "नफ़ीसा" सांप्रदायिक सद्भावना वाली कहानी है। "तुम लोग" और "नफ़ीसा" कहानी हमारे समाज की हकीकत बयान करती है कि हिन्दू और मुस्लिम बड़े प्रेम से साथ साथ रहते आ रहे हैं। "और बच्चा मर गया" कहानी प्रशासनिक अधिकारियों के कुकर्मों को उजागर करती है। "दो एकांत" कहानी लड़कियों को कोख में ख़त्म कर देने की मानसिकता के चलते देश में सिर्फ़ लड़के ही रहे जाते हैं और लड़कों की शादी के लिए कोई लड़की नहीं मिलती है। ये कहानियाँ सामाजिक चेतना को जागृत करती है।

7. कहानियों की विविधता पंकज सुबीर की सबसे बड़ी विशेषता है। "चौपड़े की चुड़ैलें" कहानी संग्रह की कहानियों में सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति हुई है। कथाकार ने समाज में बदलते मानवीय मूल्यों, नारियों के अनेक रूपों को, जीवन की धड़कनों को इन कहानियों में अभिव्यक्त किया है। ये उन लोगों के जीवन संघर्ष की कहानियाँ हैं जो गाँव से, कस्बों से पलायन कर महानगरों बस रहे हैं। "जनाब सलीम लँगड़े और श्रीमती शीला की जवानी" कहानी सामाजिक रूढ़ियों और परम्पराओं पर तीव्र प्रहार करती है। यह कहानी दहेज़ की कुप्रथा पर आधारित है। लेकिन इस कहानी में पंकज सुबीर ने ऐसे आदिवासी समाज की कुप्रथा का ज़िक्र किया है जहाँ लड़की का बाप अपनी लड़की को वर पक्ष को बेचता है। और वह अपनी लड़की को एक बार नहीं, कितनी भी बार बेच सकता है। यहाँ स्त्री को बदतर ज़िंदगी जीने को विवश होना पड़ रहा है। "अप्रैल की एक रात" कहानी में स्त्री सामाजिक बेड़ियों, सामाजिक मर्यादाओं को उखाड़ फेंकती है। एक तरफ लोग आर्थिक रूप से समृद्ध हो रहे हैं तो दूसरी तरफ मानवीय मूल्यों का क्षरण हो रहा है। आज के समय में जितने जल्दी प्रेम होता है उतनी ही जल्दी ब्रेक अप भी हो जाता है। पुराने जमाने में स्त्रियाँ मन मारकर पुरुष के अत्याचार सहन करती रहती थी लेकिन अपने पति को परमेश्वर मानकर उसे छोड़ती नहीं थी, लेकिन आज की स्त्रियाँ घुट-घुट कर नहीं जीती हैं और वह पुरुष के विरुद्ध खड़ी दिखती है। "सुबह अब होती है... अब होती है... अब होती है" कहानी में आज का यथार्थ है कि आज रोज़गार के लिए लोगों का पलायन हो रहा है और संयुक्त परिवार टूटकर एकल परिवार में बदलते जा रहे हैं। बुज़ुर्ग माता-पिता को वृद्धाश्रम में रहना पड़ रहा है। "चौपड़े की चुड़ैलें" कहानी आज की सरकारी शिक्षा व्यवस्था की पोल खोलती है। शिक्षा माफियाओं ने शिक्षा संस्थाओं को भ्रष्टाचार का अड्डा बना लिया है। शिक्षा संस्थाओं में नक़ल खुले आम होती है। इस कहानी में देह व्यापार जैसी सामाजिक बुराई और युवाओं की साम्प्रदायिक सोच पर भी कथाकार ने ध्यान आकर्षित किया है। "चौपड़े की चुड़ैलें" अपने सामाजिक सन्दर्भों में ग्रामीण बेसहारा हुई स्त्रियों के जीवन यापन करने के लिए किए गए उपक्रमों की विवशता को भी रेखांकित करती है। इस संग्रह की कहानी "इन दिनों पाकिस्तान में रहता हूँ" धार्मिक कट्टरता को रेखांकित करती है। "रेपिश्क" कहानी में पुरुष के लिए प्रेम का अर्थ केवल शारीरिक भूख मिटाना ही होता है। पूँजीवादी व्यवस्था ने सामाजिक व्यवस्था को उथल पुथल कर के रख दिया है। इस कहानी में पहले इश्क होता है फिर रेप होता है और फिर उस पीड़ित स्त्री को उसी रेपिस्ट से शादी कर के इश्क करना पड़ता है। "नो हाऊ केन आई लीव हिम? नो साहिल, दिस इज माई फाइनल डिसीज़न" कहानी महिला सशक्तिकरण का एक सशक्त उदाहरण है। "धकीकभोमेग" बाबाओं द्वारा किए जाने वाले फ्रॉड और उनके कुत्सित कारनामों की कहानी है। "औरतों की दुनिया" कहानी जब कोर्ट-कचहरी के चक्कर में रिश्ते बिखर जाते हैं तब घर की औरतें उन बिखरे रिश्तों को सहेजती हैं। "चाबी" कहानी में संयुक्त परिवार के बिखरने, टूटने और इसकी वजह से एकल परिवार को जो मुश्किलों का सामना करना पड़ता है उसका चित्रण है। कथाकार ने इन कहानियों में आम आदमी के सवालों और नई सामाजिक- आर्थिक व्यवस्था में बदलते मध्यवर्गीय समाज की चिंताओं को अभिव्यक्त किया है।

8. "होली" कहानी संग्रह की कहानियों द्वारा पंकज सुबीर ने विभिन्न रंगों के माध्यम से समाज में समरसता और भाईचारे का संदेश दिया है। होली सिर्फ रंग से नहीं मनाई जाती बल्कि इस त्योहार पर बनाये जाने वाले पकवान भी अपने स्वाद से समाज में एक दूसरे को जोड़ते हैं। "होली" संग्रह की कहानियों में जीवन के हर रंग बेहद संजीदगी से उकेरे गए हैं।

9. "हमेशा देर कर देता हूँ मैं" कहानी में कथाकार ने कहानी के नैरेटर, जो कि कहानी का मुख्य किरदार है, की भावदशा का कुशलतापूर्वक चित्रण किया है साथ ही उसकी मनोदशा संकेतात्मक रूप से सामने आई है। लेखक ने कहानी में किशोरवय के मनोभाव को उकेरा है। लम्बी चाची अपने पति से रिश्तों की गरमाहट की जगह ठंडापन महसूस करती है। कहानीकार ने इस कहानी में

लम्बी चाची के माध्यम से एक नारी की संवेदनाओं की पराकाष्ठा, स्त्री के अंदर की फैंटेसी और उसके विचलन को, स्त्री मन की आकांक्षाओं को सहजता के साथ बखूबी चित्रित किया है। "बेताल का जीवन कितना एकाकी" कहानी बुज़ुर्गों के एकाकीपन के दर्द को और आज की पीढ़ी के युवाओं के सूखेपन को बयाँ करती है। एकाकी जीवन यापन करते हुए वृद्ध लोगों का चेहरा पत्थर की मूर्ति की तरह भावहीन हो जाता है। धनंजय कुमार शर्मा की कहानी सुनकर संदीप को अपने पिता की याद आ जाती है। संदीप को अपने वृद्ध पिता के एकाकीपन का अहसास होता है। मर्म को छूती, संवेदना को जगाती इस कहानी का अंत सकारात्मक है। "खोद-खोद मरे ऊँदरा, बैठे आन भुजंग उर्फ़ भावांतर" कहानी प्रेमचंद के कहानियों की याद दिला देती है। यह किसानों की बेचारगी की प्रामाणिक कथा है। भावांतर योजना सरकार द्वारा किसानों के हित में घोषित की लेकिन इसका लाभ किसानों को मिलने की जगह व्यापारियों को मिल रहा है। "क़ैद पानी" कहानी में ग्रामीण जीवन की झलक है। यह कहानी गाँव की समस्या पर न केवल प्रकाश डालती है बल्कि उस समस्या का समाधान भी गाँव के लोगों द्वारा करवाती है। यह एक गाँव की साहसी नारी सुनीता की कहानी है जो कैलाश राठौर जैसे दबंग व्यक्ति से संघर्ष का पहला कदम उठाती है। वह सजग है और ज्वलंत समस्याओं से मुठभेड़ करती दिखती है। पंकज सुबीर ने इस कहानी के माध्यम से सुनीता का चरित्र चित्रण बहुत ही सशक्त रूप से किया है। "मर नासपीटी!", "क़ैद पानी" और "चर्च-ए-गुम" कहानियों में भारतीय समाज के यथार्थवादी जीवन का सटीक वर्णन है। "पत्थर की हौदें और अगन फूल" कहानी को पंकज सुबीर ने गहन शोध के पश्चात लिखा है। यह एक संस्मरणात्मक कहानी है जिसमें पुरुषों की नपुंसकता को दूर करने का उपाय बताया गया है। "मूंडवेवालों का जलवा" कहानी में कहानीकार ने ख़त्म होती मानवीय संवेदनाओं को सामने रखा है। कहानी में पैसों का फूहड़तम प्रदर्शन चित्रित किया गया है। "इलोई ! इलोई ! लामा सबाख्तानी?" कहानी में कथाकार ने संवेदना के मर्मस्पर्शी चित्र उकेरे हैं। घोर साम्प्रदायिक असहिष्णुता के समय में इस कहानी का लिखा जाना बहुत कुछ कह जाता है। कहानी पितृसत्ता और सामंती ठसक की सड़ाँध को उघाड़ने का काम करती है। कहानी में मरती जा रही संवेदना और मानवीय धूर्तता के दर्शन होते हैं। किस तरह अर्थ के पीछे दौड़ता समाज इंसानियत को भूला देता है। कहानी में समाज का नग्न सच दिखलाई पड़ता है। कहानी दो मासूम लड़कियों के दर्द से पाठक का हृदय चीर देती है। इन कहानियों में कथाकार रूढ़िवाद, कट्टरता, स्टीरियोटाइपिंग जैसी समाज विरोधी प्रवृत्तियों से टकराते हैं। इन कहानियों में चेतना के स्तर पर एक तरह का नयापन दिखाई देता है। कथाकार सामाजिक और परिवेशगत प्रवृत्तियों के प्रति बेहद सजग और जागरूक है।

10. देहदान विषय को लेकर सघन संवेदना के साथ "रूदादे-सफ़र" उपन्यास का ताना-बाना बुना गया है। इस उपन्यास में नयापन के साथ अनुभूतियों की सच्चाई है। लेखक इस उपन्यास में एक बिल्कुल नए कथानक से परिचय कराते हैं। कथाकार ने इस उपन्यास को इतने बेहतरीन तरीके से लिखा है कि गांधी मेडिकल कॉलेज भोपाल का एनाटॉमी विभाग व डिसेक्शन-रूम, भोपाल की ईदगाह हिल्स, कोहेफिज़ा और पुराने भोपाल शहर का जीवन्त चल चित्र पाठक के सामने चलता है। इस उपन्यास को पढ़ने वाले की उत्सुकता बराबर बनी रहती है वह चाहकर भी उपन्यास को बीच में नहीं छोड़ सकता। उपन्यास की कहानी में प्रवाह है, अंत तक रोचकता बनी रहती है।

उपन्यास का कथानक इस तरह का है कि यह डॉक्टर राम भार्गव और अर्चना की जीवन गाथा है। डॉक्टर राम भार्गव में अपने पेशे के प्रति ईमानदारी, समर्पण एवं जूनून था। डॉक्टर राम भार्गव भोपाल के शासकीय जयप्रकाश अस्पताल में ईएनटी डॉक्टर हैं। वे दूसरे डॉक्टर्स के समान प्राइवेट प्रैक्टिस नहीं करते हैं और न ही दवाई कंपनियों से कमीशन लेते हैं। वे सिर्फ तनखा से ही अपने परिवार का गुज़ारा करते हैं। डॉक्टर राम भार्गव की पत्नी पुष्पा भार्गव इसी बात को लेकर अपने पति से झगड़ा करती रहती है। डॉक्टर राम भार्गव और पुष्पा भार्गव की एक ही बेटी है जिसका नाम अर्चना है। जैसा की आम तौर पर होता है कि बिटिया की अपने पिताजी से अच्छी पटती है। इस उपन्यास की कथा में भी डॉक्टर राम भार्गव जिन विधाओं में रुचि रखते हैं अर्चना भी उन्हीं विधाओं में रुचि रख रही हैं। दोनों को ही ग़ज़ल और संगीत सुनने में रुचि है। दोनों अक्सर रविंद्र भवन में हस्त-शिल्प की प्रदर्शनी देखने जाते हैं। अर्चना भी एमबीबीएस करना चाहती है और वह भोपाल के गांधी मेडिकल कॉलेज से ही एमबीबीएस करना चाहती है लेकिन उसे रायपुर का मेडिकल कॉलेज मिलता है। वह रायपुर के मेडिकल कॉलेज से एमबीबीएस करती है और वह एनॉटोमी में एमएस भी रायपुर के मेडिकल कॉलेज से ही करती है। जब अर्चना रायपुर मेडिकल कॉलेज में पढ़ रही थी तब उसे एक विद्यार्थी शेखर से प्रेम हो जाता है लेकिन शेखर बहुत अधिक कॅरियर कॉन्ससियस है। शेखर पीजी करने के लिए दिल्ली चला जाता है और वहाँ से अमेरिका चला जाता है। डॉक्टर अर्चना की पोस्टिंग भोपाल के गांधी मेडिकल कॉलेज के एनाटॉमी विभाग में ही हो जाती है। एनाटॉमी विभाग में एक डिसेक्शन रूम रहता है जहाँ एमबीबीएस प्रथम वर्ष के विद्यार्थी कैडेवर (मुर्दे के शरीर) की चीड़फाड़ करके मानव अंगों का अध्ययन करते हैं। एनाटॉमी विभाग को आसानी से मृत शरीर नहीं मिलते हैं और विद्यार्थियों की संख्या के हिसाब से हमेशा मृत शरीर की कमी बनी रहती है। देहदान के घोषणा पत्र तो काफ़ी लोग भर देते हैं लेकिन जब देहदान की बारी आती है तब परिवार के लोग धार्मिक संस्कार पूरा करने के लिए देहदान नहीं करते हैं। मृत्यु के पश्चात देहदान की पूरी प्रक्रिया मेडिकल कॉलेज के एनाटॉमी विभाग में ही होती है। भोपाल के मेडिकल कॉलेज में एनाटॉमी विभाग की प्रमुख डॉक्टर अर्चना ही देहदान करवाती है। एक दिन भोपाल कलेक्टर प्रवीण गर्ग के पिताजी का शरीर देहदान के लिए मेडिकल कॉलेज आता

है। प्रवीण गर्ग बहुत ही विनम्र व्यक्ति है। कुछ दिनों पश्चात प्रवीण गर्ग डॉक्टर अर्चना से मिलते हैं और अधिक से अधिक देहदान हो इसके लिए विचार-विमर्श करते हैं। प्रवीण गर्ग देहदान को एक मिशन के रूप में चलाते हैं और अधिक से अधिक देहदान के घोषणा पत्र भरवाते हैं। कथा का अंत क्या होता है यह जानने के लिए आपको उपन्यास पूरा पढ़ना होगा क्योंकि अंत ही इस उपन्यास का सबसे महत्त्वपूर्ण हिस्सा है।

कथाकार ने उपन्यास का क्लाइमेक्स भी बहुत ही उत्कृष्ट बुना है जो हमें डॉक्टर राम भार्गव के मनोजगत को समझने में सहायता पहुँचाता है। इस कृति में पंकज सुबीर ने मेडिकल कॉलेज भोपाल के एनाटॉमी विभाग के माध्यम से देहदान की पूरी प्रक्रिया को बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित किया है। डॉक्टर राम भार्गव और डॉक्टर अर्चना का व्यक्तित्व कमाल का है। कथाकार ने डॉक्टर राम भार्गव और डॉक्टर अर्चना के अदम्य जिजीविषा तथा असीम सहन शक्ति का अंकन किया है। मेडिकल व्यवसाय में फ़ैल रहे भ्रष्टाचार को भी इस उपन्यास में परत-दर-परत उजागर किया गया है। वर्तमान समाज में अकेलापन भी एक बहुत बड़ी समस्या है। डॉ. अर्चना भार्गव भी उस अकेलेपन के साथ जीने को अभिशप्त है। मानवीयता, आदर्श और नैतिकता को लेखक ने किरदारों के माध्यम से व्यक्त किया है। पंकज सुबीर ने "रूदादे-सफ़र" उपन्यास द्वारा लोगों को देहदान के लिए प्रेरित किया है। यह उपन्यास समाज को एक सकारात्मक सन्देश देने के साथ ही मानवीय रिश्तों की उष्मा को बचाए रखते हुए एक बेहतरीन सामाजिक और आनंददायक जीवन जीने की प्रेरणा देता है। यह उपन्यास उनके शोध और सजगता को दिखाता है।

11. "वहाँ, जहाँ शायद ज़मीन है... " पंकज सुबीर की एक बेहतरीन कहानी है। इस कहानी में विस्थापन की पीड़ा है। इस कहानी में पंकज सुबीर बताते हैं कि ज़मीन डूब जाए तो मुआवजा मिल सकता है, लेकिन ज़मीन छूटने का कोई मुआवजा नहीं होता। "ढोंड़ चले जै हैं काहू के संगे" कहानी आज की परिस्थितियों को सच के साथ अभिव्यक्त करती है। यह कहानी व्यक्ति के द्वंद्व तथा आत्मसंघर्ष को सामने लाती है और साथ ही राजनैतिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक मुद्दों की पड़ताल करती है। सोशल मीडिया का घातक प्रभाव कहानी में परिलक्षित होता है। "सुबह अब होती है" कहानी एक रहस्य कथा है जो अपराध होने के कारणों और अपराध व अपराधी के मनोविज्ञान पर प्रकाश डालती है। "स्थगित समय... गुफ़ा के वे फलाने आदमी" कहानी कोरोना काल पर लिखी एक यथार्थवादी, रिश्तों के बदल जाने वाली कहानी है। निजी और सामाजिक रिश्ते व्यावसायिक रिश्तों में बदल चुके है। इस लम्बी कहानी में कोरोना शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। लोग रिश्ते भूलकर आत्मकेंद्रित हो गए हैं। यह कहानी पारिवारिक और सामाजिक रिश्तों पर सोचने के लिए मजबूर कर देती है। इन कहानियों में पंकज सुबीर की प्रतिबद्धता और उनकी गहन सूझबूझ का भी परिचय मिलता है। पंकज सुबीर की कहानियाँ हिन्दी कथा साहित्य के भविष्य को आश्वस्त करती है।

निष्कर्ष : पंकज सुबीर आज के समय के एक समर्थ और सशक्त कथाकार है। उन्होंने समकालीन कथा साहित्य को एक नई ज़मीन प्रदान की है। पंकज सुबीर ने अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता अपने कथा साहित्य में अपने पात्रों के माध्यम से उजागर की है। इनके कथा साहित्य में सामाजिक चेतना की व्यापकता है। पंकज सुबीर ने सामाजिक सरोकारों के सवालों को बखूबी पकड़ा है और उसे अपनी कहानियों और उपन्यासों का कथ्य बनाया है। समाज के विविध पक्षों को लेकर चिंताएँ व्यक्त की गई है। पंकज सुबीर का कथा साहित्य आम व्यक्ति के दुःख दर्द को अभिव्यक्त करता है। कथाकार अपने उपन्यासों और कहानियों में इंसानियत को बचा लेते है। पंकज सुबीर हिन्दी साहित्य के ऐसे कथा-शिल्पी हैं जिन्होंने अपने कथा साहित्य में सामाजिक यथार्थ के कई पहलुओं को उजागर किया हैं। इनका कथा साहित्य देश के विविध परिदृश्य, दुनिया और समाज को समझने की अंतर्दृष्टि देता है। कथाकार पंकज सुबीर समाज की जड़ों को खोखला करने वाले तत्वों के चेहरों से नकाब उतारकर समाज में व्याप्त विसंगतियों को दूर कर के व्यवस्था में सकारात्मक बदलाव लाने की महती भूमिका निभाते हैं। इनके कथा साहित्य में संस्कृति, सामाजिक परिवेश और मानवीय संवेदनाएँ दिल को छू लेने वाली हैं। इनके कथा साहित्य में स्त्री चेतना, दलित चेतना, वृद्ध जीवन, दिव्यांग जीवन, पारिवारिक विघटन, समाज की सच्चाई, वस्तुवादी दृष्टिकोण आदि का चित्रण मिलता है। समकालीन परिवेश में पंकज सुबीर के उपन्यास और कहानियाँ सार्थक है। पंकज सुबीर जैसे परिवक्व वैचारिक और सामाजिक रूप से सजग और संवेदनशील लेखक आज कथा-साहित्य को नई दृष्टि देने में सक्षम है। इनका कथा साहित्य समाज को एक नई दिशा देता है। पंकज सुबीर के कथा साहित्य पर शोध करने के पश्चात मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि उनका कथा साहित्य ग्रामीण, कस्बाई पृष्ठभूमि से निकला और यह साहित्य समाज के लोगों को संघर्ष की शक्ति प्रदान करता है। सामाजिक चेतना के स्वर इनके कथा साहित्य में सहजता से विद्यमान हैं।

000

संदर्भ - 1.ये वो सहर तो नहीं (उपन्यास), 2.अकाल में उत्सव (उपन्यास), 3.जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था (उपन्यास), 4.विमर्श - जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था (आलोचना), 5.ईस्ट इंडिया कम्पनी (कहानी संग्रह), 6 . कसाब.गांधी एट यरवदा.इन (कहानी संग्रह), 7.महुआ घटवारिन और अन्य कहानियाँ (कहानी संग्रह), 8.चौपड़े की चुड़ैलें (कहानी संग्रह), 9.होली (कहानी संग्रह), 10. हमेशा देर कर देता हूँ मैं (कहानी संग्रह), 11. रूदादे-सफ़र (उपन्यास), 12. आउटलुक पत्रिका रविवारीय विशेष 17 जनवरी, 2021, 13. हंस पत्रिका का रहस्य विशेषांक, 14. वनमाली कथा पत्रिका सितंबर, 2022, 15. हंस पत्रिका फरवरी 2022, 16. हंस पत्रिका अप्रैल 2017, 17. आउटलुक पत्रिका जनवरी 2015

(शोध आलेख)

समकालीन हिंदी नाटकों के मिथकीय चरित्रों की प्रासंगिकता

शोध लेखक : नवीन कुमार
शोध निर्देशक : प्रो. (डॉ.) अश्विनीकुमार शुक्ल
हिंदी विभाग, पं जे. एल. एन. पी. जी. कॉलेज, बांदा, बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झांसी

नवीन कुमार
हिंदी विभाग
पं. जे. एल. एन. पी. जी. कॉलेज
इंदिरा नगर, बांदा, उप्र 210001
मोबाइल- 8630642456
ईमेल- naveen420201@gmail.com

मिथक : एक परिचय - हिंदी साहित्य में मिथकीय कथाओं के प्रयोग का आरंभ मुख्य रूप से भारतेंदु युग से ही माना जाता है। भारतेंदु जी के साथ उनके मंडल के अनेक लेखकों ने मिथक को महत्त्व देते हुए मिथकीय चरित्रों पर आधारित रचनाओं को नई दृष्टि से देख कर वर्तमान में उनकी प्रासंगिकता पर विचार करना शुरू कर दिया था। आलोचकों का मत है कि मिथक का जन्म प्रकृति के सृजन के समय मानव की उत्पत्ति के साथ ही हुआ है। मिथक उतना ही प्राचीन है जितना पृथ्वी पर मानव। मनुष्य ने जब सृष्टि को जानना समझना आरंभ किया तभी से मिथक कथाओं का जन्म हुआ। प्रकृति के विभिन्न घटकों जैसे धरती, आकाश, जल, सूर्य, चन्द्रमा, पर्वत, सागर, गृह, आदि तथा जीवन मृत्यु से जुड़ी प्रत्येक कथा मिथक के किसी न किसी रूप में मनुष्य के हृदय में विराजमान रही है।

हिंदी में मिथक कथाओं के लिए धर्म गाथा, पुराण कथा, पुरा कथा, देव कथा तथा पुनराख्यान आदि शब्द प्रयुक्त किए जाते हैं। हिंदी साहित्य में सबसे पहले आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने मिथ के साथ 'क' प्रत्यय को जोड़कर मिथक शब्द का प्रचलन आरंभ किया। मिथक को अनेक विद्वानों ने अपने अपने मतानुसार परिभाषित करने का प्रयास किया है। डॉ. कैलाश नाथ वाजपेयी ने मिथक को व्याख्यायित करते हुए लिखा है कि – "मिथक संस्कृत का सिद्ध शब्द नहीं है। संस्कृत में इसके निकटवर्ती दो शब्द हैं 'मिथस' या 'मिथ:' जिसका अर्थ है 'परस्पर' और 'मिथ्या' जो असत्य का वाचक है, यदि मिथक का संबंध 'मिथस' से किया जाए तो इसका अर्थ हो सकता है सत्य और कल्पना का अभिन्न संबंध या एकात्म्य। 'मिथ्या' से संबंध जोड़ने पर मिथक का अर्थ 'कपोल कथा' बन सकता है, परन्तु वास्तव में 'मिथ' के पर्याय के रूप में 'मिथक' शब्द के निर्माण में अर्थ साम्य की अपेक्षा ध्वनि-साम्य की प्रेरणा ही अधिक रही है अर्थात समानार्थक की अपेक्षा यह समान ध्वन्यात्मक शब्द ही अधिक है।"1

पश्चिम में सन 1825 ईस्वी के लगभग सबसे पहले मिथक शब्द पर विचार करना आरंभ किया गया किंतु इससे पूर्व ही ग्रीक विद्वान इस पर काम करने लगे थे। ये मिथक को आदिम जातियों की संस्कृति से जोड़कर देखते थे। उन्नीसवीं सदी के प्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक मैक्समूलर और एंड्रयू लैंग जैसे विद्वानों ने इस पर खुलकर अपने विचार व्यक्त किए। मैक्समूलर ने जहाँ मिथक को भाषा विकार से उत्पन्न माना तो वही एंड्रू लैंग जैसे विद्वान ने इसका विरोध करते हुए लिखा कि मिथक को भाषा विकृति के आधार पर स्पष्ट नहीं किया जा सकता। जेम्स जॉर्ज फ्रेज़र, जे. हरिसन तथा गिलबर्ट मुरे आदि पश्चिमी भाषा वैज्ञानिकों ने मिथक की अवधारणा को प्रस्तुत किया, जिसमें से अधिकांश विचारकों ने मिथक को धार्मिक, दैवीय तथा अलौकिक शक्तियों की कथावस्तु के रूप में स्वीकृति प्रदान की। विको जैसे प्रमुख भाषा वैज्ञानिकों ने मिथक के मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक रूप को स्वीकारते हुए इसे सत्य के अधिक निकट माना तथा अन्य विद्वानों ने भी इनका समर्थन करते हुए मिथक को काल्पनिकता से बाहर निकालकर सत्य आधारित मूल्यों के रूप में स्थापित किया। पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक फ्रायड तथा सी. जे. युंग ने मिथक को मानवीय समाज व उससे जुड़ी परंपराओं तथा रीति रिवाजों से जुड़ा हुआ माना।

हिंदी साहित्य में मिथक - किसी भी साहित्य की संरचना अधिकांशत: मिथकीय तत्वों पर ही आधारित होती है। साहित्य में यथार्थ के साथ साथ रोचकता बढ़ाने के लिये काल्पनिक कथाओं का भी आश्रय लिया जाता है। जिससे साहित्य मिथक से अभिप्रेरित हो जाता है। मिथक किसी न किसी रूप में समाज में सदैव उपस्थित रहता है, इसी कारण साहित्य में भी आवश्यक रूप से प्रयोग किया जाता है। मानव सभ्यता में जो कथाएँ कभी मौखिक या लिखित रूप से उपस्थित थीं, वे ही आगे चलकर साहित्य सृजन का आधार बनी। इसलिए यह कहना समीचीन ही जान पड़ता है की किसी भी देश की संस्कृति, सभ्यता व परंपराओं को साहित्य में मिथकीय चेतना द्वारा व्यक्त किया जाता रहा है। डॉक्टर मालती सिंह लिखती हैं – "विश्व का कोई भी साहित्य

अपने मातृ देश की मिथकीय परंपराओं से असंपृक्त नहीं है। पुरातन काल से साहित्य के लिए मिथक विषयवस्तु का कार्य करता रहा है।"2

जब से मानव की उत्पत्ति हुई है तभी से मिथक का प्रयोग साहित्य में होता रहा है। किसी न किसी रूप में मानवीय कथाओं में मिथक जीवंत रहा है। मिथक, साहित्य की सर्जना के लिए एक आवश्यक तत्व रहा है। रचनाकारों ने कल्पना और यथार्थ को एक दूसरे का सहगामी बनाकर श्रेष्ठ साहित्य की रचना की है। मिथक ने परिस्थितियों के अनुकूल अपने विभिन्न अर्थ संभावनाओं से संपृक्त होकर साहित्य को समृद्ध किया है – "मिथक और साहित्य का संवाद एक निरंतर संवाद है क्योंकि साहित्य ही मिथक को नया अर्थ देता है। उन्हें भिन्न रचनात्मक आश्रय प्रदान करते हैं।"3

भारतीय साहित्य में मिथकों का प्रयोग आदिकाल से होता रहा है। वैदिक साहित्य में मुख्यरूप से प्रयुक्त मिथक है - देवासुर संग्राम। यह मिथकीय प्रसंग विनाश और सर्जना दोनों से संबंधित है। हिंदी में आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल के साहित्य में मिथकों का प्रयोग बहुत व्यापक स्तर पर किया गया है। हिंदी नाटकों में आरंभ से ही मिथकीय प्रसंगों से संपृक्त चेतना को केंद्र में रखकर अनेक नाटकों का सृजन हुआ है। भारतेंदु युग के नाटकों में ऐसे मिथकीय चरित्रों को आधार बनाकर कथा का निर्माण किया गया जो जनता में नैतिक उपदेशात्मकता का प्रचार व प्रसार कर रहे थे। भारतेंदु तथा उनके मंडल के रचनाकारों ने समाज परिष्कार, देशप्रेम, जनता में शिक्षा का प्रचार तथा आडम्बर व पाखंडवाद आदि को अपने नाटकों की कथावस्तु के लिए चुना। "भारतेंदु और उनके सहयोगी नाटककारों का प्रमुख उद्देश्य जनसामान्य में भारत के प्राचीन सांस्कृतिक गौरव एवं नैतिक चेतना को उद्बुद्ध कर उन्हें देश की स्वतंत्रता तथा पारस्परिक सांप्रदायिक एक्य की ओर अग्रसारित करना था। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्होंने वर्तमान के संकटों - संघर्षों से जूझते हुए सामाजिक परिप्रेक्ष्य में ऐतिहासिक व पौराणिक सामग्री का उपयोग किया।"4 प्रसादयुगीन नाटककारों ने अधिकांशत: अपने समय की सामाजिक बुराइयों को मिथकीय चरित्रों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। प्रसाद जी ने स्वयं अतीत के गर्भ से ऐसे ऐतिहासिक मिथकीय चरित्रों को लिया जो सांस्कृतिक बोध को लिए हुए थे। "इस काल के ऐतिहासिक एवं पौराणिक नाटकों में भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों की प्रतिस्थापना, आदर्शवादी नैतिकता का अतिरिक्त आग्रह तथा राष्ट्रीय समस्याओं का चित्रांकण मुख्य रूप से हुआ है।"5

प्रसादोत्तर व स्वातंत्रयोत्तर नाटककारों ने भी मिथकीय चरित्रों का प्रयोग नाटकों में आधुनिक संदर्भों के साथ किया। ये रचनाकार आधुनिक भाव बोध से भरे हुए नाटककार थे। इनमें जगदीशचन्द्र माथुर, धर्मवीर भारती तथा मोहन राकेश आदि प्रमुख हैं। आगे चल कर भीष्म साहनी, सुरेंद्र वर्मा, लक्ष्मी नारायण लाल, शंकर शेष, मणि मधुकर, नरेन्द्रमोहन, गिरिराज किशोर, भारत भूषण अग्रवाल, रमेश बक्षी तथा दया प्रकाश सिन्हा आदि नाटककारों ने अपने युग की समस्याओं और विसंगतियों को युगानुरूप आदर्शों तथा संदर्भों के साथ मिथकीय प्रसंगों एवं चरित्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया ।

समकालीन हिंदी नाटक और मिथक

स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय परिवेश में अनेक विघटनकारी परिस्थितियों का निर्माण हुआ। जो भारतीय जनता एक रामराज्य की परिकल्पना कर रही थी, एक आदर्श समाज की कामना कर रही थी वहां निरंतर मानवीय मूल्यों में गिरावट आती जा रही थी। ऐसी अवस्था से साहित्यकार प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता था। इन साहित्यकारों ने आम आदमी की विभिन्न समस्याओं को मिथकीय घटनाओं व चरित्रों के माध्यम से दूर करने का प्रयास किया। इनमें लक्ष्मी नारायण लाल के नाटक 'नरसिंह कथा' तथा 'मिस्टर अभिमन्यु', दया प्रकाश सिन्हा का 'कथा एक कंस की', भीष्म साहनी का 'हानूश' और दूधनाथ सिंह का नाटक 'यमगाथा' आदि प्रमुख हैं ।

लक्ष्मी नारायण लाल का 'नरसिंह कथा' आधुनिक परिप्रेक्ष्य में खोखली राजनीति के चरित्रों को व्यक्त करने वाला नाटक है। यह नाटक समाज में विद्वेष फैलाने, झूठ बोलने वाले और जनता का शोषण करने वाले चरित्रों को प्रस्तुत करने वाले नाटकों में अपना विशेष स्थान रखता है। भारत के आपातकालीन युग की परिस्थितियों को दर्शाता नाटककार का यह महत्वपूर्ण नाटक है। आज सत्ता के ऊपर कोई शक्ति नहीं है। अपने अतिरिक्त अधिकारों का प्रयोग करते हुए शासक जनता को दबा कर रखता है। उसका शोषण करता है। नाटक में वज्रदंत ऐसे ही निरंकुश शासक हिरण्यकश्यप का प्रतीक है, जो अपने ऊपर किसी शक्ति को नहीं मानता। वह जनता को उनके अधिकारों से वंचित रखता है।

"वज्रदंत : राजा के अलावा यहाँ और कोई शक्ति नहीं। राजा के अलावा किसी और की ताकत पर विश्वास करना सरासर राजद्रोह। यहाँ किसी भी अपराध की सजा मौत। कल प्रात: काल एक प्रहर दिन चढ़े, राजदरबार से दायीं ओर के कमरे में आकर अपने प्रमाण पत्र, पहचान पत्र, अनुमति पत्र, सत्र खत्र वगैरह ले जाना, जाना?

जय : तू भी इतना डरपोक?

विजय : गुरूजी मत कर इतना शोक।

वज्रदंत : सीधे जाकर दाईं ओर मुड़ना मना। ध्यान रहे- राजमार्ग पर चलना, बोलना, खिड़कियों से बाहर देखना, किसी तरह का शोर मचाना मना, दिन को सोना मना। राजधर्म के अलावा किसी और धर्म की चर्चा करना अपराध।"6

हिरण्यकश्यप और प्रहलाद का मिथकीय चरित्र लाल के नाटक में वर्तमान परिस्थितियों में भी प्रासंगिक सा जान पड़ता है। जहाँ नेता अपनी आलोचना को राजद्रोह समझते हैं। इसी प्रकार लाल का दूसरा नाटक 'मिस्टर अभिमन्यु' भ्रष्टाचार में घिरे आज के मनुष्य की कथा को मिथक के द्वारा प्रस्तुत करने वाला नाटक है। आज भ्रष्ट व्यवस्था का एक चक्रव्यूह हमें चारों ओर से घेरे हुए है। इस स्थिति को डॉ लाल ने आपने नाटक के

माध्यम से उभारने का भरपूर प्रयास किया है। एक आम आदमी को अपने घुटने टेकने के लिए मजबूर किया जाता है। ऐसे लोग चक्रव्यूह बनाकर तैयार रहते हैं कि सामने वाले की कहीं कोई लापरवाही हो और वह इस चक्रव्यूह में फंस जाए। इस सबको देखते हुए भी जनता पप्रतिक्रियविहीन है और मात्र मूकदर्शक बनी खड़ी है, जिसे नाटक में दिखाने का प्रयास किया गया है।

"राजन : चुप रह बेशर्म।

राजन : लोग यही कहेंगे तुझे।

राजन : तेरी जबान खींच लूँगा।

राजन : तू आगे कुछ नहीं बोल सकेगा।

राजन : तू यहाँ से चले जा।

राजन : तुम्हीं तो कुछ ढूँढ़ रहे थे। इसमें... इसमें... इसमें... इसमें...

राजन : तेरी ये हिम्मत... बद्तमीज़।

राजन : खुद हार कर फिर अपने एक-एक अंग से लड़ने का नाटक। आत्मन से तेरा कोई संबंध नहीं । वह तुझसे तभी छूट गया, जब तू यहाँ घुसा । उसके बाद ही मैं जन्मा हूँ। आत्मन, गयादत्त राजन केजरीवाल...सबसे अपने चारों ओर नकली लड़ाई का एक चक्रव्यूह...

राजन : मैं दिन रात लड़ता रहा ।

राजन : वही हारी हुई लड़ाई।"7

अनिश्चित परिस्थितियों में घूम रहे मानव के खंडित व्यक्तित्व को राजन के चरित्र में दिखाने का सफल प्रयास नाटककार द्वारा किया गया है। वह अपने बाहरी और भीतरी द्वंद से पीड़ित हैं।

दया प्रकाश सिन्हा अपने नाटक 'कथा एक कंस की' में एक ओर निरंकुश शासक कंस के चरित्र को उद्घाटित करते हैं तो दूसरी ओर स्त्री के रूप में भविष्य का निर्माण करने वाली और प्रेम में सब कुछ होम कर देने वाली स्त्री का वर्णन करते हैं। जो सब कुछ सहते हुए भी अपने अधिकारों की मांग तक नहीं करती। नाटक में स्त्री पात्र स्वाति एक जगह कहती है- "पिछले दिनों तुम्हारी इच्छा के लिए मेरे अधीन रहने वाली गुप्तचर स्त्रियों ने मथुरा राज्य के अनेक शिशुओं की हत्या कर दी। यहाँ तक कि लोगों ने कहना शुरू कर दिया... स्वाति राक्षसी है। उसके बड़े बड़े दाँत और नाखून हैं। वह शिशुओं का रक्त पीती है..... यह सब मैंने तुम्हारे लिए किया। तुम्हें सुखी देखने के लिए किया।"8

भीष्म साहनी अपने नाटक 'हानूश' में चेकोस्लोवाकिया की एक ऐतिहासिक मिथकीय घटना को कथावस्तु का आधार बनाते हैं। हानूश नाम का एक मिस्त्री अपनी कड़ी मेहनत से एक घड़ी बनाता है जिसके कारण उसे राजदंड दिया जाता है। घड़ी से उसका संबंध व अधिकार दोनों नष्ट कर दिये जाते हैं। यहाँ तक कि उसकी आँखें तक निकाल ली जाती हैं। निर्मम सत्ता का प्रतीक राजन कहता है- "अगर हमारी राजधानी की रौनक बढ़ाने के लिए इस घड़ी को बनाया गया है तो फिर दूसरी घड़ी बनाने का मतलब? यह आदमी सिर्फ एक ही घड़ी बनाएगा... चुपचाप इस घड़ी को नगर पालिका पर लगा दिया गया। हमें बाद में ख़बर दी गई। हमें उस वक्त बताया गया जब घड़ी लग चुकी थी। ऐसे आदमी पर कड़ी निगरानी रखने की ज़रूरत है।"9

दूधनाथ सिंह कृत 'यमगाथा' में भी सत्ता के मद में चूर निरंकुश राजा इन्द्र का चरित्र चित्रांकित किया गया है। नाटक में पुरूरवा और वशिष्ठ आम जनता के हितों के लिए लड़ते दिखते हैं, तो वहीं इंद्र की सत्ता उन्हें पूरी तरह टूटने पर मजबूर कर देती है। नाटक में इंद्र कहता है- "ले जाओ इस महामुनी को और वहीं डाल दो इसे, जहाँ ये अपने मंत्रों के लिए प्रामाणिक अनुभव अर्जित कर सके। कहाँ हैं उर्वशी? नृत्य और संगीत का प्रबंध करो।.... कोई भी मेरा उत्तराधिकारी नहीं हो सकता। मैं सर्वज्ञ हूँ, सर्वाधिकारी हूँ, सनातन हूँ, अकेला हूँ।"10

इस प्रकार समकालीन नाटककारों ने वर्तमान मानव के जीवन में फैली विसंगतियो को मिथकीय प्रसंगों के माध्यम से व्यक्त करने का कार्य किया है। आलोच्य नाटककारों के अतिरिक्त भी अनेक नाटककारों ने ऐतिहासिक व पौराणिक मिथकों को आधार बनाकर अनेक नाटकों की रचना की है। इन नाटकों में ना केवल आधुनिक मनुष्य की तमाम समस्याओं को उजागर किया गया है बल्कि आम आदमी को सोचने पर मजबूर भी किया है। मिथक घटनाएँ चूँकि प्रत्येक समय और समाज में उपस्थित रही हैं इसलिए ये मनुष्य तक अपनी पहुँच आसानी से बना लेती हैं। यही कारण है कि नाटककार अतीत की इन मिथकीय घटनाओं को नई अर्थ संभावनाएँ देकर प्रस्तुत करते हैं। पौराणिक प्रसंगों को आधार बनाकर आम आदमी की समस्याओं को अभिव्यक्ति प्रदान करने में ये नाटक सफल सिद्ध हुए हैं।

000

संदर्भ - 1. आधुनिक हिंदी कविता में शिल्प, पृष्ठ संख्या 82 डॉ. कैलाश नाथ वाजपेयी, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1963, 2. मिथक एक अनुशीलन, पृष्ठ संख्या 48, डॉ. मालती सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1988, 3. भारतीय सौंदर्य और संस्कृति, पृष्ठ संख्या 110, रत्नकुमार पांडेय (संपादक), विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक, वाराणसी, संस्करण 1995, 4. मिथकीय अवधारणा और यथार्थ, पृष्ठ संख्या 233, डॉ. रमेश गौतम, राधारानी प्रकाशन 29/ 61, गली संख्या 11, विश्वास नगर, दिल्ली -11 00 32, प्रथम संस्करण 1977, 5. हिंदी के प्रतीक नाटक, पृष्ठ संख्या 130, रमेश गौतम, राधारानी प्रकाशन 29/61, गली संख्या 11, विश्वास नगर, दिल्ली - 11 00 32, संस्करण 1977, 6. नरसिंह कथा, पृष्ठ संख्या 21, डॉ. लक्ष्मी नारायणलाल, दी मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1975, 7. मिस्टर अभिमन्यु, पृष्ठ संख्या 36, डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल, दी मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1975, 8. कथा एक कंस की, पृष्ठ संख्या 71, दया प्रकाश सिन्हा, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1976, 9. हानूश, पृष्ठ संख्या 97, भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1979, 10. यमगाथा, पृष्ठ संख्या 23, दूधनाथ सिंह, लोक भारती प्रकाशन प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1979

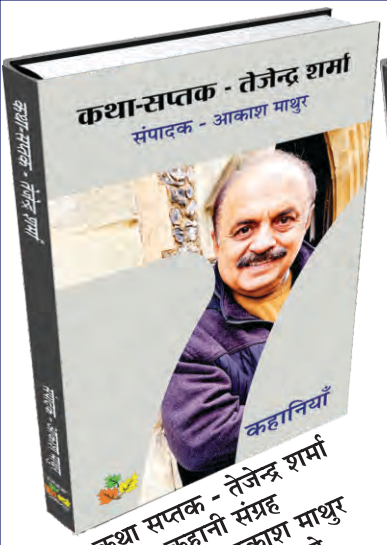

कथा सप्तक - तेजेन्द्र शर्मा
कहानी संग्रह
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य : 175 रुपये

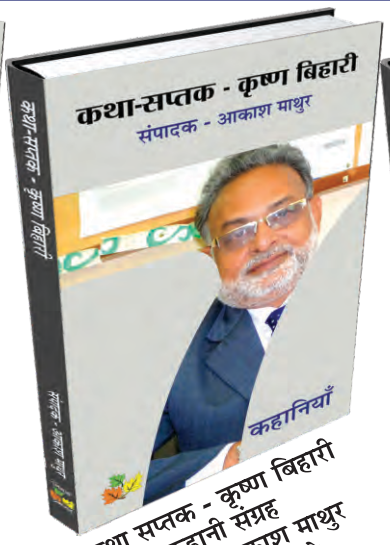

कथा सप्तक - कृष्ण बिहारी
कहानी संग्रह
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य : 175 रुपये

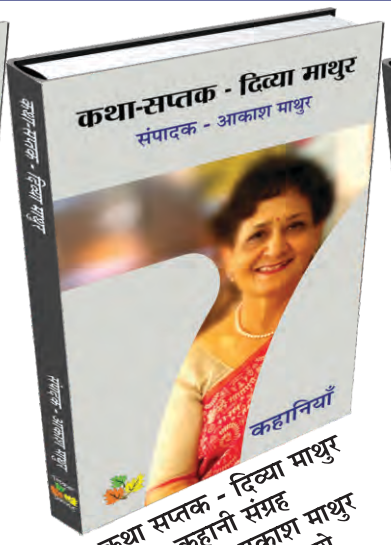

कथा सप्तक - दिव्या माथुर
कहानी संग्रह
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य : 200 रुपये

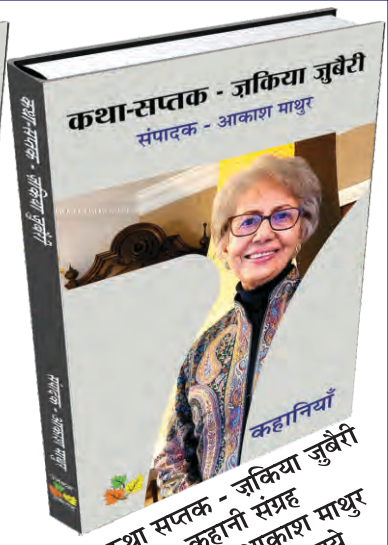

कथा सप्तक - ज़किया ज़ुबैरी
कहानी संग्रह
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य : 150 रुपये

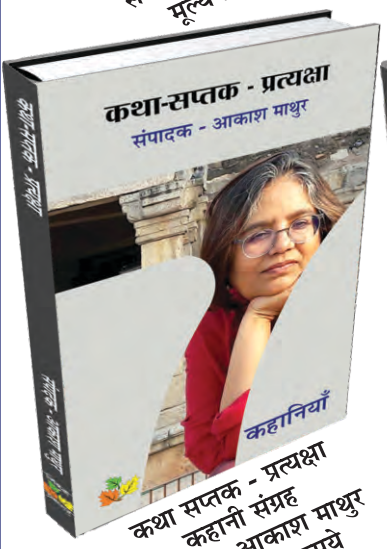

कथा सप्तक - प्रत्यक्षा
कहानी संग्रह
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य : 150 रुपये

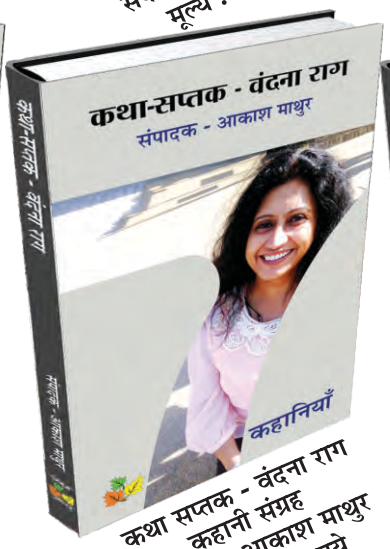

कथा सप्तक - वंदना राग
कहानी संग्रह
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य : 200 रुपये

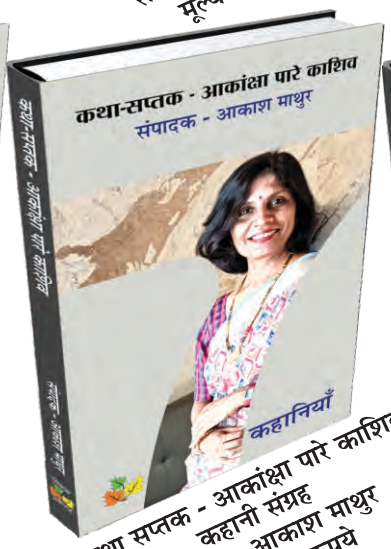

कथा सप्तक - आकांक्षा पारे काशिव
कहानी संग्रह
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य : 150 रुपये

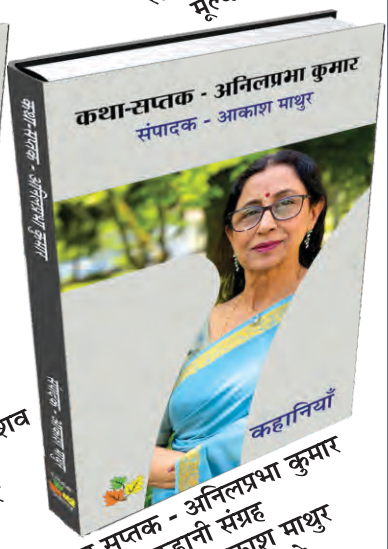

कथा सप्तक - अनिलप्रभा कुमार
कहानी संग्रह
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य : 150 रुपये

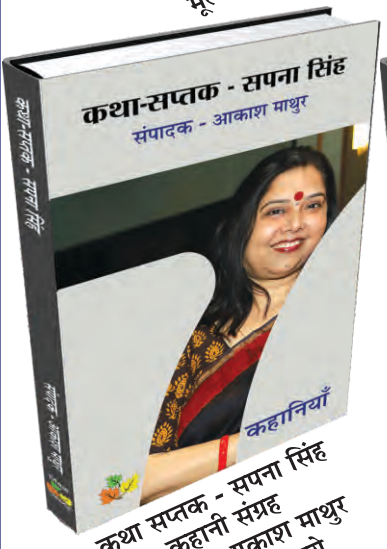

कथा सप्तक - सपना सिंह
कहानी संग्रह
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य : 150 रुपये

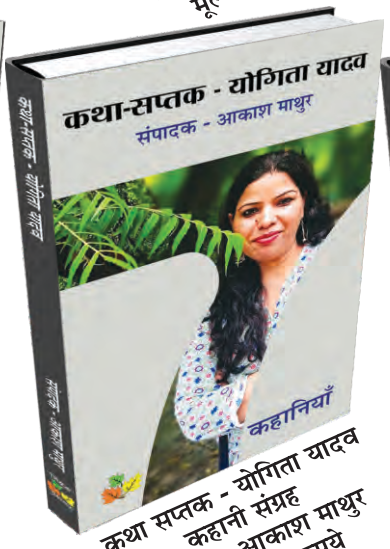

कथा सप्तक - योगिता यादव
कहानी संग्रह
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य : 150 रुपये

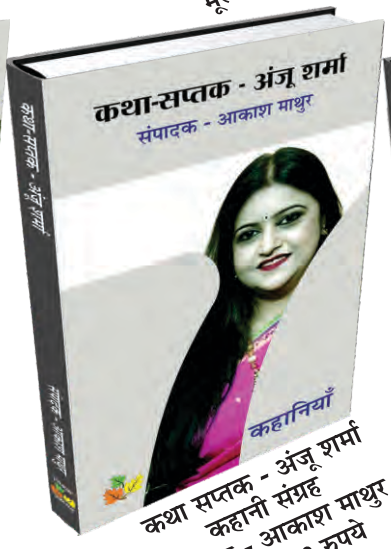

कथा सप्तक - अंजू शर्मा
कहानी संग्रह
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य : 150 रुपये

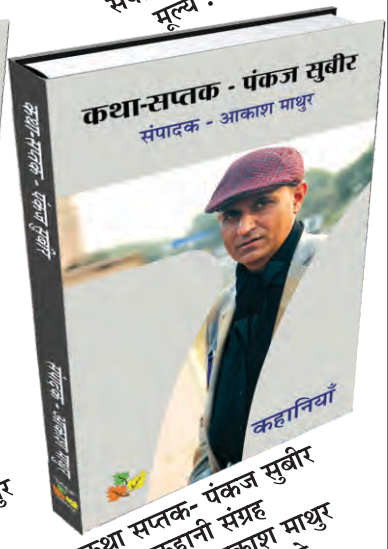

कथा सप्तक- पंकज सुबीर
कहानी संग्रह
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य : 150 रुपये

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट
कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in

amazon
http://www.amazon.in

flipkart.com
http://www.flipkart.com

Mobile - +91-9806162184, +91-6265665580
+91-8819806162
https://twitter.com/shivnac
https://www.facebook.com/shivna.prakashan
https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
Email- shivna.prakashan@gmail.com

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका द्वारा मध्यप्रदेश के सीहोर ज़िले में सीहोर तथा आष्टा में चलाए जा रहे आर्थिक रूप से कमज़ोर परिवार की बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण योजना के तहत स्थापित प्रशिक्षण केन्द्रों पर आयोजित कुछ कार्यक्रम

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2023-24 के शुभारंभ समारोह के अवसर पर अतिथिगण श्री उमेश शर्मा, श्री सुनील भालेराव तथा श्री हितेन्द्र गोस्वामी।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2023-24 के शुभारंभ समारोह के अवसर पर अतिथिगण श्री अनिल पालीवाल तथा श्री राजेश चाण्डक।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2023-24 के शुभारंभ समारोह के अवसर पर अतिथिगण श्री लोकेन्द्र मेवाड़ा तथा श्री कैलाश अग्रवाल

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर प्रवासी कवयित्री कथाकार सुश्री शिखा वार्ष्णेय के आगमन पर उनका सम्मान किया गया, इस अवसर पर उन्होंने प्रशिक्षण प्राप्त कर रही बालिकाओं को संबोधित भी किया।

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स,ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।